

गोस्वामि श्री १०८ देवकीनन्दनाचार्यजी
महाराज।

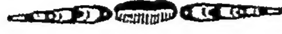
वल्लभदिग्विजय.



श्रीः ।

अथ

व्रजभाषाटीकोपेतस्य श्रीमद्वल्लभाचार्यदिग्विजयस्य सूचिकापत्रम् ।



श्रीवल्लभगिरां सारं श्रीवल्लभयशोभरम् ।
श्रीवल्लभार्यचरितं यथेहन तथा क्वचित ॥

श्रीमद्वल्लभाचार्यजीकी वाणीका सार श्रीमद्वल्लभाचार्यजीका यश श्रीमद्वल्लभाचार्यजीका चरित्र जैसा इस ग्रन्थमें है वैसा कहीं नहीं समझो उस समय इस देशमें प्रचंड नास्तिक शून्यवादमार्तंडक किरणोंसे मनुष्यहृदय पृथिवी कैसी जलरहीथी उसमें वेद घनश्याम द्वारा सदुपदेशामृत सिद्धान्तोंकी वृष्टिकर भक्ति बीज जमाकर जीवोंको तिलक तुलसीकी कंठी देकर सफल आनन्दकन्द श्रीकृष्णचन्द्रभगवान्के सन्मुख भगवान् भाष्यकार श्रीमद्वल्लभाचार्यजीके अतिरिक्त और कौन करसकाथा मित्रो उन्हींके सब चरित्रोंका तथा समस्त सिद्धान्तोंका यथार्थरूपसे वर्णन इस ग्रन्थमें है और जहाँ जहाँ श्रीमहाप्रभुजी पधारे हैं उन स्थलोंके नाम उस समयके राजाओंके नाम जो जो आपके शिष्य हुए हैं उस समयके विद्वानोंके नाम उनसे जो पूर्वपक्ष उत्तरपक्ष शास्त्रार्थ हुआ है यह सब पाठकगण इसमें मिलेगा आर्यावर्तमें कहाँ कहाँ कौन कौन तीर्थ हैं किस किस तीर्थमें क्या क्या करना चाहिये क्या उनकी महिमा है वहां जानेसे क्या क्या लाभ होता है यह सब भी इस ग्रन्थके बांचनेसे करतलस्थित बदरी फलके समान अच्छी तरहसे आप लोग देखसकेंगे अब आप लोगोंसे अन्तिम यही प्रार्थना है कि उक्त परोपकारी महाप्रभु श्री १ गोविन्दाचार्यजी भगवान्के स्वरूपको स्मरण करते उनकी इस ग्रन्थमथित अमृतमयी वाणीके रसको पान करेंगे और मन्दिरोंमें तथा अपने घरोंमें नित्य कथामें दूसरी वार्ताओंकी तरह इस अपूर्व ग्रंथका कि जिससे बढके श्री महाचार्यजीका चरित्र और कहीं नहीं है उसका प्रचार करके अपनी आत्माको कृतज्ञ बनावेंगे और विशेषतः उपकार उनके आत्मज सुप्रसिद्ध जगद्गुरु गोस्वामि श्री६ मद्देवकीनन्दनाचार्यजी महाराजका मानियेगा कि, जिनकी कृपासे और महदाश्रयसे भाषान्तर सहित इस ग्रन्थके प्रकाश करनेमें मैं सफल हुआ मित्रो इस अपूर्व ग्रन्थका भाषान्तर करना तथा शुद्ध करना सहज नहीं था क्योंकि एकही इस पुस्तककी प्रतिथी वह भी यथा कथञ्चित् लिखितथी और मुझ जैसा अल्पज्ञ भाषान्तरकर्ता फिर कैसे हो परन्तु महात्मा विद्वानोंकी सहायतासे क्या नहीं होसकता इसलिये जिन विद्वानोंने इस ग्रन्थके भाषान्तर करनेमें तथा शुद्ध करनेमें मुझे सहायता दी है उनका नाम लिखके मैं उपकार मानताहूं ।

१ ग्रन्थकर्ताके कनिष्ठ भ्राता सम्प्रति काम्यवननिवासी श्रीपन्नालाल शास्त्रीजी महाराज
२ ग्रन्थकर्ताके दौहित्र बीकानेर निवासी श्रीकाशीनाथ भट्टजी
३ मथुरावास्तव्य भट्ट श्रीरमेशशास्त्रितनुज श्रीम कवि श्रीनन्दकिशोर शास्त्रीजी
४ गोकुलनिवासी गोकुलस्थ भट्ट नियह शास्त्री श्रीगोवर्धनलालजी

और इतनेपरभी यदि कहीं इसमें चूक रहगई हो अथवा लेखके शीघ्रगति दोषसे वर्ण मात्रा उड गई हो तो पाठकगण मुझे क्षमा करेंगे ।

चन्द्रबाग-माधवबागके सामने बंबई	प्रकाशक भाषान्तर कर्ता- पं० शङ्करदयालु शर्मा मिश्र

श्रीः ।

वल्लभदिग्विजयः

जगद्गुरुगोस्वामिश्री ६ गोविन्दाचार्य्याणांनिदेशेन

कृष्णशास्त्रिकृतः ।

॥ श्रीकृष्णाय नमः ॥ श्रीहरये गुरवे नमः ॥ श्रीमद्गोकुलचंद्रमसे नमः ॥

स्वस्तिश्रीमदनन्तमंगलगुणग्रामाभिरामात्मने
तस्मै श्रीपुरुषोत्तमाय शरणत्राणाय भूभृद्धते ॥
वृंदारण्यपुरंदराय च प्रफुल्लेंदीवराभाजुषे
भव्यस्तव्यमहेंदिराश्रितपदे कुर्मो नमः सिद्धये ॥ १ ॥
श्रीशस्यैव विचित्रशीलचरितैस्तिष्येभिनीते ततो
जाते चासुरवंचनाय सुगते तद्वाग्विलुप्तागमे ॥
स्वीयोद्धारकृतेऽवतीर्णतनवे वेदाध्वरक्षाभृते
विष्णुस्वामिपदाभिधेयगुरवे तस्मै नमो विष्णवे ॥ २ ॥

ग्रन्थकार ग्रन्थकी समाप्तिके लियें पहले प्रकरणसूं मंगलाचरण करत हें तामें प्रथम अपने परम इष्टदेव श्रीपूर्णपुरुषोत्तमकूं प्रणाम करत हें जो सुंदर श्रीकरकें युक्त अनेक मंगलगुणनतें शोभित हे स्वरूप जिनको ओर शरणागत जननके रक्षाके लियें धारण कियो हे श्रीगिरिराजको जिननें प्रफुल्लित कमलके समान हे कान्ति जिनकी लक्ष्मीजीतें सेवित रमणीय स्तुति करवेके योग्य पद हें जिनके एसे वृन्दावनके चन्द जो श्रीपुरुषोत्तमहें उनकूं ग्रन्थकी सिद्धिके लियें प्रणाम करत हें ॥ १ ॥ ओर भगवान्‌कीही इच्छातें क्रमप्राप्त कलियुग जब थोरो बीत्यो तब आसुरी जीवनके मोहके लियें बुद्धा



वन्दे श्रीपतिमीश्वरं हि तमुपज्ञादेशिकं शंकरं
देवर्षिप्रवरं च नारदमहं वैकुंठवर्त्माधिपम् ॥
कृष्णव्यासममुं जगद्धितकरं ज्ञानावतारं हरे
राचारेण विचारतोप्यनुपमं मुक्तात्मनां श्रीशुकम् ॥ ५ ॥
व्यक्तेरेकफलं वदंति कवयो यत्सेवनं श्रीपते
स्तिष्यध्वांतविमुष्टदृष्टिविदुषां स्वप्नेपि तद्दुर्लभम् ॥
आत्मानं किल सप्तसातिवदसौ कृत्वा प्रभुः सप्तकं
तद्दातुं भुवि विट्ठलः समभवद्यद्रूपतस्तान्नुमः ॥ ६ ॥
भक्तीनां नवधाभिधां स्ववपुषः श्रोत्रादिभिः शीलयन्
श्रीलीलापुरुषात्मतां प्रकटयन्यः स्वीयशीलेन वै ॥
श्रीगोवर्द्धनधारिणो व्रजपतेस्सेवाधिकारप्रदं
श्रीगोविन्दगुरुं नमामि शिरसा गोस्वामिचूडामणिम् ॥ ७ ॥

गुसांईजी हैं तिनकूं में नमस्कार करूं हूं ॥ ४ ॥ ओर श्रीपति जो पुरुषोत्तम हैं तथा प्रथमगुरु श्रीमहादेवजी देवर्षिनमें श्रेष्ठ वैकुंठमार्गके बतायवेवारे श्रीनारद जगत्के हितकरवेवारे श्रीहरिके ज्ञानावतार कृष्णद्वैपायन व्यासजी जीवन्मुक्तनमें आचार विचार सों विलक्षण एसे जो श्रीशुकदेवजी इन सबनकूं में नमस्कार करूं हूं ॥ ५ ॥ ओर संसारमें जन्म लेवेको भगवत्सेवा करनोंहीं एक फल अच्छे कवि कहे हें जो कलिके अन्धकारतें नष्ट नेत्र विद्वाननको स्वप्नमें बी दुर्लभ हे वाकूं संसारमें प्रसिद्ध करवेकों सूर्यके समान श्रीविठ्ठलनाथजी अपनी आत्माहीको सातप्रकारकी करकें जिनस्वरूपनतें भये हें तिनकी हम स्तुति करत हें ॥ ६ ॥ ओर श्रवण कीर्तन आदि नवप्रकारकी भक्तीनकूं अपने कर्ण वाणी आदि इन्द्रियनसों करते अपने शीलहीतें लीलापुरुषोत्तमपनेकों प्रकट करवेवारे श्रीनाथजीकी सेवाके अधिकारकूं देवेवारे गोस्वामिचूडामणि जो श्रीनाथद्वाराधीश गोविन्दजीमहाराज गुरु हें उनकूं मस्तक करकें

आदौ गीतमृचां ततोऽधियजुषां साम्नां समाप्तावपि
दैवानां च सुधावह कलितम पापण्डकांडापहम् ॥
श्रौतस्मार्तपथप्रवर्तनकर सद्वादसंस्थापक
सर्वाचार्यशिरोभिधार्यचरण श्रीवल्लभं तं भजे ॥ ३ ॥
श्रौतस्मार्त्तपथावभासिरवये भक्त्यम्बुधि वेधसे
सद्वादाम्बुधिपूर्त्तिपूर्णविधवे पापण्डदावाग्नये ॥
दैवोद्धारकृतावतारवपुषे गोपीशगोसभृते
श्रीमद्विठ्ठलनाथनामगुरवे नित्यं नमः कुर्महे ॥ ४ ॥

वतार भयो और उनकी वेदनिन्दारूपी वाणीते वेद लुप्तप्राय होयगये तब दैवी जीवनके उद्धारके लिये और वैदिक सनातन मार्गकी रक्षाके लिये स्वयम् अवतार लेके विष्णुस्वामी नामसे प्रसिद्ध भये एसे जो विष्णुरूपी गुरु हैं उनकू प्रणाम करत है ॥ २ ॥ और ऋग्वेदमें पहले गान कियो है जिनको अर्थात 'अग्निमीळे पुरोहितम्' ये ऋग्वेदको प्रथम मन्त्र है याको अग्निरूप जो पुरोहित गुरु है अर्थात अग्न्यवतार श्रीवल्लभाचार्यजी हैं उनकू मैं नमस्कार करत हूं ये अर्थ है तथा ऋग्वेदमें जिनकी स्तुति करी गई है याही प्रकार यजुर्वेदके मध्यमें और सामवेदके अन्तमें जिनकी स्तुति करी गई है और दैवी जीवनके लिये अमृत दिया है जिनने कलियुगमें पाखण्डरूपी अन्धकारके नाश करवेवारे वैदिकमार्गके प्रवृत्त करवेवारे सद्वादस्थापक सब आचार्य शिरोमणि करे हैं जिनके चरणकमलनको एसे जो श्रीवल्लभाचार्यजी हैं तिनकू मैं नमस्कार करत हूँ ॥ ३ ॥ और वैदिक लौकिक मार्गके प्रकाश करवेमें सूर्य भक्तिरूपी समुद्रके मथन करवेमें [illegible] मन्दराद्रिरूपी प्रभु [illegible] दुःखके लिये [illegible] पाखण्ड वन जरायवेकू अग्नि दैवी जीवनके उद्धार करवेके लिये अवतार लियो है जिनने एसे जो श्रीविठ्ठलनाथ गुरु श्री

वन्दे श्रीपतिमीश्वरं हि तमुपज्ञादेशिकं शंकरं
देवर्षिप्रवरं च नारदमहं वैकुंठवर्त्माधिपम् ॥
कृष्णव्यासममुं जगद्धितकरं ज्ञानावतारं हरे
राचारेण विचारतोप्यनुपमं मुक्तात्मनां श्रीशुकम् ॥ ५ ॥
व्यक्तेरेकफलं वदंति कवयो यत्सेवनं श्रीपते
स्तिष्यध्वांतविमुष्टदृष्टिविदुषां स्वप्नेपि तद्दुर्लभम् ॥
आत्मानं किल सप्तसप्तिवदसौ कृत्वा प्रभुः सप्तकं
तद्दातुं भुवि विट्ठलः समभवद्यद्रूपतस्तान्नुमः ॥ ६ ॥
भक्तीनां नवधाभिधां स्ववपुषः श्रोत्रादिभिः शीलयन्
श्रीलीलापुरुषात्मतां प्रकटयन्यः स्वीयशीलेन वै ॥
श्रीगोवर्द्धनधारिणो व्रजपतेस्सेवाधिकारप्रदं
श्रीगोविन्दगुरुं नमामि शिरसा गोस्वामिचूडामणिम् ॥ ७ ॥

गुसांईजी हैं तिनकूं मैं नमस्कार करूं हूं ॥ ४ ॥ ओर श्रीपति जो पुरुषोत्तम हैं तथा प्रथमगुरु श्रीमहादेवजी देवर्षिनमें श्रेष्ठ वैकुंठमार्गके बतायवेवारे श्रीनारद जगतके हितकरवेवारे श्रीहरिके ज्ञानावतार कृष्णद्वैपायन व्यासजी जीवन्मुक्तनमें आचार विचार सों विलक्षण एसे जो श्रीशुकदेवजी इन सबनकूं मैं नमस्कार करूं हूँ ॥ ५ ॥ ओर संसारमें जन्म लेवेको भगवत्सेवा करनोंहीं एक फल अच्छे कवि कहें हैं जो कलिके अन्धकारतें नष्ट नेत्र विद्वाननको स्वप्नमें बी दुर्लभ हे वाकूं संसारमें प्रसिद्ध करवेकों सूर्यके समान श्रीविठ्ठलनाथजी अपनी आत्माहीको सातप्रकारकी करकें जिनस्वरूपनतें भये हैं तिनकी हम स्तुति करत हैं ॥ ६ ॥ ओर श्रवण कीर्तन आदि नवप्रकारकी भक्तीनकूं अपने कर्ण वाणी आदि इन्द्रियनसों करते अपने शीलहीतें लीलापुरुषोत्तमपनेकों प्रकट करवेवारे श्रीनाथजीकी सेवाके अधिकारकूं देवेवारे गोस्वामिचूडामणि जो श्रीनाथद्वाराधीश गोविन्दजीमहाराज गुरु हैं उनकं मस्तक करकें

श्रीमद्वल्लभविठ्ठलेशवपुषोर्मूर्तिः परा भासुरा
या श्रीमद्रघुनाथनामकलिता मेरुप्रभा स्वात्मनाम् ॥
या मार्गाम्बुधिमथनादिह तलस्पर्शेन सर्वज्ञतां
स्वस्यामेव बिभर्त्ति सेह कविभिर्न प्राप्यते पारगैः ॥ ८ ॥
तद्बिम्बात्प्रतिबिम्बितो मणिमये सद्भक्तिसद्दर्पणे
यस्मिन्गोकुलचन्द्रचारुचरितालिर्बिम्बते सर्वतः ॥
यस्योदारचरित्रचित्रितजना यं देवकीनन्दनं
साक्षाद्वीक्ष्य नु सस्मरुः पुनरमुं श्रीदेवकीनन्दनम् ॥ ९ ॥
जेता दिग्जयिनां विदां दिविषदामभ्यर्थनारम्भको
योल्कापुरुषान्समीक्ष्य सुदृढान्सद्धर्मसेतून्व्यधात् ॥
त्राता यः शरणागतात्मजनुषां भर्ता चमूनां सतां
जातः श्रीरघुनाथगोपतिरतः पद्मापतिः स स्वयम् ॥ १० ॥

नमस्कार करूं हूं ॥ ७ ॥ श्रीमद्वल्लभाचार्य्यजी श्रीमद्विठ्ठलाचार्य्यजीकी म्मनों दूसरी मूर्ति अपने मार्गनमें मालाके सुमेरुकी मणिकाकी प्रभाकूं धारण करवेवारी स्वमार्गरूपी समुद्रके मन्थनतें तलस्पर्श करकें या संसारमें सर्वज्ञताकूं धारण कियो हे जानें जाको महान् पारगामी कविहू अनन्तगुण होयवेतें स्तुति नहीं करसकें हें एसी जो पंचमपीठाधिपति प्रथम श्रीरघुनाथजीकी अति तेजस्वी मूर्ति हे ॥ ८ ॥ वाके प्रतिबिम्बतें श्रीगोकुलचन्द्रमाजीके सुंदर चरित्र प्रतिबिम्बित होयरहे हें जामें एसे भक्तिरूपी स्वच्छ कॉचमें प्रतिबिम्बित श्रीदेवकीनन्दनाचार्यजी भये जिनके उदारचरित्रनतें आश्चर्यको पायेभये लोग फिर देवकीनन्दन जो श्रीकृष्ण भगवान् हे तिनको स्मरण करन लगे ॥ ९ ॥ इन श्रीदेवकीनन्दनाचार्यजीतें दिग्विजयी विद्वाननके जीतवेवारे देवी जीवनकी प्रार्थनाकूं मानवेवारे अल्पमति मनुष्यनकूं देखकें अनेक धर्मशास्त्रीय निबन्धनके करवेवारे शरणागतजननकी रक्षाकरवेवारे विष्णुस्वामि साधुनकी सेनाके

देवाभ्यर्थनयाऽवतारमदधाद्गोरर्दनां मर्दयन्
कंसं निर्जितवान्सदासुरमतं यः कालनेम्यागतम् ॥
भक्तिः कामधुरा यतोतिमधुराऽ तोदेवकीनंदनः
कामं कामवने विहर्तुमनसा जातो जहौ गोकुलम् ॥ ११ ॥
भक्त्या ज्ञानविरागतोप्यनुपमो गांभीर्य्यमाधुर्य्यतो
यश्चक्रे निजसांप्रदायिकपदार्थानां रहस्योदयम्
श्रीमद्गोकुलचन्द्रलालनरसैः स्वीयान्समप्लावयद्
दासक्लेशहरोप्यशेषमहिमः श्रीद्वारिकेशस्ततः ॥ १२ ॥
भक्तेः कामदुहो हरिर्वृषवरोगोपाश्च गोस्वामिनो
वत्सो भक्तगुणोर्जुनं च सुकृतं दुग्धं रसोस्यानवम् ॥
भोक्तासौ भुवने स्वयं गिरिधरो दातावितोत्पादकः
श्रीमद्गोकुलचन्द्रसेवनचणःश्रीद्वारिकेशाद्बभौ ॥ १३ ॥

पोषण करवेवारे पद्मानामक बहूजीके पति श्रीरघुनाथाचार्य गोस्वामी भये।१०। ओर इनतें दैवीजीवनकी प्रार्थनासूं अवतार लेकें गोब्राह्मणनके दुःखनकूं दूर-करते कालचक्रमें आयोभयो एसो कोन नास्तिकमत हे जाको नही जीत्यो जिनकी भक्ति कामनाकूं देवेवारी अतिसुंदर हती एसे श्रीदेवकीनन्दनाचार्यजी भये जो काम्यवनवासकरवेकी इच्छातें श्रीगोकुलगामकूं छोडतेभये ॥११॥ पीछें इनतें भक्ति ज्ञान वैराग्य गाम्भीर्य मधुरता आदि गुणनतें जिनके समान कोई नहीं ओर मार्गके गूढ पदार्थनके भावना आदिकग्रन्थनके करवेवारे श्रीमद्गोकुलचद्रमाजीके सेवारसतें अपने वर्गको सन्तोष देवेवारे निजभक्तनके क्लेशकों दूरकरवेवारे महामहिम श्रीद्वारकेशजी भये ॥ १२ ॥ इनतें श्रीगोकु-लेन्दुकी सेवामें प्रवीण श्रीगिरिधराचार्यजी भये जो हरिरूपी वृषभवारी गोस्वा मिगणरूपी गोपवारी भक्तगणरूपी बछडावारी पुण्यरूपी घासवारी पुष्टिमार्गी-य रसरूपी दुग्धवारी भक्तिरूपी कामधेनुके रसके या संसारमें उत्पन्नकरवेवारे

विद्योदार्यदयाक्षमामतिमुखैश्चातुर्य्यमाधुर्य्यत
स्वीयैर्गोत्रगुणैरलङ्कृततनुर्वंशद्वयस्याधिप ॥
यस्तस्माज्जनितश्चतुर्भुजतनुश्चक्रादिभिर्लक्षित
कस्याय न भवेन्मतो मतिमत श्रीदेवकीनन्दन ॥ १४ ॥
भक्तानामिह कामधुक् च भजनानन्दामृतस्यदिनो
यश्चिंतामणिरेव चिंतितकरोभूपाकृते श्रीपते ॥
भूकल्पद्रुमतामधात्सगुणिनां सर्गीतकीर्तिस्ततो
गोस्वामिप्रवरो जगद्धितकर श्रीवल्लभो वल्लभ ॥ १५ ॥
श्रीमद्वल्लभविट्ठलेशरघुनाथानां रहस्य जुपन्
धर्मज्ञानविरागभक्तिवचसां वक्ता पुन श्रीशुक ॥
नित्य निर्जितमन्मथोपि भुवने ऽसौमूर्तिमान्मन्मथ
श्रीगोविन्दप्रभुस्तत सम्भवद्भक्त्यध्वकल्पद्रुम ॥ १६ ॥

और रक्षाकरवेवारे स्वयम् पानकरवेवारे भये ॥ १३ ॥ और इनतें विद्या उदारता दया क्षमा चतुरता मधुरता आदि अपने वंशके गुणनतें शोभित सुंदर शरीरवारे पञ्चम और सप्तम पीठके स्वामी शंख चक्रादिकचिन्हनतें चिह्नित चार भुजावारे श्रीदेवकीनन्दनजी भये जिनकूँ ऐसो कोन बुद्धिमान् हो जो साक्षात् श्रीदेवकीनन्दन श्रीकृष्ण नहीं मानतो ॥ १४ ॥ पीछे उनतें या भूमंडलमें भक्तनकी कामनाकू पूरण करवेवारे श्रीभगवानके भूषणनके लिये चिन्तामणिरूप भजनानन्दरूपी अमृतकू देवेवारे गुणिजननके कल्पद्रुम प्रसिद्ध-कीर्ति जगत्के हित करवेवारे सबके प्रीतिपात्र श्रीवल्लभाचार्यजी महाराज भये १५ और इनके सखा भगवान श्रीमद्वल्लभाचार्यजी तथा श्रीविट्ठलाचार्यजी श्री रघुनाथाचार्यजीके रहस्यके जानवेवारे धर्म ज्ञान वैराग्य भक्तिबोधक वचननके श्रीशुकदेवजी जैसे वक्ता कामके जीतवेवारे होयवे पै मूर्तिमान् काम अर्थात् अतिसुन्दर भक्तिमार्गके कल्पद्रुम ऐसे श्रीगोविन्दाचार्यजी महाप्रभु भये ॥ १६ ॥

आबाल्यात्स निसर्गभास्वरमतिर्धर्मं सतामाश्रितो
विद्या ह्यद्यतराः पपाठ च रहस्यं ज्ञातुमात्त्माध्वनः ॥
स्वस्मिन्नेव कृतज्ञतां वहति यो मर्मज्ञतां विज्ञतां
श्रीगोविंदगुरोर्लिखामि वचसा श्रीवाल्लभं दिग्जयम् ॥ १७ ॥
किं पाकद्रुरिवाफलापि फलितान्तर्वाणिवाण्यन्यगा
सा कल्पद्रुमवत्सदैव फलदा वाग्वाक्पतेः कीर्तने ॥
तस्मान्मद्वचनावलीं नवनटीं त्रैलोक्यरङ्गस्थलीं
तत्कर्पूरसुपूरपूर्णयशसां चामोदयिष्ये भरैः ॥ १८ ॥
यः श्रीनाथसनाथपुर्यधिकृतो गोविन्दगोस्वामिभिः
शुद्धाद्वैतमतप्रवर्त्तनकृते शाख्यास गंगाधरः ॥
यस्याध्यापितपंडितैर्नृपसभाभ्यंतर्गतैः क्रीड्यते
विद्वद्वृंदकरीन्द्रदर्पदलने शार्दूलविक्रीडितैः ॥ १९ ॥

जो बाल्यावस्थाहीसूँ लेकें स्वभावहीतें शुद्धमति हैं सदाचार करिवेवारे हैं ओर जिनने अपने मार्गके रहस्यके ज्ञानवेके लियें हृदयके लुभायवेवारी विद्यानकूँ पढ़ीहैं कृतज्ञता मर्मज्ञता विज्ञताके एकही धारण करवेवारे एसे जो श्रीगोविन्दाचार्यमहाप्रभु हैं उनकी आज्ञातें श्रीवल्लभदिग्विजयग्रन्थकूँ में लिखूँहूँ ॥ १७ ॥ अब या ग्रन्थ बनायवेवारे कवि अपनी वाणीतें कहतहैं जो हे वाणि ! जो तू परगामिनी होयगी अर्थात् ओरकी कविता करेगी तो निम्बवृक्षके जेसे फलित होयकें वी फलरहित रहेगी ओर जो वाक्पति श्रीवल्लभाचार्यजीको कीर्तन करेगी तो हमेसांहीं फलदेववारी होयगी यातें तीनोंलोकहैं नाचवेकी जगह जाके एसी जो नवनटीरूपी मेरी वचनावली त् हे वाको कर्पूरके पूरतें पूर्ण जो आचार्यनको यशहै वाके सम्बन्धतें आनन्द देऊँगो ॥१८॥ अब कवि अपने पिताकी स्तुति करत हैं जो जिनको श्रीनाथद्वारमें गोस्वामी श्रीगोविन्दजीमहाराजने शुद्धाद्वैतमतके प्रवृत्तकरवेके लियें अधिकार

वह्वृग्मौद्गल्यगोत्रः प्रथिततरयशा नागनाथान्वयेऽभूत्
बुन्देलाधीशपूज्यः कविकुलतिलको गोरिलालाख्यभट्टः ॥
शास्त्री गङ्गाधरस्तत्कुलजनिरभवत्तत्कुले शास्त्रिकृष्ण
स्तेनेदं लिख्यते श्रीगुरुवरचरितं स्रग्धराणां मतेन ॥ २० ॥
श्रीवेदव्यासविष्णुप्रमुखचरणमिते संमते ग्रंथसार्थे
श्रीगोविन्दाभिधानां समयनयविदां देशिकानां निदेशात् ॥
आचार्याणां चरित्रे हरिजनसुखदे कृष्णभट्टैर्निबद्धे
ग्रंथेऽस्मिन्दिग्जयाख्ये समजनि पटहो मङ्गलाख्यो यमाद्ये ॥२१॥

दियो हो और जिनके पढाये भये विद्वान राजानकी सभाके बीचमें विद्वानरूपी जो मत्त हाथी हैं तिनके अहंकाररूपी मदके दलन करवेमें सिंहकी जैसी क्रीडा करत हैं एसे श्रीगंगाधरशास्त्री भये॥ १९॥ ये बडे यशस्वी बुन्देलखंडके राजा छत्रसालके माने भये कविकुलतिलक ऋग्वेदी मुद्गलगोत्री नागनाथजीके वंशमें जो श्रीगौरीलालभट्टजी हते तिनके पुत्र हे तिनको पुत्र कृष्णशास्त्री में वैष्णवनकी सम्मतिसे श्रीगुरुभगवान् वल्लभाचार्यजीको चरित्र लिखूंहूं ॥ २० ॥ समयनीतिके जानेववारे श्रीमद्गुरुश्रीगोविन्दाचार्यजी महाप्रभुकी आज्ञातें श्रीमद्वेदव्यास विष्णुस्वामिमतके ग्रन्थनके अनुकूल हरिभक्तनके सुख देवेवारे कृष्णशास्त्रीके बनाये या वल्लभदिग्विजयग्रन्थके प्रथम प्रस्थानमें ये मंगलनाम प्रथम पटह सामप्त भयो ॥ २१ ॥



श्रीकृष्णवर्त्मा श्रीकृष्णवर्त्माध्वरविवृद्धये ॥
अजनीयस्तमाचार्यमभिवंदेर्थसिद्धये ॥ १ ॥
संख्याविद्भिरसंख्यास्ते ग्रंथाः प्रागत्र ग्रंथिताः ॥
तथापि युक्तियुक्तार्थः साकल्येनेह दृश्यताम् ॥ २ ॥
श्रीवल्लभगिरां सारं श्रीवल्लभयशोभरम् ॥
श्रीवल्लभार्यचरितं यथेह न तथा क्वचित् ॥ ३ ॥
विजयोयदुनाथीयस्तथा माधवपात्रिका ॥
संप्रदायप्रदीपादिरिह मूलं प्रतीयताम् ॥ ४ ॥
माधुरी नेह काव्यादेर्व्याकृत्योदनं चातुरी ॥
तथाप्याचार्यसंबंधाच्छिरोधार्यः सतामयम् ॥ ५ ॥
अबद्धोयं यत्र यत्र विशोध्यस्तत्र तत्र मे ॥
प्रांजलेः प्रार्थना चैषोपधार्या वैष्णवैर्बुधैः ॥ ६ ॥

श्रीकृष्णभगवान्के मार्गके प्रचार करवेके लियें प्रगट भये जो अग्निकेअवतार श्रीवल्लभाचार्यजी हैं उन्हींके या चरित्रग्रन्थके सिद्धिके लियें तिनकूँ प्रणाम करूँ हूँ ॥ १ ॥ यद्यपि शिष्ट विद्वाननने या विषयमें बहोतसे ग्रन्थ बनाये हैं तोबी युक्तीनसों युक्त अर्थ या ग्रन्थमें देखो ॥ २ ॥ श्रीवल्लभाचार्य्यजीकी वाणीको सार तथा आपके यशको विस्तार ओर चरित्र जेसो या ग्रन्थमें हे वैसो कहीं नहीं ॥ ३ ॥ अब ये ग्रन्थ अपने आप मनमान्यो नहीं लिख्यो हे किन्तु यदुनाथदिग्विजय माधवभट्टकी पत्रिका सम्प्रदायप्रदीप आदि ग्रन्थही यामें मूल हैं ॥ ४ ॥ यद्यपि काव्यादिक ग्रन्थनकी जेसी मधुरता ओर व्याकरणकी चतुरता या ग्रन्थमें नहीं हे तोबी श्रीमदाचार्यजीके सम्बन्धतें ये ग्रन्थ सज्जननके मस्तकपे धरवेलायक हे ॥ ५ ॥ ओर जहाँ जहाँ

वल्लभमौद्गल्यगोत्र प्रथिततरयशा नागनाथान्वयेऽभूत्
बुन्देलाधीशपूज्य कविकुलतिलको गौरिलालाख्यभट्ट ॥
शास्त्री गंगाधरस्तत्कुलजनिरभवत्तत्कुले शास्त्रिकृष्ण
स्तेनेदं लिख्यते श्रीगुरुवरचरितं स्रग्धराणां मतेन ॥ २० ॥
श्रीवेदव्यासविष्णुप्रभुचरणमिते संमते ग्रंथसार्थे
श्रीगोविन्दाभिधानां समयनयविदां देशिकानां निदेशात् ॥
आचार्याणां चरित्रे हरिजनसुखदे कृष्णभट्टैर्निबद्धे
ग्रंथेऽस्मिन्दिग्जयाख्ये समजनि पटहो मंगलाख्यो यमाद्ये ॥२१॥

दियो हो और जिनके पढाये भये विद्वान् राजानकी सभाके बीचमें विद्वान्रूपी जो मत्त हाथी हैं तिनके अहंकाररूपी मदके दलन करवेमें सिंहकी जैसी क्रीडा करत हैं ऐसे श्रीगंगाधरशास्त्री भये ॥ १९ ॥ ये बडे यशस्वी बुन्देलखंडके राजा छत्रसालके माने भये कविकुलतिलक ऋग्वेदी मुद्गलगोत्री नागनाथजीके वंशमें जो श्रीगौरीलालभट्टजी हते तिनके पुत्र हे तिनको पुत्र कृष्णशास्त्री मैं वैष्णवनकी सम्मतितें श्रीगुरुभगवान् वल्लभाचार्यजीको चरित्र लिखूँहूँ ॥ २० ॥ समयनीतिके जानेवारे श्रीमद्गुरुश्रीगोविन्दाचार्यजी महाप्रभुकी आज्ञातें श्रीमद्वेदव्यास विष्णुस्वामिमतके ग्रन्थनके अनुकूल हरिभक्तनके सुख देवेवारे कृष्णशास्त्रीके बनाये या वल्लभदिग्विजयग्रन्थके प्रथम प्रस्थानमें ये मंगलनाम प्रथम पटह समाप्त भयो ॥ २१ ॥



नवानामपि वर्षाणां वर्षीयान् कामवर्षणः ॥
विभाति भारतोवर्षोनरनारायणाहृतः ॥ १३ ॥
दक्षिणा दक्षिणा तत्र विषयैर्विषयोन्नता ॥
विराजतेवनिगता नाकभूर्भूसुधांधसाम् ॥ १४ ॥
प्राचीनपालयति यन्नर्मदा च महानदी ॥
विन्ध्यसह्यमहेन्द्राद्रिर्यस्याः कोटति रक्षितुम् ॥ १५ ॥
शैलैः सरिद्भिर्विषयैर्ग्रामैर्दुर्गैश्चपत्तनैः ॥
अरण्योपवनोद्यानैर्विशिष्टा सेयमीयते ॥ १६ ॥
चित्रधातुकुथावीरुद्रत्राश्वाभ्रगर्जिताः ॥
सिंधुशुंडाः पुष्पवन्तो घंटायत्रागसिंधुराः ॥ १७ ॥
सानुभिर्गगनाधाराश्चंद्रार्कस्पृष्टजानुभिः ॥
धाराधरकृतागाराः शोभंतेत्र धराधराः ॥ १८ ॥

नूसों रक्षित जम्बूद्वीप नामको किलो हे ॥१२॥ ओर तामें नव वर्ष हें उनमें श्रेष्ठ कामनानकों वरसनेवारो श्रीबदरीनारायण विराजे हें जामें एसो भारतवर्ष शोभा दे रह्यो हे ॥ १३ ॥ तामें बी अनेक पदार्थनकरकें दिशानमें श्रेष्ठा सुन्दरी दक्षिण दिशा विराजमान हे जो अमृतरूपी अन्नादिककी या पृथ्वीपे आई भई मानों स्वर्गभूमि हे ॥ १४ ॥ ओर जाकी रक्षा करवेके लियें नर्मदा नदी मानों खाई हे ओर विन्ध्याचल सह्याचल महेन्द्राचल ये पर्वत मानो कोट हें ॥ १५ ॥ जो पर्वत नदी देश ग्राम शहर किला वन उपवन बगीचा आदि वस्तुनसों सब दिशानतें श्रेष्ठ हे॥ १६ ॥ ओर चित्रविचित्र धातुही हें कुथ (झूल) जिनकी लताही हें बाँधवेकी रस्सी जिनकी मेघनकी गर्जना हे शब्द जिनको नदीही हें सूंड जिनकी सूर्य चन्द्रमाही जिनके घंटा हें एसे पर्वतरूपी हाथी जहाँ हें ॥ १७ ॥ जिनके शिखरनको आकाशही आधार हे सूर्य चन्द्र जिनके जंघातक हें मेघनके घर जेसे जहाँ पर्वत शोभे हें ॥ १८ ॥

अथ श्रीसच्चिदानद वंदे श्रीपुरुषोत्तमम् ॥
यदनुग्रहत किंचिद्भायात् सच्चरित गुरो ॥ ७ ॥
अनन्तकोटिब्रह्मांडराजयोरोमराजिषु ॥
यस्यानन्तस्य सोनन्तोब्रह्मांडचाकरोदिदम् ॥ ८ ॥
अतीतानागतान्याच सतां च जगतामिदम् ॥
मेरुवन्मणिमालायां स्थित श्रीगुरुसश्रयात् ॥ ९ ॥
चतुर्दशसु लोकेषु भोगभूमिषु भूरियम् ॥
भूयसे यशसे भाति सूति स्वर्गापवर्गयो ॥ १० ॥
लोकालोकांतरगता वसुधावसुधोरुधा ॥
कामधेनुरिवाभाति चतु पूर्णपयोधरा ॥ ११ ॥
प्रियव्रतरथोत्खातपरिखासप्तसवृत ॥
जबुद्वीपाभिधोदुर्गोऽपवर्गेशेन सभृत ॥ १२ ॥

ये ग्रन्थ अशुद्ध होय वहाँ वहाँ शुद्ध करनो ये मेरी हाथ जोडकें वैष्णव पडितजननसों प्रार्थना है याकों वैष्णव पडितजन मानेंगे ॥ ६ ॥ याके पीछें सच्चिदानन्दस्वरूप श्रीपूर्णपुरुषोत्तमकूं में प्रणाम करू हूँ जिनकी कृपातें श्रीगुरुको यथावत् वृत्तान्त स्मरण होयगो ॥ ७ ॥ अनन्तकोटि ब्रह्माण्डनकी पक्ति जिनके रोम राममें शोभित है वे अनन्त भगवान् या ब्रह्मांडकों करते भये ॥ ८ ॥ ओर होगये होयवेवारे सुदर ब्रह्माडनकी मणिमालामें श्रीमदाचार्यजीके सामर्थ्यसों ये जगत् सुमेरुमणिकाके समान स्थित है ॥ ९ ॥ पुण्यपापके भोगनके स्थान ये चौदह लोकनके बीचमें स्वर्गमोक्षके देवेवारी ये भूमि बडे यशके लिये शोभायमान होय रही है ॥ १० ॥ ओर लोकालोकपर्वतके बीचमें अनेकप्रकारकी सम्पत्तीनसों भरी भई चारो समुद्रही हैं दूधसे भरे चार स्तन जाके एसी कामधेनुरूप ये भूमि शोभा दे रही है ॥ ११ ॥ ओर या पृथ्वीमें प्रियव्रत-राजाके रथतें खुदी भई सात खाईनतें युक्त मोक्षके देवेवारे श्रीकृष्णभगवा-

नवानामपि वर्षाणां वर्षीयान् कामवर्षणः ॥
विभाति भारतोवर्षोनरनारायणादृतः ॥ १३ ॥
दक्षिणा दक्षिणा तत्र विषयैर्विषयोन्नता ॥
विराजतेवनिगता नाकभूर्भूसुधांधसाम् ॥ १४ ॥
प्राचीनपालयति यन्नर्मदा च महानदी ॥
विन्ध्यसह्यमहेन्द्राद्यिर्यस्याः कोटति रक्षितुम् ॥ १५ ॥
शैलैः सरिद्भिर्विषयैर्ग्रामैर्दुर्गैश्चपत्तनैः ॥
अरण्योपवनोद्यानैर्विशिष्टा सेयमीयते ॥ १६ ॥
चित्रधातुकुथावीरुद्वरत्राश्चाभ्रगर्जिताः ॥
सिंधुशुंडाः पुष्पवन्तो घंटायत्रागसिंधुराः ॥ १७ ॥
सानुभिर्गगनाधाराश्चंद्रार्कस्पृष्टजानुभिः ॥
धाराधरकृतागाराः शोभंतेत्र धराधराः ॥ १८ ॥

नूसों रक्षित जम्बूद्वीप नामको किलो हे ॥१२॥ ओर तामें नव वर्ष हें उनमें श्रेष्ठ कामनानकों वरसनेवारो श्रीबदरीनारायण विराजे हें जामें एसो भारतवर्ष शोभा दे रह्यो हे ॥ १३ ॥ तामें बी अनेक पदार्थनकरकें दिशानमें श्रेष्ठा सुन्दरी दक्षिण दिशा विराजमान हे जो अमृतरूपी अन्नादिककी या पृथ्वीपे आई भई मानों स्वर्गभूमि हे ॥ १४ ॥ ओर जाकी रक्षा करवेके लियें नर्मदा नदी मानों खाई हे ओर विन्ध्याचल सह्याचल महेन्द्राचल ये पर्वत माना कोट हें ॥ १५ ॥ जो पर्वत नदी देश ग्राम शहर किला वन उपवन वगीचा आदि वस्तुनसों सब दिशानतें श्रेष्ठ हे ॥ १६ ॥ ओर चित्रविचित्र धातुही हें कुथ (झूल) जिनकी लताही हें बाँधवेकी रस्सी जिनकी मेघनकी गर्जना हे शब्द जिनको नदीही हें सूंड जिनकी सूर्य चन्द्रमाही जिनके घंटा हें एसे पर्वतरूपी हाथी जहाँ हें ॥ १७ ॥ जिनके शिखरनको आकाशही आधार हे सूर्य चन्द्र जिनके जंघातक हें मेघनके घर जेसे जहाँ पर्वत शोभे हें ॥ १८ ॥

सरितोऽमृतपानीयाधरा फुल्लाब्जलोचना ॥
कूलद्रुमदुकूलागा पुण्या साध्व्योत्रसंश्रिता ॥ १९ ॥
महेश्वरसखेराजराजेश्वधनदेरिह ॥
समाश्रिता पुण्यजनैर्भाति केपौरुपीवभू ॥ २० ॥
रसालादिविशालांगैर्भूरियभोगशालिभि ॥
सुमनोप्सरसांकेल्या चदनैर्नंदनायते ॥ २१ ॥
अमोघाऋतुशालिन्यो वनिता वनितोपमा ॥
अलकुर्वंति यां कामं विहरन्त्य सुमे फलै ॥ २२ ॥
पूजाभि सुसमृद्धाभिर्वर्णे स्वाचारतत्परे ॥
विद्यापौरुपमाधुर्य्यशालिभी राजते जने ॥ २३ ॥
ललितैर्ललनारत्ने श्रीह्रीसौभाग्यशालिभि ॥
पातिव्रत्य वश नीत तान्यैवातोभिधावति ॥ २४ ॥

अमृतके समान पानकरवे योग्य जलही हैं अधर ओष्ठ जिनके फूले भये कमलही हैं नेत्र जिनके तटही हैं वस्त्र जिनके अगमें एसी पुण्या अच्छे स्वभाव वारी नदी हैं जहाँ ॥ १९ ॥ ओर जहाँकी पृथ्वी कुबेरकी पुरी जेसी हे जामे महादेवजीके सखा राजराज धनद कुबेर रहें हें ओर गधर्व रहे हें ओर महेश्वर सखा साहूकार धनिक ओर राजाधिराज बडे २ राजा पुण्यजन सदाचारसम्पन्न ब्राह्मण वसें हे ॥ २० ॥ आम्र आदि तथा सर्पवारे चन्दनवृक्ष विशाल पर्वत इनकरकें ओर देवांगनानकी क्रीडा करकें इन्द्रवन (नन्दनवन) के जेसी आचरण कररही हे ॥ २१ ॥ नहीं वृथा जाय हें ऋतु जिनकी अथात फूलवे फलवे वारी जो वनितारूपी वनीं हें वे स्वच्छन्द विहरती भई पुष्प फलनसे जाको अलकृत कररहीं हे ॥ २२ ॥ जो ऋद्धिसिद्धि प्रजाधारी प्रजा करके अपने २ आचारमे तत्पर चारो वर्ण करके विद्या पुरुषार्थ माधुर्य आदि गुणवारे जनैनकरके शोभिरही हे ॥ २३ ॥ शोभा लक्ष्मी

वेदविद्यास्वनुपमैः श्रौतस्मार्तैकधूर्वहैः ॥
यत्र पुण्यौं विराजंते मुखजैर्मुख्यतां गताः ॥ २५ ॥
महाराष्ट्रकृतावासा धृतकर्णाटभूषणा ॥
बलिनांध्रेणसंरुद्धा द्राविडाभोगशालिनी ॥ २६ ॥
मलयालिप्तसर्वांगी भ्राजच्चोलनिचोलिनी ॥
कृतालका केरलेन कृतकोंकणकिंकिणी ॥ २७ ॥
त्रिगर्तोर्मिलसद्धस्ता कलिंगांघ्रितुलोज्वला ॥
मनो हरति नो कस्य दक्षिणा दक्षिणांगना ॥ २८ ॥
अथातंकैर्विनिर्मुक्तं लसत्पुरसरिद्वनम् ॥
विद्याविभवसंपन्नं तत्रांध्रमुपवर्तनम् ॥ २९ ॥
सरिन्मातृकनीवृद्भूः कामधुक् कानचोवेश ॥
सर्वर्तुसुखसारान्न समर्घस्त्येवजन्सभूः ॥ ३० ॥

सौभाग्यके भजेववारे सुन्दर स्त्रीरत्ननें पातिव्रत्य धर्मको जहाँ वश कियोहे यातें वो बी मानों उनके पास दौडकें जायहे ॥ २४ ॥ वेद विद्यामें अद्वितीय श्रौत-स्मार्तभारके वहनकरववारे एसे ब्राह्मणन करकें जहाँ पुरी शोभायमान होरहीं हें ॥ २५ ॥ महाराष्ट्रमें कियो हे वास जानें धारण कियो हे कर्णाटक-रूपीभूषणको जानें बली आन्ध्रदेशतें रोकी गई द्राविडदेशमें भोग करवे वारी ॥ २६ ॥ मलयाचलचन्दनको लगायो हे पूर्वांगमें जानें चोलदेश-रूपी चोलीको पहरे भई केरल केशपाशतें शोभिता कोंकणरूपी घुंघुरू हें पाँवनमें जाके ॥ २७ ॥ त्रिगर्तकी लहरी हें हाथ जाके कलिंग देशही हे पाँवके भूषण जाके एसी सुन्दरी दक्षिणा दिशारूपी अंगना (स्त्री) किनके मनका नहीं हरती ॥ २८ ॥ एसी दक्षिण दिशामें पुर नदी बननते शोभित विद्याविभवसम्पन्न एसो अभयवारो आन्ध्रनामको देश हे ॥ २९ ॥ जामें नदीही हें माता जाकी सबकामनानकी पर्ण करववारी सबप्रकारके धान्य-

कनके कुलिशैर्नीलैः पद्मरागैश्च मौक्तिकैः ॥
अगस्त्यपीतसलिलादब्धेर्भूरूप्यवालुका ॥ ३१ ॥
शौर्योदार्यदयावीरैर्जगद्विख्यातपौरुषैः ॥
राजधानीव राजन्यैर्ब्रह्मण्यैः सा सनाथिता ॥ ३२ ॥
इभ्यैः सभ्यैर्गुणज्ञैश्च पुण्यैर्गुण्यैर्विशां गणैः ॥
समाश्रिता चाग्रिमवैर्विप्रभक्तैरदूषितैः ॥ ३३ ॥
त्रयीलिंगस्य धर्मस्य त्रिलिंग सदनं परम् ॥
अंघ्रिसधारणादस्य चांध्रोयमुपगीयते ॥ ३४ ॥
तिष्यविक्षतमात्मानं यत्र धर्मोभिरक्षितुम् ॥
गोदाकृष्णाख्यवाहिन्योर्मध्येगुप्तोभितिष्ठति ॥ ३५ ॥
व्योमस्तंभाद्रिसविधे कृष्णाकृष्णोपवर्तने ॥
खवकाकरधाराख्योग्रहारोत्राग्रजन्मनाम् ॥ ३६ ॥

नके उत्पन्न करबे वारी सब ऋतुमें सुख देबेवारी समृद्धिकी माता एसी पृथिवी हे ॥ ३० ॥ जो सुवर्ण हीरा नीलम पुखराज मोती इनतें युक्त हे अगस्त्यऋषिनें समुद्र पान कियो हे यातें जहाँकी वालू रूपेकी जेसी दीख पडे हे ॥ ३१ ॥ ओर शूरता उदारता दया आदिगुणनमें वीर जगत्में प्रसिद्ध हे पुरुषार्थ जिनको एसे ब्राह्मणनकी सेवा करबेवारे क्षत्रीनतें रक्षा करी गई वो दिशा उनकी राजधानीसो हे ॥ ३२ ॥ अच्छे गुणनके जानबे वारे पुण्यात्मा गुणवान महाधनिक प्रतिष्ठित वैश्य ओर दोपरहित ब्राह्मणभक्त शूद्र जहाँ बसत हें ॥ ३३ ॥ त्रयीलिंग जो वेदत्रयी प्रतिपाद्य धर्म ताके स्थान होयबेंनें या देशको नाम तेलग हे ओर धर्मनें अपने चारो अंघ्रि चरण धरे हें यातें याको नाम आंध्र भी हे ॥ ३४ ॥ जहाँ कलितें घायल किये अपने शरीरकी रक्षाके लिये कृष्णा नदी ओर गोदावरी नदीके बीचमें धर्म छिपके रहे हे ॥ ३५ ॥ यहाँ व्योमस्तंभ पर्वतके पास कृष्णा नदी हे याके

वृन्दैः सुमनसां स्वर्ण प्रासादैरप्सरोगणैः ॥
एष ब्रह्मगिरां घोषैः पुरंदरपुरायते ॥ ३७ ॥
पदवाक्यप्रमाणज्ञैः सांगवेदेष्वधीतिभिः ॥
श्रौतस्मार्तक्रियादक्षैः सोयं ब्रह्मर्षिभिः श्रितः ॥ ३८ ॥
वसतां याजयूकानां यत्र क्रतुविनिर्गतः ॥
हविःसंभूतानिगणः कीर्तिध्वजपटायते ॥ ३९ ॥
शिष्याणां ब्रह्मघोषेण धूमस्तोमैर्मखोद्भवैः ॥
परिष्कृताग्नेर्ज्वालाभिस्तिष्यो याति सुदूरतः ॥ ४० ॥

इतिश्रीदक्षिणदिङ्नीवृतपुरवर्णनप्रकरणम्.

भाति भव्यगुणोदारोवेदसारस्य वेधसः ॥
वैकुंठाद्यावतारस्य सूनोरत्रांगिरोन्वयः ॥ ४१ ॥
निगमागमगीतस्य निपीतभुवनस्य च ॥
नाभेर्लक्ष्मीपतेरासीदंभोजं शेषशायिनः ॥ ४२ ॥

दक्षिण तर्फ खंबकांकरवारनामको ब्राह्मणनको ग्राम हे ॥ ३६ ॥ जो पंडित-मंडलीनतें सुवर्णके मकाननतें अप्सरानतें वेदध्वनितें इन्द्रके पुर जेसो हे ॥ ३७ ॥ जामें पद वाक्य प्रमाणनके जानवेवारे सांगवेदके पढवेवारे स्रोतस्मार्तकर्ममें दक्ष ब्रह्मर्षि वसत हें ॥ ३८ ॥ जहाँ वसवेवारे याज्ञिक ब्राह्मणनके यज्ञनतें उत्पन्न भयो धूम मानों कीर्तिध्वजाके पटकी शोभा दे रह्यो हे ॥ ३९ ॥ ओर तो कहा जहँतें शिष्यनकी वेदध्वनिकरकें यज्ञके धूमपुंजकरकें अलंकृत अग्निकी ज्वाला करकें कलियुग बी मशक सो दूर भगे हे ॥ ४० ॥ इतिदक्षिणदि-शापुरवर्णनम् ॥ जहाँपे वेदके सारकूँ जानवेवारे श्रीभगवान्के प्रथम अवतार श्रीब्रह्माजीके पुत्र श्रीअंगिराऋषिको रमणीय गुणनतें उदारवंश शोभत हे तामें प्रथम वेद पुराणनमें गाये जगत्को पान करकें शेषशय्यामें सोये भये

हिरण्यगर्भोभगवान्वेदगर्भस्ततोभवत् ॥
यतोमहर्षयश्चैतत सदेवासुरमानुपम् ॥ ४३ ॥
अगजोस्योंगिरापूर्वंमुखजाग्र्योमुखोद्गत ॥
सत्रमागिरस चक्रे वक्त्रादागिरसत्रयीम् ॥ ४४ ॥
वृहतास्यपतिर्जातोमुनीना स बृहस्पति ॥
हविर्भुजा पुरोधासो जगता चाख्यया गुरु ॥ ४५ ॥
मामतेयोभरद्वाजोमतोमात परोपर ॥
महर्षीणा यस्य राम ससार्थोर्थित्वमागत ॥ ४६ ॥
तस्य गोत्रे महात्मानोविप्राश्चाप्यर्य्येवोभवन् ॥
ये तैत्तिरीयचरणा सूत्रापस्तबशालिन ॥ ४७ ॥
द्विजानामांध्रदेश्याना शुद्धवेल्नाटसज्ञया ॥
ख्यातानां वेदशास्त्रेपु प्रवीणा सत्यमी भुवि ॥ ४८ ॥
तेषां कुले कुलचाग्र्यमुज्ज्वल ब्रह्मवर्चसा ॥
वेदवेदांततत्त्वज्ञ सदाचार विभात्यलम् ॥ ४९ ॥

श्रीभगवानके नाभिनें कमल उत्पन्न भयो ॥ ४२ ॥ तातें वेद हे पेटमें जिनके एसे हिरण्यगर्भनामके ब्रह्माजी भये तिनत महर्षि तिनतें देवता दैत्य मनुष्य भये ॥ ४३ ॥ उन ब्रह्माजीके मुख अगसे प्रथम अंगिरा ऋषि भये जिननें आगिरसनामको महायज्ञ कियो ॥ ४४ ॥ इनसों बडे ? मुनीनके स्थपति इग ?वनानके पुरोहित जगद्गुरु बृहस्पति जी भये ४५ तिनके पुत्र महर्षिनके पांचमें जिनके अतिथि श्रीरामचन्द्रजी भये हते एसे भरद्वाजजी भये ॥ ४६ ॥ इनके कुलमें यज्ञकरवेवारे तैत्तिरीयशाखा आपस्तम्बसूत्र हे जिनको एसे महात्मा ब्राह्मण भये ॥४७॥ जो वेदशास्त्रनमें प्रवीण आन्ध्रदेशी-नमे शुद्ध वेल्लनाटनामस भूमडलमे प्रसिद्ध भये ॥ ४८ ॥ उनके कुलमें ब्रह्म तेजतें उज्ज्वल वेदवेदान्तके तत्त्वके जानवेवारो सदाचार सम्पन्न य श्रेष्ठ कुल

नाभिशस्तोभिनिर्मुक्तोनावीरो न निराकृतिः ॥
न ब्रह्मबंधुर्देवानां प्रियोऽनाढ्योनचामयी ॥ ५० ॥
कद्वदः कदपत्त्यो नो कृतघ्नोनास्तिकोत्र वै ॥
न कुशीलोन पाषंडी कदर्य्योनाप्यरुंतुदः ॥ ५१ ॥
सज्जनाः साधवश्शांता दांताः कांता जितेंद्रियाः ॥
प्रियंवदाश्च बहुदाविद्यावन्तोयशस्विनः ॥ ५२ ॥
धीरागभीराः सद्वृत्तामहाभाग्यामहोदयाः ॥
पवित्राःश्रोत्रियादक्षाः याजयूकाहरिप्रियाः ॥ ५३ ॥
ब्रह्मण्याश्च शरण्याश्च सभ्याराजर्षिपूजिताः ॥
श्रौतस्मार्त्तक्रियानिष्ठाः प्रतिग्रहपराङ्मुखाः ॥ ५४ ॥
एकदेवाद्विधर्माणस्त्रिजन्मानश्चतुर्भुजाः ॥
पंचाग्नयः षट् शास्त्रज्ञाः सप्तयज्ञाः कृताष्टकाः ॥ ५५ ॥

शोभे हे ॥ ४९ ॥ जामें दोषी संध्याकर्महीन कायर कुरूप ब्रह्मद्वेषी मूर्ख दरिद्री रोगी ॥ ५० ॥ खराब बोलवेवारो खराब सन्तानवारो कृतघ्नी नास्तिक दुष्टस्वभाववारो पाखंडी लोभी मर्मच्छेदी कोई बी नहीं हे ॥ ५१ ॥ किन्तु सब सज्जन साधु शान्त दान्त दमशील सुंदर जितेन्द्रिय प्रियबोलवेवारे दानी विद्यवान् यशस्वी ॥ ५२ ॥ धीर गंभीर सदाचारी बडे भाग्यवान् बडे प्रसिद्ध पवित्र वेदपढवेवारे कार्यकरवेमें कुशल यज्ञकरवेवारे वैष्णव ॥ ५३ ॥ ब्रह्मण्य शरणागतकी रक्षाकरवेवारे सभ्य बडे २ राजानसों पूज्य श्रौतस्मार्तकर्मनिष्ठ दानके न लेवेवारे ॥ ५४ ॥ विष्णुही एकदेवतावारे श्रुति स्मृति धर्मके मानवेवारे एकतो मातातें दूसरो संस्कारतें तीसरो वैष्णवी दीक्षातें एसे तीन जन्मवारे धर्म अर्थ काम मोक्ष ये चार हाथ वारे दक्षिणाग्नि गार्हपत्य आहवनीय सभ्य आवसथ्य ये पांच अग्निवारे षट् शास्त्रनके जानवेवारे अग्निष्टोम अत्यग्निष्टोम उक्थ्य षोडशी अतिरात्र वाजपेय अप्तोर्याम ये सात यज्ञ करवेवारे ओर

सम्यग्रुद्धनवद्वारादशअयत्रयीजुप ॥
एकादशगुणाधाराद्वादशव्रतशालिन ॥ ५६ ॥
कृष्णागोदाख्यसरितो सगिनीवृन्निवासिनाम् ॥
कृष्णादिवेलनाटानां विष्णवोद्वादशात्मनाम् ॥ ५७ ॥
विशुद्धवेल्लनाटाख्याभारद्वाजाख्यवत्तय ॥
तैत्तिरीयास्तथाचापस्तवसूत्राश्च याजुपा ॥ ५८ ॥
रेणुकाकुलदेवीया सर्वे ते हरिदेवता ॥
जज्ञिरेऽभिजनास्तत्र वरा सच्चरितावुधा ॥ ५९ ॥

इति कुलवर्णनप्रकरणम् ।

तेषां कुले कुलीनानां प्रकट कमलासन ॥
यज्ञनारायण सोमयाजी नारायणादिव ॥ ६० ॥
वेदावतार य प्राहुर्वेदायस्मादवातरन् ॥
यस्य जन्मनि वेदाना घोपो देवमुखादभूत् ॥ ६१ ॥

अष्टक आगि भाद करवेयारे ॥ ५५ ॥ देहके नवद्वारनकों रोकवेवारे वेदके त्रयमन्थनके पढवेयारे ग्यारह गुणवारे बारह व्रतवारे ॥ ५६ ॥ कृष्णागोदावरीनदीके सगमदेशके वसवेवारे कृष्णसों आदि लेकें बारह वेल्लनाटनम विष्णुरूप ॥ ५७ ॥ विशुद्ध वेल्लनाटु भारद्वाजगोत्री विप्रवर तैत्तिरीय आपस्तम्ब सूत्री यजुर्वेदी रेणुका हे कुलदेवी जिनकी ऐसे अच्छे आचारवारे विष्णुदेवतावारे ब्राह्मणनमें श्रेष्ठ ऐसे सब पंडित होत भये ॥ ५८ ॥ इति कुलवर्णनम् । उन कुलीन पुरुषनके कुलमें सोमयज्ञ करयवारे नारायणन ब्रह्माजीके सदृश यज्ञनारायणभट्टजी भये ॥ ६० ॥ जिनसों वेदनमें पार होयगये हैं यातें इनको नाम वेदावतारजी ऐसो कहत हैं जिनके जन्ममें देवतानके मुखसें वेदध्वनि होतीभई ॥ ६१ ॥

यज्ञं यज्ञभुजां स्तोतुं निकुरम्बः किमागतः ॥
आवृणोद्यज्ञशालां तां तेनाख्या तस्य सा मता ॥ ६२ ॥
प्रसन्नमनसोविप्राःप्रसन्नायज्ञवह्नयः ॥
प्रसन्नमनसः सर्वे जाता नीवृति तज्जनौ ॥ ६३ ॥
शोभने समये तस्य प्रादुर्भावोमनीषिणः ॥
ग्रहैर्वा ग्राहकैर्ज्ञातोह्यासीदावालविज्जनैः ॥ ६४ ॥
स वालएव पुरुषो वालार्कसदृशद्युतिः ॥
चक्राद्यंकलसत्पाणिर्बभ्राज पुरुषोत्तमः ॥ ६५ ॥
गर्भाधानादिसंस्कारैः स्वस्वकालेभिसंस्कृतः ॥
स बभौ निर्मलोऽतीव शाणोल्लीढोमणिर्यथा ॥ ६६ ॥
पित्रोपनीतोविधिना शिक्षितश्च यथाविधि ॥
अध्यापितश्च गुरुभिः सोचरद्व्रतिनां व्रतम् ॥ ६७ ॥
व्रतस्नातोव्रतस्नातोगुरुभ्योदत्तदक्षिणः ॥
गृह्याग्निकामश्चकमे पित्रोश्च गृहिणीं मुदे ॥ ६८ ॥

ओर देवतानके समूह यज्ञभगवानकी स्तुति करवेके लिये जिनके जन्मसमयमें यज्ञशालामें आये यातें इनको नाम यज्ञनारायण बी भयो ॥ ६२ ॥ वा समय सब ब्राह्मण यज्ञाग्नि ओर सब प्रसन्नमन भये ॥ ६३ ॥ इनको जन्म अच्छे समयमें भयो ये बात ग्रहनतें ओर ज्योतिषीनतें सबकों ज्ञात भई ॥ ६४ ॥ ये यज्ञनारायणजी होतेंहीं कान्तिसों ऊगते सूर्यके जेसे ओर सुन्दर हस्तके चक्रादि चिन्हनतें श्रीभगवान्‌के जेसे शोभते भये ॥ ६५ ॥ ओर अपने अपने समयमें गर्भाधानादिक संस्कारनतें संस्कार किये गये निर्मल सानमें घिसी भई मणि जेसे शोभते भये ॥ ६६ ॥ पिताके विधिपूर्वक यज्ञोपवीतकरवेसों गुरुनके पढायवेसों ओर शिक्षाकों पायकें ब्रह्मचर्यव्रतकों पालते भये ॥ ६७ ॥ ब्रह्मचर्य्यव्रत करकें गुरुनकों दक्षिणा देकें गृह्याग्निकी कामनातें मातापिताके आन-

नर्मदां शर्मदां देवपुरस्थस्य सुधर्मण ॥
उपयेमेऽत्रिगोत्रस्य प्राजापत्येन कन्यकाम् ॥ ६९ ॥
कृतदारोभृताग्निश्च लब्धदीक्षोऽयजद्रूही ॥
प्राप्य विष्णुमुनेर्मंत्र गोपिकेशमतोपयत् ॥ ७० ॥
सतत भजमानस्य हरिं मदनमोहनम् ॥
दिग्वस्वर्णमनोर्जापात् प्रसन्न श्रीनिकेतन ॥ ७१ ॥
सोमयज्ञेऽस्य यज्ञाग्नौ यज्ञं वै ध्यायतोहरिम् ॥
प्रादुर्जज्ञे वरदराट् यज्ञनारायण प्रभु ॥ ७२ ॥
अपीच्यदर्शनं शांत शारदेन्दीवरप्रभम् ॥
वराभयकर पीतवासस सर्वभूषणम् ॥ ७३ ॥
तद्दर्शनमहामोदसुधांभोनिधिसप्लुत ॥
भावोद्रेकनमन्नीव प्राणमद्विस्मिताखिल ॥ ७४ ॥

न्दके लियें स्त्रीकी इच्छा करी ॥ ६८ ॥ और अत्रिगोत्रके देवपुरके रहवे-वारे सुधर्मा नाम ब्राह्मण की गुणवती नर्मदानामकी कन्याको प्राजापत्यविधिसें विवाह कियो ॥ ६९ ॥ पीछें अग्निहोत्रधारणकरकें दीक्षाकों लेके यज्ञ कियो और विष्णुस्वामिसम्प्रदायी विष्णुमुनि नामके गुरुसों गोपाल मन्त्र लेकें भगवान्‌को प्रसन्न करते भये ॥ ७० ॥ नित्य श्रीमदनमोहनजीके भजन करतें उनकों अष्टाक्षर मन्त्रके जपसे श्रीमदनमोहनजी प्रसन्न भये ॥ ७१ ॥ जा समय वे सोमयज्ञकी यज्ञाग्निमें यज्ञरूपी भगवान्‌को ध्यान करते हुते वाही समय वरदेवेवारे यज्ञनारायण श्रीमदनमोहनजी प्रगट होते हुते ॥ ७२ ॥ अति सुन्दर दर्शनीय शान्त शरत्कालके कमलके प्रभावारे अभयकारी पीताम्बर धारी सबके भूषण ॥ ७३ ॥ ऐसे श्रीमदनमोहनजीकों प्रणाम करकें दर्शनतें उत्पन्न महान् आनन्द अमृतके समुद्रमें मानों डूबगये भावके प्रकट

प्रबोध्योत्थापितस्तेन देवेन परमात्मना ॥
मेघगंभीरया वाचा करुणासिंधुनामुना ॥ ७५ ॥
बाष्पकण्ठोऽश्रुपूर्णाक्षः प्रेमप्रसरविव्हलः ॥
तत्प्रभामुष्टसद्दृष्टिस्तं स्तोतुमुपचक्रमे ॥ ७६ ॥
निगमागमसंगीतगुणोदय महोदय ॥
अविज्ञातानुभावश्रीदेवदेव नमोऽस्तु ते ॥ ७७ ॥
समज्ञां कुर्वतोऽस्येत्थं बहुधोवाच केशवः ॥
वरं वरय विप्रर्षे कुर्वमोघं मदीक्षणम् ॥ ७८ ॥
बभाषे दीक्षितोनाथाधिकः को दर्शनाद्वरः ॥
भवच्चरणराजीवसेवावर्त्मोपजीविनाम् ॥ ७९ ॥
प्रफुल्लेन्दीवरश्याममभिरामं मनोदृशाम् ॥
मनोभुवां कदम्बस्य सुषमायास्समाश्रयम् ॥ ८० ॥

होयवेतें गीवा झुकगई चकित होय रहे ॥ ७४ ॥ एसे इनकों परमात्मा देव करुणासिन्धु उननेही अपनी मेघकी जेसी गंभीरवाणीतें बोधकरायकें उठाये ॥ ७५ ॥ तब गद्गद होय गयो हे कंठ आँसूनतें भर आये हें नेत्र बहुत प्रेमसों विह्वल तिनकी प्रभासों मारीगई दृष्टि एसे यज्ञनारायणभट्टजी उनकी स्तुति करवे लगे ॥ ७६ ॥ जो हेदेवदेव वेद पुराणनमें गान कियो गयो हे गुण जिनको नहीं जानी जाय हे माया जिनकी एसे महोदय जो आप हें तिनके लियें मेरो नमस्कार होय ॥ ७७ ॥ या प्रकार बहोत तरहसों स्तुति करवे-लगे तब इनसों भगवान् बोले हे विप्रर्षे ! वर माँगो मेरे-दर्शनकूं सफल करो ॥ ७८ ॥ तब दीक्षित बोले हे नाथ ! आपके चरणकमलकी सेवाके मार्गके सेवन करवे वारेनको आपके दर्शनतें अधिक कहा वर हे ॥ ७९ ॥ प्रफुल्लित नीलकमल जेसे श्याम ओर मनदृष्टिके अभिराम कामदेवकी शोभाके

अनौपम्यापीच्यताया प्रत्यगमपि भाजनम् ॥
आपादमस्तक नानारत्नभूषणभूषितम् ॥ ८१ ॥
पीताम्बर मुरलिकां दधानं मुकुट वरम् ॥
कुंकुमारक्ततिलकं हरिचंदनचर्चितम् ॥ ८२ ॥
सालिकजदलाक्षिभ्यां पश्यत सदय मुदा ॥
स्मयत भावगम्भीर ताम्बूलारुणदच्छदम् ॥ ८३ ॥
कुदकुद्मलदंतालिप्रभाभासितदिङ्मुखम् ॥
कलवेणुनिनादेन वशीकृतव्रजांगनम् ॥ ८४ ॥
वेदैर्देवैस्स्तुत नित्यं वृन्दारण्यपुरदरम् ॥
सच्चिदानदमात्र सन्मूर्तिमन्तामिवोज्ज्वलम् ॥ ८५ ॥
अक्षण्वतां स्वभक्तानां परमानदसत्फलम् ॥
अचिन्त्यमहिमैश्वर्यं योगिध्येयाङ्घ्रिपकजम् ॥ ८६ ॥
श्रीनन्दनन्दनहरि यशोदाभाग्यमदिरम् ॥
पश्यतो मे जगन्नाथ परै किमपरैरिह ॥ ८७ ॥

आश्रय ॥ ८० ॥ कोई उपमा नहीं एसी सुदरताके प्रति श्रीअग पात्ररूप चरणारविंदतें मस्तकपर्यन्त अनेक रत्ननके भूषणनसे भूषित ॥ ८१ ॥ पीताम्बर मुरली मुकुटकों धारण किये केशरको तिलक किये चन्दनचर्चित श्री अग ॥ ८२ ॥ भ्रमरसहित कमलके दलसदृश नेत्रनकरकें दयायुत आनन्दतें देखतें अति गंभीरभावतें मद मद मुसक्यातें ताम्बूलतें लाल ओठ ॥८३॥ कुदकी कली जेसी दन्तपक्तिकी प्रभातें दिशानके अग्रभागको प्र करत मधुर वेणुके शब्दतें गोपीनकों मोहते ॥ ८४ ॥ नित्य वेद ओर देवतानने स्तुति किय गये श्री वृन्दावनके इन्द्र सचिदानन्दरूप होतेभी उज्ज्वल मूर्तिवारे ॥ ८५ ॥ देखतें अपने भक्तनकों परमानन्द अच्छो फल देवेवारे अचिन्त्यमहिमावारे अनन्तऐश्वर्यवारे योगीजन जिनके चरणकमलनको ध्यान करहैं ॥ ८६ ॥ एसे श्री नन्दरायजीके प्यारे ओर श्रीयशोदाजी

इत्युक्त्वा प्रेमसंरम्भवाक्प्रसारो यदा द्विजः ॥
तदाह भगवानेव भक्त्या पूर्णोसि किम्ब्रुवे ॥ ८८ ॥
गोत्रे ते शतसोमान्ते यशसे भविताऽस्मि ते ॥
समुद्धाराय भक्तानां समुद्धारोयमेव मे ॥ ८९ ॥
इत्युक्त्वान्तर्गतो देवस्तत्रैवाध्वरमंडले ॥
पूर्णे पूर्णार्थ एवासीद्यज्ञे यज्ञनरायणः ॥ ९० ॥
तस्य पत्नी महाभागा सुषुवे तनयं सती ॥
सर्वलक्षणसम्पन्नं समयेप्यातिशोभने ॥ ९१ ॥
स जातः संस्कृतः पुत्रो वैदिकेन विधानतः ॥
गंगाधरःकृतो नाम्ना गुणैर्गंगाधरोप्ययम् ॥ ९२ ॥
स संस्कृतश्चोपनीतः स्वाध्यायविधिनाऽध्यगात् ॥
वेदान्सांगान्सविकृतीन्पेठे शास्त्राणि सर्वशः ॥ ९३ ॥

के भाग्यके स्थान जो आप हैं उनके दर्शन करतें मेरेकों हे जगन्नाथ! ओर दूसरे वरनसों कहा हे ॥८७॥ ये कहकें ओर प्रेमके जोरतें जब वाणी रुकर गई तब भगवान्ही आज्ञा करवे लगे जो तुमतो भक्ति करकें परिपूर्ण हो कहा कहें ॥ ८८ ॥ तुम्हारे वंशमें सो सोमयज्ञनके पीछें तुम्हारे यशके लियें ओर भक्तनके उद्धारकरवेके लियें येही मेरो अवतार होयगो॥८९॥ ये आज्ञा करकें वाही यज्ञमंडपमें श्रीप्रभु अन्तर्हित होयगये ओर यज्ञकी समाप्तिमें यज्ञनारायणभट्टजी पूर्णमनोरथ भये ॥ ९० ॥ उनकी बडी भाग्यवारी पतिव्रता स्त्री अच्छे मुहूर्तमें सर्वलक्षण सम्पन्न पुत्रकों उत्पन्न करतीं भईं॥९१॥ पितानें वैदिक संस्कार विधानतें किये ओर गंगाधर नाम राख्यो क्यों जो ये गुणनतेंबी गंगाधर जेसे हे ॥९२ ॥ ओर यज्ञोपवीत संस्कार भये पीछें वेदपढवेकी विधितें इननें अंग तथा विकृतीन करकें सहित वेद ओर

विपयेषु विरक्तोपि ह्यनुरक्तोसुरद्विपि ॥
पित्रोर्नियोगतश्चागाद् गृहान्गुरुकुलादयम् ॥ ९४ ॥
आगत्य जनकप्रीत्यै त्रिरुम्मलद्विजन्मन ॥
वत्सगोत्रस्योपयेमे काञ्ची गोणीपुरे सुताम् ॥ ९५ ॥
स भार्यामभिसगृह्य गार्ह्यं धर्म समाश्रित ॥
त्रेताग्निमादधत्प्रीतश्चातुर्मास्याधिकृद्वभौ ॥ ९६ ॥
वहव पाठिता शिष्या निपुणा वेदशास्त्रयो ॥
समीमांसारहस्याख्यमुखान् ग्रन्थान् विनिममे ॥ ९७ ॥
सत्यज्य सर्वत कामान् विद्वत्सन्यासमाश्रित ॥
गृहेष्वतिथिवत्तिष्ठञ्जातो ब्रह्मर्षिसत्तम ॥ ९८ ॥
तस्यापि तनयस्तादृक् ख्यातो गणपति स्वयम् ॥
ऋद्धिसिद्ध्यो पतिर्भव्यो मान्यानां प्रथमो महान् ॥ ९९ ॥

सब शास्त्रनकों पढ्यो ॥ ९३ ॥ ओर ये विपयनमें विरक्त होयकें भी भग वान्में अनुरक्त भये ओर मातपिताकी आज्ञातें गुरुकुलसों अपने घर आये ॥ ९४ ॥ आपकें पिताकी प्रसन्नताके लियें वत्सगोत्री त्रिरुम्मल ब्राह्मणकी कन्या कांचीनामकी गोणीपुरमें व्याही ॥ ९५ ॥ तीको ग्रहण करकें गृहस्थधर्मकों धारणकरकें प्रसन्न भयेकें त्रेतानामकी अग्निकों धारण कियो ओर चातुर्मास्य किये ॥ ९६ ॥ बहोतसे शिष्यनकों पढाये जो वेद-शास्त्रमें निपुण भये ओर मीमांसारहस्य आदि बहोतसे ग्रन्थ बनाये ॥ ९७ ॥ पीछें सब कामनकों छोडकें विद्वत्सन्यास लेकें घरमें अतिथिके तरह रहते ब्रह्मर्षीनमें श्रेष्ठ भये ॥ ९८ ॥ ओर इन गणाधरजीतें वेसेही प्रसिद्ध साक्षात गणपतिरूप गणपति नामके पुत्र भये जो ऋद्धि सिद्धीनके स्वामी तेजस्वी मा

स संस्कृतो व्रतम्प्राप्तो गुरुभ्यश्चाध्यगात् त्रयीम् ॥
सद्दर्शनेषु निपुणः क्रियाकांडेष्वनुत्तमः ॥ १०० ॥
निजग्रामेऽकेशवस्य तनयामम्बिकाभिधाम् ॥
पाणिग्रहे स जग्राह वासिष्ठस्य यथाविधि ॥ १०१ ॥
गृहाश्रमेऽभ्यधिकृतश्चक्रे धर्मं यथोदितम् ॥
नित्यं नैमित्तिकं चेष्टापूर्तं च हरिपूजनम् ॥ १०२ ॥
तेन दक्षिणदिग्यात्रा कृता शिष्यगणैस्सह ॥
तान्त्रिकाणां विग्रहार्थं रोपितो विजयध्वजः ॥ १०३ ॥
तन्त्रनिग्रहमुख्याश्च तेन ग्रन्थाः प्रकाशिताः ॥
कृताश्च बहवस्सोमाः श्रीगोपालश्च लालितः ॥ १०४ ॥
तस्यापि तनयो जातो वल्लभस्सर्ववल्लभः ॥
यस्य भाग्याद्भाग्यवन्तो जाताश्च बहवो बुधाः ॥ १०५ ॥
स मौंजीबन्धनं प्राप्य चतुर्वेदानधीतवान् ॥
अंगोपांगरहस्यैश्च शास्त्राणि गुरुभिः पुनः ॥ १०६ ॥

न्यपुरषनमें अग्रगण्य हे ॥ ९९ ॥ ओर संस्कृत होयकें ब्रह्मचर्य व्रत पालकें गुरूनसों वेद पढकें दर्शनशास्त्रमें निपुण कर्मकांडमें अनुपम भये ॥ १०० ॥ अपने ग्रामहीमें वसिष्ठगोत्री केशवकी अम्बिका नामकी कन्यासों विवाह कियो ॥ १०१ ॥ गृहस्थाश्रमके कहेभये धर्मनकों तथा नित्य नैमित्तिक इष्टापूर्त भगवत्सेवा आदिकों यथावत् किये ॥ १०२ ॥ ओर शिष्यनके सहित दक्षिण दिशाकी यात्रा करी तामें तान्त्रिकनके जीतवेके लियें विजय ध्वजा रोपी १०३ ॥ ओर तन्त्रनिग्रह आदि बहोतसे ग्रन्थ किये बहोतसे सोमयज्ञ किये श्रीगोपालजीकों लाड लडाये ॥ १०४ ॥ इनगणपतिभट्टजीके सबके प्यारे वल्लभ नामके पुत्र भये जिनके भाग्यसों अनेक पंडित भाग्यवान् भये ॥ १०५ ॥ जिननें उपवीत होतेंहीं अंग उपांग रहस्य इनके सहित वेद तथा शास्त्र गुरूननें पढे १०६

व्रतस्नातो धर्मपुण्यां सुतां मौद्गल्यसन्ततेः ॥
बह्वृच काशिनाथस्य पूर्णां देवे विवाहिता ॥ १०७ ॥
औपासनमथ प्राप सत्कर्माणि चरंस्तथा ॥
पितर्युपरते श्राद्धं कृत्वा श्रौताग्निमादधत् ॥ १०८ ॥
दर्शं च पूर्णमासं च चातुर्मास्यं पशुं तथा ॥
सोमं च क्रमतश्चक्रे यागानथ च वैकृतान् ॥ १०९ ॥
विद्यावन्तः कृताः शिष्या धनवन्तो निजाश्रिताः ॥
यशस्वन्तः कृताः स्वीया हरिश्चापि वशंवदः ॥ ११० ॥
ग्रन्थाश्च विहितास्तेन निर्ग्रन्थाश्च निराकृताः ॥
व्याख्याताश्च दशग्रन्थाः श्रौतग्रन्थी स वल्लभः ॥ १११ ॥

इति पूर्वपुरुषवर्णनम् ' ?

श्रीवेदव्यासविष्णुप्रभुचरणमिते सम्मिते ग्रन्थसार्थे
श्रीगोविन्दाभिधाना समयनयविदां देशिकानां निदेशात् ॥
आचार्याणां चरित्रे हरिजनसुखदे कृष्णभट्टैर्निबद्धे
प्रस्थाने दिग्जयाख्ये समजनि पटहश्चादिमेऽय द्वितीयः॥११२॥

और ब्रह्मचर्य व्रत पालके मुद्गलगोत्री ऋग्वेदी काशीनाथजीकी कन्या पूर्णा नामकी धर्मपुर्गमें व्याही ॥ १०७ ॥ और औपासन धारण कियो नित्य सत्कर्म करते और पिताके लीलापधारे पीछे श्राद्ध करके श्रौत अग्निहोत्र धारण कियो ॥ १०८ ॥ दर्श पूर्णमास चातुर्मास्य पशु सोम ये विकृत यज्ञ क्रमसों किये ॥ १०९ ॥ शिष्यनकों विद्यावान किये आश्रितनकों धनवान और यशस्वी किये और भगवानको अपने वशमें किये ॥ ११० ॥ ग्रन्थनकों बनाये मूर्खनकों दूर किये दशग्रन्थनको व्याख्यान कियो औरश्रौतग्रन्थी नामसों आप प्रसिद्ध भये ॥ १११ ॥ इतिपूर्वपुरुषवर्णनम् । समयनीतिके जाननेवारे जगद्गुरु श्रीमद्गोविन्दाचार्यजी महाप्रभुनकी आज्ञातें कृष्णशास्त्रीके बनायेभये श्रीमद्वेदव्यासविष्णुस्वामि भनके ग्रन्थनके अनुकूल हरिभक्तनके सुखदेनेवारे या वल्लभ दिग्विजयग्रन्थके प्रथमप्रस्थानमें ये दूसरा पटह समाप्त भयो ॥ ११२ ॥

यतो वाग्देवता प्रादुर्भूता पूतात्मनां मुदे ॥
नमामि वेदगर्भं तं श्रीसुदर्शनलक्ष्मणम् ॥ १ ॥
अथ शोभनवेलायां घुष्टे गीर्वाणदुंदुभौ ॥
अमूतांशं वल्लभस्य वल्लभानकदुंदुभेः ॥ २ ॥
जातेऽस्मिञ्जातको जातो वैदिकोंहातिसंततिः ॥
अनृणोऽसौत्रिभिस्तेन चतुर्थेधिकृतोभवत् ॥ ३ ॥
आलक्ष्य लक्षणाभिज्ञस्तस्य सल्लक्षणावलिम् ॥
अकार्षील्लक्ष्मणाख्यां वै प्रशस्तां स्वगुणोदयाम् ॥ ४ ॥
स यथोक्तैः स्वसंस्कारैः काले कालेऽभिसंस्कृतः ॥
पितृभिः पूर्यमाणोसावैधतेंदुरिवोज्ज्वले ॥ ५ ॥
चिक्रीडे क्रीडनैः पूतैर्जुहूस्रुक्चमसग्रहैः ॥
क्रतुभिः कृत्रिमैःकृतैहौत्रध्वर्युमुखार्भकैः ॥ ६ ॥

अब तीसरेपटहमें श्रीमदाचार्यजीके पिता जो श्रीलक्ष्मणभट्टजी तिनको चरित्र वर्णन करें हैं जिनके पवित्रआत्माके आनन्दके लियें साक्षात् वाणीपतिको प्रादुर्भाव भयो उन वेदगर्भ सुदर्शन श्रीलक्ष्मणभट्टजीकूं नमस्कार करूंहूं ॥ १ ॥ सुंदर समयमें देवदुंदुभी (देवतानके नगाड़े बजते)श्रीवल्लभकी स्त्री वसुदेवजीके अंशकूं प्रगट करती भई ॥ १ ॥ इनके उत्पन्न भये पीछें वैदिकरीतिसूँ जातकर्म भयो ओर पिता मनुष्यऋण पितृऋण देवऋणतें छूटकें मोक्षके अधिकारी भये ॥ ३ ॥ ओर लक्षणनके जानवेवारे पिता श्रीवल्लभजीनें इनके सुन्दर लक्षणनकूं देखकें अपने गुणनतें उदय हे जाको एसो अच्छो लक्ष्मण ये नाम धऱ्यो ॥ ४ ॥ ओर अपनी शाखाके अनुसार समय समयमें संस्कारनके करवेसूँ तथा पिताके पोषण करवेसूं ये शुक्लपक्षके चन्द्रमा जेसे बढते भये ॥ ५ ॥ ओर स्रुव स्रुचि चमस आदि पवित्र यज्ञपात्रनतें बनावटके होता अध्वर्यु आदि बालक हैं

पचमे मासमानेऽसौ ब्रह्मवर्चसकाम्यया ॥
पित्रोपनीतो विधिना महोत्सवपुरस्सरम् ॥ ७ ॥
स दुश्चर दधारोद्धंब्रह्मचर्यमखंडितम् ॥
गुरूणामुटजे तस्याचार्योपासनतत्पर ॥ ८ ॥
कृताभिवादनो नाम्ना षड्ब्रह्मांजलिर्गुरो ॥
पारायणं पपाठसौ स्वाध्यायेऽध्ययनाध्वना ॥ ९ ॥
अधीत्य शाखामात्मीयां परकीयामित परम् ॥
वेदान् पृथग्व्रते सांगान् पपाठ विकृती सुधी ॥ १० ॥
मीमांसाद्वितय धर्मशास्त्र शास्त्रांतराण्यपि ॥
शुष्केष्ट्या क्रतुकौशल्यं लब्ध्वा सतोष्य देशिकम् ॥ ११ ॥
कृत्वार्होमर्हणां लब्ध्वाऽनुज्ञां सस्नोव्रतादयम् ॥
गृहान् समागत पित्रोर्मुदेऽनूचानसत्तम ॥ १२ ॥
ववदे पादयो पित्रोराशीर्मंत्राभिर्षिचित ॥
प्रवेशितो गृहे विद्याग्रहणोद्योतितांगण ॥ १३ ॥

जिनमें एसे यत्ननतें वे खेलते भये ॥ ६ ॥ पिताने ब्रह्मतेजकी कामनातें बडे उत्सवस इनको उपवीत कियो ॥७॥ पीछें ये दु खसों होयवेवारे अखंडित ब्रह्मचर्य्यव्रतकों पालते गुरुनके स्थानमें उनकी उपासनामें तत्पर होयकें बसे ॥ ८ ॥ अपनो नाम लेके हाथ जोडकें गुरुनकों प्रणाम करकें वेदके पढवेकी रीतिसों वेदनकों पढे ॥ ९ ॥ पहले अपनी शाखाकों पीछें दूसरी शाखानकों पढके जुदे जुदे नियमनतें अंग तथा विकृतिनके सहित वेदनकों पढे ॥ १० ॥ पूर्वमीमांसा उत्तरमीमासा एसें दोनों मीमांसा धर्मशास्त्र ओर दूसरे शास्त्रनकोंभी पढकें यज्ञ करवेकी चतुराई सीखकें गुरुनकों प्रसन्न करकें ॥ ११ ॥ योग्य उनकी पूजा करकें उनकी आज्ञातें व्रतस्नान करकें वैदिकनमें श्रेष्ठ ये मातापिताके आनन्दके लिये घर आये ॥ १२ ॥ मातापिताके

श्रोत्रियैः कोविदैश्चायं पूर्णार्थ इव लक्षितः ॥
विद्यापौरुषमाधुर्य्यैर्यशोभिः कुलसंपदा ॥ १४ ॥
वशंवदेन विदुषा विद्यानगरवासिना ॥
निमंत्रितः पिता तस्य श्रीमान् वल्लभदीक्षितः ॥ १५ ॥
स्वजनैः स द्रुतं प्रागाच्छिबिरं कृतमंगलः ॥
काश्यपं कश्यपनिभं प्रजेशैरभिपूजितम् ॥ १६ ॥
सुशर्माणं समागम्य सुतार्थेऽभ्यर्थयत्सुताम् ॥
प्राह प्रणयसंबद्धो दीक्षितो दीक्षितं प्रति ॥ १७ ॥
लघीयस्योखिलायाच्ञाः कन्यायाच्ञा गरीयसी ॥
वरीयसी भवेत्सातो नृपाणामप्यणीयसी ॥ १८ ॥
भवतस्तत्रभवतास्त्रिवर्गार्थेऽर्थना मम ॥
अमोघा नौ नौरिवेयं संसाराब्धिषु पारदा ॥ १९ ॥

चरणनको प्रणाम कियो ओर उननें आशीर्वादमन्त्रनतें अभिषेक करकें इनको घरमें प्रवेश करायो सो घरको चौक विद्यासों प्रकाशित होयगयो ॥ १३ ॥ ओर वैदिकविद्यातें पुरुषार्थतें मधुरतातें यशतें कुलरीतितें विद्वाननेंबी इनको परिपूर्ण जाने ॥ १४ ॥ पीछें विद्यानगरवासी प्रियबोलवेवारे विद्वान् सुशर्माजीनें इनके पिता श्रीवल्लभदीक्षितजीकों ॥ १५ ॥ मनुष्यके द्वारा निमन्त्रण कियो सो ये मंगलस्वरूप सुंदर वस्त्रादि पहेरकें जल्दीसों उनके डेरामें गये वहाँ कश्यपऋषिके समान प्रजापति राजानतें पूजित कश्यपगोत्री ॥ १६ ॥ सुशर्माजीसों मिले ओर अपने पुत्रके लियें उनकी कन्यामाँगवेकी इच्छातें अतिप्रेमपूर्वक उनसों बोले ॥ १७ ॥ जो सब याचना छोटी हें परन्तु कन्याकी याचना बहोत बडी हे जो राजानसोंबी नहीं होयसके वो ये आपको पूरण करवेके लियें छोटी हे याहीतें धर्म्म अर्थ कामके लियें ये मेरी प्रार्थना आपसों हे

स पुरोधा निधायैतां शिरसा वल्लभार्थनाम् ॥
क्रमुकाक्षतवस्त्रादि जगृहेऽप्यादयच्चतम् ॥ २० ॥
निर्णीते गणकैर्दृष्टे कल्याणे स्वपुरादमुम् ॥
समाह्वयत्स पत्रार्णैः कुटुंबं साप्तपौरुषम् ॥ २१ ॥
तदाकर्णनमाकर्ण्य कृतार्थो दीक्षितस्तदा ॥
आभृत्य सर्वसंभारान् सन्नद्धः कृतमंगलः ॥ २२ ॥
सामन्तैः शिविरादीनां सपाद्याखिलसंपदः ॥
गजाश्वरथनिस्साणैर्भटैः पुरटमंडितैः ॥ २३ ॥
तूर्यघोषेण महता तथा तौर्य्यत्रिकेण च ॥
प्रतस्थेथाखिलैः स्वीयैर्जन्यैर्वरपुरःसरैः ॥ २४ ॥
स दीक्षितः समायातान् गोपुरस्य पुरः स्थितान् ॥
ससंभ्रमं समाकर्ण्य स्वीयैरानेतुमागमत् ॥ २५ ॥

सो ये अपने दोननको संसारसमुद्रके पारको देवेवारी नौकारूप सफल होयगी ऐसी आशा है ॥ १९ ॥ तब विद्यानगरके राजाके पुरोहित सुशर्माजीने पूर्वोक्त वल्लभजीकी प्रार्थनाकूं माथे चढाय सुपारी अक्षत वस्त्राभूषण लिये और उनकों भी दिये ॥ २० ॥ या प्रकार लक्ष्मणभट्टजीकी सगाई भये पीछे अपने घरजायकें ज्योतिषीनके बताये अच्छे मुहूर्तमें सुशर्माजीने अपने गाँमते पत्रके द्वारा सात पीढीके कुटुम्बके सहित वल्लभजीकों बुलाये ॥ २१ ॥ ये आमन्त्रण सुनकें अपनेकों कृतार्थ मान सब वस्तुनकी तैयारी कर मंगल करकें तैयार भये ॥ २२ ॥ बडे बडे योद्धा सिपाही हाथी घोडा विमान सुवर्णसो मंडित रथ सम्भृत ॥ २३ ॥ बडे२न गाडा सांडनी आदि बाजे गाजेके सहित वरको अगाडीकर सब अपने बरातियनके सहित चलकें विद्यानगरके पास पहुंचे ॥ २४ ॥ तब सुशर्मा दीक्षित बरातियनको सदनके बाहर आये सुनकें बडे उत्सवपूर्वक अपनीमंडलीके सहित

आरामाणां विचित्राणां विचित्रद्रुमसंपदाम् ॥
विहाराणांच वैचित्र्यं पश्यंतश्चित्रतांगताः ॥ २६ ॥
निःसरंतो हस्तिनखाद्धस्त्यश्वरथपत्तयः
भेरीढक्कामर्द्दलैश्च पणवानकगोमुखैः ॥ २७ ॥
वीणावेणुमृदंगैश्च नृत्यद्वारांगनाजनैः ॥
आयाताश्छंदसां नादैर्हृष्टास्तैर्भूसुरोत्तमाः ॥ २८ ॥
अन्योन्यं ते समाहृत्य मिलितामिलनोत्सुकाः ॥
पुरस्कृत्त्य पुरं चायन् पुरंदरपुरोपमम् ॥ २९ ॥
हर्म्यावासे निवेश्यैतान् यथेष्टं च यथेष्टकैः ॥
उपचारैः पर्य्यचरन् प्रत्त्येकं वाहनं जनम् ॥ ३०
गणाधिपं प्रतिष्ठाप्य चारभ्याशनसत्रकम् ॥
ततः संपाद्य सर्वार्थान् वेदिमंडपमंडलान् ॥ ३१ ॥
ततोनिश्चयताम्बूलं ग्रहयागं च चक्रतुः ॥
देवतास्थापनं वृद्धि श्राद्धं तावंकुरार्पणम् ॥ ३२ ॥

लेवेकों गये ॥ २५ ॥ ये वरातीजन अनेक चालके वृक्ष ओर सम्पत्ती हैं जिनमें एसे बगीचानकों ओर विहारके स्थाननकों देखते आश्चर्ययुक्त भये ॥ २६ ॥ ओर दरवज्जेके उतारसों निकसे हाथी घोडे रथ सिपाही नौबत डमरू झाँझ ढोल नरसिंहा गोमुख ॥ २७ ॥ वीणा वंशी मृदंग आदि बजते बाजानके सहित तथा वेदध्वनिसहित ब्राह्मणनके संग आवते सुशर्माजीकों देखतेभये ॥ २८ ॥ बहोतादिननसों मिलवेकी अभिलाषा राखवेवारे दोनों ओरके मनुष्य बडे आदरसों मिले पीछें वरातिनकों आगें कर, अमरावतीके समान अपने विद्यानगरमें लायकें ॥ २९ ॥ महलनमें उतारकें सुन्दर उचित उपचारनतें प्रतिमनुष्य प्रतिवाहननको उपचार कियो ॥ ३० ॥ ओर गणेशकों बेठायकें कढाईपूजा करकें सम्पूर्ण सामग्री तथा वेदी मंडप मंडल करकें ॥ ३१ ॥ निश्चयताम्बल ग्रहशान्ति कुलदेवतास्थापन वृद्धिश्रा-

मठपाराधनमुख्यमुभयत्र विधाय तौ ॥
भोजयामासतु स्वीयान् शाकपाकैर्मनोहरै ॥ ३३ ॥
सभोज्य ददतु स्वेभ्यो भट्टाभूषा पटोत्तमान् ॥
तत प्रभाते कुर्वाते नित्त्य नैमित्तिक निजम् ॥ ३४ ॥
स प्रातश्चाव्हयत्सर्वान् विवाहोत्सवमगले ॥
तोर्य्यत्रिकैर्वेदघोषैर्वर जन्यान्समानयत् ॥ ३५ ॥
द्वारदेशेऽभिषिच्यैन कृत्वार्चा गृहमानयत् ॥
मधुपर्कविधानेनापूपुजत् स वराऽतिथिम् ॥ ३६ ॥
कन्यादान ततश्चक्रे ययाविधि विधानत ॥
वरश्चाग्निसमाधाय व्यधात्सप्तपदीं तया ॥ ३७ ॥
सपत्नीक पीतवासामंडितोब्रह्मचर्य्यभृत ॥
परोद्यागामुखान्होमान् चक्रे जाते महोत्सवे ॥ ३८ ॥
शिष्टैर्निशिष्टे स्वगनैर्बधुभिश्च सुहृज्जनै ॥
प्रातिवेश्यानुवेश्यैश्च विद्यानीव्योपजीविनै ॥ ३९ ॥

द अंगराग आदिसों यथन्यारे पिना दतांनेनें किये ॥ ३२ ॥ मठपाराधन आदि दान दिवाने दोनों मन करके सुन्दर शाक पाक करके अपने संबंधियों भोजन करवाने भये ॥ ३३ ॥ और आभूषण वस्त्र पहरावनी देत भये पीछें प्रभातसमयमें भरतो ? नित्य नियम करते भये ॥ ३४ ॥ सुप्रभातहीमें विवाहके उत्सवमें बाजे गाजेसें वेदध्वनिसें बुलायके आदरपूर्वक जनवासेसों लाये ॥ ३५ ॥ द्वारदेशमें वरको अभिषेक कर पूजा करके घरके भीतर लायके वहां मधुपर्कविधानसें वरकी अतिथिकी पूजन किया ॥ ३६ ॥ पीछें यथाविधिपूर्वक कन्यादानकिया और वरने अग्निस्थापनकर सप्तपदीकरी ॥ ३७ ॥ पत्नीसहित पीत वस्त्र पहरें ब्रह्मचर्यधारण किया स्नानहोमादिक किया ॥ ३८ ॥ और मुण्डनादि शिष्टाशिष्ट स्वजन बन्धु विवाहमें आये

प्राघूर्णिकैः सैन्यजनैः पौरामात्यैर्महाजनैः ॥
जन्याः संभोजितास्तेन महाभोजे चतुर्दिनम् ॥ ४० ॥
चतुर्थापररात्र्यन्ते कृते होमसमापने ॥
दत्त्वैरिणीं पारिबर्हान् नागवल्लीं समाप्य च ॥ ४१ ॥
पारितोषिकभूषाद्यैस्सन्तोष्यैवागतान् जनान् ॥
शकटेऽग्नीन् समारोप्य यापयामास दंपती ॥ ४२ ॥
तस्य कुकुदतां कीर्त्त्यां कुर्वतः ककुभोन्वगुः ॥
विचित्रोत्सवसंगीतैः शांतिघोषैः समाययुः ॥ ४३ ॥
निजागारं समागत्य श्रीमान्वल्लभदीक्षितः ॥
अभिषिक्तोऽविशद्गेहं चक्रे स परमोत्सवम् ॥ ४४ ॥
सजातीयान् विजातीयान् सामंतान्सैनिकानपि ॥
सर्वान् संतोषयामास भूषणांवरभोजनैः ॥ ४५ ॥
ते सर्वे तुष्टमनसः प्रशस्यामुं महोदयम् ॥
कीर्तयंतोयशोदिक्षु विदिक्षुह्यागमन्मुदा ॥ ४६॥

बजावनेवारे लोग गुणीजन घरके कमीनजन ॥ ३९ ॥ पहरेवारे सेनावारे शहरके कामदार साहूकार इन सबनके सहित वरातीनकों भोजन करायो ॥ ४० ॥ चौथी पीछली रात्रिके अन्तमें होमके समाप्तिमें ऐरिणीदान दायजा देकें नागवल्लीकों समाप्तकरकें ॥ ४१ ॥ विदाके आभूषण वस्त्र आदितें यथार्थ जननकों संतोषकर गाडामें अग्निकों पधराय वरकन्याकों विदा किये ॥ ४२ ॥ सो नानाप्रकारके मांगलिक गान ओर शान्तिध्वनि करकें उनकी कीर्तिके पीछें मानों दिशाभी जाती भई ॥ ४३ ॥ श्रीमान्वल्लभदीक्षित नें अपने गाँममें आयकें मन्त्रजलसों अभिषिक्त होयकें अपने घरमें प्रवेश कियो ओर बडो उत्सव कियो ॥ ४४ ॥ आये भये जातिवारेनकों ओर दूसरेजातिवारेनकों सैनिकजननकों सबकों भूषण वस्त्र भोजन दानसों संतुष्ट कियो ॥ ४५ ॥ आयेभये वे सबलोग मनमें सन्तुष्ट होयकें महोदय

श्रीमांल्लक्ष्मणभट्टोसौ धृत्वौपासनमादरात् ॥
सेवमान पितॄंश्चक्रे धर्ममाश्रमचोदितम् ॥ ४७ ॥
दधार दोहद साध्वी पितॄणामभिलिप्सितम् ॥
आधानादिसुसस्कारै संस्कृताग्निशिखामिव ॥ ४८ ॥
चिरेणाचीर्णतपसश्चितयान फलं मुदा ॥
प्रसूतासूततनय शुभर्क्षखचरोदये ॥ ४९ ॥
जातकादीन् सुतस्यैष कृतवाञ्शास्त्रवर्त्मना ॥
नातिप्रसन्नहृदय स्मरन् श्रीपतिगामयम् ॥ ५० ॥
अपत्येषु तथान्येषु जातेष्वेव स सस्कृतिम् ॥
चकार लोकानुगतोलौकिक च महोदयम ॥ ५१ ॥
पित्रोर्लब्ध्वा ततोनुज्ञां तीर्थयात्रामिपादथ ॥
प्रेमाकर सिषेवेसौ प्रमेयस्याकर गिराम् ॥ ५२ ॥

श्रीनृसिंहभट्टदीक्षितजीकी कीर्तिकों स्मशानमें गावते आनन्दसों अपने२घरनकों गये पीछे श्रीमान् लक्ष्मणभट्टजीयी आदरतें औपासनहोमकों धारण कर मातापिता की सेवा करते गृहस्थाश्रमके धर्मनको करते भये॥ ४७॥ओर थोरे दिनानके पीछे उनकी पतिव्रता स्त्री पितरनको अभीष्ट गर्भाधानादिसंस्कारतें संस्कृत अग्निशिखाके समान गर्भकू धारण करती भई॥ ४८॥ पति अपनी तपस्याके फलको चिन्तनकरते हुते इतनेमें शुभनक्षत्रादि युक्तकालमें उननें पुत्रकों उत्पन्न कियो॥ ४९॥या पुत्रके यथाशास्त्र जातकर्म आदि कर्म करकें भगवान्की वाणीकों स्मरण करते लक्ष्मणभट्टजी अत्यन्त प्रसन्न न भये॥ ५० ॥याही प्रकार दूसरी सन्तति भये पीछे लोकानुसार बडो उत्साह कियो ॥ ५१ ॥ फिर मातापिताकी आज्ञा लेके तीर्थयात्राके छलनें घर छोडके जनार्दनक्षेत्रमें आयके सिद्ध बडे विद्वान् प्रेमाकर नामक महात्माकी सेवा करवे लगे ॥ ५२॥

ततोलब्ध्वा मनुवरं जजाप स जनार्दने ॥
रहस्यं भक्तिशास्त्राणां प्रपेदे यमिनोमुखात् ॥ ५३ ॥
तनयस्य वियोगेन विमनावल्लभस्ततः ॥
सकुटुंबः प्रचलितस्तीर्थान्येव गवेषयन् ॥ ५४ ॥
स पुनर्दैवयोगेन क्षेत्रमेतदुपागमत् ॥
कृत्वा तीर्थविधिं सर्वं दृष्टवान् श्रीजनार्दनम् ॥ ५५ ॥
तद्दर्शनमहाल्हाद सुधासंप्लावितान्तरः ॥
प्रव्यक्ताश्रुदृशादृष्ट्वा न ददर्श किमप्यसौ ॥ ५६ ॥
तत्रत्यैर्मानितो विद्भिः किंचित्कालमथावसत् ॥
ददर्श स्वामिनं प्रेमाकरं विद्यामहोदधिम् ॥ ५७ ॥
तत्र लब्ध्वा सुतं तेन वंदितश्चातिनंदितः ॥
ननाम यतिराजं तं त्रयीमूर्तिं त्रिदंडिनम् ॥ ५८ ॥
यतिराट् प्राह तनयोविनयादिगुणस्तव ॥
श्रीगोपालार्चनाज्जातः पूर्णार्थोभाग्यशेवधिः ॥ ५९ ॥

ओर उनसों श्रेष्ठ मन्त्रकों पायकें जनार्दनक्षेत्रमें जप कियो ओर उन्हीं यमी-के मुखतें भक्तिशास्त्रके रहस्यकों पायो ॥ ५३ ॥ या आडी पुत्रके वियोगसों उदास होयकें सकुटुम्ब इनके पिता वल्लभभट्टजी पुत्रकों ढूंढते तीर्थनकों चले ॥ ५४ ॥ सो दैवयोगतें जनार्दनक्षेत्रमें गये वहांकी तीर्थविधि करकें श्रीजना-र्दनजीके दर्शन किये ॥ ५५ ॥ परन्तु दर्शनसों आनन्दरूपी समुद्रमें मग्न होयकें बहेंहें आसूं जातें एसी दृष्टीतें कछु न देख्यो ॥ ५६ ॥ वहांके विद्वान नसों मान पायकें वहां थोरे दिन बसे ओर विद्याके महोदधि प्रेमाकर स्वामी-जीकूं देख्यो ॥ ५७ ॥ वहां पुत्रकों पायकें पुत्रके प्रणाम करवेतें प्रसन्न भये पीछें त्रिदंडि वेदमूर्ति यतिराज सन्यासी कों नमस्कार कियो ॥ ५८ ॥ तब प्रेमाकर स्वामी बोले जो विनयादि सर्वगुणसम्पन्न तुम्हारे पुत्र श्रीगोपालजीकी

भवत्सुपार्थे त मात्राभ्यर्थितोहमर्चितयम् ॥
अकृतार्थं कथं याति देवोस्याह कृतार्थताम् ॥ ६० ॥
प्रादुर्भावं करिष्यामि क्षेत्रे तस्य महात्मन
देवोद्धारकृते भूम्यां सत्यं कर्तुं वचोमम ॥ ६१ ॥
ततोयं नीयतां पुत्रो गताधि क्रियतां स्नुषा ॥
विज्वर क्रियतां लोको देवोमोदसमन्वित ॥ ६२ ॥
वल्लभस्तद्वचोधारां सुधासारां पपौ मुदा ॥
सकुटुंब सुत तस्माद् यापयामास यात्रिकै ॥ ६३ ॥
कृतकृत्यो भुक्तभोग पूर्णार्थो वीतयौवन ॥
पीताब्धिर्लब्धप्रेष्यार्णे पाराशर्यो बभूव ह ॥ ६४ ॥
त संश्रितो यतिवर शुद्धाद्वैततत्त्वबोधकम् ॥
अशक्त वर्ष्मणा शक्त शिष्याज्ञानतमोनुदे ॥ ६५ ॥

सेवासों पूर्णार्थ भाग्यनिधि भये हैं ॥ ५९॥ इनकी मातानें अपनी पुत्र वधू-के लियें हमसों अवी प्रार्थना करीही तब ध्यान करते मोसू प्रभुनें कही ॥ ६० ॥ जो इन महात्माके क्षेत्रमें (सीमें) अपने वचनके सत्य करवेकें लियें देवीजीवनके उद्धारके लियें हम प्रगट होंयगे ॥ ६१ ॥ तातें या अपने पुत्रकों लेजाओ पुत्रवधूकी मनकी व्यथाकों दूर करो लोगनकों अज्ञान ज्वरतें रहित करो देवीजीवनकों आनन्दितकरो ॥ ६२ ॥ या अमृतमयी वाणीकों आनन्दसें वल्लभजी सुनकें यात्रावारेनके संग सकुटुम्ब पुत्रको घर पठायो ॥ ६३ ॥ ओर जिनर्ने करवेके योग्य काय कियो हे और सब भोग भोगे हे युवा अवस्था वीत गई हे जिनकी एसे पूर्णमनोरथ मन्त्रकों लेकें शुद्धाद्वैतमतके बोध करवेवारे अवस्थासों वृद्ध शिष्यनके अज्ञान दूरकरवेमें युवा एसे उनभेपाकरस्वामीको आश्रय

शिखासूत्रोपवीत स्रक्पुंड्रमुद्राधरः शुचिः ॥
सावित्रीजाप्यनिरतस्तत्रावात्सीत् कुटीचकः ॥ ६६ ॥
अथ लक्ष्मणभट्टोसौ प्रविष्टः स्वपुरं ततः ॥
उपाध्यायं विष्णुचितिं पुरस्कृत्याग्निमादधौ ॥ ६७ ॥
वैतानिकेन विधिना सोऽग्निहोत्रं चरन् सदा ॥
चक्रे स दश सोमान्वै यागान् वैकृतिकांस्तथा ॥ ६८ ॥
श्रौतस्मार्तपरश्चापि श्रीगोपालसमर्चकः ॥
तत्प्रीणनकृते पर्वयात्रापूजोत्सवान् व्यधात् ॥ ६९ ॥
पाठितावटवोजाता दशग्रंथे धुरंधुराः ॥
यज्ञेष्वस्यविदां मोदं चक्रुर्वैदिकचर्चया ॥ ७० ॥
वेदानां पाठनैर्ग्रंथनिर्माणैः क्रतुकर्मभिः ॥
संख्यावद्भ्यश्च भूभृद्भ्यो यस्य कीर्त्तिर्जगत्यभूत् ॥ ७१ ॥
कदाचित् सोमसत्रेऽस्य प्रागाच्छंकरदीक्षितः ॥
स प्राह वार्त्तागोष्ठीषु वासितोतिसमादृतः ॥ ७२ ॥

लेते भये॥६४॥६५॥ ओर शिखा यज्ञोपवीत तुलसीमाला ऊर्द्धपुंड्र मुद्रा आदिकों धारण कियें पवित्र गायत्रीजपमें मग्न होयकें कुटी बाँधके वहाँ रहवे लगे ॥ ६६ ॥ याआडी लक्ष्मणभट्टजीनें अपने पुरमें प्रवेश करकें विष्णुचिति उपाध्यायकों आगें कर अग्निधारण कियो ॥ ६७ ॥ ओर वैतानिक विधिसों सदा अग्निहोत्र करते दश सोमयज्ञ तथा वैकृतयागनकों किये ॥ ६८ ॥ श्रौत स्मार्त कर्ममें तत्पर होयकें श्रीगोपालजीकी सेवा करवेवारे वे श्रीगोपालजीकी प्रसन्नताके लियें ओर बी पर्वयात्रापूजोत्सवनकों करते भये ॥६९ ॥ जिनके पढाये वटुक बालक दशग्रन्थनमें धुरंधर भये ओर इनकी यज्ञनमें वैदिकचर्चासों विद्वाननकों प्रसन्न करते हे ॥ ७० ॥ वेदके पढायवेसों ग्रन्थनके निर्माणसों यज्ञादिक कर्म करवेसों जिनकी कीर्ति दूसरे विद्वान् तथा राजानसों बी अधिक भई ॥ ७१ ॥ एक समय लक्ष्मणभट्टजीके सोम यज्ञमें श्रीशंकर दीक्षि-

पर्वयात्राङ्गरथ्यस्यां प्रयागस्य विशारदा ॥
गतुमुत्काहि बस्व इतो जानपदाजना ॥ ७३ ॥
गयार्थे कृतसकल्पोधियाह सुधिया त्वया ॥
त्रिस्थलीं गन्तुकामेन कामयेऽल हितैषिणा ॥ ७४ ॥
ततस्तु दीक्षित प्राह एव सचितयाम्यहम् ॥
आगतास्म्यचिराद्धर्मपुर्य्यां भ्रातर्भवत्कृते ॥ ७५ ॥
कलावनलतीर्थेभ्योज्यायांस्यवुमयान्यहो ॥
निस्नाता येषु मनुजा अपर्णा पुण्यशालिन ॥ ७६ ॥
एव वहुविदा तेन कृत्वा सविदमादरात् ॥
सत्कृत्याशु विसर्ज्याथ चेतसीदमचिंतयत् ॥ ७७ ॥
अनुज्ञातं यदार्येभ्यो माधवेनाध्वरात्मना ॥
किम' सपद्यते तद्धि समाराधयतोपि मे ॥ ७८ ॥
अथवा दीर्घकालेन प्रसीदंतीह देवता ॥
भाग्याद्भगीरथस्येष निवद्धा प्रतिवघत ॥ ७९ ॥

त आये ओर अत्यन्त आदर पायकें सभामें बोले ॥ ७२ ॥ जो या वर्षमें प्रयागकी बडी भारी यात्रा हे यहांसों वहोत लोग जायवेवारेहें ॥ ७३ ॥ मैंने वी सुधी जो आप हें उनकें सग त्रिस्थली यात्रा करवेकों सकल्प कियो हे ॥ ७४ ॥ तब तो दीक्षितजी बोले जो हे भाई हमवी येही विचारते हे अबथोरेही कालमें आपके लिये धर्मपुरीमें आऊगो ॥ ७५ ॥ क्यों जो कलियुगमें अग्नि तीर्थनसों जलतीर्थ श्रेष्ठ होयहें जिनमें स्नान करवेसूं मनुष्य ऋण रहित पुण्यात्मा होयजायहे ॥ ७६ ॥ या प्रकार शंकर दीक्षितजी आदरपूर्वक सलाह करक सत्कारसों उनकों विदा करकें चित्तमें चिन्ता करवे लगे ॥ ७७ ॥ जो यज्ञस्वरूपी श्रीमदनमोहनजीनें हमारे पूर्वजनसों जो आज्ञाकरीही वो आराधना करवेवारे हमकों फलित होयगी वा नहीं ॥ ७८ ॥ अथवा बहोत दिनमें देवता प्रसन्न होयहें जेसे

सत्यमुद्धुष्यते विद्भिरेकस्मिन्नपि बाधके ॥
साधनानां सहस्राणि नन्वकिंचित्कराणि वै ॥ ८० ॥
ब्रह्मचर्य्यं यथान्यायं मया सम्यगनुष्ठितम् ॥
संतोषिताश्च गुरवो वेदाः सांगाः समर्जिताः ॥ ८१ ॥
कृतोऽथ गृहमेधीयोधर्मस्त्रैवर्गलक्षणः ॥
ऋणानि त्रीण्यपाकृत्य श्रीगोपालः समर्चितः ॥ ८२ ॥
स्वप्ने ध्याने तथा देशे गुरूणां प्रत्ययादपि ॥
अवश्यभाविन्यर्थेपि विलंबे कारणं नु किम् ॥ ८३ ॥
अस्ति कश्चिदलक्ष्योमेऽपराधः प्रतिबंधकः ॥
निवृत्तये चरिष्यामि तीर्थे स्थित्वैनसः क्षयम् ॥ ८४ ॥
ततः पत्न्या तथामंत्र्य भृत्त्वोपस्करमीप्सितम् ॥
विन्यस्य गेहान् गृह्यांश्च स्वभ्रातरि जनार्दने ॥ ८५ ॥
शकटेऽग्नीन् समारोप्य सकलत्रसुहृत्सुतः ॥
घृतश्राद्धं विधायैव ग्रामं कृत्वा प्रदक्षिणम् ॥ ८६ ॥

भगीरथजीको भागीरथी गंगा भई हीं ॥ ७९ ॥ देखो विद्वान् लोग सत्य उद्घोष करें हें जो एक बी बाधक रहते हजारवी साधक कार्य सिद्ध नहीं कर सकेंहें ॥ ८० ॥ मेंनें अच्छी रीतिसों ब्रह्मचर्य पाल्यों गुरुनकों सन्तुष्ट ये सांग वेद पढे ॥ ८१ ॥ धर्म अर्थ काम गृहस्थनके धर्म यज्ञ किये ओर तीनों ऋणनसों विमुक्त होयके श्रीगोपालजीकी सेवा करी तोबी अबी कछू नहीं जान पडेहे ॥ ८२ ॥ यद्यपि गुरूनके निश्चयसों तथा स्वप्न ओर ध्यानसों अर्थसिद्धि अवश्य होयवेवारी हे परन्तु विलम्बमें न जाने कहा कारण हे ॥ ८३ ॥ में जानूं हूं जो मेरो कोई अजानों प्रतिबन्धक हे सो वाके दूर करवेके लियें तीर्थमें रहकें कछू तप करूं ॥ ८४ ॥ ये सब बात अपनी स्त्रीसों सलाह करकें चहीती चीजनकों लेकें ओरसबकों अपने भाई जनार्दनकों सौंपके घृतश्राद्ध करकें अग्नीनकों गाडामें [illegible]

धृत्त्वैव कार्पटीवेष प्रतस्थे तीर्थयात्रिकै ॥
समुक्तनियमे पद्भ्या प्रचलन् योजनद्वयम् ॥ ८७ ॥
ततो धर्मपुरीमागात् कौंडिन्यस्य प्रतीक्षया ॥
सुहृत्तमसुपायात शकरस्तेन चान्वगात् ॥ ८८ ॥
मुडन चोपवास च तीर्थश्राद्ध द्विजार्चनम् ॥
चक्रे तीर्थविधि भट्टो गोदामुत्तीर्य यात्रिकै ॥ ८९ ॥
सर्वे समिलितास्तत्र पर्वयात्रा यियासव ॥
पौरा जानपदा विप्रा इभ्यार्य्या क्षत्रिया परे ॥ ९० ॥
शनै शनै प्रचलिता नर्मदा शर्मदा गता ॥
तीर्थश्राद्ध तीर्थदेवांस्तीर्थविप्रान् समीजिरे ॥ ९१ ॥
दत्त्वा दानानि संभोज्योपित्त्वाऽतश्चलिता पुन ॥
तत प्रयागे समाप्ता माघारंभे दिने शुभे ॥ ९२ ॥
कृत्त्वैव मुसळस्नान ततस्तीर्थविधि व्यधु ॥
मुडन चोपवास च तीर्थश्राद्ध परिक्रमम् ॥ ९३ ॥

स्त्री पुत्रमित्रनके सहित ग्रामकी प्रदक्षिणा करके कार्पटीवेश धरकें तीर्थयात्रावारेनसंग चले तीर्थयात्राके नियमानुसार दो दो योजन पावनसों चलते ॥ ८५ ॥ ८६ ॥ ८७ ॥ कौंडिन्य शकरदीक्षितकी प्रतीक्षासों धर्मपुरी गये यहाँ शकरदीक्षित अपने मित्रतें मिल उनकों सग लेकें चले गोदावरीकुं उतरके मुडन उपवास तीर्थश्राद्ध ब्राह्मणपूजन आदि सब तीर्थविधिसों कियो ॥ ८८ ॥ यहाँ पर्वयात्राके जायवेवारे सब गौमके देशके ब्राह्मण क्षत्रिय आदि मिले ॥ ९० ॥ उनके सग धीरे धीरे चल्ने सुखके देवे वारी नर्मदा में गये यहाँ तीर्थश्राद्ध करके तीर्थदेवताको तीर्थब्राह्मणनको पूजनकियो ॥ ९१ ॥ ओर दाननकों देके ब्राह्मणनकों भोजन करवायके यहाँ वासकरकें फिर चले सो माघमासके आरम्भमें प्रयाग पहुँचे ॥ ९२ ॥ यहाँ

देवद्विजातिथिवरान् पूजयित्वा यथोचितम् ॥
भोजनानि विचित्राणि दानानि विविधान्यदुः ॥ ९४ ॥
प्रतितीर्थं तथा स्नानं चक्रुर्माधवपूजनम् ॥
अर्द्धोदयं ततः प्राप्य धेनुमर्द्धप्रसूतिकाम् ॥ ९५ ॥
कृष्णाजिनं च कपिलं ददुर्भोज्येंधनांशुकम् ॥
समाप्याद्यस्थलीयात्रां पर्वयात्रामहोत्सवम् ॥ ९६ ॥
ततोंचितागतावाराणसीं संसारपारदाम् ॥
शारदाजन्मनिलयां नारदादिसमर्चिताम् ॥ ९७ ॥
हर्षोद्धर्षलसन्नेत्रवदनाविहितान्हिकाः ॥
अविमुक्तं महाक्षेत्रं विविशुः कृतवन्दनाः ॥ ९८ ॥
विश्वेशं माधवं ढुंढिं नत्त्वान्यान् मणिकर्णिकाम् ॥
स्नात्त्वाथ हनुमद्धट्टे चायाताः स्वीयवेश्मसु ॥ ९९ ॥

मुसलस्नान करकें तीर्थविधिसों मुंडन स्नान उपवास तीर्थश्राद्ध परिक्रमा करकें देव ब्राह्मण अतिथीनकों यथोचित पूजन करकें नानाप्रकारके भोजन ओर दान दिये ॥ ९३ ॥ ९४ ॥ ओर प्रतितीर्थनमें स्नान तथा श्रीबिन्दुमाधवजीको पूजन कियो सूर्यनारायणके उदय होते समय ब्यावती भई कपिला धेनुको दान कियो मृगचर्म भोजन इन्धन वस्त्रादिक दिये या प्रकार आद्यस्थली प्रयागकी यात्रा करकें वहाँसों चले सो संसारके पारको देवेवारी श्रीसरस्वतीजीकी जन्मभूमि नारदादिकऋषीननेंपूजी एसी वाराणसी पुरीकों गये ॥ ९५ ॥ ९६ ॥ ९७ ॥ हर्षसों उल्लासकों प्राप्त हें नेत्र मुख जिनके एसे वे आन्हिककों करकें ओर प्रणाम करकें महाक्षेत्र अविमुक्त श्रीकाशीपुरीमें प्रवेश कर ॥ ९८ ॥ मणिकर्णिकामें स्नान करकें बिन्दुमाधव श्रीविश्वनाथजी ढुंढीराजगणेशजीके दर्शनकर हनुमानघाटमें अप-

ततस्तीर्थविधिस्नानदानमुण्डनपैत्रिकम् ॥
उपवासं समचरन् धृतसकल्पितव्रता ॥ १०० ॥
निशांतेथ निशातेषु न्यूषुस्ते स्थंडिलेशया ॥
यात्रावार्ता प्रकुर्वाणाउपस्युत्थितमाचरन् ॥ १०१ ॥
कृत्वा शौच यथान्याय हुत्वाग्नीनुदिते रवौ ॥
काशीयात्राविधानेन पञ्चक्रोशीं प्रचक्रमु ॥ १०२ ॥
एक मासमुषित्वैष विद्वद्भेदिकचर्चया ॥
शुशुभे दानमानैश्च श्रीमांल्लक्ष्मणदीक्षित ॥ १०३ ॥
अविमुक्ते विमुक्त्वान्यान् गयायात्रार्थिभि सह ॥
तपस्यासितपष्ठ्यांतु प्रतस्थेऽसौ गयां प्रति ॥ १०४ ॥
अस्पृष्ट्वा कर्मनाशांभ प्रयातास्ते पुन पुनाम् ॥
तत्र तीर्थविधिं कृत्वा पूर्णांपस्ते गयां गता ॥ १०५ ॥
त्रैपाक्षिकीं सप्तदशवस्रेश्चक्रुर्गयाविधिम् ॥
गदाधरस्य चरणांभोजवंदनतत्परा ॥ १०६ ॥

ने घरनको आये॥९९॥पीछें मुडन तीर्थविधिस्नान दान श्राद्ध उपवास ये सब सकल्प पूर्वक किये ॥१०० ॥ रातिमें वे सब घरतीमें सोते हे यात्राकी वार्ता करतेहे सबेरे उठते हे॥ १०१ ॥यथाशास्त्रकी रीति शौचविधि आदि करकें सूर्योदयमें हवन करते काशीयात्राके नियमानुसार पचक्रोशी की यात्रा करी ॥१०२॥ पीछें विद्वाननके सग वैदिक चर्चा करतें एकमास रहकें दानमान देते श्रीमान् लक्ष्मणदीक्षितजी अत्यन्त शोभते भये ॥ १०३ ॥ ओर काशीजिमें सबनकों छोडकें गयायात्राकरवेवारेनके सग फाल्गुणकृष्णा षष्ठीके दिन गयाजीकों चले ॥ १०४ ॥ बीचमें कर्मनाशा नदीको स्पर्श न करकें पुनपुनाकों गये वहाँ तीर्थविधिकरकें पूर्णिमाके दिन गयाजिमें पहुँचे ॥ १०५ ॥ वहाँ सतरहदिनकी त्रैपक्षिक गयाविधि करी ओर गदाधरके-

समुत्तार्य पितॄन् स्वीयान् समभ्यर्च्य द्विजोत्तमान् ॥
दानभोजनसन्मानैः सन्तोषाप्ताः कृतार्थताम् ॥ १०७ ॥
प्राजापत्येन्हि चलिता आयातारावबोत्सवे ॥
अतीत्य कृतसंकल्पमृणैर्मुक्ता विमुक्तके ॥ १०८ ॥

इति लक्ष्मणभट्टजन्मादिचारित्रवर्णनम् ।

श्रीवेदव्यासविष्णुप्रभुचरणमिते संमिते ग्रन्थसार्थैः
श्रीगोविन्दाभिधानां समयनयविदां देशिकानां निदेशात् ॥
आचार्याणांचरित्रे हरिजनसुखदे शास्त्रिकृष्णैर्निबद्धे ॥
प्रस्थाने दिग्जयाख्ये समजनिपटहश्चादिमेंस्मिँस्तृतीयः १०९॥

क्षराक्षराभ्यां योतीतो गीतो गीतामुखैश्च यः ॥
यस्यास्यतोऽभूत्सन्मार्गस्तं वंदे पुरुषोत्तमम् ॥ १ ॥
अथ लक्ष्मणभट्टोसौ कृत्वा श्रीराघवार्चनम् ॥
जागरे चिंतयामास सुहृद्भिः सकलत्रकः ॥ २ ॥

वके चरणकमलनके वंदनमें तत्पर होयकें ॥ १०६ ॥ अपने पितरनकों उद्धारकरकें ब्राह्मणनको पूजन करकें ओर दानमानसों उनको संतुष्ट करकें आप कृतार्थ भये ॥ १०७ ॥ ओर द्वितीयाके दिन चले सो रामनवमी पे काशीजीमें आये वहाँ किये भये संकल्पकों छोडकें ऋणनतें मुक्त भये ॥ १०८ ॥ समयनीतिके जानवे वारे जगद्गुरु श्रीमद्गोविन्दाचार्यजी महाप्रभुकी आज्ञातें कृष्णशास्त्रीके बनाये श्रीमद्वेदव्यासविष्णुस्वामीके मतके अनुकुल हरिभक्तनके सुखदेववारे या वल्लभदिग्विजयग्रन्थकें प्रथम प्रस्थानमें ये तीसरो पटह समाप्त भयो॥१०९॥कवि या पटहको मंगलाचरण करें हें जिनके श्रीमुखसों सवसों श्रेष्ठ मार्ग प्रगट्योहे जिनकी स्तुति गीतादिकशास्त्र करें हें जो क्षर ओर अक्षरसों परें हें एसे श्रीपुरषोत्तमकूं प्रणाम करूं हूं ॥ १ ॥याके उपरान्त श्रीलक्ष्मणभट्टजी रामनवमीको उत्सव करकें जागरणमें अपने

दुर्लभो मानुपो देहस्त्वाविमुक्त सुदुर्लभम् ॥
विद्वद्भिः सह सवास' सर्वार्थानामिहस्थिति ॥ ३ ॥
हरिणा मुक्तिसत्रोऽत्र विहित करुणात्मना ॥
अस्माकं वादिगुरवे श्रीकण्ठाय समर्पित ॥ ४ ॥
सोमति प्राकृतैर्यागैर्वैकृतैर्वैष्णवादिभि ॥
तोषितोऽत्र मया श्रीश प्रसादयति मन्मन ॥ ५ ॥
स वशेयमवश्य मे भवितेत्यभिलक्ष्यते ॥
शुभेंगितानां हृत्प्रीतिरभिज्ञान महन्मतम् ॥ ६ ॥
त्रयोदशाब्दमायुर्मे शिष्ट ससूचित ग्रहै' ॥
वाराणस्यां निवासोऽतो मया सम्यग्विचार्यते ॥ ७ ॥
एव प्रकाश्य लोकेभ्य स्वय चेतस्यचिंतयत् ॥
अवतीमपुरी किंवा विद्यास्त्यैस्यात् सुतस्य मे ॥ ८ ॥

मित्र ओर स्रीके सहित चिन्ता करवे लगे ॥ २ ॥ जो मनुष्यदेह बडो दु-र्लभ हे यामें काशी मिलनी ये तो अति दुर्लभ हे फिर विद्वाननको सत्सग यातें सब अर्थनकी यहाँ स्थिति हे ॥ ३ ॥ ओर दयाशील भगवान्नें मुक्तिको क्षेत्र याकों बनायकें हमारे सम्प्रदायके आदिगुरु श्रीमहादेवजीकों सौंप्यो हे ॥४॥ओर सोम हे अतमें जिनके एसे प्राकृतयागनसों वैष्णवयाग आदि वैकृत यागनसों मेंनें भगवान्‌को तुष्ट कियो हे सो वे हमारे मनकों प्रसन्न करे हें ॥ ५ ॥ सो अवश्य वे प्रगट होंयगे ये जान पडे हे क्यों जो शुभ कार्य होयवेमें पहले मन प्रसन्न होय हे ये महात्मानको मत हे ॥ ६ ॥ तेरह वर्ष ओर बाकी हमारी आयु हे एसो ग्रहनसों सूचित हे यातें वाराणसीमें वास करनो ये मनमें विचारें ॥ ७ ॥ पीछें सबसों प्रकाशमें कह ओर स्वयम् मनमें चिन्ता करवे लगे जो कदाचित् ये पुरी हमारे पुत्रको विद्याप्राप्तिके

दृश्यते दिव्यविभवो दोहदः साम्प्रतं त्विति ॥
एवं ध्यात्वा प्रभातेऽसौ कृत्वान्हिकमतंद्रितः ॥ ९ ॥
सोमानां शतसंख्यापि पूर्णाऽस्मत्पंचमैर्नरैः ॥
हुत्वाग्नीन् कृतसंकल्पोऽपश्यद्धरिहरादिकान् ॥ १० ॥
ततः संभोज्य विदुषो विप्रान् स्वीयान्कुटुंबिनः ॥
पोष्यवर्गानाशयित्वा स्वयं च बुभुजे सुधीः ॥ ११ ॥
ततोरात्रौ स शुश्राव म्लेच्छचक्रं समागतम् ॥
युद्धं च दंडिभिस्तेषां प्रजाश्चापि भयद्रुताः ॥ १२ ॥
ततोमनसि खिन्नोसौ किमिदं समुपस्थितम् ॥
विपरीता परिणती रामस्येवाभिषेचने ॥ १३ ॥
अथवा भवितव्यानां गतिर्नूनमलक्षिता ॥
कारागारे फलावाप्तिर्यथैवानकदुंदुभेः ॥ १४ ॥
एवं संतोष्य चात्मानं स्वीयैस्तैस्तीर्थयात्रिकैः ॥
प्रभाते प्रस्थितस्तस्मादवाचीं प्रति सत्वरम् ॥ १५ ॥

लियें उज्जैनकी जेसीहोय ॥ ८ ॥ ओर हम हें पाँचवे जिनमें एसे हमारे पाँच पुरषननें सौ सोमयज्ञ समाप्त किये हे या समय को गर्भवी दिव्यप्रकाशवारो दीखे हे ॥ ९ ॥ एसी चिन्ता करकें प्रातःकाल उठकें आलस्य छोडकें आन्हिक करकें हवन करकें विश्वनाथ विन्दु माधवके दर्शन किये ॥ १० ॥ ओर विद्वान् ब्रह्मणनकों अपने कुटुम्बीनकों आश्रितवर्गनकों भोजन कराये ओर आपनेंबी भोजन कियो ॥ ११ ॥ पीछें रातमें सुन्यो जो म्लेच्छनकी सेना आई हे सो दशनामी दंडीनके संग युद्ध होयगो सब प्रजा भयसों भागे हे ॥ १२ ॥ तब मनमें खिन्न होयकें कहवे लगे जो ये कहा भयो विपरीतही होय हे रामचन्द्रजीके राज्याभिषेक के जेसो ॥ १३ ॥ अथवा होनहारकी गति नहीं जान पडे हे वसुदेवजीकों वंदीखानेमें फलकी प्राप्ति भईही ॥ १४ ॥ या प्रकार अपने मनकों समाधान

प्राव्रज्यमानास्त्वरया सर्वतोऽपि भयश्रुतौ ॥
चपारण्यमुपायाता कांताराध्वकृतश्रमा ॥ १६ ॥
तत्र लक्ष्मणभट्टस्य खिन्ना गर्भभरा सती ॥
सार्थेपि पुरतो याते चास्तयाते दिवाकरे ॥ १७ ॥
भयोद्विग्ना तदा साध्वी तस्थौ दीर्घाध्वन श्रमात् ॥
अवट निकटे दृष्ट्वा पीडिता सूतमारुते ॥ १८ ॥
प्रासूत तनय तत्र जगतां सुखसपदम् ॥
विपद सर्वजतूनां तत्क्षणे क्षीणतां गता ॥ १९ ॥
नभोनिर्मलतां यात शुभर्क्षग्रहतारकम् ॥
शीतो मद सुगधश्च नभस्वान् व्यानशे दिश ॥ २० ॥
वैतानिकाश्च शिखिन शिखावंत प्रदक्षिणा ॥
निपानानि प्रसन्नानि सिंध्वंभ्वञ्जाकराणि च ॥ २१ ॥
भूर्भूरिभूतिसभ्राजच्छैलारण्यजनालया ॥
समय शोभनश्चासीद्विमल कुसुमाकर ॥ २२ ॥

कर अपने सगके याभीनके सग प्रात काल उठकें जल्दीसों दक्षिणदिशाकों चले ॥ १५ ॥ सो चारोओरसों भय सुनते जल्दीसों वनकेमार्गसों चलवे थके भये चम्पारण्य पहुँचे ॥ १६ ॥ यहां सगके लोगनके आगें जायवे तें ओर सूर्यास्त भये पीछें लक्ष्मणभट्टजीकी स्त्री गर्भभारसों दु खित भयसों विह्वल दूरकी रस्ताके श्रमसों ठाडी होय गई ओर प्रसूतके वायुसों पीडित होयकें पासमें पृथ्वीमें गढेला देखकें सब जगतके सुखसपत्तिरूप पुत्रकों उत्पन्न करती भई यासमयमें सबजीवनकी विपत्ति नष्ट होयगई॥ १७॥ ॥ १८ ॥ १९ ॥ आकाश निर्मल होयगयो शुभनक्षत्र ग्रह तारा दीखवे लगे शीतल मद सुगध पवन सब दिशानमें बहवे लगे ॥ २० ॥ समुद्र नदी कूप आदि जलाशय स्वच्छजलवारे होयगये अग्निकुडनमें प्रदक्षिण ज्वाला

हसंत्त्यो हरितः सर्वाः सिद्धार्थाः सिद्धिसाधकाः ॥
देवभक्ताश्च पूर्णार्थाः कामिनश्चेषणात्रयैः ॥ २३ ॥
निसर्गवैरा निर्वरा वदान्याश्च मितंपचाः ॥
पापिष्ठाश्चापि धर्मिष्ठा जातास्तत्र प्रजाः स्वयम् ॥ २४ ॥
दिवि तौर्य्यत्रिकं दिव्यं शुश्रुवे पटहध्वनिः ॥
देवानामुपदेवानामुत्सवोऽप्सरसामभूत् ॥ २५ ॥
जाता विकचिताः सर्वे चंपारण्यस्य चंपकाः ॥
अन्ये फलैः सुमैः पत्रैर्द्रुमाः कल्पद्रुतांगताः ॥ २६ ॥
सा प्रसूता प्रसन्नासीत्कल्पा संकल्पितोदया ॥
विरजस्का प्रसूत्त्यैव बभौ रात्रीव ज्योत्स्नया ॥ २७ ॥
उल्बेन संवृतो बालो निष्प्राण इव लक्षितः ॥
निजोत्तरांशुकार्द्धेनाच्छन्नं पर्णैर्न्यगूहयत् ॥ २८ ॥

उठवे लगी शोभायमान पर्वत वन ग्राम हैं जामें एसी पृथिवी बडीशोभाकों प्राप्त भई विमल वसन्त अच्छो समय होयगयो ॥ २१ ॥ २२ ॥ मानों सब दिशा हँसरही हैं साधक सिद्ध होते भये देवभक्त पूर्णमनोर्थ कामनाकरवेवारे तीनों इच्छानसों पूर्ण भये ॥ २३ ॥ अपने आप परस्पर वैर राखवेवारे जीव निर्वैर होयगये लोभी दानी भये पापी प्रजा धर्म्मिष्ठ भई ॥ २४ ॥ आकाशमें तोरही वजीं नगाडानकी आवाज सुनाई पडी देवता उपदेवता अप्सरा इनको बडो उत्सव भयो ॥ २५ ॥ ओर चम्पारण्यके चम्पाके वृक्ष सब फूल उठे ओर सब वृक्ष फल पुष्प पत्रनसों कल्पद्रुमके जेसे होयगये ॥ २६ ॥ ओर वे पुत्रकों उत्पन्न करकें प्रसन्न समर्थ रजरहित होयगईं ओर उजेली रात्रि जेसी शोभती भईं ॥ २७ ॥ गर्भकेऊपर लपेटवेकी चर्मकी खोलीसों लिपट्यो बालक प्राणरहित जेसो जानकें अपने आधे उत्तरीयवस्त्रसों लपेट

शिवादिभयतो भीता शिवातरुतलाश्रितम् ॥
सगोप्य पर्णे शुचिभिश्चतुर्भद्रपुर ययौ ॥ २९ ॥
सार्थके सह तां रात्रिमूपुस्ते तत्र निर्वृता ॥
भट्ट स्वप्ने ददर्शाथ श्रीकृष्ण भक्तवत्सलम् ॥ ३० ॥
प्राहेन स स्वयव्यक्तश्चावतीर्णोस्मि साम्प्रतम् ॥
प्रभाते तत्र गतव्यं यत्र सूतास्ति भामिनी ॥ ३१ ॥
देयं पीताम्वरं तस्मै मालायुग्म सवीटकम् ॥
कारयिष्यत्यस्मदीया समायाता महोत्सवम् ॥ ३२ ॥
समूचित मया चैतन्मात्रे ब्रह्मन्निदर्शनम ॥
देवकार्ये सुगुप्तेऽस्मिन् व्यक्तिर्नैवोचिता क्वचित् ॥ ३३ ॥

इति प्रादुर्भावप्रकरणम् ।

ततस्तु सार्थका सर्वे उपस्येव समुत्थिता ॥
मिलिता सविद चक्रु श्रुतवार्तानिशागमे ॥ ३४ ॥

पत्तानमों ढक दियो ॥ २८ ॥ शृगाली आदिके भयसों शमीवृक्षके तलें पवित्र पत्रनसों छिपायकें घर न्यिो ओर आप चोडापुरकों चलीगई ॥ २९ ॥ जहाँ उनके सगके सब रात्रिमें वसे हते पीछें वहाँ भट्टजीनें स्वप्नमें भक्तवत्सल श्रीकृष्णचन्द्रकों देख्यो ॥ ३० ॥ ओर भगवान् प्रगट होयके स्वयम् इनसों बोले जा हमनें या समय अवतार लियो है सो सवेरे वहाँ जानो जहाँ भामिनीनें प्रसव कियो है ॥ ३१ ॥ ओर उनका पीताम्वर वीडाके सहित दो माला देनी ओर वहाँ आये भय हमारे जन वडो उत्सव करेंगे ॥ ३२ ॥ मातामा हमनें ये सूचना करी है जो गुप्त देवकार्यकों कहीं प्रगट करनो उचित नहीं है ॥ ३३ ॥ पीछे सगके सब लोग प्रात काल उठके मिले ओर पहली रातम जो वात सुनी ही वार्की सलाह करने लगे ॥ ३४ ॥ जो काशीजी सों सेठजीको मनुष्य आयो है सो उनके पत्रसों ओर राजकीय मनुष्यनसों सुनें हैं

वाराणसीतः संप्राप्तो दूतः श्रेष्ठिवरस्य च ॥
तत्पत्राच्छ्रूयतेचाथ राजकीयजनादपि ॥ ३५ ॥
म्लेच्छानां दंडिभिः साकं प्रधनं निधनावहम् ॥
भूततिथ्यां समभवद् भूतप्रेतसुखावहम् ॥ ३६ ॥
विशिखैस्तेनष्टशिखाजितकाशामदोद्धताः ॥
नाशिताश्चाग्निविशिखैर्विशाखेनासुराइव ॥ ३७ ॥
आगलान्मुंडशिरसां तथा चूडैकमुंडिनाम् ॥
मुंडैर्मंडितमेवाभूद्युध्यतां रणमंडलम् ॥ ३८ ॥
तत्र काशीश्वरेणाथ प्रकाशीकृतविक्रमाः ॥
सामंताः प्रेषिताः सैन्यैस्तैः स्वास्थ्यं समुपार्जितम् ॥ ३९ ॥
काशीपुरी निरातंका पंथानोऽद्य निर्गलाः ॥
यांति जानपदाभूयइत्येवंतैरुदाहृतम् ॥ ४० ॥
किं कर्त्तव्यमितोऽस्माभिर्वृथा क्लेशः समर्जितः ॥
परावृत्यैव गंतव्यं किमत्रावस्थितेः फलम् ॥ ४१ ॥
श्रीमल्लक्ष्मणभट्टार्यं समेताः स्वजनास्ततः ॥
निवेद्य सकलं वृत्तं किं कार्य्यमित्ययूयुजन् ॥ ४२ ॥

॥ ३५ ॥ जो चतुर्दशीके दिन दंडीनके संग भूतप्रेतनकों सुखदेवेवारी लडाई म्लेच्छनकी भई हे ॥ ३६ ॥ वामें बडे मदान्ध म्लेच्छनकों दंडीननें जीत लियोहे ओर जेसें स्वामिकार्तिकजीनें दैत्यनको नाश कियो हो तेसेंही नाश-कियो हे ॥ ३७ ॥ युद्धकरते भये संन्यासी ओर म्लेच्छनके मूडनसों रण मंडल मंडित होयगयो ॥ ३८ ॥ तब काशीके राजाके भेजे भये बडे परा, क्रमी योद्धाननें शान्ति करदीनी ॥ ३९ ॥ तासों काशीपुरी भयरहित होयगई मार्ग खुल गये सब मनुष्य जाँय आमें हें ॥ ४० ॥ अब या के उपरान्त कहा करनो वृथा दुःख हमकों पड्यो पीछेही चलें यहाँ रहवेको कहा फल हे ॥ ४१ ॥ ये कहते सब मनुष्य मिलकें श्रीलक्ष्मणभट्टजीक पास गये ओर

ततस्तुलक्ष्मण प्राह येर्गतव्य स्वनीवृति ॥
तैर्येयेष्ट प्रगतव्यं वक्तव्य कुशलं हि न ॥ ४३ ॥
अह तु कृतसकल्पोऽवस्थातु हरपत्तने ॥
प्रातरेव परावृत्य यास्याम्यागतवर्त्मना ॥ ४४ ॥
ततस्ते दीक्षित प्रोचुर्बाष्पगद्गदया गिरा ॥
ऋते भवंत गमन नास्माकमभिरोचते ॥ ४५ ॥
सौहार्दं पितृपुत्राणां कष्टेऽध्वनि न निर्वहेत् ॥
भवता निजवर्ष्मेव वयं तत्रापि रक्षिता ॥ ४६ ॥
औदार्य्यैश्वर्य्यमाधुर्य्यशौर्य्यसद्भाग्यसपदा ॥
क्रीताइव वय ब्रह्मन् स्मरणीया स्वकाइति ॥ ४७ ॥
दीक्षितेन च ते सर्वे सप्रेमामृतभाषितै ॥
संतोषितादानमानैर्योपितादक्षिणां प्रति ॥ ४८ ॥
अवशिष्टास्तु ये केचित् स्वकीया सुहृदस्तथा ॥
काशीनिवासिनश्चापि तैरिदं मंत्रित पुन ॥ ४९ ॥

प्रार्थना करी जो कहा करनो ॥ ४२ ॥ तब लक्ष्मणभट्टजी बोले जो जिन-कों अपने देश जानो होय वे सुखसों जाँय ओर हमारो कुशल कहें ॥ ४३ ॥ हमनें तो काशीपुरीमें रहवेको सकल्प कियो हे सो सबेरेंही आये रस्तासों पीछें जाँयगे ॥ ४४ ॥ तब गद्गदवाणीसों वे सब दीक्षितजीसों बोले जो आपके विना जानों हमको नाहीं रुचे हे ॥ ४५ ॥ दु खकी राहमें पितापुत्रकी मिताई नहीं निभहे परन्तु आपनें अपने शरीरकी तरह हमारी सबनकी रक्षा करी हे ॥ ४६ ॥ यातें आपकी उदारता ऐश्वर्य्य मधुरता शूरता सम्पत्ति आ-दिसों मोललिये गये जेसें हम लोग हें सो हमआपके हैं ये स्मरण राखनों ॥ ४७ ॥ दीक्षितजीनेंभी प्रेमपूर्वक अपनी अमृतवाणीसों सन्तुष्ट करकें बडे सनमानसों उनकों दक्षिणदिशाकों भेजे ॥ ४८ ॥ ओर बाकी रहे जो अपने मित्र

येर्गन्तव्यं द्रुतं काश्यां येषां कृत्यं नवा स्थितौ ॥
सज्जीभूत्वाथ तैःसर्वैर्गतव्यं मदनुज्ञया ॥ ५० ॥
ये मत्संगं समिच्छंति येषां नैव त्वरा गतौ ॥
कियंत्यहानि पश्यंतु जाताशौचनिवृत्तये ॥ ५१ ॥
गर्भच्युतिर्वने रात्रौ जाता तत्प्रतिपत्तये ॥
मयाद्य तत्र गंतव्यमागंतव्यं स्वकैरपि ॥ ५२ ॥
एवं संमंत्र्य चलितं सर्वैर्यल्लमया सह ॥
चंपारण्यमनुप्राप्ता यल्लमा प्राह दीक्षितम् ॥ ५३ ॥
सार्थोऽवस्थापनीयोऽत्र यावद्वृक्षो गवेष्यते ॥
संस्थाप्य तांस्ततो यज्वा तयाऽन्वेष्टुं गतोग्रतः ॥ ५४ ॥
सा चाह तरुरेवैष साम्प्रतं निकटे स्थितः ॥
अत्रैव स्थापितो गर्भो वह्निपुञ्जोऽत्र दृश्यते ॥ ५५ ॥

ओर काशीवासी उनसों फिर ये सलाह करी ॥ ४९ ॥ जो जिनको जल्दी काशीमें जानों होय जिनको यहाँ कछू कार्य न होय वे सब तैयार होयकें जाँय मेरी आज्ञा हे ॥ ५० ॥ ओर जो हमारे संगकी इच्छा राखे हें अथवा जिनको जायवेके लियें जल्दी नही हे वे थोरे दिन ठहरें जाताशौचकी निवृत्ति भये पीछें हमबी चलेंगे रातमें गर्भ वनमें गिरपरचो हे वाके लियें आज हम वहाँ जाँयगे सो हमारे संग आप लोगबी आवें॥ ५१ ॥ ५२॥ एसी सलाह कर यल्लमाजीके संग चम्पारण्यकों गये, वहाँ यल्लमाजी दीक्षितजी सों बोलीं ॥ ५३ ॥ जो संगके मनुष्यनकों तबतक यहाँहीं ठाड़े करो जबतक वृक्षकों ढूंढे तब दीक्षितजीनें उनकों वहाँ ठाड़े कर यल्लमाजीके संग आगे चले ॥ ५४ ॥ तब उननें कही जो अब पासहीमें हे येही वृक्ष हे यहाँही गर्भ राख्यो हो सो यहाँ तो चारो आड़ी अग्नि पुंज दीखे हे ॥ ५५ ॥ पीछें

एवं वीक्ष्य गतावग्रे शिशुर्दृष्टोऽग्निमण्डले ॥
श्यामावदातसत्कान्ति सर्वावयव सुन्दर ॥ ५६ ॥
गदाब्जशङ्खचक्रादिलसत्पुण्ड्र स्रजो वहन् ॥
यज्ञोपवीतकलितो नूत्नपीताम्बरांचित ॥ ५७ ॥
स्तन्यधाराश्च निष्क्राता वामांगानि च पुस्फुरु ॥
यल्मा प्राह भर्तारं बालोऽयं मे सनालक ॥ ५८ ॥
निविष्टो मच्छिन्नपटे मदीयांगैश्च सदृश्यते ॥
ततस्तु दीक्षित प्राह धर्मपत्नीं प्रसन्नधी ॥ ५९ ॥
यद्येवमार्ये तर्ह्याशु पश्यैष्यत्त्याशुशुक्षणि ॥
एव सचोदिता भर्त्रा सा प्राप्ता चानलांतिके ॥ ६० ॥
पश्यत सर्वलोकस्याऽपससार हुताशन ॥
जग्राह स्वात्मज साध्वी यावत्तावन्महोत्सव ॥ ६१ ॥
व्यक्तो विष्णुपदे पुष्पवृष्ट्या तौर्य्यत्रिकेण च ॥
गभीरार्थातिगम्भीरवाग्देवी मधुराक्षरा ॥ ६२ ॥

आगे गई ओर वहाँ अग्निमंडलमें श्यामसुंदर अच्छी कान्तिवारो प्रतिअंग सुंदर गदा कमल शंख चक्र ऊर्ध्व पुंड्र दो तुलसीकी कंठी यज्ञोपवीत नवीन पीताम्बरकों धारण किये एसे बालककों देखकें स्तननसों दूधकी धारा निकसी वामांग स्फुरण होयवे लगे तब यल्लमाजीनें अपने पतिसों कह्यो जो नालसहित ये बालक मेरो है ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ मेरेही फटे वस्त्रमें लिपट्यो है ओर मेरेही जेसे अंग हैं तब दीक्षितजी प्रसन्न होयकें अपनी धर्मपत्नीसों बोले ॥ ५९ ॥ जो एसो है तो जल्दी अग्निदेव हट जाँयगे एसे पति के कहवेते वे अग्निके पास गई ॥ ६० ॥ तब सब लोगनके देखतें अग्नि देव दूर होय-गये ओर इननें अपने पुत्रकों ले लियो या समय आकाशमें पुष्पवृष्टिसों नगाडानकी ध्वनिसों मह्यो उत्सव भयो ओर अर्थसों गम्भीर मधुर स्पष्ट देवी-

प्रादुरासीद्दैवजनानंदिनी नन्दनांतिकात् ॥
दूरं तिष्यः कृतश्चैतिश्रौतोध्वा संप्रकाश्यताम् ॥ ६३ ॥
वैकुण्ठभजनानंदो यात्येत्यंचति मोदते ॥
ततस्तु सार्थकाः सर्वे बभूवुरतिविस्मिताः ॥ ६४ ॥
प्राहुः परस्परं हृष्टा दीक्षितं भाग्यशेवधिम् ॥
निवसद्भिर्विधुः सिंधौ यादो यादोभिरीरितः ॥ ६५ ॥
एवं बुधस्तथास्माभिर्नृभिर्नैवायमीरितः ॥
गतिर्विचित्रा देवस्य यः सिषेवे तरोस्तलम् ॥ ६६ ॥
तं शिशुं कथमायातं रक्षितुं वह्निमंडलम् ॥
सभाजनीया भूरेषा करभाजनसंस्तुता ॥ ६७ ॥
यत्र भक्तिपथव्यक्तिर्भ्राजतेऽत्र महानदी ॥
अवतीर्णोऽद्य भगवानात्मीयानांहिते रतः ॥ ६८ ॥
ततोऽद्य क्षणदास्माकं क्षणदासीत्क्षणोपमा ॥
एवं जल्पत्सु लोकेषु प्राह कांतं प्रिया सती ॥ ६९ ॥

जननको आनन्द देवेवारी वाणी भई जो कलियुग दूर गयो सत्ययुग आयो वैदिक मार्गको प्रकाश करो ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ साक्षात् भगवान्को प्रादुर्भाव भयो है तब सब संगके मनुष्य अत्यन्त विस्मित होयगये ॥ ६४ ॥ ओर प्रसन्न होयकें परस्पर कहवे लगे जो भाग्यके निधि दीक्षितजीकों संगमें रहते हमनें नहीं जान्यो जेसें चन्द्रमाकों जलके रहवेवारे जीवननें नहीं जान्यों ॥ ६५ ॥ एसे इनकों हमनें नहीं जाने दैवी गति विचित्र हे जो वृक्षके तलमें एसे बालककी रक्षा करवेके लियें अग्निमंडल कहांसों आयो देवता जाकी स्तुति करें हें एसी ये पृथ्वी सराहवे योग्य हे ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ जहाँ भक्तिमार्गको व्यक्तकरवेवारी महानदी शोभे हे आज अपने भक्तनके हितकरवेवारे भगवान् नें यहां अवतार लियो हे ॥ ६८ ॥ याहीसों आजकी हमारी

सुकृतस्य निधिश्चायं त्वदीयाध्वरकर्मणाम् ॥
प्रागुक्तमार्यवर्येभ्य सत्यं कर्तुं हि तद्वच ॥७० ॥
अवतीर्णो हरि साक्षात्पश्यैनं मे महोदयम् ॥
एवमुक्त्वा तदा बालो दीक्षिताय समर्पित ॥ ७१ ॥
दीक्षितेन मुदाघ्राय मूर्ध्नि तस्यै समर्पित ॥
तत समागता वन्या पुण्या गुण्यामहर्षय ॥ ७२ ॥
दैन्यश्च संपद सर्वाश्चक्रुस्तत्र महोत्सवम् ॥
एव वृत्त समभवत्स्वप्नवृत्तमिवाद्भुतम् ॥ ७३ ॥
व्यापृता वैष्णवी माया लोक सर्वोऽतिविस्मित ॥
शिशु प्राकृततां यात पूर्णश्च प्रकृतोत्सव ॥ ७४ ॥
पटावृत जाठर त कृत्वाथ चलिता सती ॥
तत सार्थमनुज्ञाप्य दीक्षितश्च स्वके सह ॥ ७५ ॥
आगत्य नगरे तस्मिन्नवतीर्य्यावमोचने ॥
आहूतो ग्रामणी प्रेष्यै स विद्वांससुपासरत् ॥ ७६ ॥

रात्रि उत्सवमें बेगी क्षणके समान बीती है ऐसें लोगनके बातें करते पद्ममाजी अपने पतिसों बोलीं ॥ ६९ ॥ जो आपके यज्ञकर्मनके पुण्यके निधि ये हैं पहलें जो वंदनसों कही ही बाक सत्य करवेके लियें ॥ ७० ॥ साक्षात् हरिनें अवतार लियोह बडे उदयवारे इनकों देखो ये कहके बालककों दीक्षितजीकों दियो॥ ७१ ॥दीक्षितजीनें आनदसों मस्तक सूघके उनकों पीछे दे दियो वा समय बनके रहवेवारे सब पुण्यात्मा गुणी महर्षि आये ॥७२॥ सब दैवी सम्पत्ति आई और उननें बडा उत्सव कियो वहाँ स्वप्नके समान आश्चर्य जेसो चरित्र भयो ॥ ७३ ॥ पीछें वैष्णवी माया प्रगट होयगई सो सब लोग चकित होयगये प्राकृत बालकके जेसो बालक होयगयो उत्सव पूरो होयगयो ॥७४ ॥ माता अपने पुत्रकों लेके वस्त्रमों ढांकके चलीं दीक्षितजीभी सगके मनुष्यनके सगचले ॥ ७५ ॥ और नगरमें अपने डेरामें उतरके मनुष्यतें गामके नायककों

दृष्टपूर्वप्रभावोसौ प्रणम्य प्रांजलिःस्थितः ॥
कदोपधारितं विद्भिर्मया नैवोपधारितम् ॥
धन्योस्मि कृतकृत्योस्मि भवतामद्य दर्शनात् ॥ ७७ ॥
यदद्य दर्शनं जातमवितर्कितसंभवम् ॥
तर्कये तेन काप्यन्या सिद्धिः संपर्कमेष्यति ॥ ७८ ॥
तीर्थराजे वरो दत्तः श्रीमद्भिः स तु साम्प्रतम् ॥
अभिव्यक्ततरोजातोऽगना मे भृतदोहदा ॥ ७९ ॥
यथाऽनपत्यतातप्ता पुरासीत्सा तथाऽधुना ॥
पुमपत्यकृते साध्वी ततोर्थयति वः पुनः ॥ ८० ॥
भट्टः प्राह यथापूर्वं श्रद्धयार्थोऽभिसाधितः ॥
तथैव स भवेत्तस्याः शीघ्रं पूर्णो मनोरथः ॥ ८१ ॥
स एवमुक्तो भट्टेन कृतवार्तोऽवदन्मुदा ॥
किं कार्यं वः स च प्राह संपाद्यं वस्तु सौतिकम् ॥ ८२ ॥

बुलवायो सो वो दीक्षितजीके पास आयो ॥ ७६ ॥ यानें पहले दीक्षितजीके प्रभावको देख्योहो सो हाथ जोडकें बोल्यो आप कब पधारे मेंनें नहीं जान्यो आपके दर्शनसों आज में कृतकृत्य धन्य हूं ॥ ७७ ॥ आज जो अनायास दर्शन भयो हे यातें में जानूं हूं जो ओर बी कोई सिद्धि मोको होयगी ॥ ७८ ॥ आपनें जो तीर्थराजमें वर दीनों हो वो या समय फलित भयो हे मेरी स्त्री गर्भवती हे ॥ ७९ ॥ सो हे महाराज जेसें प्रथम वो गर्भके लियें दुःखित ही वेसेही अब बेटाके कारण फिर आपसों प्रार्थना करे हे ॥ ८० ॥ तब भट्टजीनें कही जो जेसें पहलें श्रद्धा करकें अर्थ सिद्ध भयो हे वाहीतें अबबी जल्दी मनोर्थ सिद्ध होयगो ॥ ८१ ॥ या प्रकार भट्टजीके कहे पछिं वो आनन्दसों बोल्यो जो अब आपको कहा कार्य करूं भट्टजीनें कही जो प्रसूतिका घरके उपयोगवारी सब चीज तैयार करो॥ ८२॥

तेनाथापणिको न्यस्त भृतकाश्च निवेशिता ॥
स्वामात्यश्च विनिक्षिप्त कृतार्था सार्थका कृता ॥ ८३ ॥
तत प्रणम्य यज्वान गतोऽसौ ग्रामनायक ॥
ततश्च सूतिकागार साधितोद्राग्विशोध्य तै ॥ ८४ ॥
दातृकाश्च समाहूता विशुद्धाश्चोपसूतिका ॥
संभारा संभृता सर्व शोधितेष्वन्यवेश्मसु ॥ ८५ ॥
वस्त्रपात्रासनादीनि शय्या नूत्नाश्च साधिता ॥
प्रवेशिता सूतिकात्र निजजातिस्त्रियोऽपरा ॥
संपन्नेर्ये गृहे तस्मिञ्जातश्च परमोत्सव ॥ ८६ ॥
कृत्वाह्निकविधिं स्नाता सर्वे लब्धक्षणा बुधा ॥
आचारयन्दीक्षितेनाचरणीयं जनिक्षणे ॥ ८७ ॥
पयसा मंगलस्नातो तीर्थे दानान्यदात्पिता ॥
गुडपिंडान्नारिकेलफलयुग्ममवारितम् ॥ ८८ ॥
अलकृत्य निजात्मान सोपाध्याय स्वकैर्वृत ॥
समायात सूतिगृह दीक्षितोविहितोत्सव ॥ ८९ ॥

तब वानें मोदी ओर काम करवेवारे महोतसे मनुष्यनकू कर दीने ओर अपने मन्त्रीको वहाँ काम करवे करदियो ॥ ८३ ॥ पीछें भट्टजीको प्रणाम करकें ग्रामनायक घरकों गयो ओर वाके मनुष्यननें शोधके जल्दीसों सूतिकाघर बनायो ॥ ८४ ॥ ओर दाईनकों बुलायो ओर शुद्ध दूसरेमकाननमें सब तैयारीकरदीनी ॥ ८५ ॥ वस्त्र पात्र आसन नई शय्या आदि सब सामग्री इकठी करदीनी ओर सूतिकाघरमें अपने जातिकी स्त्रीनकों भेजीं सो वा घरमें बडो उत्सव भयो ॥ ८६ ॥ ओर बडो उत्सव भयो है जिनकों एसे विद्वान् जन स्नान करकें आह्निक विधि करकें जन्मसमयमें दीक्षितजीके करवेकी विधिकी तैयारी करते भये ॥ ८७ ॥ दीक्षितजीनेंभी मंगलस्नान करके पात्रनमें दान देकें गुडकी भेली ओर दो दो नारियल दीने ॥ ८८ ॥ पीछें आत्माको अलंकृत करकें अपने उपाध्यायके संग

शिशुं कदोदकस्नातं मातुरंके निवेश्य तम् ॥
भद्रासने प्रविश्याथाचम्य संकल्पमाचरत् ॥ ९० ॥
देशकालौ समुच्चार्य गर्भांभःपानजन्मनः ॥
बीजादिजस्यैनसश्च निवृत्त्यर्थं शिशोरदः ॥ ९१ ॥
मेधायुरभिवृद्ध्यर्थं तुष्ट्यर्थं श्रीपतेरपि ॥
जातकर्म करिष्यामीत्येवं संकल्प्य दीक्षितः ॥ ९२ ॥
तत्रादौ स्वस्तिपुण्याहवाचनं मातृपूजनम् ॥
कृत्वा नांदीमुखश्राद्धं चक्रे हेम्ना यथोदितम् ॥ ९३ ॥
यथागृह्यं ततो जातकर्माग्न्यादिसमर्चनम् ॥
विधाय विधिवत्सर्वं हेमदानमथाचरत् ॥ ९४ ॥
प्रत्याम्नायविधानेन भूमिं गां तुरगं रथम् ॥
छत्रं छागं च माल्यं च शयनं चासनं गृहम् ॥ ९५ ॥

सूतिकाघरमें आये ॥ ८९ ॥ ओर गरमजलसों बालकको स्नान करवायकें माताकी गोदीमें बेठायकें भद्रासनमें आप बेठकें आचमन करके संकल्प कियो ॥ ९० ॥ वामें देशकालको उच्चारण करकें गर्भमें जलपानादिसों बालकको जो दोष हे ओर बीजसों उत्पन्न जो पापहे ताके दूर करवेकें लियें ओर बुद्धिकी वृद्धिके लियें तथा भगवान्‌के तुष्टिके लियें जात कर्म्म करेंगे एसे दीक्षितजीनें संकल्प कियो ॥ ९१ ॥ ९२ ॥ ओर पहले स्वस्तिवाचन पुण्याहवाचन मातृकापूजन यथोक्त सुवर्णसों नान्दीश्राद्ध करकें अपने गृह्यसूत्रके अनुसार जातकर्म अग्निआदिको पूजन यथाविधि सब करकें सुवर्णदान करतेभये ॥ ९३ ॥ ९४ ॥ प्रत्याम्नायविधानसों सवर्ण सहित भूमिदान गोदान अश्वदान रथ छत्र छाग माल्य शयन आसन गृह

तिलपूर्णानि पात्राणि सहिरण्यान्यदाद्बुध ॥
मौहूर्तिकं समाहूयापूजयद्दत्तदक्षिणम् ॥ ९६ ॥
जन्मपत्रं स शुश्राव शिशोरीशावतारताम् ॥
ततोऽवगत्य मुमुदे शांतिदानादिक व्यधात् ॥ ९७ ॥
राधे कृष्णे रवौ चाली वस्वर्क्षे वाक्पति स्वयम् ॥
प्रादुर्भूत शरामीपुचंद्रेब्दे वैक्रमे शुभे ॥ ९९ ॥
तत सच्छिन्ननाल तं सास्तरे शयने नवे ॥
तैलाक्ततूलपुष्पेपु पात्रे मात्रा निवेशित ॥ ९९ ॥
हेम्ना मृगमदेनापि कृत्वा कण्ठविशोधनम् ॥
जन्मौपधी ततो दत्ता तालुके गुडगोलिका ॥ १०० ॥
यापिता सूतिका वाद्यैर्दत्वा वस्त्रधनादिकम् ॥
तत क्वाथादिक सर्वं कृत स्त्रीभिर्यथोचितम् ॥ १०१ ॥
सूत्या स्वास्थ्ये समुत्पन्ने भुक्तेष्वन्यजनेषु च ॥
बुभुजे स्वजने सार्द्ध दीक्षितोपि यथाविधि ॥ १०२ ॥

आदिके दान तिलपूर्णपात्रदान किये ओर ज्योतिषीकों दक्षिणादेकें पूजन करते भये जन्मपत्री पुत्रकी सुनी विष्णुके अवतार जानकें खुसी भये शान्ति दानादिक किये ॥ ९५ ॥ ९६ ॥ ९७ ॥ दैवीजीवके उद्धारके लियें स १५३५ के वैशाखकृष्णा एकादशी धनिष्ठानक्षत्रमें स्वय वाणीके पतिको प्रादुर्भाव भयो ॥ ९८ ॥ तब नालच्छेद भये पीछें बालकको नवीन पथारीमें तैलसों भीजे रूईके फहानमें मातानें पोढाये॥ ९९॥ ओर सुवर्णकस्तूरीसों उनको कंठ शोधके तालूमें जन्मौपधी गुडगोलिका दीनी ॥ १००॥ पीछें वस्त्र धन आदि देकें बाजाके सग सूतिका दाईको भेजकें स्त्रीनें यथोचित क्वाथ आदि किये॥ १०१॥ सूतीके स्वस्थता भये पे ओर जननके भोजन करे पीछें अपने मनुष्यनके सहित दीक्षितजीने आपनेंभी भोजन कियो

प्रक्षाल्य दक्षिणं हेम्ना स्तनं माताप्यपाययत् ॥
देशकालक्रमात्सर्वं विहितं विहितं ततः ॥ १०३ ॥
षष्ठरात्रौ तथा षष्ठीपूजने जन्मदासुरान् ॥
विघ्नेशमपि जीवंतीमर्चित्वाऽभोजयन्निजान् ॥ १०४ ॥
जागरश्च तथा गीतवादित्रध्वानिना कृतः ॥
एकादशेह्नि संस्नाता सूतिका विधिनाऽमला ॥ १०५ ॥
बालेन सह संपन्ना कृतार्चा कृतमंगला ॥
तल्पांतरं समायाता सर्वं संशोधितं गृहम् ॥ १०६ ॥
ततस्तु दीक्षितः स्नातो धृतनूतोपवीतकः ॥
नित्याह्निकं विधायैव स्नानं मांगलिकं व्यधात् ॥ १०७॥
भद्रासने चोपविश्य संकल्पादि समाचरत् ॥
सपत्नीकस्ततश्चक्रे नामकर्म यथोचितम् ॥ १०८ ॥
होमादिकं च निर्वर्त्य साक्षते कांस्यभाजने ॥
व्यलिखत्स्वर्णलेखिन्या शिशोर्नामचतुष्टयम् ॥ १०९ ॥

॥ १०२ ॥ मातानें सुवर्णसों दक्षिण स्तनकों धोयके पियायो ओर देश कालानुसार विहित सब काम किये ॥ १०३ ॥ पीछें छठी रातमें षष्ठीपूजनमें देवतानको गणेशजीको पूजन करकें अपने सबनको भोजन करायो ॥ १०४ ॥ गाजा बाजाके संग जागरग कियो ग्यारहवेंदिन विधिसों स्नान करकें स्वच्छ ॥ १०५ ॥ बालकके संग पूजन करकें मंगल करकें माता दूसरी शय्यामें गई घर सब शुद्ध कियो ॥ १०६ ॥ दीक्षितजीबी स्नान करकें नवीन धौतवस्त्र उपवीत धारण करकें आह्निक कर मांगलिक स्नानकों कियो ॥ १०७ ॥ ओर भद्रासनपे स्त्रीके संग बेठकें संकल्पादि करकें यथोचित नामकर्म कियो १०८ ओर होमादिकर्मसों निवृत्त होयकें अक्षतनके सहित काँसाके पात्रमें सोनेकी-

कृष्णप्रसादो दैव तु मासनाम जनार्दन ॥
नाक्षत्रनाम श्राविष्ठ ख्यातो श्रीवल्लभेत्ययम् ॥ ११० ॥
चतुर्विधाऽभिधागर्भो चतु पुरुषसमताम् ॥
चतु पुमर्थदा चक्रे पिता श्रीवल्लभाभिधाम् ॥ १११ ॥
संभोज्य सकलान् विप्रांश्च जातिसबंधिनस्तथा ॥
अवशिष्टाह्निक कृत्वा विशिष्टैर्बुभुजे स्वसम् ॥ ११२ ॥
द्वादशेह्न निबालस्य स्त्रीभिर्दोलोत्सव कृत ॥
मातुश्च बहुधा पुष्ट्यै प्रारब्धा उपचारका ॥ ११३ ॥
जन्मनक्षत्रदिवसे कुलदेवद्विजार्चनम् ॥
कृत्वा दत्वा च दानानि पायित गोपयोऽब्जत ॥ ११४ ॥
सूत्या मासोत्तर स्नान नूतनांशुकधारणम् ॥
कृत मांगलिक चाम्भोर्चनं सूतिविसर्जनम् ॥ ११५ ॥
स्वसांप्रदायिको दत्तो वस्वर्णस्तुलसीस्रजा ॥
पित्रास्मै हरये तेन दत्त दत्वोपढौकितम् ॥ ११६ ॥

कलमसों ॥१०९॥दैवनाम कृष्णप्रसाद मासनाम जनार्दन नाक्षत्रनाम श्राविष्ठ प्रसिद्धनाम वल्लभ ये चारनाम बालकके लिखे॥ ११०॥ चार प्रकारकी शक्तिवारो चारपुरुषनको सम्मत चारो पुरुषार्थनको देवेवारो एसो श्रीवल्लभ ये नाम पितानें धर्यो ॥१११॥ सबब्राह्मणनकों सबधीनकों भोजन करायकें अवशिष्ट आह्निक कर्म करकें अपने मनुष्यनके सग आपनेंभी भोजन किये ॥११२॥ ओर बारहवें दिन स्त्रीनें बालकको दोलोत्सव कियो ओर माताकी पुष्टिके लियें बहोत प्रकारसों बहोत उपचार किये ॥११३॥ पीछें जन्मनक्षत्रके दिन कुलदेवता ब्राह्मण इनकों पूजन करकें दानकों देकें शखसों गौको दूध बालकको पियायो ॥ ११४ ॥ ओर मासके पीछें सूती स्नान करकें नवीन वस्त्र धारण किये मांगलिक जलको पूजन कियों सूतिको विसर्जन कियो॥ ११५॥ पितानें साम्प्रदायिक अष्टाक्षर मन्त्र दियो ओर तुलसीजीकी कठी

तृतीये मासि सूर्यस्य दर्शनं कारितं शुभे ॥
चतुर्थे निष्क्रमो गेहाच्छिशोः स कृतवान् मुदा ॥ ११७ ॥
इतिजातकर्मादिप्रकरणम् ॥
पुरश्चर्याकृते चात्र विहितं कुंडमंडपम् ॥
भट्टोत्र कृतवान् होमं श्रीगोपालस्य तुष्टये ॥ ११८ ॥
ततस्तु मंत्रिताः स्वीया गंतुं वाराणसीं प्रति ॥
दीक्षितेनाथ यात्रार्थमाहूतो ग्रामनायकः ॥ ११९ ॥
आगतः स प्रणम्यास्मै प्राह प्रांजलिरादृतः ॥
विज्ञैराज्ञापनीयोस्मि किंकरः किं करोम्यहम् ॥ १२० ॥
बभाषे दीक्षितस्तस्मै काशीं गंतुमना अहम् ॥
रक्षिणोवाहनास्तत्र नियोज्याः पथि सौख्यदाः ॥ १२१ ॥
ततः स वाष्पकंठःसन् सपत्नीकोऽवदद्वचः ॥
अनुगृह्यार्पितोर्भोऽयं रक्षा चास्य विधीयताम् ॥ १२२ ॥

सीनी ओर श्रीठाकुरजीके लियें भेट कराई ॥ ११६ ॥ तीसरे मासमें सूर्य नारायणको दर्शन करायो चौथेमें आनन्दसों शिशुको निष्क्रमण घरसों करायो ॥ इति जातकर्मादि प्रकरणम् ॥ ११७ ॥ पीछें आराधनाके लियें कुंड मंडप करायो वामें श्रीगोपालजीकी प्रसन्नताके लियें भट्टजीनें होम कियो ॥ ११८ ॥ ओर वाराणसीके जायवेके लियें अपने संगके जननसों सलाह करकें ग्रामाधीशाकों बुलायो ॥ ११९ ॥ सो वो आयकें हाथ जोडकें आदरसों प्रणाम करकें बोल्यो जो आज्ञा करिये में आपको किंकर हूं कहा करूं ॥ १२० ॥ तब दीक्षितजी बोले जो काशी जायवेकों मन हे मार्गमें रक्षा करवेवारे सिपाही ओर सुख देवेवारी सवारीनको बंदोबस्त करो ॥ १२१ ॥ तब वो गद्गद वाणीसों स्त्रीसहित बोल्यो जो आपनें अनुग्रह करकें बालक दियो हे सो याकी रक्षा

कृष्णप्रसादो देव तु मासनाम जनार्दन ॥
नाक्षत्रनाम श्राविष्ठ ख्यातो श्रीवल्लभेत्ययम् ॥ ११० ॥
चतुर्विधाऽभिधागर्भो चतु पूरुषसमताम् ॥
चतु पुमर्थदां चक्रे पिता श्रीवल्लभाभिधाम् ॥ १११ ॥
संभोज्य सकलान् विप्रान् जातिसमधिनस्तथा ॥
अवशिष्टाह्निक कृत्वा विशिष्टैर्बुभुजे स्वयम् ॥ ११२ ॥
द्वादशेह्नि निषाळस्य स्त्रीभिर्दोळोत्सवः कृत ॥
मातुश्च बहुधा पुष्ट्यै प्रारब्धा उपचारका ॥ ११३ ॥
जन्मनक्षत्रदिवसे कुलदेवद्विजार्चनम् ॥
कृत्वा दत्वा च दानानि पायित गोपयोऽञ्जत ॥ ११४ ॥
सूत्या मासोत्तर स्नानं नूतनांशुकधारणम् ॥
कृत मांगलिक चाम्भोर्चन सूतिविसर्जनम् ॥ ११५ ॥
स्वसांप्रदायिको दत्तो वस्त्वर्णस्तुलसीस्रजा ॥
पित्रास्मै हरये तेन वृत्त दत्वोपढौकितम् ॥ ११६ ॥

कलमसों ॥ १०९ ॥ देवनाम कृष्णप्रसाद मासनाम जनार्दन नाक्षत्रनाम श्राविष्ठ प्रसिद्धनाम वल्लभ ये चारनाम बालकके लिखे ॥ ११० ॥ चार प्रकारकी शक्ति धारो चारपुरुषनको सम्मत धारो पुरुषार्थनको देवेवारो एसो श्रीवल्लभ ये नाम पिताने धर्यो ॥ १११ ॥ सबब्राह्मणनकों सधर्मीनकों भोजन करायकें अवशिष्ट आह्निक कर्म करकें अपने मनुष्यनके सग आपनेंभी भोजन किये ॥ ११२ ॥ ओर बारहवें दिन स्त्रीनेंं बालकको दोलोत्सव कियो ओर माताकी पुष्टिके लियें बहोत प्रकारसों बहोत उपचार किये ॥ ११३ ॥ पीछें जन्मनक्षत्रके दिन कुलदेवता ब्राह्मण इनकों पूजन करकें दानको देकें शखसों गौको दूध बालकको पियायो ॥ ११४ ॥ ओर मासके पीछें सूती स्नान करकें नवीन वस्त्र धारण किये मागळिक जलको पूजन कियो सूतिको विसर्जन कियो ॥ ११५ ॥ पिताने साम्प्रदायिक अष्टाक्षर मन्त्र दियो ओर तुलसीजीकी कंठी

आचार्याणां चरित्रे हरिजनसुखदे शास्त्रिकृष्णैर्निबद्धे
प्रस्थाने दिग्जयाख्ये समजनि पटहश्चादिमेऽस्मिंश्चतुर्थः ॥ १२९ ॥
शिशुकुमारकिशोरमुखं वयस्तदनुरूपविचेष्टितमीशितुः ॥
रमयतां रमणे मम शेमुषी द्रुतविलंबितमस्य यथाक्रमम् ॥ १ ॥
अथ पुराणनिशांतमुपागतः स विदधेऽखिलतीर्थविधिं पुनः ॥
उपरताग्निमधात्कृतनिष्कृतिर्द्रुतविलंबितमस्य न तत्कृतौ ॥ २ ॥
उषसि स प्रतिबुद्ध्य शुचिर्भवन्निभृतशुद्धपटो विहितासनः ॥
निजगुरोश्चरणं मनसास्मरद्धरिगुणान्समगायत सामभिः ॥ ३ ॥
सुरधुनौ कृतमज्जनसद्विधिर्घुसृणजं तिलकं हरिपन्निभम् ॥
सगदयामनुमुद्रिकया दधावरिदराब्जमुखानि भुजादिषु ॥ ४ ॥
निभृतपात्रचयो विहिताचमो नियमितासुरनुष्ठितमार्जनः ॥
कृतचमाघहरार्घसुरस्तुतिः सवितृजापमथाकृतवंदनम् ॥ ५ ॥

भट्टेदव्यासविष्णुस्वामिमतके अनुकूल श्रीकृष्णशास्त्रीके बनाये भगवद्भक्तनके सुख देवेवारे या आचार्यचरित्रग्रन्थमें पहले प्रस्थानमें चौथो पटह समाप्त भयो ॥१२९॥ अब कवि कहें हैं जो ईश जो वल्लभाचार्यजी हैं उनकी जो शिशु कुमार किशोर अवस्था हे तदनुसार जो उनकी क्रीडा हे उनमें जेसो जल्दी विलम्ब भयो हे वामें मेरी बुद्धि रमण करे ।। १ ।। अब प्रकरणकी बात कहें हैं जो लक्ष्मणभट्टजी अपने पुराने स्थानमें उतरकें फिर सम्पूर्ण तीर्थविधि करकें अग्निहोत्र करते भये इनकेकार्य करवेमें जल्दी वा विलम्ब नहीं होतोहो किन्तु बराबर समयमेही कर्म करते हे ॥ २ ॥ सबेरे जागकें पवित्र होयकें शुद्ध वस्त्र पहरकें आसनपे बेठकें अपने गुरुके चरणनकों स्मरण कर सामवेदसों भगवद्गुणनको गान कियो ।। ३ ।। पीछें श्रीगंगाजीमें स्नान कर भगवच्चरणाकृति केशरको तिलक मुद्रानके सहित मस्तकमें कियो ओर भुजादिकनमेंबी कियो ॥ ४ ॥ ओर सन्ध्याके पात्र धरकें आचमन प्राणायाम मार्जन अघमर्षण अर्घ उपस्थान आदि करकें गायत्री जपी-

तत श्रीलक्ष्मणार्येण धूपभस्माभिमंत्रितम् ॥
जनार्दनीय यत्र च शिशो रक्षाकृतेर्पितम् ॥ १२३ ॥
श्रेष्ठिन कृष्णदासस्य शिष्यीभूतस्य यज्वना ॥
पुरुषोत्तमदासेति शिशोर्नाम समर्पितम् ॥ १२४ ॥
ततो मातृपदाभ्याशे तत्पत्न्याधाय त शिशुम् ॥
त्वच्छिशोरंघ्रिसंस्पर्शात् पावनीयोयमाह सा ॥ १२५ ॥
आशिषा चाभिसंयोज्य शतायुर्येन जायते ॥
तथाकृतं मातृभिश्च मुदिता सा ततो गता ॥ १२६ ॥
ग्रामेशेन ततो वाहो दोला चापि समर्पिता ॥
किंकरा पंचसंख्याका वीराश्च पथि रक्षिण ॥ १२७ ॥
दानमानैश्च संतोष्य यापितो दीक्षितोत्तम ॥
शनै शनै प्रचलिता मासाद्वाराणसीमिता ॥ १२८ ॥
श्रीविद्व्यासविष्णुप्रमुखचरणमिते समिते प्रथसार्थे
श्रीगोविंदाभिधानां समयनयविदां देशिकानां निदेशात् ॥

करिये ॥ १२२ ॥ तब श्रीलक्ष्मणार्यने मंत्रनसों जनार्दनधूप वाके लगायो और भस्मी दियो रक्षाके लिये ॥ १२३ ॥ और शिष्य कृष्णदाससेठके पुत्रको नाम पुरुषोत्तमदास धर्यो ॥ १२४ ॥ तब वाकी स्त्रीनें वल्लभाजीके चरणनमें वा पुत्रकों राखके बोली जो अपने पुत्रके चरणकेस्पर्शसों याकों पवित्र करिये ॥ १२५ ॥ आशीर्वाद दीजिये जासों ये शतायु होय तब उन- नें येसेंही कियो और वो प्रसन्न होयके गई ॥ १२६ ॥ ग्रामनायकनें भी सवारी तथा सिपाही तयार करायो ॥ १२७ ॥ मार्गमें रक्षा करवे वारे पांच वीर तैयार किये और यह दानमानसों सन्तुष्ट करके दीक्षितजीकों विदा किये सो। वे धीरे धीरे चलके मासभरमें श्रीकाशीजी पहुंचे ॥ १२८ ॥ स- मयनीतिके जाननेवारे जगद्गुरु श्रीगोविन्दाचार्यजी महाप्रभुकी आज्ञासों भी

कवितया कथया क्रियया श्रिया मधुरया गिरया बुधप्रज्ञया ॥
सकलमेव जनं सजनेश्वरं निजतपोविभवैर्वशमानयत् ॥ १२ ॥
अथ शिशोश्चरितं जननक्षणाद्भुवनमंगलकारि प्रतिक्षणम् ॥
जनयितुश्च मनोरथकृद्बभावरमतास्य रमापि निकेतने ॥ १३ ॥
शिशुरमुष्य पदांगुलिपानतश्चरणचालनतः करधूननैः ॥
स्वजननीजनतुष्टिदहुंकृतैः स रमते स्म रतेषु रमापतेः ॥ १४ ॥
अभिपपौ स्तनमेकमथापरं समकरोत् स्वकरेण समादृतम् ॥
विषमतां नु गदन्निव निंदितां स्वजननीं स्मितमुत्स्मयते स्म सः १५
सजननीं जनकं कुलबालकान् कलरवैश्चकले मुदितान् मुहुः ॥
सकलमस्य सदिंगितमिंगितज्ञवटवोपि जगुः खलु सार्थकम् ॥१६ ॥

इतिशिशुचरित्रनिरूपणप्रकरणम् ।

स शरमासि शुभेऽह्नि बुधोदिते कुलसुरक्षितिदेवसमर्चनैः ॥
क्षितिनिवेशनमंगलमाचरद् गुरुवरः स्वशिशोर्बहुमानतः ॥ १७ ॥

अपनी कविता कथा क्रिया श्री मधुरवाणी बुद्धी इनसों सब मनुष्यनकों वश किये ओर अपने तपके विभवसों राजानको तथा ईश्वरकोंबी वश कियो ॥ १२ ॥ ओर उत्पत्तिक्षणसों इनके बालकको चरित्र संसारको प्रतिक्षण मंगल करवेवारो भयो ओर इनके मनोरथकों पूर्णकरते अतिशोभाकों पावतो भयो ओर लक्ष्मीजी बी वाही समयसों विशेष करकें मकानमें विलासकरवे लगीं ॥ १३ ॥ ओर ये बाल कबी अंगुष्ठपानसों चरणनके चलायवेसों हाथके हलायवेसों अपनी माता ओर दूसरे जननकों तुष्टि देवेवारे हुंकारसों खेलवे लगे ॥ १४ ॥ एक स्तनकों पान करते दूसरेकों दूसरे हाथसों समादर करते मानों विषमताकी निन्दा करते माताकों हँसावते भये ॥ १५ ॥ ओर वे माता पिताकों कुलके बालकनकों अव्यक्त शब्दसों वार वार आनन्द करते हे इनके इंगितचेष्टाकों सार्थक सत्य जानवे वारे दूसरे बालकबी गावते हे ॥ १६ ॥ इति शिशुचरित्रम् ॥ ओर पांचवे

उदिततहोमविधौ ज्वलन गृहे समहिलो हुतवान्निजसूत्रत ॥
मदनमोहनसेवनत पर परमसादिनिजाह्निकमाचरत् ॥ ६ ॥
वुधवरान् पृथुकानपि पाठयन्परदिने रजनीमुखत पुन ॥
समतनोदथ पूर्ववदाह्निक निशि चचार निजात्मविचिंतनम् ॥७॥
कृतनिमज्जनसंस्कृतमगला भृतनवावरभूषणमंडिता ॥
परिचचार पर्ति मखिन सती शुचितनूस्तनय च धिया हरिम्॥८॥
स विदुषां निकुरवमुपागत श्रुतयश पटल पटुयुक्तिभि ॥
प्रकटयन् पदवाक्यप्रमाणगी कथकसत्कथया मुदमादधत् ॥९॥
क्रतुकलापकलाकुशलान् बुधान् निजकृतेर्नवकक्षपुटीपटे ॥
समुररीसधुभृत पुटभेदने सदसि तान्कृतवानतिविस्मितान् ॥१०॥
निगमसूत्रपदक्रमतज्जटाघनमुखक्षवरेषु धरिष्ठताम् ॥
यदविमुक्तपते श्रुतिपाठिनां स निलये समगाच्छुरिकापणात् ११॥

पीछें स्तुति करकें ॥ ५ ॥ अपने सूत्रके अनुसार स्त्रीके सहित सूर्योदयप-क्षसों होम कियो श्रीमदनमोहनजीकी सेवाकरी पीछें ओर आन्हिक कियो ॥६॥ ओर पंडित तथा बालकनको पढायक मध्यान्होत्तर सन्ध्यासमय फिर पूर्ववत् आन्हिक कियो ओर रातको आत्मचिन्तन करते भये ॥ ७ ॥ ओरस्नानादिक सस्कारनसों मगलनवीनवस्त्रभूषणादिकनसों मंडिता पवित्रशरीर पतिव्रता यल्लमाजी पतिकी सेवा करती भई ओर पुत्रकीभी सेवा भगवद्बुद्धि-सों करी॥ ८॥ भट्टजीके यशकों सुनकें जो विद्वज्जनआवते हे उनको भट्ट-जी अच्छी युक्तीनसों पदवाक्यके प्रमाणनसों अच्छी कथानसों आनन्दित करते हे॥ ९॥ओर यज्ञनकी क्रियामें कुशल जो पंडित उनकों काशीजीमें सभामें अतिविस्मित करते ॥ १० ॥ वेद सूत्र पद क्रम जटा घनआदिके जानवेवारेनमें जो श्रेष्ठ विद्वान् हे उनमेंभी ये श्रेष्ठताकों धारण करते हे जिननें विश्वनाथजीके मंदि-रमें जयपराजयकी प्रतिज्ञा सों वेदपाठीनके बीचमें वेद गान कियो हो ॥ ११ ॥

स हरिवत् क्वचिदैक्षत पृष्ठतो चरणनूपुरतश्चकितोमनाक् ॥
अनुचकार रवैः शुकसारिकानरवराकृतिमान्नराशिक्षणे ॥ २४ ॥
क्व नयने श्रवणे वदनं क्व च क्व जननी जनकः क्व च सोदरः ॥
स्वसृजने परिपृच्छति सस्मितः स वदनाद्यवदद्वदनं हरेः ॥ २५ ॥
नवममास्यवनौ चरणद्वयं क्रमणकामनया निहितं यदा ॥
विहरणोत्कतयाऽमरपुंगवैर्व्रतसमाप्तिरकार्यचलाचलैः ॥ २६ ॥
अचलदेष यदा पितुरंगणे विहरणेर्भकदंबमनुद्रुतम् ॥
कलकलध्वनिरास कलस्वना विहरतामभवत्परमोत्सवः ॥ २७ ॥
मुकुरबिंबगतं शशिमंडलं हरणकामनयाभ्यकरोत् करौ ॥
न खलु मोघमिदं चरितं प्रभोर्यदिह वस्तुतया प्रतिपाद्यते॥ २८ ॥
चकितमीक्षति मुह्यति बिभ्यति क्वचिदयं हि तमोनिकुरंबतः ॥
शिशुवरस्य तदिंगितमर्थवत्तदुत वस्तुतयाप्यभिधास्यतः ॥ २९ ॥

पृथिवी भगवान्को शैशव खेल समझकें आनन्द पावती ॥ २३ ॥ कवी हरिके तरह पीछेंकों देखते ओर चरणके झांझनके शब्दसों कवी थोरो चकित होयजाते कवी शुकसारिकाके शब्दकों अनुकरण करते कवी सिखायवेपे अच्छे आदमीकी जेसी आकृति करते ॥ २४ ॥ मुख कहां हे आंखे कहां हें कान कहां हें माता कहां हें पिता कहां हें इत्यादि भगिनीबहेनेनके पूंछवेतें भगवान् सब अंगनको बतावते ॥ २५ ॥ जब नवममासमें चलवेके लियें पृथिवीमें आपने दोनों चरण धरे तब देवतानेंनें पृथिवी स्पर्श नहीं करनो या अपने व्रतको मानों समाप्त किये ॥ २६ ॥ जब पिताके आंगनमें बालकनके संग आप विहार करते हे तब खेलते भये आपकी कलकलध्वनिको परम उत्सव होतो हो ॥ २७ ॥ ओर कवी काँचमें प्रतिबिम्बित मुखकों पकडवेकी इच्छासों आप हाथ धरते हते सो प्रभुको ये खेलवेकोवी चरित्र मिथ्या नहीं हतो क्यों जो वोवी वस्तु हे ये प्रतिपादन प्रतिबिंबवादनामक ग्रन्थमें करेंगे ॥ २८ ॥ कवी अन्धकारसों

स रसमासि शिशोरशनोत्सवं श्रुतिचणे स्वजनैस्स्वपुरोधसा ॥
समुदिते समये कृतवान्कृती हुतभुगर्चनमंगलगायने ॥ १८ ॥
हरिहरौ विधुसूर्यदिगीश्वरान् क्षितिविशोमुखजान्समपूजयत ॥
निजसुतं स विधाय निजांकगसमहिलो मखिराट् कृतमंगल ॥१९॥
कनकभाजनगं मधुसर्पिषा दधियुतं नवपायसमर्पितम् ॥
विहितहेमवरांगुलिमुद्रया निजशिशोर्वदनेऽरसयत्ततः ॥ २० ॥
स विहिताचमनस्य शिशोः पुरो निहितवान्निखिलं रमणोच्चयम् ॥
परशुपुस्तकलेखनकार्मुकं नरवपुः शुचिवृत्तिपरीक्षणे ॥ २१ ॥
शिशुरयं धृतवस्तुषु पुस्तकं सुजगृहेनिजवाक्पतितां दधत् ॥
सुधवरा परिखुधिमितो गता मखकृतानिखिलाश्च समर्चिता ॥२२॥

इति शिशुसंस्कारनिरूपणप्रकरणम् ।

अथ स जानुयुगेन मुदा चलन् स्पृशति हस्ततलेन धरातलम् ॥
क्षितिरियं मुदमेति नु शैशवं स्मरति सा स्म हरेः खलु खेलनम् २३

मास अच्छे दिन कुल देवता भूदेवता आदिकों पूजन करकें बड़े मानसों भट्टजीनें पृथिवीमें बालकको निवेश करायो ॥ १७ ॥ ओर छठे महीना अन्नप्राशन करायो ओर वैदिक ओर अपने मनुष्य तथा पुरोहितके संग अच्छे मुहूर्तमें अग्निको पूजन कर मंगलबाजेबाजेसों ॥ १८ ॥ हरि हर चन्द्र सूर्य दिग्देवता भूदेवता ब्राह्मण इनको पूजन कर मंगल कर सपत्नीक आप बालककों गोदीमें लेकें॥१९॥सुवर्णके पात्रमें मधु घृत दधिसों मिलायकें नवीन खीर धरकें सुवर्णकी अंगूठीसों बालककें मुखमें डारते भये॥२०॥पीछें आचमन करायकें बालककें आगे सब खेलवेकी वस्तु धर दीनी ओर परशु हथियार पुस्तक कलम पट्टी वर्ती वस्त्र आदि परीक्षाके लियें धर दिये ॥ २१ ॥ परन्तु धरी भई वस्तुनमेंतें अपने वाक्पतिपनेकों सूचित करते बालकनें पुस्तककों लियो तब यज्ञ करवेवारे सब शास्त्रीगण प्रसन्न भये॥ २२ ॥ इति शिशुसंस्कार निरूपणम् ॥ पीछें जब हाथसों धरती पकडकें आनन्दसों घोंटूनतें चलते तब

स हरिवत् क्वचिदैक्षत पृष्ठतो चरणनूपुरतश्चकितोमनाक् ॥
अनुचकार रवैः शुकसारिकानरवराकृतिमान्नराशिक्षणे ॥ २४ ॥
क्व नयने श्रवणे वदनं क्व च क्व जननी जनकः क्व च सोदरः ॥
स्वसृजने परिपृच्छति सस्मितः स वदनाद्यवदद्वदनं हरेः ॥ २५ ॥
नवममास्यवनौ चरणद्वयं क्रमणकामनया निहितं यदा ॥
विहरणोत्कतयाऽमरपुंगवैर्व्रतसमाप्तिरकार्यचलाचलैः ॥ २६ ॥
अचलदेष यदा पितुरंगणे विहरणेर्भकवृंदमनुद्रुतम् ॥
कलकलध्वनिरास कलस्वना विहरतामभवत्परमोत्सवः ॥ २७ ॥
मुकुरबिंबगतं शशिमंडलं हरणकामनयाभ्यकरोत् करौ ॥
न खलु मोघमिदं चरितं प्रभोर्यदिह वस्तुतया प्रतिपाद्यते॥ २८ ॥
चकितमीक्षति मुह्यति बिभ्यति क्वचिदयं हि तमोनिकुरंबतः ॥
शिशुवरस्य तदिंगितमर्थवत्तदुत वस्तुतयाप्यभिधास्यतः ॥ २९ ॥

पृथिवी भगवान्को शैशव खेल समझकें आनन्द पावती ॥ २३ ॥ कवी हरिके तरह पीछेंकों देखते ओर चरणके झांझनके शब्दसों कवी थोरो चकित होयजाते कवी शुकसारिकाके शब्दकों अनुकरण करते कवी सिखायवेप अच्छे आदमीकी जेसी आकृति करते ॥ २४ ॥ मुख कहां हे आंखे कहां हें कान कहां हें माता कहां हें पिता कहां हें इत्यादि भगिनीबहेनेनके पूंछवेतें भगवान् सब अंगनको बतावते ॥ २५ ॥ जब नवममासमें चलवेके लियें पृथिवीमें आपने दोनों चरण धरे तब देवतानेंनें पृथिवी स्पर्श नहीं करनो या अपने व्रतको मानों समाप्त किये ॥ २६ ॥ जब पिताके आंगनमें बालकनके संग आप विहार करते हे तब खेलते भये आपकी कलकलध्वनिको परम उत्सव होतो हो ॥ २७ ॥ ओर कवी काँचमें प्रतिबिम्बित मुखकों पकडवेकी इच्छासों आप हाथ धरते हते सो प्रभुको ये खेलवे कोबी चरित्र मिथ्या नहीं हतो क्यों जो वोबी वस्तु हे ये प्रतिपादन प्रतिबिंबवादनामक ग्रन्थमें करेंगे ॥ २८ ॥ कवी अन्धकारसों

स्वचरणाब्जयुगसमधाद्यदा स भुवि कजकुलादपि कोमलम् ॥
क्षितिरतोपि मृदुत्वमुपागतेत्यवसित पदलक्ष्मसमुद्गमे ॥ ३० ॥
कुलिशकजदरारिगदांकुशध्वजधनुर्यवकुंभलताझषा ॥
पदयुगेस्य सतोरणकेतव शुशुभिरेऽङ्कतया शुभदेतव ॥ ३१ ॥
अपठदेप यदांबतताभिधां कलगिरा सकलस्य सुखावहाम् ॥
वदयदाभिमयेत्यवदज्जनो गदति सौख्यमितोस्यसुवर्णत ॥ ३२ ॥
चकितचारुविलोचनमीक्षित इसितभावनिगूहितभाषितम् ॥
क्रतुपरिक्रमवच्च गतागत सकलमस्य चरित्रमलौकिकम्॥३३॥
कृतिसुखैस्तनुभिर्हरिणाक्षमारमणमाप पुरा विधिनिर्मिता ॥
गिरिशशूलधृता त्वपरा धराऽस्यनिजशैशवतोऽव्यथिता कृता ३४

चकित होयजाय हैं कवी देखवेलगेहैं कभी मुग्ध होयजाय हैं कवी डर जाय हैं ये आपकी चेष्टा सार्थक ही क्यों जो तमको पदार्थान्तर मानवे वारे हैं ॥ २९ ॥ और जब कमलसोंभी कोमल अपने चरण पृथिवीमें धरते हे तब पृथिवी उनसोंबी कोमल होयजातीही तासों चरणचिह्न बन जाते ॥ ३० ॥ आपके दोनों चरणनमें वज्र कमल शंख चक्र गदा अंकुश ध्वजा धनुष यव कुंभ लता मत्स्य तोरण पताका ये शुभ चिह्न शो भते हे ॥ ३१ ॥ जब आप तोतलीवाणीसों सबको सुख देवेवारी अम्ब तात ये सक्षा नाम बोलते हे तब दूसरे लोग 'अभि' ये शब्द बुलवावते तो आप सुवर्णत (अच्छे वर्णनसों) अभि ये नाम लेते हते ॥ ३२ ॥ चकित होनों सुदरनेत्रनसों देखनों हसनों भावसों भाषण करनों यज्ञकी परि- क्रमाकी तरह चलनों फिरनों ये सब आपके चरित्र अलौकिक हते ॥ ३३ ॥ ब्रह्माजीकी बनाई पृथ्वी पहले अवतारनमें आपके शरीरसों रमणको प्राप्त भई ही परन्तु ये काशीकी पृथ्वी तातें विलक्षण हे क्यों जो महादेवजीकी बनाई

शिशुतनोः श्रुतमेव न वीक्षितं चरितमंबिकया च पिनाकिना ॥
निजमनोरथपूर्तिरदृष्टतोह्युपनतास्य हरेःखलु खेलनैः ॥ ३५ ॥
शिशुचरित्रमनेकविधं चरन् स हुतभुग्घुतभुग्गणतुष्टये ॥
अतिमुदं व्यतनोच्छिवयोरयं व्रजपतेश्चरितानि प्रदर्शयन् ॥३६॥
प्रथमहायनफाल्गुनमास्ययं मखिवरोऽथ चचार शुभे दिने ॥
श्रुतिविभेदनमात्मशिशोः पुनः कुलनयेनच लौकिकमुंडनम् ॥३७॥
हरिविरंचिहरार्कदिगीश्वरानुडुपदस्त्रगिरोगुरुगोद्विजान् ॥
विधिवदेष समर्च्य च रूप्यजे श्रवणयोर्व्यतरत्खलु वालिके ॥३८॥
वितरणैर्द्रविणस्य च भोजनैर्बहुविधान्नरसस्य सदंबरैः ॥
परममुत्सवमस्य तदुत्सवे स चकले महिलाजनगायनैः ॥ ३९ ॥
विहितमंगलमज्जनतः शिशोर्धृतनवांबरमंडनवर्ष्मणः ॥
रचितदृष्टिनिवारणलक्ष्मतोवदनमस्य मृगांकतुलामधात् ॥ ४० ॥

इनके शूलके ऊपर धरी है सो ये पृथिवी अब आपके शिशुक्रीडासों सुखी भई ॥ ३४ ॥ महादेव तथा पार्वतीजीनें शिशुरूपभगवानको चारित्र सुन्योहो परन्तु देख्यो न हतो अब आपके खेलवेसों अदृष्टवश उनके मनोरथकीबी पूर्ति होय गई ॥ ३५ ॥ एसे अनेक प्रकारके बालचरित्र करते भगवान्के चरित्रनकों दिखावते महादेवपार्वतीजीकों अत्यन्त आनन्दित करते भये ॥ ३६ ॥ पीछें प्रथमवर्षके फाल्गुणमहीनामें अच्छे दिनमें भट्टजीनें अपने बालकको कर्णवेध कियो फिर कुलकीरीतिसों लौकिक मुंडन कियो ॥ ३७ ॥ विष्णु ब्रह्मा महादेव सूर्य दिक्पालादिक गुरु गौ ब्राह्मण इनको विधिसों पूजन करकें कान में रूपेकी बाली धारण कराई ॥ ३८ ॥ तामें बहोत प्रकारके अन्नरसके भोजननसों अच्छे वस्त्रनसों द्रव्यके दाननसों स्त्रीनके गायनसों बड़ो उत्सव कियो ॥ ३९ ॥ ओर आपको मंगलस्नान करवायो नवीनवस्त्र भूषण श्रीअंगमें धराये श्रीमुखमें दृष्टिदोषनिवारणके लियें काजलको चिन्ह

कटकनूपुरककणकिंकिणीपदकसैंहनखीगलहारिका ॥
हिबुककर्णशिर कचनासिकाभरणत प्रतिमेव हरेरभूत्॥ ४१ ॥
प्रतिनिजर्क्षदिने प्रथमेऽब्दके स कृतवान् सुतवृद्धिमहोत्सवम् ॥
अपरवत्सरत प्रतिवत्सरं प्रकृतवाश्चिरजीविसमर्चनम् ॥ ४२ ॥
रचितदिव्यनवांशुकभूषणा प्रमिलिता वनिता जनकालये ॥
भगनिका सुभगागुणगायनैर्विदधुरस्य च दीपपरिभ्रमम्॥ ४३॥
श्रुतिविदोऽथ विद स्वकुटुम्बिनो निजसमाश्रितवर्गमुपास्थितान् ॥
स वल्लभानपुर सरभोजनै परिततर्प यथोचितमर्पणै ॥ ४४ ॥
अथ स बालकतां कलयत्तदा कलितवान् कलभाषणतो मुदम् ॥
श्रुतिपदक्रमवत्पिताक्षरैर्निजनिसर्गधियं भुवि दर्शयन् ॥ ४५ ॥
क्वचिदयं क्रतुभिर्ननु कृत्रिमैररमतक्रमपाठमुखै श्रुते ॥
क्वचिदयं पितुराह्निकवत्कृतैर्मधुभिदोऽर्चनत शिशुलीलया ॥४६॥

कियो जासों श्रीमुख चन्द्रमाकेतुल्य होतो भयो ॥ ४० ॥ कड़ा झांझान घुँघुरू पदक बघनखा कठुला इनकों पहिरे ओर हिबुक कर्ण शिर केश नासिका इनके आभूषणनसों शोभित विष्णुकी प्रतिमा जैसेदीखवेलगे॥ ४१ ॥ दीक्षितजी प्रथमवर्षमें प्रतिजन्मनक्षत्रमें बालककों वृद्धि महोत्सव करते भये ओर दूसरीवर्ष तें प्रतिवर्ष चिरजीवीनको पूजन करवे लगे॥ ४२ ॥ तामें दिव्य नवीन वस्त्र भूषण-नकों पहेरे भई पिताके घरमें आई भई सौभाग्यवती भगिनीगण गुणगानपूर्वक इन बालककी आरती करती भई ॥ ४३ ॥ ओर आये भये वैदिक विद्वान नकों अपने कुटुम्बीनकों आश्रितजननकों बडे मानसें भोजन करायके यथो चित देकें दीक्षितजी तृप्त करते भये ॥ ४४ ॥ थोरे दिन पीछें ये बालकप-नेको प्रसिद्ध करते मधुर भाषणसें आनन्दको देते ओर कभी अपनी स्वाभा विकीबुद्धिका श्रुति पद क्रमके जैसे अक्षर बोलकें संसारमें दिखावते ॥ ४५॥ कभी कृत्रिम यज्ञ करकें श्रुतीनके पाठ करकें खेलते कभी पिताके जैसे

परिचचार क्वचिन्निजवत्सकान् यवसनीरयवागुसमर्पणैः ॥
निजवयस्यजनैर्निजवल्लवैरभिननंद स नंदसुतायितः ॥ ४७ ॥
सुरसरिद्रजसा क्व च धूसरः शुचिरिवोच्छुशुभे भसितावृतः ॥
कृतवती जननी तनुमार्जनं द्विजजनिवदनेऽस्य ददर्श सा ॥ ४८ ॥
चिकुरवृद्धिमिषान्नवनीतजं सुकवलं लपने समदात् सती ॥
गृहपतेरनिलोपि तुतोष किं प्रकरहेतिप्रदक्षिणलक्षणैः ॥ ४९ ॥
गुणसरत्समये बहुशोभने स चकमेऽध्वरिराट्सुतचौलकम् ॥
बुधवरैर्गणकैः स्वपुरोहितैरनुमते भृतसंभृतिराचरत् ॥ ५० ॥
विहितमार्जनलेपनमंडनैर्निजनिकेतनमेवमशूशुभत् ॥
निजकुटुंबिकुलं च सकिंकरं समकरोदमरोपममर्चितम् ॥ ५१ ॥
अथ चचार वसंतमहोत्सवं बुधवरैर्बहुभिर्वरवैदिकः ॥
सदसि चौलसुमंगलमाचरद् गुणिनि गायति नृत्यति वाद्यति ॥५२॥

आन्हिक ओर बाललीलासों भगवानकी सेवा करते ॥ ४६ ॥ कबी नन्दसुत श्रीकृष्णके जेसे आचरण करते अपने प्यारे साथीनके संग अपने बछरानकों घास जल अन्नकी लपसी देते ॥ ४७ ॥ कबी गंगाजीकी वालूमें लोट जाते तब अत्यन्त शोभते माता उनके श्रीअंगको पोंछती इनके मुखमें आकाशको देखती भई ॥ ४८ ॥ ओर बालसँभारवेके छलसों नवनीतको कवल इनके श्रीमुखमें देतीं तब गृहपति लक्ष्मणभट्टजीके कुंडकी अग्नि प्रसन्न होते ओर प्रदक्षिणज्वाला उनसों उठवे लगती ॥ ४९ ॥ पीछें सुंदर तीसरे वर्षमें यज्ञकरवेवारेनमें श्रेष्ठ भट्टजी पुत्रके मुंडन करवेकी इच्छा करते भये ओर अपने पुरोहित पंडित ज्योतिषीनके बताये मुहूर्तमें तैयारी करी ॥ ५० ॥ तामें बुहारवेसों लीपवेसों सजावटसों उनको स्थान देवभवन जेसो शोभतो भयो ओर आश्रितवर्गनके सहित इनके कुटुम्बीजन देवता जेसे शोभते भये ॥ ५१ ॥ पीछें बहोतसे पंडित वैदिकनसों वसन्तपूजा कराई ओर गुणी

निगममंत्रगणे किल लौकिक ज्वलनमादधदेप यथाविधि ॥
समजुहोन्निजसूत्रमताद्धविरमरवाडवतुष्टिमजीजनत् ॥ ५३ ॥
विहितनांदिविधे कृतसत्कृति पितृगण किल नादमुख व्यधात् ॥
वपनमस्य प्रदक्षिणमुद्भवो प्रवरसमितमूर्द्धशिखा कृता ॥ ५४ ॥
महति मंगलकर्मणि सगतेष्वधि न को पि जनो विफलोगत ॥
वहुविधान्ननवांवरभूषणद्रविणतः सकलोऽपि समर्चित ॥ ५५ ॥
अथ नृपात्मतयार्भकखेलने गुरुतयोपविवेश महासने ॥
उपगत सजन जनतेश्वरं सवरमुद्रिकयाशिपमभ्यधात् ॥ ५६ ॥
तुरगकुंजरवर्कर वश्रुगोमृगशशायितर्डिभगणे स्म यत् ॥
स निजपत्रतयेप्यति मेषकं प्रकटयन् मखकृत्सु मखात्मताम् ॥ ५७ ॥
विहरणे क्वचिदेप यदेकलो हरिमियाज स राजसपर्यया ॥
तदनुप्रेमभराश्रुभरैरुदन् समहसत समुपेप्यति दर्शने ॥ ५८ ॥

नके गावते नाचते बजाते मंगल चौलकर्मको आरंभ कियो ॥ ५२ ॥ वेद के मंत्रनसों लौकिक अग्निधारण कियो अपने सूत्रके अनुसार यथाविधि होम करके देवता ओर ब्राह्मणनको तुष्ट कियो ॥ ५३ ॥ ओर नान्दी श्राद्ध करके पितरनको तृप्त करके सुतको दक्षिण आडीसों क्षौर कियो ओर प्रवरनके समान ऊपरकी शिखा करी ॥ ५४ ॥ या मंगलकार्यमें आये भये मनुष्यनमेंसों कोईभी जन विफल न गयो अनेक प्रकारके अन्न नवीन वस्त्र भूषणनसों सब पूजे गये ॥ ५५ ॥ पीछें बालकनके खेलनेमें जब दूसरे बालक राजा बनने तब आप गुरु बनके सिंहासनपे बैठते ओर आये भये मनुष्यनको राजानको प्रान मुद्रासों उपदेश करते ॥ ५६ ॥ ओर घोडा हाथी बकरा मेढा गौ मृग शशा इनके जब बालकगण आवने तब आप मेषको बुलायके अपनको यज्ञकर्ता प्रगट करते ॥ ५७ ॥ खेलनेमें जब कभी एकले होयजाते तब राजोपचारसों भगवान्की सेवा करते ओर दर्शनमें प्रेमसों आंसू

हरिगुणानुरमणेषु सुनिर्दिशन् स पदवीं भुवि कृष्णमुनेर्गतः ॥
अकथयत्कथनीयकथाभरं विहरणोपरतान्पृथुकान्व्यधात् ॥ ५९ ॥
अधिजगे ननु बालकलेवरःपठति बालजनेऽपि गृहांतरे ॥
क्वचिदयं नु कलापमुखागमान्विविधकाव्यनिघंटुगणानपि ॥ ६० ॥
अरमत स्वसृसोदरयोर्मुदे नयनमुद्रणकेलिकया क्वचित् ॥
शिशुगवेषणतोप्यचरद्धरेर्विधिहृतार्भगवेषणकौतुकम् ॥ ६१ ॥

इतिबालचरित्रप्रकरणम् ।

अथपुनस्तनयस्समयेशुभेशरसमेमखिनोऽजनिकेशवः ॥
स्मृतिगिराभिमता बहुपुत्रता समभवत्स्मृतिकर्मफलायिता ॥ ६२ ॥
तदनु तस्य च संस्कृतयोमलाः जनिमुखा मखिना विहिताःशुभाः ॥
सकलविज्ञजनान् स्वकुटुंबिनोरमयति स्म रमा रमणंबभौ ॥ ६३ ॥
शरदि पंचमकेऽक्षरलेखनारभणमस्य चकार स दीक्षितः ॥
गणपतिं कमलां च नरायणं निगमसूत्रकृतावपि चार्चयत् ॥ ६४ ॥

भरके गद्गद होते ॥ ५८॥ खेलवेमें बालकनको भगवद्गुणनको उपदेश करते संसारमें वेदव्यासकी पदवी कों पायो खेलवेतें छुटायकें बालकनके सामनें कहवे लायक कथा कहते ॥ ५९ ॥ ओर दूसरे घरनमें बालकनकों पढते सुन आपबी कलाप अनेक तरहके काव्य निघंटु पढते ॥ ६० ॥ कबी बहेन भाईनके आनन्दकें लियें आंखमिचोनीखेल खेलते ओर बालकनको ढूँढते वामें विधिसों हरिही कों ढूँढते ॥ ६१ ॥ इति बालचरित्रम् ॥ पीछें पॉचवे वर्ष अच्छेसमयमें भट्टजीके केशवनामक पुत्र भये क्यों जो दैवीवाणीनें बहुपुत्रता कही ही सो फलित भई ॥ ६२ ॥ उनकोबी संस्कार शुद्ध विधानसों कर्कें सब विद्वाननकों कुटुम्बीनकों आनन्दित किये ॥ ६३ ॥ ओर पाँचवें वर्ष दीक्षितजीनें आपको विद्यारंभ करायो तामें गणपति लक्ष्मीनारायणको अपने सूत्रके

भुवनमातरिहागम वाङ्मये भगवतीति मनु प्रगृणन् मुदा ॥
नृपविधार्चनतोऽर्चितवान् पुन स्वगुरुभूमिसुरानुपमातरम् ॥६५॥
कृतप्रदक्षिणवदनमगलधृतसुलेखनिकं भृतपट्टिकम् ॥
प्रणवपूर्वकवर्णसुमातृकालिखनत स्वशिशु समशिक्षयत् ॥ ६६॥
नृतनुवाक्पतिरेपसकृद्दृशासमधिगत्यलिलेखयथोचितम् ॥
स गुरुणाभवितव्यमितिस्मरन् स जगृहे गुरुतोऽप्यपरागमान्॥६७॥
अनुपनीतवयस्युपनीतवत् समचरत् कृतिमेप विनापेकम् ॥
नहि स कामचरोनहिकामवाक् नियतवृत्तिरभून्न हि कामभुक्॥६८॥
स जगदे पठता पितुरन्तिके विविधशाब्दिकतार्किकसग्रहान् ॥
गणकशासनमेवमजीगणद्दुरवबोधतर किमु वाक्पते ॥ ६९ ॥
अवगतोजनकान्मखशिक्षणे क्रतुकलापविचक्षणतामपि ॥
स कविताकुशलत्वमुपागत कविजनोक्तिनिभालनत खलु ॥७० ॥

अनुसार पूजन कियो ॥ ६४ ॥ ओर हे भुवनकी माता भगवती सरस्वती यहा आवो एसे अर्थवारे मत्रनका पढते आनन्दसों राजोपचारतें अपने गुरू ब्राह्मण उपमाता आदिको पूजन करायकें ॥ ६५ ॥ कियो हे नमस्कार प्रदक्षिणाको जिननें कलम पट्टीको धर्‍यो हे जिननें एसे अपने बालककों प्रणव पूर्वक वर्णमात्रानको लिखनो सिखावने भये ॥ ६६ ॥ ये तो बालक वाणीपति हे यातें एकहीवार देखके यथोचितलिख्यो क्योंजो गुरुसों पढनो ये स्मरण करते, ओर वी विद्यानकुंसीखे ॥ ६७ ॥ विना जनेऊके हे ताही समयसु एक वेदको छोडके जनेऊवारेनकी रीति करते हे कहीं स्वच्छन्द होयके न फिरते न बोलते भ खात किन्तु नियम पालनेवारे भये ॥ ६८ ॥ ओर पिताके पास अनेक प्रकारके व्याकरण तर्कके ग्रन्थनकों सुनकेही सब ग्रहण कर लेते ओर गणितविद्या सीखलीनी क्योंजो वाक्पतिको कहा दुर्लभ हो ॥ ६९ ॥ पितासों यज्ञकलापमें विचक्षणता

अमरसिंधुतटेऽनुचरैः क्वचिद् गुरुवरालयशिष्यकुलैश्चरन् ॥
सुरवरालयसंगतभूसुरप्रवरजल्पकथास्ववदत् स्वयम् ॥ ७१ ॥
किमु मितिः स्वतएव मितान्यतोभवति जल्पकथा कथकेष्वियम् ॥
स्फुटसमुत्कटयुक्तिभरादयं समरटत् पटुभिर्वटुभिर्विदाम् ॥ ७२ ॥
जगदिदं जगदीश्वरनिर्मितं सदसि पक्षमिदं दृढयन् सदा ॥
बहुप्रमाणभरैः स सदुक्तिभिः समवदत् कुशलैरपि कोविदैः ॥७३॥
निजसहोदरवक्त्रविनिर्गतांक्रमजटाघनछंत्रपदावलिम् ॥
स च ललाप धियैव विलोमत स्तमवदन्निह बालसरस्वतीम् ॥७४॥

इतिकौमारचरित्रनिरूपणप्रकरणम् ।

जठरतोष्टमहायनगे मधौ गणकवर्य्यविनिश्चितसद्दिने ॥
तदनुरोधमवेक्ष्य ततः पुरोनिजनिजार्हमुपक्रममारभत् ॥ ७५ ॥
प्रथमतस्स लिलेख दलावलिं निजपुरोहितबंधुसुहृन्नृषु ॥
मम सुतोपनयाख्यसुमंगलेऽमुकदिने स्वसमागमप्रार्थये ॥ ७६ ॥

ओर कविजननकी उक्तिकों देखकें कवितामें पटुताकों पायो ॥ ७० ॥ कबी गंगाजीके तटमे अपने घरमें रहवेवारे अनुचरशिष्यनके संग विचरते भये ब्राह्मणनकी वादकथामें आप बोलते ॥ ७१ ॥ जो मिति जो प्रमाण हे सो स्वतःप्रमाण हे वादकथामें अथवा अन्यतः ओरसों इत्यादि अच्छी उत्कटयुक्तीनसों चतुर बालकनकें संग रटते ॥७२॥ ओर ये जगत् ईश्वरको बनायो हे याही पक्षको सभामें अनेक प्रमाणनसों तथा युक्तीनसों कुशल विद्वाननकें संग दृढ करकें बोलते ॥७३॥ ओर अपने भाईके मुखतें निकसी जो क्रम जटा घनकी पदावली वाकों बुद्धिहीसों उलटों पढने तब आपको लोग बालसरस्वती कहते ॥ इति कौमारचरित्रम् ॥ ७४ ॥ पीछें भट्टजीनें गर्भसों आठवे वर्ष चैत्रमासमें ज्योतिषीनके बताये अच्छे दिनमें यज्ञोपवीत करवेके लियें पहलेसों योग्य तैयारी करी ॥ ७५ ॥ पहलें अपने पुरोहित

गणपतेर्गणकस्य च पूजनं प्रथमत स विधाय तत परम् ॥
निजनिकेतनशोधनमडनंदलनकंडनसग्रहमारभत् ॥ ७७ ॥
अथ समागतबंधुजनान् गुरून् निजसुहृद्बुधवर्य्यगणानपि ॥
समुचितेरुतसाधुसपर्यया परिचचार तदिष्टसमर्पणे ॥ ७८ ॥
समकरोदय सजवने विदां क्रतुकलापविनिश्चयनिर्णयम् ॥
बुधवरे स्वभने स्वपुरोधसा गुरुवरोनिजवृद्धसतीजने ॥ ७९ ॥
महति कर्मणि वृद्धगणेश्वरार्चनविधिं स चकार यथाविधि ॥
विहितमगलमज्जनमडना समभवन् महिला स्वयमर्भका ॥८०॥
अथ घनानिलकेतुसमुद्भवाद्यखिलविघ्ननिवारणकाम्यया ॥
निजमतेन पुरोहितपूजनादिविधिमप्यचरञ् जरठांगना ॥ ८१ ॥
वरवधूगणमंगलगायनानकसमर्चनवादनत परम् ॥
अमरकद्रुमधिरोपणकादिक विदधुरस्य गृहे महिलाजना ॥ ८२ ॥

बन्धु सुजननकों पत्र लिख्यो जो हमारे पुत्रके उपनयनमें अमुक दिन आप पधारेंगे इत्यादि ॥ ७६ ॥ पीछें गणपति तथा ज्योतिषीको पूजन करकें मकानको शोधन मडन करकें धान्यनके दरवे कूटवेकी तैयारी करी ॥ ७७ ॥ ओर आये भये बन्धुजन गुरुजन मित्र पडित इनकों योग्य सत्कार उचित देकें अच्छी सेवा करी ॥ ७८ ॥ पीछें ऑगणमें विद्वाननकों सम्बधीनकों पुरोहितकों वृद्ध स्त्रीनकों बोलायकें बेठाये ओर उपनयनसम्बधी सबकार्यनको निश्चय कियो ॥ ७९ ॥ या बडे कार्यमें बडे गणेशको स्थापन कियो तामें यथाविधि स्त्रीगण सब मगलस्नानादि कर अच्छे वस्त्र आभूषणनको धारण करती भई ओर बालकननें भी धारण किये ॥ ८० ॥ वृद्धस्त्रीननें मेघ आंधी आदि विघ्नके निवारणके लिये कुलाचारप्रमाण पुरोहित पूजन आदि कर्म किये ॥ ८१ ॥ श्रेष्ठ स्त्रीनके मगलगान पूजन बाजा आ-

कृतविनायकपूजनतः परं निशि चकार परिभ्रमणोत्सवम् ॥
निजजनैः कुलदारजनैः सह विविधवादननर्तनगायनैः ॥ ८३ ॥
धृतनवाम्बरभूषणमंडनाः कुलजनामहिलाश्च चकासिरे ॥
सकलमेवपुरंनिजकौतुकात्प्रकृतहर्षमनुक्षणमादधत् ॥ ८४ ॥
विहितमंडितमडपवेदिकः कृतपुरोहितऋत्विगसौवुधः ॥
सकलविघ्नहरं करणं मुदा ग्रहमखं स चकार विदां वरैः ॥ ८५ ॥
अथ स वृद्धिदिनात् प्रथमे दिनेनिजनिमंत्रणकर्ममहोत्सवम् ॥
समकरोन् निखिलैरपि भूषिते निशि सुनर्तनगायनवादनैः ॥ ८६ ॥
सदरुणोदयसंक्रमतः पुरा स प्रतिबुध्य समारभताह्निकम् ॥
विरचितां नवमंडपवेदिकामुपससार पदार्थनिरीक्षणे ॥ ८७ ॥
समुपवीक्ष्य कृतां क्रतुसंभृतिंनिजजनं च निभाल्य कृताह्निकम् ॥
कृतनिमज्जनमंगलमंडनः समहिलः ससुतोऽभ्यगमत् सभाम्॥८८ ॥

दिके पीछें इनके घरमें स्त्रीननें अंकुरारोपण कियो ॥ ८२ ॥ और गणेश पूजनके पीछें रात्रिमें अपने कुटुम्बीजन तथा कुलकी स्त्रीजन अनेक प्रकारके बाजे गाजे नाच आदिके संग विनायकी निकालते भये ॥ ८३ ॥ तामें नवीन वस्त्र भूषणनकों धारण किये पुरुष तथा स्त्रीजन शोभते भये और सब नगर आश्चर्यसों हर्षित भयो ॥८४॥ भट्टजी अच्छे विद्वाननसों मंडपवेदीकों कराय कें पुरोहित ऋत्विज आदिकों यथाक्रम वरण कर सब विघ्नके दूर करवेवारी ग्रहशान्ति करते भये ॥ ८५ ॥ और वृद्धिके पहले दिनमें वृद्धिनिमंत्रणको महोत्सव रातमें गाजेबाजेसों कियो ॥ ८६ ॥ पीछें अरुणोदयसों पूर्व उठकें आह्निक करकें नवीन मंडप वेदीके पास पदार्थ देखवेकों गये ॥८७॥ सो सब धरी सामग्रीकों देखकें आह्निकसों निवृत्त आत्मीय जननकों देखकें पीछें आप मांगलिकवस्तुनकों धरायकें सस्त्रीक पुत्रके सहित वृद्धिसभाकों

बुधवरान्निजवन्धुजनान् गुरून् निजसमाह्वयत समुपागतान् ॥
ससुपसृत्य कृतादरवदनात् स हि चकार वरासनवेशितान् ॥ ८९
कुलपुरोहितमग्रसरं महासनगतं मखिविष्णुचितं व्यधात् ॥
अथ स कर्म सदः समनुज्ञयारभत सद्गुना सह भार्यया ॥ ९० ॥
प्रथमतोधिकृतेरिह सिद्धये ह्यकृत कृच्छ्रविधिं द्रविणेन सः ॥
निजवटोरपि तं गुरुशासनात् समचरद्व्यवहारप्रसिद्धये ॥ ९१ ॥
अथ समंगलमंत्रगणं वदन्नुपनयस्य स सकलन व्यधात् ॥
गणपतिं वरुणं च समर्च्य वै ह्यकृत वृद्धसदाशिषवाचनम् ॥ ९२ ॥
गुरुवरोयच मंडपदेवता शिखिदिशः क्रमतोर्चितवान् स्वयम् ॥
रजनिकांजिततंदुलशाक्षतादिभिरयं खलु नंदनिकामुखाः ॥ ९३ ॥
इह विधाय स वास्तुसमर्चनं प्रचकलेंकुरवापनमुत्तमम् ॥
प्रतिसरं च समर्च्य सकूर्चकं समकरोत्सदिडावचनान्यपि ॥ ९४ ॥

भये ॥ ८८ ॥ वहाँ अपने निमंत्रणसों आये विद्वान निजबन्धुजन गुरुजन इनके पास जायकें आदरसों नमस्कार करकें उनकों अच्छे आसननपे बेठाये ॥ ८९ ॥ ओर कुलके पुरोहित,याज्ञिक विष्णुचितको आगे बडे आसनपे बेठायो ओर सभ्यजननकी आज्ञासों स्त्रीबालकके सहित कर्म करवेको प्रारम्भ कियो ॥ ९० ॥ पहले अधिकारसिद्धिके लिये द्रव्यसों कृच्छ्र विधिकों कियो ओर गुरुपुरोहितकी आज्ञासों व्यवहारकी रीतसों अपने बालकसोंभी करायो ॥ ९१ ॥ पीछें मांगलिकमन्त्रनकों पढते गणपति वरुणको पूजन कर वृद्ध आशिष वाचन भयो ॥ ९२ ॥ दीक्षितजीनें मंडपदेवता दिग्देवता इनकों क्रमसों पूजन कियो ओर पीछें अक्षतनसों नंदनिका आदिकनकों ॥ ९३ ॥ वास्तुपूजन करकें उत्तम अंकुरार्पण कियो प्रतिसर कूर्चकको

समहिलोधृतनूतनिशाम्बरः कुलतरुं कणिजाख्यमपूजयत् ॥
समतनोदथमातृसमर्चनं स च घृतेन वसोरपि धारिकाः ॥ ९५ ॥
पितृगणस्य सदाभ्युदयं तदा समकरोदिह गोस्तनिकादिभिः ॥
कनकदानसमर्हणभोजनैः स हरयेऽर्पितवान् स्वकृतिं ततः ॥ ९६ ॥
अथ महार्हसुभोजनतोजनः सकलएव शुभे मखिनार्चितः ॥
विविधमंगलगायनवादनैर्विहितदीपकरंगलतादिषु ॥ ९७ ॥
तदनुभोजनतः परितोषिते निजजनेऽन्यजनेपि समागते ॥
गुरुवरः क्रमुकादिकदानतः समकरोदनुरंजितमात्मनि ॥ ९८ ॥
निशि चकार स संजवनं वरं बुधवरैः स्वजनैर्गुरुभिः श्रितम् ॥
तदवरोधगतैर्ललनाजनैर्विहितमेभिरिदं कृतमंडनैः ॥ ९९ ॥
अथ शुभासनमध्यगयोरधिजनकयोः कृतमंडनयोर्वटुः ॥
धृतमहार्हनवांशुकभूषणोहरिरिवाससवालकविग्रहः ॥ १००

पूजन कर इडावाचन कियो ॥ ९४ ॥ नवीन हलदीके रंगे वस्त्र धारण किये स्त्रीपुरुष कुलवृक्ष कणिजको पूजते भये पीछें मातृकापूजन कियो घृतसों वसु धारा करी ॥ ९५ ॥ पितरनको आभ्युदयिक नान्दीमुखश्राद्ध दूर्वासों कियो सुवर्णदान पूजन भोजन इनसोंबी उनकों तृप्त कियो पीछें भगवान्के लियें अपनी कृतिको अर्पण कियो ॥ ९६ ॥ ओर बडे सुंदर भोजननसों उत्सवमें दीक्षितजीनें सब मनुष्यनको तृप्त कियो, अनेकप्रकारके गायन बाजनसों ओर दीपक रंग लता आदिसों ॥ ९७ ॥ भोजननसों तुष्ट किये अपने जननकों ओर आये भये दूसरे जननकोंबी दीक्षितजी सुपारी पान आदिके दानसों प्रसन्न करते भये ॥ ९८ ॥ ओर रातमें चौक पंडितनसों कुटुम्बीजननसों गुरुजननसों शोभित भयो ओर चौकके ऊपरके कोठानकों आभूषणनसों भूषित स्त्रीजननें शोभित कियो ॥ ९९ ॥ पीछें सुंदर आसनपें बेठे आभूषणादिकनसों भूषित जो माता पिता हें उनके बीचमें नवीन बहु मूल्य वस्त्र ओर

भगिनिकाश्शुभगास्तिलकाक्षतैस्तदनुपूगफलै कृतपूजन ॥
वटुमसुपरिवारितमुष्टिकंतदनुदीपवरभ्रममावहन् ॥ १०१ ॥
परिततर्प सुवर्णसमर्पणे स्वसहजे निजबधुकुलोद्भवा ॥
वटुरयचकलाकुशलानुत विविधनर्तकगायकवादकान् ॥ १०२ ॥
प्रथममेवगुरोस्तिलक ततोनिजगुरोर्विदुषां स्वजनस्य च ॥
समभवत्सदसश्च सदक्षिणं तदनु पारिछुवर्हसमर्पणम् ॥ १०३ ॥
अथसमातुलमंदिरतोऽचितश्वशुरकेतनतोऽस्यचबन्धुत ॥
अधिगतवरपारिनुबर्हक सहानिजैरुररीकृतवान् गुरु ॥ १०४ ॥
महति वृद्धिमहोत्सवके गतोन विमुखोऽन्यजन स्वजन कुत ॥
अथ गुरोः पुरवासिजनोऽखिलस्त्रिभुवनांचितकीर्तिमगायत॥१०५॥
एव वृद्धिमहोत्सव सविधिना सम्यग्विधायोत्तमम्
श्रीमल्लक्ष्मणदीक्षितोऽथनियमान्नादीविधेरादधे ॥

भूषणनको धारण किये बैठे बालकरूप आप हरि जैसें शोभते भये ॥१००॥ सौभाग्यवती भगिनीननें तिलक कियो अक्षत लगाये ओर सुपारी हाथमें देकें मुठियावारक आरती उतारी ॥ १०१ ॥ तब सुवर्णकी मुद्रा देकें अपनी सगी भगिनीनकों तथा ओरबी भगिनीनकों प्रसन्न कियो पीछें कलाकुशल नट अनेक नाचबे गायबे बजायबेवारेनकों देकें तृप्त कियो ॥१०२॥ पहले आचार्यके तिलक कियो फिर अपने गुरुनकें जातिवारेनकें विद्वाननकें ओर सभाकी दक्षिणादीनी पीछें पहेरावनी दीनी ॥ १०३ ॥ पीछें सदूभीनें मातुलके घरतें श्वसुरके घरतें बन्धुनके घरतें आई भई पहेरावनीनकों अपने जननके सहित स्वीकार कियो ॥१०४॥ या बडे भारी वृद्धिके महोत्सवमें दूसरोंबी जन कोई विमुख न गयो स्वजन तो केसे जाय यातें काशीमें रहवेवारे सब मनुष्य त्रिभुवनमें जायवेवारी इनकी कीर्तिको गान करवे लगे ॥ १०५ ॥ याप्रकार वृद्धि उत्सव अच्छीतरहसों करकें श्रीमान् लक्ष्मणदीक्षितजी नान्दीविधिके नियमनकों पालते भये ठंडे जलसों स्नान प्रति-

शीतांभोविनिमज्जनं प्रतिदिनं ब्रह्माद्ध्वरादिक्रियाः
पर्य्यंकादिनिषेवणं न विदधे चामंडपोत्थापनम् ॥ १०६ ॥
श्रीवेदव्यासविष्णुप्रभुचरणमिते संमिते ग्रंथसार्थैः
श्रीगोविंदाभिधानां समयनयविदां देशिकानां निदेशात् ॥
आचार्य्याणां चरित्रे हरिजनसुखदे शास्त्रिकृष्णैर्निबद्धे
प्रस्थाने दिग्जयाख्ये समजनि पटहः पंचमश्चादिमेऽस्मिन् ॥१०७॥

श्रीवल्लभं हृदि निधाय विधाय सम्यक् श्रीवल्लभात्मचरणाम्बुजयोः प्रणामम् ॥ श्रीवल्लभस्य कथये व्रतबंधदीक्षां कृष्णोवसंततिलकामिह साधुवृत्तैः ॥ १ ॥ प्रातः प्रबुद्ध्य महिला दयितं प्रबुद्धं श्रीलक्ष्मणाऽर्यमखिनं प्रणता समीक्ष्य ॥ तस्य प्रबोधसमयोचितकार्यजातं धौतांघ्रिहस्तवसनादरतश्चकार ॥ २ ॥

दिन करनों यज्ञादिक करने पलंगमें सोनो नहीं इत्यादि मंडपोद्वासनपर्य्यन्त किये ॥ १०६ ॥ समयनीतिके जानवेवारे जगद्गुरु श्रीगोविन्दाचार्यजीमहाराजकी आज्ञासों श्रीमद्वेदव्यासविष्णुस्वामिमतके अनुकूल कृष्णशास्त्रीके किये भगवद्भक्तनके सुख देवेवारे या आचार्यजीके चरित्रग्रन्थमें प्रथमप्रस्थानमें ये पंचम पटह समाप्त भयो ॥ १०७ ॥

श्रीवल्लभाचार्यजीकों हृदयमें अच्छीतरहसों धरके ओर उनके चरणकमलनमें प्रणाम कर उनकी वसन्तऋतुमें तिलकरूपी भई जो यज्ञोपवीतकी दीक्षा ताकों कृष्णकवि में अच्छी वसन्ततिलकाछन्दसों कहत हूं ॥ १ ॥ सबेरे महिला यल्लमाजी जागकें जागे भये पति याज्ञिक श्रीलक्ष्मणार्यकों देखकें प्रणाम करती भई ओर हाथ पांव धोयकें वस्त्र पलटकें उनकें जागवे समयके कार्यसमुदायकी आदरसों

श्रीलक्ष्मणोऽपि कृतशुद्धिरथासनस्थो ध्यानं गुरोर्मुरभिदो विद
धे स्तुतिं च ॥ गत्वा बहिर्विहितशौचविधिर्यथावत् स्नातो गृहे
प्रकृतमाह्निकमाचचार ॥ ३ ॥ संबोधितेषु सकलेषु जनेषु
सम्यक् कार्य्येष्वपेक्षिततरेषु कृतेषु गेहे ॥ स्नाता भृतांबरविभूष
णमंगलाभ्यां स्नातीषु चान्यमहिलासु कृताह्निकाऽभूत् ॥ ४ ॥
सर्वो जनोऽपि विहिताह्निकसत्कृतात्मा सत्कृत्य वाऽथ सदनं
मिहिरोदयात्प्राक् ॥ जातेऽग्निहोत्रहवने हरिपूजनेय चाकारयद्ब
रुवर विदुष स्वकीयान् ॥ ५ ॥ प्राप्तेषु वैदिकवरेषु निवशितेषु
वृद्धासने निजजनेऽपि समागते च ॥ सम्यक् प्रणम्य स गुरुं प्रव
रासनस्थ कृत्वा ननाम सकलान् निजवंदनीयान् ॥६॥ भद्रासने
समहिल सवटुर्निषण्णो विज्ञाप्य सर्वसदसोनुमतो गुरून् स ॥
सन्मंगलाचमनसंकलनानि चक्रे चोलोक्तवापननयात्सुतमुंडनं च

तैयारी करती भई ॥ २ ॥ श्रीलक्ष्मणभट्टजीवी शुद्धि करके आसनपे बैठके
गुरुको ध्यान और भगवानकी स्तुति कर बाहेर जायके यथोचित शौच-
विधि करके स्नान करके घरमें आह्निक करते भये ॥ ३ ॥ और सब
मनुष्यनके जागतेही घरमें आवश्यक कार्यकों कर स्नान करके वस्त्र धारण
कर भूषणनसें मंडित होय दूसरी स्त्रीनके स्नान करतेही यल्लमाजीनें अपने
आह्निककों कर लियो ॥ ४ ॥ और अपने २ आह्निकसों सब मनुष्य
निवृत्त होयके वस्त्रादिक धारण कर सूर्योदयसों पहलेही मंडपस्थलको
सत्कार करते भये और दीक्षितजीवी अग्निहोत्र तथा श्रीठाकुरजीकी सेवा
करके पुरोहित और सभ्यधीनकों बुलावते भये ॥ ५ ॥ पीछे आये भये
वैदिकनकों बैठायके आत्मीयनकों बडे आसनपे बैठावते भये और अच्छे
आसन पें बैठें गुरुनको प्रणाम कर सब अपने बडेनको नमस्कार कियो
॥ ६ ॥ और पीले वस्त्रसों आच्छादित पट्टापर स्त्री और पुत्रसहित आप

॥ ७॥ पित्राभिमृष्टक्षुरवरेण च मंत्रितेन बालस्य वापनमकार्य्यथ नापितेन ॥ एका शिखा शिरसि धूमलतेव वह्नेर्वह्नेर्धृतद्विजतनो रचिता चकाशे ॥ ८ ॥ तं बालकं कुलभुवोऽस्य ततो भगिन्योऽभ्यस्नापयन् सदसि मंगलमृद्धटीभिः ॥ स्नातं धृतांबरयुगं च ततो जनन्या संभोज्य सार्द्धमथ ता व्यदधुर्विशुद्धम् ॥ ९ ॥ बालस्ततो गुरुवरानुमतः पुरस्तात् तातस्य सोविशदलं शुशुभे सभायाम् ॥ अंतःपटे निजजनैर्विहितेऽभ्रसंघे सायं सुधाकर इवानु दिवाकरस्य ॥ १० ॥ गीतेषु मंगलपदेषु कुलांगनाभिः पद्येषु चाशिषइतोऽस्य च भट्टडिंभैः ॥ प्राप्तेऽथ शोभनलवे गणकैः प्रदिष्टे जातं पटापनयनं वटुमंगलाय ॥ ११ ॥ बालस्य मूर्द्ध्नि गुरुणाक्षतराशिराशीर्मंत्रैर्न्यधायि वटुनापि गुरोस्तथांघ्र्योः ॥

बैठकें सब सभ्यनसों विज्ञप्ति कर उनसों अनुमत होयकें मंगलाचमन करकें चौलमें कही रीतिसों पुत्रकों मुंडन कियो ॥ ७ ॥ पितातें स्पर्श कियो गयो ओर अभिमंत्रित कियो गयो जो क्षुर हे तातें पीछें नाईनें मुंडन कियो ओर धारण कियो हे ब्राह्मणको रूप जिननें एसे अग्निदेवके मस्तकपे अग्निकी धूमलता जेसी एक शिखा शोभती भई ॥ ८ ॥ पीछें उन बालककों कुलमें उत्पन्न भगिनीगण सभामें मंगलमृद्घटी (गडगडी) सों स्नान करावती भई स्नान किये दो वस्त्रनकों धारण किये बालककों माताके संग भोजन करायकें फिर शुद्धस्नान करावती भई ॥ ९ ॥ पीछें आचार्यकी आज्ञासों पिताके आगें सभामें विराजे ओर निजजननें अन्तः पट कियो तब वे बालक केसे शोभते हे जो मानों सन्ध्यासमय मेघमें सूर्य्यास्त पीछे चन्द्रमा होय ॥ १० ॥ कुलांगनानके मंगल पद गावतें भट्टजीनके बालकनके मंगलमय श्लोकनकों पढतें ज्योतिषीनके बताये अच्छे मुहूर्तके आयवेपे बालकके मंगलके लिये अन्तःपटकों दूर कियो ॥ ११ ॥ बालकके मस्तकपे गुरूनें मन्त्रनसों

पुत्रं गुरुस्तदनुमेखलयोपवीतकौपीनदण्डमृगचर्मधरं चकार ॥१२॥बालोप्युदङ्मुखतयोपविवेश वृष्या ब्रह्मोपदेशमकरोद्गुरु लक्ष्मणोऽस्मै ॥ पच्छोर्द्धशश्च सकलं सवितुर्मनुं तं पात्रे विलिख्य च तथा श्रवणे दिदेश ॥ १३ ॥ य· सम्प्रदायगुरुविष्णुमुनेश्च यज्ञनारायणान् मखिवरान् मनुरागतो य ॥ प्रेमाकराद्यतिवरादपि गोपभर्तुस्त त दिदेश स पृथक् मनुमस्य तात ॥ १४ ॥ मंत्रोपदेशमनुस स्वगुरुं ववंदे तस्योपढौकितमधाच्चपदाब्जयोर्गाम् ॥ सा स्वर्णगोर्गुरुवरेण पुरोधसेऽस्मै श्रीविष्णुचिन्मख कृते सधराभिदत्ता ॥ १५ ॥

इति यज्ञोपवीतदीक्षाप्रकरणम् ।

कृत्वाऽभिवदनमथो जननीं स्वसारं मातृष्वसारमपि भिक्षितवान् स तातम् ॥भिक्षोत्सवश्रवणतोभिगतान् यथार्हमार्य्यानयाचत यथा बलिमादितेय ॥ १६ ॥ विद्वत्सभासु स चकाश वटुर्व्रत

अक्षत डारे बालकनेंभी गुरुके चरणनमें डारे एसे बालककों गुरुनें मेखला मूंजकी तिलरी रस्सी जनेऊ कौपीन दंड मृगचर्म धारण कराये ॥ १२ ॥ आसनपे उत्तरमुख बैठे बालकके कानमें गुरु लक्ष्मणभट्टजीनें पाद अर्ध पूर्णरूपसों गायत्रीमन्त्रकों पात्रमें लिखकें उपदेश कियो ॥ १३ ॥ ओर सम्प्रदायकें गुरु विष्णुस्वामी यज्ञनारायण याज्ञिक प्रेमाकर सन्यासी त्रिदंडी इनकी परम्परासों जो मंत्र प्राप्त भयो हो वो गोपालमंत्र अलग आपकों उपदेश कियो ॥१४॥ मन्त्रोपदेशके पीछें आपनें गुरुकों नमस्कार कर ओर चरणकमलनमें सुवर्णकी गौ भेट करी या गौकों पितानें याज्ञिक विष्णुचितकों पृथिवीसहित दे दीनी ॥ १५ ॥ इतियज्ञोपवीतम् ॥ पछिं माताको प्रणाम करकें माता भगिनी मौंसी पिता ओर भिक्षाके उत्सवकों सुनके आये जो श्रेष्ठजन हैं उनसों यथायोग्य भिक्षा माँगी जेसे वामनजीनें बलिसों माँगी ही ॥ १६ ॥ कौपीन दंड मृगचर्म यज्ञसूत्रकों धारण किये व्रती वे वटु आसुरशासनकों

स्थः कौपीनदंडहरिणाजिनयज्ञसूत्रैः ॥ दूरीकरिष्णुरिव चासुर शासनानां विष्णुर्नु तीर्थवरमुत्प्रकटीकरिष्णुः॥ १७ ॥ तस्यानने ननु निसर्गतयाऽऽस्थिताभा ब्राह्मी स्वसंस्कृतिवशान्मणिवत्तसुशाणात् ॥ लोकस्य शोकहतये भवितव्यभावसंभावुकानि पुरतः खलु संभवंति ॥ १८ ॥ देवस्य पुण्यचरितस्य पिनाकपाणेर्लोकत्रयीविदितपावनपत्तनेऽस्मिन् ॥ हर्षो महर्षिगणमानसमानसेऽस्य यस्मान्मतं पुरभिदोभिमतेऽभविष्यत् ॥ १९ ॥ देवोत्तमास्तुतुषुरस्य हुताशनस्य दीप्त्या भविष्यति यतोध्वरसत्प्रवृत्तिः ॥ एवं महर्षिनिचया निगमाध्वरक्षां संभाव्य तिष्यहतितः सुजना ननन्दुः ॥ २० ॥ भिक्षां ततः स्वगुरवे विनिवेद्य चक्रे वक्रे निशो निगमसूत्रमतां स्वसंध्याम् ॥ तस्मादनुप्रवचनीयसमा

दूर करते सभामें गंगाकों प्रकट करते विष्णुके जेसे शोभते भये ॥ १७ ॥ जेसे मणि सानतें शोभेहे तेसेंहीं इनके मुखारविन्दमें स्वभावहीसों रहवेवारी दीप्तिसों ब्राह्मी विद्या लोकके शोकको दूर करवेके लियें शोभती भई क्यों जो होयवेवारे कल्याण चिह्न पहलेही होय हें ॥ १८ ॥ पुण्यचरित पिनाकपाणि देव महादेवजीकी तीनों लोकनमें प्रसिद्ध पवित्र काशीपुरीमें रहवेवारे महर्षीनके मनमें हर्ष व्याप्त होयगयो क्यों जो ये त्रिपुरारिसम्प्रदाय विष्णुस्वामि सिद्धान्तके प्रवर्तक होंयगे ॥ १९ ॥ ओर देवगणभी इनके अग्निके प्रकाशसों यज्ञनकी प्रवृत्ति होयगी यातें तुष्ट भये याही प्रकार महर्षिगण ओर सुजनभी कलियुगसों वेदमार्गकी रक्षा होयगी या सम्भावनासों प्रसन्न भये२० ॥ पीछें भिक्षाकों अपने गुरुकों अर्पणकर सन्ध्यासमय अपने वेदसूत्रके अनुसार अपनी सन्ध्याकों कियो ओर होमकों कर ब्राह्मणनकों भोजन करायकें अपने कुलवारेनके संग भोजन करते भये ताम्बूलादिक नहीं खानों पृथिवीपर सोनों

रल्यहोम सभोज्य बाडववरान् बुभुजे स्वकीये ॥ २१ ॥ क्षारादि वर्जनमुखानि वटुव्रतानि पालाशदंडमृगकृत्तिवराणि दध्रे ॥ औपासनं परिचचार गुरुं च भक्त्या विष्णु समर्च्य विदधेऽनुसव च स ध्याम्॥२२॥नीराजनद्विजसमर्चनदक्षिणादिर्मौञ्ज्युत्सवे समुचितस कलं विधाय ॥ गधर्ववारवनिताजनतास्तथान्यास्सतोषितास्समुप जीविजना निजेष्टै ॥२३॥श्रीवल्लभस्य मखसूत्रमहोत्सवेऽस्मिन् मानैर्धनैरपि कुलैर्निजविद्यया च ॥ प्रख्यापिता समभवन् मुदिता श्च सर्वे वृदारका अपि कुतो न नरा न नार्य्यः ॥ २४ ॥ यज्ञोपवी तदिनतोऽधिगतेऽह्नि तुर्ये मेधाजने कृतिरकार्य्यथ दीक्षितेन॥कृ त्वोद्भवं मधुविध किल पचमेऽह्नि सार्द्धं सुरैश्च विससर्ज स मंडप तम्॥२५॥ बालस्ततोगुरुगृहं पठितु प्रयात श्रीविष्णुचित्रिजय जूंपि तमादिदेश ॥ भुञ्जन् स्वकेष्वधिगतानि च भैक्षितानि

पालाश दंड मृगचर्म आदिको धारण करनो आदि ब्रह्मचर्यव्रतकों पाल्ते औपास न करते भक्तिसों विष्णुकी सेवा त्रिकाल सन्ध्योपासन करते भये॥ २१॥ २२ ओर दीक्षितजीनें यज्ञोपवीतकेउत्सवमें ब्राह्मणपूजनभोजन दक्षिणा आदि उचित सब करकें नाचवे गायवे तथा ओर जो विद्योपजीवी हे उनकों सन्तोप कियो ॥ २३ ॥ श्रीवल्लभजीके या उपवीतोत्सवमें मानसों धनसों उचित सत्कारसों देवगणवी आनन्दित भये फिर दूसरे मनुष्य स्त्रीगण क्यों न होयगे ॥ २४ ॥ यज्ञोपवीतके दिनते चौथे दिनमें दीक्षितजीनें मेधाजनकी विधि करी ओर भडो उत्सव करकें पांचवें दिन देवतानके सग मडपको विसर्जन कियो॥ २५॥ पीछें बालकरूप श्रीवल्लभजी गुरुके घर पढवेके लियें गये उनकों श्रीविष्णुचित्र् गुरुने अपनो यजुर्वेद पढायो ओर आप अपनें लोगनसों मिली भिक्षाकों ' अर्पण करते ओर उनकी आज्ञासों आपची भोजन करते अपनी

स्वादेशकाय च ददत् समगात्स्वशाखाम् ॥ २६ ॥ गुर्वग्निवि
ष्णुपदपूजनतत्परस्य शाखाऽतिपेशलतरा ननु तैत्तिरीया ॥
यद्वाक्यतेर्वदनतः परिपठ्यमाना कांतेव कांतकृतमानमिता च
काशे ॥ २७ ॥ ब्रह्मांजलेर्विवृतिमुद्रिकयासनाभ्यां व्यक्तस्तयोः
समभवद्गुरुशिष्यभावः ॥ पाठे तु वैदिकसदः प्रतिवादिवादि
प्रख्यौ समीक्षणकृतासुपलक्षितौ तौ ॥ २८ ॥ दध्रे पदक्रमज
टादि सकृत्प्रयुक्त्या युक्त्येतरांगमपि यत्तदुपांगजातम् ॥ संतोष्य
तं गुरुवरं द्रविणेन भक्त्या बुद्ध्या ततप जनकं विदुषो वटूंश्च
॥ २९ ॥ स्वां संहितामधिगतं स्वसुतं विलोक्य शाखांतरं च
यजुषः परिपाठ्य तस्मात् ॥ ऋक्सामपाठनकृते स तिरुंमलाय
दीक्षावतेऽथ समयाचत लक्ष्मणार्य्यः ॥ ३० ॥ तस्मै गुरुः क
थितंशिष्यगुणाकराय दांताय दिव्यप्रतिभाभरभाषिताय ॥ यद्य

शाखाकों पढी ॥ २६ ॥ गुरु अग्नि विष्णु इनके पूजनमें तत्पर जो वाक्पति
हें उनके मुखतें पढी गई तैत्तिरीशाखा कान्ताके समान पतिसों मानकों पायकें
मानों शोभती भई ॥ २७ ॥ ब्रह्मांजलि ये पढवेकी मुद्राको नाम हे विवृति
ये पढायवेकी मुद्राको नाम हे इन दोनोंनतें ओर उच्च नीच आसननतें उन दोनों
नमें गुरुशिष्यभाव जान्यो जातो हो पाठमें तो देखवेवारेनको वादी प्रतिवादी
जेसे लगते ॥ २८ ॥ एकही वारके कहवेसूं पद क्रम जटा आदि पढ लिये
ओर युक्तिसों ओर बी उनके अंग सीख लिये गुरुकों द्रव्यसों पिताको भक्तिसों
बुद्धिके वैभवसों विद्वान्बालकनकों सन्तुष्ट किये ॥ २९ ॥ अपनीसंहिताको
पढे भये पुत्रकों देखकें यजुर्वेदकी दूसरी शाखानकों उन्ही गुरुसों पढायकें
ऋग्वेद सामवेदके पढायवेके लियें लक्ष्मणभट्टजीनें तिरुम्मलदीक्षितसों याचना
करी ॥ ३० ॥ गुरु तिरुम्मलजीनें छात्रगुणनके आकर शुद्ध दिव्यप्रतिभातें
भर्यो हे भाषण जिनको एसे इन बालकके आगे जो जो पढ्यो वाकों

द्रमाण पुरत सकृदेकश्रुत्या तत्तत्तदेव सजगाद तिरुमलाग्रे ॥ ३१ ॥ ऋक्सामयो स लघुना समयेन माल पारायणस्य परपारमियाय सम्यक् ॥ आथर्वणं निजरहस्ययुत समग्रं तद्ब्राह्मणोपनिषदो जनकात्पपाठ ॥ ३२ ॥ चर्चासु चर्चकतया श्रुतिपाठकानां सलक्षित सकललक्षणशास्त्रवेत्ता ॥ सोपांगसागनिगमागमलक्षणानि यस्याननं निजपद विदधुर्निसर्गात् ॥ ३३ दिग्ग्रथपाठनचणान् स विधाय शिष्यान् दत्वा वर गुरुतिरुमलदीक्षिताय ॥ पित्रोर्मुद चरणयो प्रणतोऽथ चक्रे चक्रेऽखिल श्रुतिविदां स बभूव शक्र ॥ ३४ ॥ नारायण बुधवर जनकोऽभिश्रुत्य पुत्रस्य पाठनकृते निपुणं ययाचे ॥ भद्राय भट्टप्रवर प्रणतोऽथ तुष्ट प्रोवाच साध्विति वचोयशसेप्यभीष्टम् ॥३५॥ नत्वा गुरु विवरणे सह पाणिनीयं सूत्रं पपाठ फणिभाषितभा

एकही बार सुनकें वाही प्रकार उनके आगे आपनें पढ दियो ॥ ३१ ॥ ओर ऋक सामके पर पारकों थोरेही समयमें अच्छीतरहसों ये गये ओर रहस्यसहित सम्पूर्ण अथर्वण वेद याके ब्राह्मण उपनिषदनकों पिताहीसों पढे ॥ ३२ ॥ वेद पढवेवारेनकी चर्चामें बडे चर्चा करवेवारे सब शास्त्रनके वेत्ता हैं ये चर्चा जिनकी भई जिनके मुखकों स्वभावहीसों निगम आगम अग उपाग इन सबननें अपनो स्थान बनायो ॥ ३३ ॥ वेदके दशग्रन्थनके पढवेमें प्रसिद्ध एसे बहुत शिष्यनको बनायकें गुरु तिरुम्मलदीक्षितजीकों गुरुदक्षिणा देकें चरणनमें प्रणाम करके पिताकों आनन्दित कियो ओर आप सम्पूर्ण वेदके जानवेवारेनमें शक्र इन्द्र होते भये ॥ ३४ ॥ पीछें पितानें नारायण नामके बडे पडितकों सुनकें पुत्रके पढायवेकें लियें उनसों याचना करी सो प्रणाम किये गये ऐसे उननें भट्टजीसों अपने यशके लियें कही जो ठीक हे ॥ ३५ ॥ तब गुरुकों नमस्कार करकें पहले भाष्यसहित पाणिनीयसूत्र

ष्यमादौ ॥ भूयोक्षपादकणभुङ्मतयोः प्रशस्तपादीयभाष्यमु
खवृत्तिमहानिबंधान् ॥ ३६ ॥ पातंजलप्रवचनागमयोश्च भा
ष्ये तौतातिकस्य स गुरोर्निखिलागमाँश्च ॥ शारीरकागममतानि
सशांकराणि नारायणाद्गुरुवरात्स तदा प्रपेदे ॥ ३७ ॥ साम्नः
सहस्रचरणैः प्रथितस्य शाखा याः काश्चन प्रचलिताः सह तन्नि
बंधैः ॥ एतस्य चोपनिषदोपि तदाननाब्जाद्गेजेऽस्य
प्रश्नत उदुत्तरतोऽपि तोषम् ॥ ३८ ॥ ज्योतिर्मुखेपि
निगमांगगणेऽथ काव्यसाहित्ययोश्च सकलासु कलासु सारम् ॥
शालासु तासु पठतां मठवासिविज्ञविद्यार्थिनां सपरिचिंतनया
जजान ॥ ३९ ॥ श्रीमाधवेन्द्रयतितोप्यथ पूर्णप्रज्ञरामानुजार्यवि
हिते श्रुतिसूत्रभाष्ये ॥ अन्यानि वैष्णवमहर्षिसुदर्शनानि शां
डिल्यसूत्रप्रमुखानि पठन् ददर्श ॥ ४० ॥ श्रीलक्ष्मणान्निज
गुरोर्हरसंप्रदायिश्रीविष्णुनाथयतिराजगिरां रहस्यम् ॥ स्वांते नि

अष्टाध्यायीकों पढे पीछें गौतमकणादके प्रशंसनीय भाष्यादिक ग्रन्थ पढे ॥ ३६ ॥ योग ओर सांख्यशास्त्रनके भाष्यनकों मीमांसा ओर सब आगम शंकरमतके शारीरक आदि ग्रन्थनकों गुरूनमें श्रेष्ठ जो नारायण हैं उनसों पढे ॥ ३७ ॥ हजार शाखानसों प्रसिद्ध जो सामवेद है वाकी निबन्धन करकें सहित प्रचलित शाखा ओर वाके उपनिषदनकोवी नारायणके मुखसों पायो ओर प्रश्नोत्तरनसों उनकों तुष्ट किये ॥ ३८ ॥ ओर मठ (पाठ-शाला में रहवेवारे विद्यार्थी लोग जो ज्योतिष शिक्षा आदि अंग काव्य साहित्य कला पठते हे सो उनके पढवेसों आपको ये सब आयगयो ॥ ३९ ॥ पीछें श्रीमाधवेन्द्र सन्यासीसों पूर्णप्रज्ञ रामानुजके बनाये सूत्र भाष्य वेदभाष्यनकों पढते ओरबी वैष्णवमहर्षीनके बनाये शांडिल्य सूत्रा-दिक ग्रन्थनकों देखे ॥ ४० ॥ ओर निजगुरु श्रीलक्ष्मणभट्टजीसों त्रिपु-

द्र्भाण पुरतः सकृदेकश्रुत्या तत्तत्तदेव सजगाद तिरुमलाभे ॥ ३१ ॥ ऋक्सामयोः स लघुना समयेन बालः पारायणस्य परपारमियाय सम्यक् ॥ आथर्वणं निजरहस्ययुत समग्रं तद्ब्राह्मणोपनिषदो जनकात्पपाठ ॥ ३२ ॥ चर्चासु चर्चकतया श्रुतिपाठकानां सलक्षित सकललक्षणशास्त्रवेत्ता ॥ सोपांगसांगनिगमागमलक्षणानि यस्याननं निजपदं विदधुर्निसर्गात् ॥ ३३ दिग्ग्रथपाठनचणान् स विधाय शिष्यान् दत्वा वरं गुरुतिरुमलदीक्षिताय ॥ पित्रोर्मुदं चरणयोः प्रणतोऽथ चक्रे चक्रेऽखिलश्रुतिविदां स बभूव शक्रः ॥ ३४ ॥ नारायणं बुधवरं जनकोऽभिश्रुत्य पुत्रस्य पाठनकृते निपुणं ययाचे ॥ भद्राय भट्टप्रवरः प्रणतोऽथ तुष्टः प्रोवाच साध्विति वचोयशसेप्यभीष्टम् ॥३५॥ नत्वा गुरुं विवरणेः सह पाणिनीयं सूत्रं पपाठ फणिभाषितभा

एकही बार सुनके वाही प्रकार उनके आगे आपनें पढ दियो ॥ ३१ ॥ ओर ऋक सामके पर पारकों थोरेही समयमें अच्छीतरहसों ये गये ओर रहस्यसहित सम्पूर्ण अथर्वण वेद वाके ब्राह्मण उपनिषदनकों पिताहीसों पढे ॥ ३२ ॥ वेद पढवेवारेनकी चर्चामें बडे चर्चा करवेवारे सब शास्त्रनके वेत्ता हैं ये चर्चा जिनकी भई जिनके मुखकों स्वभावहीसों निगम आगम अग उपाग इन सबननें अपनो स्थान बनायो ॥ ३३ ॥ वेदके दशग्रन्थनके पढवेमें प्रसिद्ध ऐसे बहुत शिष्यनकों बनायकें गुरु तिरुम्मलदीक्षितजीकों गुरुदक्षिणा देकें चरणनमें प्रणाम करके पिताकों आनन्दित कियो ओर आप सम्पूर्ण वेदके जानवेवारेनमें शक इन्द्र होते भये ॥ ३४ ॥ पीछें पितानें नारायण नामके बडे पडितकों सुनकें पुत्रके पढायवेकें लियें उनसों याचना करी सो प्रणाम किये गये ऐसे उननें भट्टजीसों अपने यशके लियें कही जो ठीक है ॥ ३५ ॥ तब गुरुकों नमस्कार करकें पहले भाष्यसहित पाणिनियसूत्र

ष्यमादौ ॥ भूयोक्षपादकणभुङ्मतयोः प्रशस्तपादीयभाष्यमुखवृत्तिमहानिबंधान् ॥ ३६ ॥ पातंजलप्रवचनागमयोश्च भाष्ये तौतातिकस्य स गुरोर्निखिलागमांश्च ॥ शारीरकागममतानि सशांकराणि नारायणाद्गुरुवरात्स तदा प्रपेदे ॥ ३७ ॥ साम्नः सहस्रचरणैः प्रथितस्य शाखा याः काश्चन प्रचलिताः सह तन्निबंधैः ॥ एतस्य चोपनिषदोपि तदाननाब्जाद्भेजेऽस्य प्रश्नत उदुत्तरतोऽपि तोषम् ॥ ३८ ॥ ज्योतिर्मुखेपि निगमांगगणेऽथ काव्यसाहित्ययोश्च सकलासु कलासु सारम् ॥ शालासु तासु पठतां मठवासिविज्ञविद्यार्थिनां सपरिचिंतनया जजान ॥ ३९ ॥ श्रीमाधवेन्द्रयतितोप्यथ पूर्णप्रज्ञरामानुजार्यविहिते श्रुतिसूत्रभाष्ये ॥ अन्यानि वैष्णवमहर्षिसुदर्शनानि शांडिल्यसूत्रप्रमुखानि पठन् ददर्श ॥ ४० ॥ श्रीलक्ष्मणान्निजगुरोर्हरसंप्रदायिश्रीविष्णुनाथयतिराजगिरां रहस्यम् ॥ स्वांते नि

अष्टाध्यायीकों पढे पीछें गौतमकणादके प्रशंसनीय भाष्यादिक ग्रन्थ पढे ॥ ३६ ॥ योग ओर सांख्यशास्त्रनके भाष्यनकों मीमांसा ओर सब आगम शंकरमतके शारीरक आदि ग्रन्थनकों गुरूनमें श्रेष्ठ जो नारायण हें उनसों पढे ॥ ३७ ॥ हजार शाखानसों प्रसिद्ध जो सामवेद हे वाकी निबन्धन करकें सहित प्रचालित शाखा ओर वाके उपनिषदनकोबी नारायणके मुखसों पायो ओर प्रश्नोत्तरनसों उनकों तुष्ट किये ॥ ३८ ॥ ओर मठ (पाठशाला में रहवेवारे विद्यार्थी लोग जो ज्योतिष शिक्षा आदि अंग काव्य साहित्य कला पठते हे सो उनके पढवेसों आपको ये सब आयगयो ॥ ३९ ॥ पीछें श्रीमाधवेन्द्र सन्यासीसों पूर्णप्रज्ञ रामानुजके बनाये सूत्र भाष्य वेदभाष्यनकों पढते ओरबी वैष्णवमहर्षीनके बनाये शांडिल्य सूत्रादिक ग्रन्थनकों देखे ॥ ४० ॥ ओर निजगुरु श्रीलक्ष्मणभट्टजीसों त्रिपु-

धाय सकलागमचक्रवर्त्ती श्रीवल्लभ समभवद्बुधवल्लभोयम् ॥ ४१ ॥ ये ये जनाः सुरजना गुरवोऽस्य गीतास्तेते कुलक्रमगुरुक्रमतः स्वकीयाः ॥ देवेज्यकेज्यमिहिरेज्यविशालिकेज्या यो रामकृष्णपितरो पितरौ तथा तौ ॥ ४२ ॥ इत्थं समस्तनिगमानुगुणं च शास्त्रं यच्चागमं हरिविरिंचिहरादिगीतम् ॥ सर्वं तदात्मगुरुतोऽधिगतं चकार पाषंडिनामपि मतानि जजान बुद्ध्या॥४३॥

इति विद्याग्रहणप्रकरणम् ।

स ब्रह्मचर्य्यनियमान्निखिलान् दधानः प्रातः प्रबुध्य सुरसिंधुजलेऽभिमृज्य ॥ कौपीनमुत्तरपटाजिनमेखलादि धृत्वाह्निकं समचरत्सपवित्रपाणि ॥ ४४ ॥ पुण्ड्राणि केशवमुखैर्घुसृणेन चक्रे सद्द्वादशोर्द्ध्वविहितानि निजप्रमाणे ॥ भालोदरोरसि गलेप्यथ

रारि सम्प्रदायके श्रीविष्णुस्वामीके वाणीके रहस्यकों मनमें धारणकर सब विद्यानके चक्रवर्ती राजा पंडितनके प्यारे श्रीवल्लभ भये ॥ ४१ ॥ जो जो आपके गुरु जन गिनाये वे सब जातिसों और सम्प्रदायसों अपने हे और देवावतार हे बृहस्पति ब्रह्मा शांडिल्य सांदीपनिके अवतार हे ओर जो इनके माता पिता यल्लमाजी लक्ष्मणभट्टजी हे वे देवकी वसुदेव हे॥ ४२॥ या प्रकार जो कछु विष्णु ब्रह्मा महादेवजीसों मान किये आगम मंत्रशास्त्र हें जो कछु यावत् वाङ्मय शास्त्र हो वो सब श्रीलक्ष्मणभट्टजीसों सीखे ओर पाखंडीनके मतमको बुद्धिसों जान लिये ॥ ४३ ॥ ओर ब्रह्मचर्यके सब नियमनकों धारण किये आप सबेरे उठकें शौचादि सों निवृत्त होयकें श्रीगंगाजीमें स्नान कर कौपीन उत्तरपट मृगचर्म्म मेखला दंडादि धारण करकें आन्हिक करते ॥ ४४ ॥ अपने प्रमाणन करकें उचित केशरके केशवादि मंत्रनसों ललाट उदर वक्षस्थल गरो दोनो कुक्षि दोनों बाहु दोनों कर्णनकें नीचे पीठ ग्रीवा इन

कुक्षिबाहुश्रोत्रांतपृष्ठककुदोऽवयवे च मुद्राः॥४५॥भाले गदांश्रुति
मृदा निजसंप्रदायिमुद्राश्च दक्षभुजमूलजुषोऽरिमुख्याः॥वामेभुजेऽ
ब्जप्रमुखाह्हदि नामपूर्वाश्चक्रादिकास्स्तनगलोदरकुक्षिपृष्ठे४६॥
शुभ्रावदातमखसूत्रवरं पलाशदंडं शिरःप्रमितमंगुलिमूलपीनम्॥
नित्यं दधार स गले सुरसासृजोपि संध्याग्निकार्यगुरुविष्णुसम
र्चनानि ॥ ४७ ॥ दध्रे कुशासनमयं शुभशासनोपि पालाशदंड
मपि यः खलु वीतदंडः ॥ औपासनं परिचचार सुरैरुपास्योवे
दान् पपाठ पठितोग्नितयैव वेदैः ॥ ४८ ॥ गीताभिगीतपुरुषोत्त
मपूर्णरूपः साक्षात्परो रसमयः कथितोंतरात्मा ॥ यो वेद तं
स्वयमसौ स्वयमेव वेद वेदांतकृन्ननु विदां विदितः सएव
॥४९॥ विद्यासु यस्य विजयाय न मिश्रभट्टोपाध्यायदीक्षितच
तुर्धरसर्ववेदाः॥सम्राट्कुलस्थपतियाज्ञिकचक्रवर्तिशेषाद्यशेषवि

स्थाननमें बारह ऊर्ध्व पुंड्र करते भये ॥ ४५ ॥ गोपीचन्दनसों ललाटमें गदा ओर साम्प्रदायिकमुद्रा करते दक्षिणभुजाके मूलमें चक्र हे पहले जिनमें एसी मुद्रा करते ओर वामभुजामें शंखादिक हृदयमें नामपूर्वक स्तन गल उदर कुक्षि पृष्ठ इनमें चक्रपूर्वक करते ॥ ४६ ॥ सुंदर स्वच्छ यज्ञसूत्र अंगुली मूलके जेसो स्थूल सुंदर पालाशको दंड तुलसीजीकी दो छोटी माला नित्य धारण कियें रहते सन्ध्या होम गुरु विष्णुकी सेवा नित्य करते ॥ ४७ ॥ अच्छे शासनवारे होयकें बी कुशासनकों दंडरहित होयकें बी पालाशके दंडकों देवतानके उपास्य होयकें बी औपासनकों वेदमें अग्निरूपसों पढे होयकें बी वेदके पाठकों धारण कियो ॥ ४८ ॥ गीतामें पूर्णपुरुषोत्तमरूपसों जो गाये गये ओर पर साक्षात् रसमय अन्तरात्मा कहे गये जो इनकों आपही जानतो हो वा वेदकों आपजानते भये ओर वेदान्तके करवेवारे भये॥ ४९ ॥ विद्यामें विजय करवेके लियें जिनके सामनें वा समयके काशीजीके प्रसिद्ध विद्वान् मिश्र भट्ट उपाध्याय दीक्षित चौधरी

बुधा न ययुर्यदग्रे ॥ ५० ॥ नारायणोप्ययमिहाश्रयतो नराणां लोकेऽवतारदशकाचरितं चचार ॥ गोरुद्धति सुरभृतिर्दनुजक्षति श्च यस्माद्दयाविततिरास कलेर्निवृत्तिः ॥ ५१ ॥ श्रीनंदनंदन मिमं विबुधा विदुर्ये वृंदावनाभिरमणं रमणं श्रुतीनाम् ॥ गोवर्द्धनै कपरमं भुवि सात्वतां च व्यक्तं कुले सकलगोपनिषेवितांघ्रिम् ॥ ५२ ॥ विद्यानवद्यविभवा न परत्र दृष्टा गद्यालिपद्यनिचया न परत्र हृद्या ॥ जल्पाकतां क इह जल्पकथास्वकार्षीत्क ल्पद्रुतामचकलत्स्वजनेष्वनल्पाम् ॥ ५३ ॥ यो वामनः स्वव पुषा ननु पावनात्मा सर्वस्वमर्पितवतेधिरसालयेषु ॥ प्रह्लादमा नयदसौ स्वयमेव तिष्ठन् वृंदारकार्थकरणाय कृतावतारः ॥५४॥

चतुर्वेदी सम्राट कुलमें रहवेवारे याज्ञिक चक्रवर्ती शेष आदि समस्त विद्वान् न गये ॥ ५० ॥ पहलेही आपने मनुष्यनकी रक्षा करवेके लिये या लोकमें दशावतार चरित्र किये हे जो गो वेद पृथिवी इनको उद्धार मीन वराह स्वरूपसों देवतानकी रक्षा अमृतदान तथा त्रैलोक्यके राज्यको दान कमठ वामन रूपसों दैत्यनको नाश नृसिंह ओर रामत्रयीसों दयाको विस्तार बुद्धरूपसों कलिकी निवृत्ति कल्की रूपसों या प्रकार किये हे ॥ ५१ ॥ ओर आपकों विद्वान् लोग वृंदावनमें रमण करवेवारे श्रुति गोपीनके रमण गोवाणीके वृद्धि करवे वारे भक्तनकी रक्षा करवेवारे सब गोपनसों सेवा किये गये चरणारविन्द हें जिनके एसे नन्दनन्दन श्रीकृष्ण जानते ॥ ५२ ॥ दोषरहित बडी विभववा- रीविद्या एसी, दूसरी जगह नहीं देखी गद्यपद्यनकी हृदयलुभायवे वारी रचना कहीं नहीं एसी देखी जिनके सामनें वाद कथामें वावदूकता कोन कर सकेहें जो अपने मनुष्यनके लिये कल्पद्रुम हे ॥ ५३ ॥ जो वामन ओर ये आचार्य अपने स्वरूपसों पवित्र शरीरहें ओर सर्वस्व अर्पण करवेवारे बलिके लिये अथवा आत्मनिवेदन करवेवारे भक्तनके लिये अधिरसालय पाताल

यस्य प्रतापमिहिरेण विनिर्मिताग्र्या लोकस्यशोकहतिरेव तमो हरेण॥हृत्पंकजानि विकचानि सतां कृतानि घंटापथः प्रकटितो निगमागमानाम्॥ ५५ ॥ नित्योदितो पि भुवि विष्णुपदाश्रितोपि नायं कदापि तमसाभिगृहीतकायः ॥ नैवासुरान् श्रयति नो जडराशिमेति नैवावलंबविकलायनमृच्छति स्म ॥५६॥ इति विद्याविभवोन्नतिप्रकरणम् ॥ मौंज्युत्सवं परिसमाप्य बुधेन तेन पित्राऽतिरात्रमुखसत्रमकारि तत्र ॥ राज्ञां विदां धनवतां सदसि प्रतिष्ठां लब्ध्वाप्यधायि कृतिभिः कृतकृत्यता च ॥ ५७ ॥ विद्या तु बालवपुषा सह यौवनेन यस्य प्रभावपृथुताखिलसंपद

अथवा वैकुंठमें प्रल्हाद वा परमानंदको देते भये जिननें देवतानके कार्यके लियें अवतार लियो हो ॥ ५४ ॥ लोगनके अज्ञानरूपी अन्धकार दूरकरवेवारे जिंनके प्रतापरूपी सूर्यनें अच्छी तरहसों लोकके शोककों नाश कियो ओर सज्जननके हृदयरूपी कमलनकों प्रफुल्लित किये ओर वेदनको राजमार्ग प्रकट कर दियो ॥ ५५ ॥ ये आचार्यरूपी सूर्य विष्णुपद आकाश अथवा भगवच्चरण उनके आश्रित होयकेंभी भूलोकमें नित्य उदित होय हे ओर ये कभी तम अज्ञानके आश्रित नहीं भयो ओर सूर्यतो तम जो राहु हे वाके आश्रित होयहे ओर आप न असुरनके न जड़राशिकें आश्रित होते न अपने अवलम्बीनकों विकल मार्ग देते सूर्य जो हें सो असुरनको तथा जड़ राशिकों भजे हें समुद्रमें डूबतो दीखपड़े हें नहीं हे अवलम्ब जामें एसे आकाशमें चलें हें ॥ ५६ ॥ पितानें आपके या प्रकार जनेऊके उत्सवको समाप्त करकें ओर अतिरात्र हे आदिमें जिनके एसे यज्ञनकों वहां किये ओर राजा विद्वान् धनवान् इनकी सभानमें प्रतिष्ठा पायकें कृतकृत्य भये ॥ ५७ ॥ विद्या बाल्यावस्थाके संग प्रभाव ओर सब सम्पत्ति युवावस्थाके संग जिनको भई हरिमें भक्ति विषयनमें

श्च ॥ भक्तिर्हरौ च विषयेषु विरक्तिरग्र्या यस्यैषणात्रयभृते त नयत्रय च ॥ ५८ ॥ जाता सुता प्रथमतोऽस्य गिरा सुभद्रा रामोऽपि सत्वतनुरस्य सरामकृष्ण ॥ श्रीवल्लभो हरिरत स्वयमेव कृष्ण श्रीलक्ष्मणादिह शिवोऽपि च केशवोऽभूत् ॥ ५९ ॥ श्रीयल्लमाख्यमहिलास्य च सोमयाजिश्रीलक्ष्मणस्य विदुषोभिमता सती या ॥ सा देवकीव तनयेन च वल्लभेन रेजे मखानलसुतेन च वेदिकेव ॥ ६० ॥ वित्तैषणाग्निवरिवस्यकयास्य पूर्णा विज्ञायते भुवि यत स हिरण्यरेता ॥ पुत्रैषणा सुतनयैरपि सोऽनृणोभूल्लोकैषणामदनमोहनसेविन किम् ॥६१॥ इत्य समस्त पुरुषार्थभरेण सिद्धो वृद्धात्मतामधिगत कृतकृत्यतां च॥ वैकुठनार्थ पदकजयो प्रविष्टो लोके बभूव यशसा स कथावशिष्ट ॥६२॥ काशीनिवासफलमाप्तवतो गुरोर्यत् पश्चोपि मगलकर किल तारकेण ॥ स्वर्वासिन पितृगणस्य मुदेऽग्रजन्मा तस्योर्ध्वदैहिकविधि

विरक्ति भई तीनों एषणा तीन प्रकारकी इच्छा तिनके लिये तीनों पुत्र भये॥५८॥ पहलें इनके सरस्वती सुभद्रा दो कन्या भई ओर पीछे रामकृष्ण श्रीवल्लभ केशव ये तीन पुत्रभये ॥५९॥ ओर पतिव्रता यल्लमाजी ये इनकी स्त्री पुत्र श्रीवल्लभ करकें यज्ञाग्निकरकें वेदी जेसी शोभती भई ॥६०॥ भट्टजीकी धनकी इच्छा हिरण्यरेता सुवर्ण उत्पन्न करने वारे अग्निसे पुत्रकी इच्छा सुदर पुत्रनसों परिपूर्ण भई ओर श्रीमदनमोहनजीकी सेवा करवेवारे इनकों लोकैषणा तो काहेकों होय ॥ ६१ ॥ या प्रकार सब पुरुषार्थनसों सिद्ध होयकें वृद्ध भये ओर कृतकृत्य होयकें भगवच्चरणकमलमें प्रवेश कर गये ओर लोकमें यशकरकें जिनकी कथामात्र रह गई ॥ ६२ ॥ काशीनिवासको जो फल हे याकों पायो हे जिननें एसे उनको नाशभी मंगलकारी होतो भयो पीछें उनके जेष्ठ पुत्र रामकृष्ण स्वर्गवासी पिताके आनन्दके

विदधे स रामः ॥ ६३ ॥ इत्थं कृते ननु विधौ पितृहायनस्या
पर्णापतेः पुरवरे समभूदपर्णः ॥ भ्रात्रानुजस्य विहितेप्यथ चौ
लकृत्ये गंतुं ततः कृतमतिः कृतमंगलोऽभूत् ॥ ६४ ॥ सर्वा
चार्यशिरोऽभिधार्यचरणद्वंद्वारविंदप्रभोः श्रीमद्वल्लभदीक्षि
तस्य जयतात्सद्ब्रह्मचर्य्योत्सवः ॥ यो नित्यं हुतभुक्तनोः
स्वसदने वंदारुवृंदारकैः स्ववर्वामामुखनिस्सृतश्रुतिपुटैः पीयूष
वत् पीयते ॥ ६५ ॥ श्रीवेदव्यासविष्णुप्रभुचरणमिते संमिते
ग्रंथसार्थैः श्रीगोविंदाभिधानांसमयनयविदां देशिकानां निदेशा
त् ॥ आचार्य्याणां चरित्रे हरिजनसुखदे कृष्णभट्टैर्निबद्धे प्र
स्थानेदिग्जयाख्येसमजनि पटहश्चादिमे षष्ठ एषः ॥ ६६ ॥

लिये उनकी और्द्ध्वदेहिक विधि करते भये ॥ ६३ ॥ या प्रकार अपर्णापति महादेवजी उनकी पुरीमें पिताकी वार्षिक क्रिया करकें आप अपर्ण ऋणतें छूट गये ओर छोटे भाई केशवको मुंडन मंगल कर्म करकें देश जायवेकों विचार कियो ॥ ६४ ॥ सब आचार्य शिरसों जिनके चरणकमलनकों प्रणाम करें हैं जो तेजरूप हैं उन श्रीवल्लभदीक्षितजीको ब्रह्मचर्य उत्सव सब सों उत्कर्षरूपसों विराजमान होय जिनको यश नित्य अप्सरानके मुखसों निकस्यो भयो अमृतके समान कर्णपुटनसों देवतागणन करकें स्वर्गमें पान कियो जाय है ॥ ६५ ॥ समयनीतिके जानववारे जगद्गुरु श्रीगोविन्दाचार्य जी महाराजकी आज्ञासों कृष्णशास्त्रीके बनाये श्रीमद्वेदव्यासविष्णुस्वामीके मतके अनुकुल हरिभक्तनके सुखदेववारे या आचार्य चारित्रग्रन्थमें पहले प्रस्थानमें ये छठो पटह समाप्त भयो ॥ ६६ ॥

प्रणम्य त श्रीमदमोहन हरिं गुरु च गोविंदममंदसद्गुणम् ॥ गुरोश्चरित्र कथये दिवौकसा यशोऽस्य गायंत्युपजातयोऽपि यत् ॥ १ ॥ तां राजधानीं परमेशयोरमी श्रीमातृपादैर्नितरामरोचिताम् ॥ विहातुकामामिलिता कुटुंबिन समंत्र्य सार्द्धं चलितु प्रचक्रमु ॥ २ ॥ नत्वा सुरेशान् सुरनिम्नगामपि सगम्य विद्भि स्वजनै परैरपि ॥ श्रीवल्लभार्य्यं पुरतो विधाय त यानैर्ययुस्ते निजनीवृत प्रति ॥ ३ ॥ यज्ञोपवीताजिनदडमेखला समित्कुश स्रक्तिलकात्ममुद्रिका ॥ कौपीनकथ्यशुकपृच्छदानपि दधन् पुरोगात्स जटा कमडलुम् ॥ ४ ॥ ते तीर्थराज प्रथम समागता पद्मिश्वरत पुरत कृताह्निका ॥ नत्वैव गगां यमुनां सरस्वतीं स्नात्वाऽचरन् केशनिकृंतनादिकम् ॥ ५ ॥ तद्ब्रह्मतीर्थे पितृपिंडदानतोदेवार्चनैर्भूसुरभोजनैस्तथा॥दानैश्चमानैश्च पुरोधसोपि

श्रीमदनमोहनजीकों तथा अनेक सद्गुणवारे गुरु श्रीगोविन्दाचार्यजीकों प्रणाम करके गुरुको चरित्र कहू हूं जिनको यश देवतानकी उपजाति गन्धर्वादिकर्भी गान करें हैं॥ १ ॥ श्रीयज्ञनारायणजीकी राजधानी जो पतिवियोगसू मातृचरणनकी अरु चिचारी ही वाके छाडवेकी इच्छासों सब कुटुम्बी सलाह करके वहॉतें सग चलवे भये॥ २ ॥ देवतानको गगाजीकों प्रणाम कर सुजननसों मिलके श्री वल्लभकों आग कर सवारीनतें अपने देशको चले॥ ३ ॥ यज्ञोपवीत मृगचर्म दड मेखला समिधा कुशा माला तिलक मुद्रा कौपीन कटिवस्त्र उपरणा जटा कमडलु इनके धारण करत आगे श्रीवल्लभ चले॥ ४ ॥ पांवनसों चलने पहलें वे तीर्थराज पहुँच आग पहलहीं आन्हिक करके गगा यमुना सरस्वतीको नमस्कार करके स्नान करके मुडनादिक करावते भये ॥ ५ ॥ वा ब्रह्मतीर्थके पिंडदानसों देवतानको पूजनसों और ब्राह्मणनको भोजननसों तथा कर दान

ते संपूज्य भूयः कृतभोजना ययुः ॥ ६ ॥ ते चित्रकूटं रघुनाथस-
त्पदं संप्राप्य संपूज्य सलक्ष्मणं हरिम् ॥ श्रीजानकीशं जनकात्-
त्मजामपि प्रदक्षिणीकृत्य गिरिं गतास्ततः ॥ ७ ॥ अथेन्दुकन्या
स्नपनं विधाय यियासवस्तेऽमरकटकं प्रति ॥ श्रीवल्लभस्योद्भ-
वभूर्दिदृक्षवो महानदीमंडितचंपकं गताः ॥ ८ ॥ श्रीवल्लभश्चंप-
ककाननं गतश्चक्रे निवासं परमादरान्निजैः ॥ स्वजन्मभूमौ कृत-
वेदिकोपरिस्थितोऽपठद्भागवतागमं मुदा ॥ ९ ॥ माता तदानं-
दवनं ननंद सा समीक्ष्य चानंदवनान्मुदेऽधिकम् ॥ दिनाष्टकं
तत्र समूषुरुत्सुकावासंतदोलोत्सवमाचरन्निह ॥ १० ॥ याता
स्ततोऽमात्यवरेण पूजिताः शिष्येण वीरैः पथि तेऽभिरक्षिताः ॥
प्रस्थापिताः स्वात्मसमर्पणेन च प्रेमाश्रुभिः स्नापितपादपंकजाः
॥११॥ ततोगतास्तेऽमरकंटकेश्वरं दिदृक्षवो विंध्यागिरिं विलोक्य

मानसों अपने पुरोहितको पूजन कर पीछें आप भोजन कर वहाँसों चले ॥ ६ ॥ सो चित्रकूटमें पहुँचकें लक्ष्मणजानकीसहित श्रीरामचन्द्रजीकों पूजन कर ओर गिरिको प्रदक्षिणा कर वहाँसों चले ॥ ७ ॥ इन्दुकन्यामें स्नान करकें अमरकंटककों जायवेकी इच्छा हे जिनकी एसे वे श्रीवल्लभकी जन्मभूमिके देखवेकी इच्छासों महानद जहाँ बहे हे एसें चम्पकारण्यकों गये ॥ ८ ॥ श्रीवल्लभ चम्पकारण्यमें जायकें अपने लोगनके संग बडे आद-रसों बसे ओर अपनी जन्मभूमिमें बैठक बनायकें वाके ऊपर बेठकें श्रीमद्भाग-वतको पारायण कियो ॥ ९ ॥ माता वा आनन्दवनकों देखकें काशीसोंबी अधिक आनन्दकों पावती भई ओर वे सब बडी उत्कंठासों दोलोत्सव करते आठ दिन वहाँ रहे ॥ १० ॥ पीछें शिष्यमंत्रीसों पूजित ओर मार्गमें वीरनसों रक्षित ओर शिष्यके प्रेमाश्रुनसों स्नान कराये गये हें चरण कमल जिनके एसे वे सब चले ॥ ११ ॥ सो अमरकंटकेश्वरकी देखवेकी

तम्॥शिवं प्रणम्यैव न्यभायलन् विधो सुतोद्भवं शोणनदोद्भवं त
था॥ १२॥ अथागता सिद्धपदेऽवसन् वने यदत्र कश्चित् न्यव
सन्महत्तम ॥स वल्लभं पात्रमवेक्ष्य सपदां जगौ भवान् मत्प
दमाप्नुमर्हति ॥१३॥ स वल्लभ श्रीपतिवल्लभ क्षमी बभूव तू
ष्णीं निशि चिंतयन् वनी ॥ प्रभावमस्यावगतोहरेर्मुखात् स्व
य प्रपन्नोमनुमग्रहीत्तत ॥ १४॥जगाम वृद्ध नगर व्रजन् पथा
दिदृक्षुरात्मीयजन निजांचित ॥ ददर्श तं कोपि वरेभ्यबालको
गवाक्षमार्गात् स हि मार्गमृक् प्रभो ॥१५॥ विहाय दायं भजने
मुकुदमं मुकुंदलीलाविरहाज्जडायित ॥गतोतु साक्षात् समुकुं
दमागत मुकुदभाजांविषयेऽहिधीर्न का ॥ १६ ॥ प्रणम्य भ
क्त्याधिगतं स्वपादयोर्वभाण दामोदरदास साध्वसि॥ चिकीर्षित

इच्छासो विन्ध्यगिरिकों गये ओर वाकों देखकें शिवजीकों प्रणाम कर शोण नदकों देख्यो ॥ १२ ॥ पीछें सिद्धपदमें आयकें बसे सो वहाँ वनमें एक महात्मा रहतो हो सो सम्पत्तीनके पात्र श्रीवल्लभकों देखकें बोल्यो जो आप हमारी गद्दीपे बेठवेके अर्थात् शिष्य होयवेके योग्य हो ॥ १३ ॥ तब क्षमाशील भगवान्के वल्लभ वे श्रीवल्लभ चुप होय जाते भये फिर वो वनमें रहवेवारो महात्मा रातकों चिन्ता करते भगवान्के मुखसों आपको प्रभाव जानकें आपही शिष्य होयके मन्त्र लेतो भयो ॥ १४ ॥ ओर आप आत्मीयलोगनके सहित अपने जनके देखवेकी इच्छासों चलते कोई बडो नगर हो वहाँ गये वहाँ आपकी राह देखवेवारे एक धनवान् बालकनें झरोखासों आपको देख्यो ॥ १५ ॥ सो अपने भागकों छोडके मुकुंदकी लीलाके विरहसों जड जेसो विभागमें मुकुन्दनिधिके तुल्य साक्षात् मुकुन्द भगवान्को आवते देखकें आपके पीछे चल दियो क्यों जो भगवान्की सेवा करवेवारेकों विषयनमें अहिधी नाम विषबुद्धि कहा नहीं है अर्थात् है ही ॥ १६ ॥ सो प्रणामपूर्वक अपने शरणमें

ब्रूहि भवत्कृते वयं समागताः स्वीयवशंवदोहरिः ॥ १७ ॥ समुत्थितः प्रांजलिराह तं गुरुं वयं तु दासा भवदाशया स्थिताः ॥ दुरंतकालं प्रतितर्क्य कल्पवद्यतोंघ्रिचिंतामणिमद्यतेऽध्यगाम् ॥ १८ ॥ ततो मनुं प्राप्य गतः पुराद्बहिः स्थितो गुरुं चानुस वेदिकास्थितम्॥ मखे गृणन् पावकमृत्विजांगणे बभौ यथोद्गातृजनोपि सुस्तवैः ॥ १९ ॥ ततोग्रजाताः प्रसमीक्ष्य ढुंढने समागतास्ते वरुणं सहारुणम् ॥ निषण्णवाचोनसितुं नचाशकन् समर्पिताज्ञाः स्वगृहानुपागताः ॥ २० ॥ गोदावरीं प्राप्य सरिद्वरां ततो विधाय तीर्थार्चनतर्पणादिकम् ॥ स्वदेशजैस्तीर्थजनैः समागतैः समं मिलित्वा चलिताः पुरं प्रति ॥२१॥ स्तंभाद्रिपुर्य्याविपिनोपकंठे उत्कंठितावित्प्रवराःसमागताः ॥

आये भये उनतें आपनें कही जो दामोदरदास अच्छें हो अपने मनकी वात कहो तुह्मारे लियें हम यहाँ आये हें ॥ १७ ॥ तब हाथ जोरकें वे बोले जो हमतो आपके दास हें आपकी प्रतीक्षासूं यहाँ रहे इतनो समय बडे कष्टसों कल्पके समान बीत्यो हे आज चिन्तामणि रूप आप मिले हें ॥ १८ ॥ पीछें मन्त्र लेकें गाँमके वाहर वेदीके ऊपर विराजमान जो आपहें तिनकी स्तुति करते एसे शोभते भये जेसें यज्ञमें अग्निदेवकी ऋत्विजनके मध्यमें अच्छे स्तोत्रनसों करते उद्गाता ॥ १९ ॥ तब उनके ढूंढवेकों उनके जेष्ट भाई निकसे सो अरुणके जेसें दामोदरदासके सहित सूर्यकी प्रभावारे महाप्रभूनकों देखकें कछू बोल न सके ओर अपने घरकों पीछें गये ॥ २० ॥ ओर आप नदीनमें श्रेष्ठ गोदावरीकों जायकें तीर्थपूजन तर्पण आदि करकें तीर्थयात्राके लियें आये भये अपने देशके मनुष्यनसों मिलकें गामकों चले ॥ २१ ॥ मार्गमें स्तम्भाद्रिपुरीके वनके पास वाक्पति श्रीवल्लभके वाग्वैभवके देखवेकी इच्छासों विद्वान् लोग

दिदृक्षवो मल्लभनामवाक्पतेस्ते वैभवं तद्वदनाब्दजवाक्ततेः
॥२२॥ते तस्य चाग्रेभि सरस्य पावनीं विद्यार्थिवृदैरभितोभिसेवि
तां॥मूर्ति विधात्राखिलसर्गसौष्ठवैर्लावण्यसारैरचितां व्यलोकयन्
॥ २३ ॥ यत्पादयोर्वै लवताऽब्जपल्लवे नखे कला यस्य न सेऽपि
या विधो ॥जगत्सुगाढांधतमोनिवृत्तये प्रभा यदीया स्मरतां नचे
तरा॥२४॥ सद्भोगिभोगप्रतिमौ भुजौ प्रभो शोभां निजां भाल
यितु स्वजानुगौ ॥ निजालये तत्खलु रत्नदर्पणे स्वकेषु चोन्नत्य-
मपेक्षित जनै ॥ २५ ॥ युगं तदूर्वो कदलीप्रकाण्डयोर्मृदगवक्रज
ठरेऽपि किंमृतम् ॥ सचातुरीतश्चतुराननोयतश्चकार चेत्थं रचना
चमत्कृतिम् ॥ २६ ॥ निवासभूमि सुषमा चयस्य किं महेन्द्रनी
लस्य शिला किमद्भुता॥ रराज वक्षस्थलयो स्थली गुरो श्रि

आये ॥ २२॥ ओर आगें वहांके चारों आडीसों विद्यार्थिवृन्दनसों सेवा करी
भई सम्पूर्ण सृष्टिकी सुदरता ओर लावण्यसों ब्रह्माजीकी बनाई मूर्तिको
देख्यो ॥ २३ ॥ जिनके चरणनकी शोभाको लेशमात्र कमलपत्रनमें
हे जिनके नखनमें जो कला ही वो आकाशमें चन्द्रमाकी नहीं ही जग
त्के गहिरे अज्ञानरूपी अंधकारके दूर करवेके लिये जिनकी प्रभासूं
दूसरी प्रभा नहीं हे ॥ २४ ॥ ओर अच्छे सर्पके शरीरके समान चढा
व उतार अपनी शोभाके देखवेके लियें जानुतक गये मानों रत्नजटित
दर्पणरूप निजालय अपने स्थान पातालमें गये हें क्यों जो अपने वर्गहीमें
मनुष्य अपनी उन्नतिकी अपेक्षा करें हें सो एसे प्रभुनके भुजा हें ॥ २५ ॥
ओर उनकी दोनों जंघा मानों केलाके स्तम्भकी बनाई गई हें ब्रह्माजीनें अपनी
चातुरीसों याप्रकार रचनाकी चमत्कृति करीही ॥ २६ ॥ सुन्दरताकी
मानों निवासभूमि नीलपर्वतकी मानों अद्भुत शिला भगवानके क्रीडा करवेके

यः पतेः केलिसदः कपाटिका ॥ २७ ॥ महर्मयं तस्य दरेन्द्र संनिभं गलप्रतीकंत्रिवलीत्रयीभृतम् ॥तदास्यमिंदीवरमिंदुसच्छ विर्यदद्भुते किं न यदद्भुतं भवेत् ॥ २८॥ द्विजावली यस्य द्वि जावलीयतो द्विजच्छदश्छद्मनिगूढविग्रहा ॥ समर्पितं भक्तवरैश्च याजकैर्भुनक्ति संभज्य च पावनं हविः ॥ २९ ॥ सुगंधमावे त्तुमितं जगत्पते र्यदीयनासाप्यतसीसुमायिता ॥ स्वकीयजातेः स्वयमेव वेत्त्यलं प्रसादपुष्पावचयस्य यद्गुणान् ॥ ३० ॥ त ल्लोचने शोकविमोचने सतां कृपामृतांभोजदलायिते यतः ॥ यतः परं नेह निसर्गशीतले कलेःकुहेलेरपि घर्मकर्दने ॥३१॥ श्रुती विवेकस्य विचित्रतां श्रुतेरुदात्तघातस्वरितादिसंभवाम् ॥ विभज्य यस्य प्रतिभूत्वमागते दधार जिह्वापि हि प्राग्विवाक

मकानको किवाड़ जेसी वक्षस्थलकी स्थली शोभती भई ॥ २७ ॥ ओर कंठ महर्मय ऊर्द्धलोकके जेसो शंखके समान त्रिवली सहित शोभतो भयो ओर मुखकमल चन्द्रमाकी अच्छी छविवारो हो जो अद्भुतशरीरमें कहा अद्भुत न होय ॥ २८ ॥ जिनकी द्विजावलि दन्तपङ्क्ति द्विजावलि ब्राह्मण-रूपही जो भक्तनसों ओर याज्ञिकनसों अर्पण किये भयेकों विभाग करकें भोजन करतीही ॥ २९ ॥ जिनकी नासिका अतसी अलसीके फूलके समान हीं जो जगत्पति भगवानके गन्धके जानवेके लियेही ही क्योंजो अपने जातिवारेको अच्छी तरह अपनोही जानेहे ॥ ३० ॥ ओर उनके नेत्र सज्जननके शोकके दूर करवेवारे हे कृपारूपी अमृतके कमलदल हे ओर कुत्सितकलिरूपी सूर्यके घामके नाश करवेमें स्वभावहीसों शीतल हे ॥ ३१ ॥ जिनके कर्ण वेदकी उदात्त अनुदात्त स्वरित आदिकी उत्पन्न कर-वेवारी जो विचित्रता लराई हे वाके विभाग करवेके लियें मानों साक्षी आये

तामू॥३२॥ शिरस्तपोमूर्तिरदो जटाधरं यतस्तपस्यस्य च स
त्यमूर्जितम् ॥ गुरोर्ललाटंतपनप्रभोदय महोदय यज्जगतां जगो
स्वत ॥ ३३ ॥ नखाच्छिखांत तु शिखादिचानखं ततो
पमामासुपमान्यतस्तनो ॥ सुरर्षिराजर्षिमहर्षिवंदिता गुरो
र्हरेर्यन्मुखतोभिनंदिता ॥ ३४ ॥ ललाटपट्टे तिलक च
कौंकुम पद मुरारे' सगदं च तद्गुरो ॥ गले तुलस्या समि
घ'स्रजोर्युग दरारितोस्यात्मनि केशवात्मता ॥ ३५ ॥ त्रिस्रो
तसा यस्य च मध्यमंबरत्र्यात्मना चाम्बरसूत्रभूतया ॥ हरेस्त्र
याणा च पदां कृतार्थता कृतार्थताकारि निजात्मनोऽपि
किम् ॥ ३६ ॥ समुद्रपुंड्रैरपि यत्प्रतीकगैर्विमुद्रिताधायि विकुं
ठवर्त्मन ॥ यतो न यता स यमोच्युतात्मनां तदात्मना ते'
स्फुटमेव सांशिता ॥ ३७॥ जटाकलाप ज्वलनायित प्रभोस्त
दुत्तरीयं सुरनिम्नगायितम् ॥ कटौ वहिर्वंत्रमपत्रपाहरत्रपा

जिनको मस्तक तपोलोककी मूर्ति हे जटा सत्यलोक हे ओर सूर्यकी प्रभा
वारो जगतको वडो उदय करवेवारो मस्तक हे ॥ ३३ ॥ जिनको नखसों
शिखतक शरीर या शिरसों नखतक वाकी सुंदरताकी उपमा ओर दूसरे
शरीरमें नहींही जाकी सुरर्षि राजर्षि महर्षि स्तुति करते जो हरिके वदना-
वतार हे ॥ ३४ ॥ जिनके ललाटमें हरिचरणाकृति केशरको तिलकमुद्रा
नके सहित हो गरेमें तुलसीकी दो माला ओर शंख चक्रसों जिनके स्वरूपमें
भगवत्पना प्रगट हो ॥ ३५ ॥ जिनके यज्ञके सूत्रके तिलरीस्रोततें युक्त मध्य
अम्बर आकाश नाभिदेशनें मानों भगवान्के तीनों पदनकों स्वरूपहीमें
कृतार्थ कियो हे ॥ ३६ ॥ जिनके श्रीअगके अवयवनमें लगे मुद्रानके सहित
तिलक जो हें उननें वैकुंठके मार्गको मानों खोल दियो हे क्यों जो भगवदीय
भक्तनके आपही नियामकहे धर्मराज नहीं हें जिनकी जटा अग्निके समान ही
उत्तरीय उपरणो मानों गंगाजी हे ओर कटीम वाहेरको वस्त्र (आरुष्ट)

सतां कूपगमार्हवस्तुनि ॥ ३८ ॥ यदंघ्रिपूतान्निजपादुकायु
गाद्धरोन्नतिं लोकयुगेन चाह्वताम् ॥ यतोंकसन्मंडनमंडनैरियं
महार सौभाग्यमनल्पमेतयोः ॥ ३९ ॥ दधत्स दंडं च कमं
डलुं मृगाजिनं समिद्दर्भजपाक्षमालिकाः ॥ सशिष्यवृंदैः खलु वर्णि
भिर्वृतो रराज वर्णीश्वरमूर्तिरीश्वरः ॥ ४० ॥ समीक्ष्य ते विप्र
वरास्तमीश्वरं तमीश्वरोद्योतविकाशितांबरम् ॥ प्रणम्य सर्वेऽपि
तदग्रतः स्थिता निशम्य वेदध्वनिमस्य चित्रिताः ॥ ४१ ॥
अयूयुजन् केचन कुत्रचिद् गुरुं तदुत्तरं पूर्वदलेन संयुतम् ॥
अशुश्रुवन् तत्क्षणतस्तदाननाद्यदाननं श्रीपुरुषोत्तमाननम् ॥ ४२
ततस्तु तैर्विप्रवरैः समर्चिताः श्रीरामकृष्णादयइत्यतोऽचलन् ॥
यत्राग्रहारोनिजपूर्वजाश्रितः प्रहर्षिताः स्वान्समबोधयान्नितः
॥ ४३ ॥ कुटुंबिनः स्वीयजनाजनाननाज्जनार्दनाद्याः श्रव

साधारणमनुष्यनकी लज्जाके लिये हे सज्जननकी लज्जा तो कोपीनहीतक हे जिनके चरणकमलनसों पवित्रपादुकानतें पाताल रसातल लोकनें अच्छी उन्नति पाईही ओर उनकी वा उन्नतिकों आपकेचरणकमलनके चिह्नसों चिह्नित पृथ्वीनें हर लीनी हे, दंड कमंडलु मृगचर्म समिधा दर्भ जपकी मालाकों धारण किये ब्रह्मचारीनके स्वामी साक्षात् ईश्वरमूर्ति शोभतेहे ॥ ३७–४० ॥ अपने तेजसों प्रकाश कियो हे आकाशको जिननें एसे ईश्वररूपआपकों देखकें सब ब्राह्मण प्रणाम करकें आगें ठाड़े होय गये ओर कोई ब्राह्मणननें कहीं २ आपसों प्रश्न किये सो ताही क्षण पूर्वपक्षके सहित उत्तर पक्ष आपके श्रीमुखसों सुन्यो क्यों जो आपको श्रीमुखतों श्रीपुरुषोत्तमहीको मुख हो ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ तब तो सबब्राह्मणननें पूजा करी पीछें रामकृष्णादि प्रसन्न होयकें वहाँसों वा अग्रहारकों चले जहाँ अपने पूर्वज रहते हे ॥ ४३ ॥ वहाँ अग्रहारमें कुटुम्बी जनार्दनादिकननें इनकों आवते सुनकें बडे प्रसन्न होयकें इनके आय-

ताम्॥३२॥ शिरस्तपोमूर्तिरदो जटाधरं यतस्तपस्यस्य च स
त्यमूर्जितम् ॥ गुरोर्ललाटंतपनप्रभोदयं महोदय यज्जगतां जगौ
स्वत ॥ ३३ ॥ नखाच्छिखांत तु शिखादिचानखं ततो
पमामासुपमान्यतस्तनो ॥ सुरर्षिराजर्षिमहर्षिवंदिता गुरो
र्हरेर्यन्सुखतोभिनंदिता ॥ ३४ ॥ ललाटपट्टे तिलकं च
कौंकुमं पद मुरारे सगदं च तद्गुरो ॥ गले तुलस्या समि
घ स्रजोर्युग दरारितोस्यात्मनि केशवात्मता ॥ ३५ ॥ त्रिस्रो
तसा यस्य च मध्यमंबरत्रय्यात्मना चाम्बरसूत्रभूतया ॥ हरेस्त्र
याणा च पदां कृतार्थता कृतार्थताकारि निजात्मनोऽपि
किम् ॥ ३६ ॥ ससुद्रपुंड्रैरपि यत्प्रतीकगैर्विमुद्रिताधायि विकुं
ठवर्त्मन ॥ यतो न यता स यमोच्युतात्मना तदात्मना ते
स्फुटमेव सशिता ॥ ३७॥ जटाकलापं ज्वलनायित प्रभोस्त
दुत्तरीय सुरनिम्नगायितम् ॥ कट्यो बहिर्वस्त्रमपत्रपाहरत्रपा

जिनको मस्तक तपोलोककी मूर्ति हे जटा सत्यलोक हे ओर सूर्यकी प्रभा
वारो जगतको बडो उदय करवेवारो मस्तक है ॥ ३३ ॥ जिनको नखसों
शिखतक शरीर या शिरसों मस्तक याकी सुंदरताकी उपमा ओर दूसरे
शरीरमें नहींही जाकी सुरर्षि राजर्षि महर्षि स्तुति करते जो हरिके वदना-
वतार हे ॥ ३४ ॥ जिनके ललाटमें हरिचरणाकृति केशरको तिलकमुद्रा
नके सहित हो गरेमें तुलसीकी दो माला ओर शख चक्रसों जिनके स्वरूपमें
भगवत्पना प्रगट हो ॥ ३५ ॥ जिनके यज्ञके सूत्रके तिलरीस्रोततें युक्त मध्य
अम्बर आकाश माभिदेशनें मानों भगवान्के तीनों पदनकों स्वरूपहीमें
कृतार्थ कियो हे ॥ ३६ ॥ जिनके श्रीअगके अवयवनमें लगे मुद्रानके सहित
तिलक जो हें उननें वैकुठके मार्गको मानों खोल दियो हे क्यों जो भगवदीय
भक्तनके आपही नियामकर्हं धर्मराज नहीं हें जिनकी जटा अग्निके समान ही
उत्तरीय उपरणो मानों गगाजी हे ओर कटीमें बाहेरको वस्त्र (आडम्बर)

दारमस्याग्निमवेशयन् गृहे ॥ ४९ ॥ कृतानुरागैः स्वजनैः स
मागतैः सवाक्पतिर्वाक्ततिभिः सपर्यया ॥ समर्चितोथो मखि
मुख्यनंदनः सदीक्षितोऽग्नीन् निदधे यथाविधि ॥ ५० ॥ कृ
ताह्निकोऽसौ विहिताग्निसक्रियः श्राद्धं विधाय द्विजतर्पणं च॥
चक्रे ततस्तीर्थसमागमोत्सवं संभोज्य सर्वान् स्वकुटंबिनस्तथा
॥ ५१ ॥ ततः समाकर्ण्य दिगंतगं यशः श्रीवल्लभार्य्यस्य
बुधैरुदीरितम् ॥ पांडित्यमत्यद्भुतमल्पवर्ष्मणः समागताविज्ञ
जना विदेशतः ॥ ५२ ॥ ये येऽन्वपृच्छन् किल वेदशास्त्रयोः
प्रपेदिरे तेऽपि च ते तदुत्तरम् ॥ तदुत्तरप्राप्तिप्रहर्षनंदितास्तम
भ्यनंदनन्नमुमेव चाश्रिताः ॥ ५३ ॥ ददौ स तेभ्योमनुराजमुत्त
मं यदष्टवर्णं दशवर्णमीप्सितम् ॥ बभूवुरेतन्महसा महोज्ज्वला
स्ते शंभुमुख्या निजगोत्रबांधवाः ॥ ५४ ॥ अथ स्वमात्रीरण-

अग्निकों घरमें प्रवेश करावते भये ॥ ४९ ॥ ओर अनुराग है जिनके एसे आये सब सुजननें अपनी २ वाणीके विस्तारसों वाक्पतिको पूजन कियो ओर दीक्षित रामकृष्णजीनें अग्नीनको यथाविधि धरे ॥ ५० ॥ ओर आह्निक करकें होम करकें श्राद्धसों निवृत्त होयकें ब्राह्मणनकों तृप्त करकें तीर्थसों आयवेके उत्सवमें ब्राह्मणनकों ओर अपने कुटुम्बीनकों भोजन करायो ॥ ५१ ॥ पीछें पंडितनसों दिशानके अंततक पहुँचे श्रीवल्लभके यशको ओर थोरी अवस्थामें अति अद्भुत पांडित्यकों सुनकें दूसरे २ देश-नतेवी पंडितजन आये ॥ ५२ ॥ ओर शास्त्र वेदमें जो जो पूँछ्यो वाको उत्तर पायकें बडे प्रसन्न होयकें आपके आश्रित भये ॥ ५३ ॥ उनकों अष्टाक्षरमंत्र तथा दशाक्षरमंत्र आपनें दीने ओर आपके तेजसों आपके गोत्री बान्धव शम्भु स्वयम्भु आदि सब बडे उज्ज्वल भये ॥ ५४ ॥ पीछें माताकी प्रेरणासों रामकृष्णजी छोटे भाई केशवको यज्ञोपवीत वैशाखमासके

णैर्निशम्य तत् ॥ प्रहर्षवेगात्कथकाय ते तदा समागताय व्यतरन् शयागतम् ॥ ४४ ॥ ततस्तु सर्वे मखिनो द्विजोत्तमा नराश्च नार्य्योभिमुखा ययु पुर ॥ पुरोविधायैव सपल्लवोदक सुमगल तत्कलश समर्चितम् ॥ ४५ ॥ विदूरतो ग्रेऽभिसर वृतोज्वल विलोक्य त वल्लभमेव वभ्रमु ॥ दिवाकरो त्रांचति किं धराचर सवर्णिवेपो विधुर सवर्णया ॥ ४६ ॥ स्वभू स्वयभूविधुशम्भुसन्निभा स्वकीयछात्रा धृतछत्रपुस्तका ॥ तथा मुरारे शिविकाधराश्वरा रामादयोदृष्टिपथं समागता ॥ ४७ ॥ अथाभिसगम्य द्रुत यथायथ नति परिष्वंगशुभाशिषोर्पिता ॥ ततस्तु पृष्टा कुशल परस्परं विधाय वार्ता निलयानुपागता ॥ ४८ ॥ ततोभिषेक विदधुर्हरेर्वटो श्रीवल्लभस्यापि तदग्रजन्मन ॥ उदाराचित्ते सकलाश्च तोपिता स

वेवे समाचार कहवेवारे मनुष्यकों बहोतसो द्रव्य दियो ॥ ४४ ॥ ओर यज्ञ करवेवारे ब्राह्मण पुरुष स्त्री सब मिलके लेवेके लिये पल्लवजलसहित मांगलिक्कलशनको आगे करके चले ॥ ४५ ॥ थोरी दूर आगे चले तब आगे तेजपुंज श्रीवल्लभको आवते देखके विचार करवेलगे जो सवर्णा अपनी स्त्रीसों रहित पृथिवीपे सूर्य तो नहीं चले आवें है ॥ ४६ ॥ पीछे छाता पुस्तक आदिकों लिये स्वभू स्वयम्भू आदि आपके शिष्यनकों तथा भगवानकी पालकी लेवेवारेनको ओर रामकृष्णआदिकनको देख्यो ॥ ४७ ॥ सो जब चाहिये तब आगे बढके यथायोग्य नमस्कार आशीर्वाद मिलाप करके परस्पर कुशलवार्ता पूछकर घरको आये ॥ ४८ ॥ ओर बालरूपी हरि श्रीवल्लभकों तथा आपके बडे भाई रामकृष्णको अभिषेक करके उदारचित्तसों सब स्त्री पुरुष सबकों संतोष कराके रामकृष्णजीको तथा इनको

स्थानं लक्ष्मणार्य्यैः कृतमिह प्रकृतेर्यत्कृते सिद्धमासीत्॥५९॥
श्रीवेदव्यासविष्णुप्रभुचरणमिते संमिते ग्रंथसार्थैः श्रीगोविंदा
भिधानां समयनयविदां देशिकानां निदेशात् ॥ आचार्य्याणां
चरित्रे हरिजनसुखदे शास्त्रिकृष्णैर्निबद्धे प्रस्थानं दिग्जयाख्ये
समजनि पटहैश्चादिमं सप्तभिस्तैः ॥ ६० ॥

अथ द्वितीयप्रस्थानम् ।

यस्तीर्थानि पवित्रयन् समचरत्तीर्थेषु सर्वेष्वपि तीर्थात्मा
निजपूर्वतीर्थविहितं तीर्थंनु सञ्चारयन् ॥ तं तीर्थप्रवरं नमामि म
नसा सम्प्राप्य तीर्थक्रमं तीर्थं मे स्मरणान्महाप्रभुरयं तीर्थी
करोतु स्वयम् ॥ १ ॥ अथ प्रयाणाभिमुखोभवद्गुरुर्विचार्य्य
भुव्यात्मजनेः प्रयोजनम् ॥ समुद्धृतिर्दैवजनस्य धर्म्मतः प्र

व्यकों सिद्ध कर प्रस्थान कियो ॥५९॥ समय नीतिके जानवेवारे जगद्गुरु
श्रीगोविन्दाचार्यजी महाप्रभुकी आज्ञासों श्रीमद्वेदव्यास विष्णुस्वामि मतके
ग्रन्थनके अनुकूल कृष्णशास्त्रीके बनाये भये भगवद्भक्तनके सुख देवेवारे या
आचार्यचारित्रग्रन्थमें सात पटहसों ये प्रथमप्रस्थान समाप्त भयो ॥ ६० ॥

जो तीर्थात्मा अग्निस्वरूप तीर्थनकों पवित्र करते सब तीर्थनमें विचरते
भये ओर पूर्वाचार्यविष्णुस्वामिसम्प्रदायके तीर्थ रहस्यको प्रचार करते एसे
गुरूनमें श्रेष्ठ श्रीवल्लभाचार्यजीकों में मनसों नमस्कार करूं हूँ वे महाप्रभु
मेरे मानसिक भावनकों पवित्र करें ॥ १ ॥ पीछें श्रीगुरू संसारमें अपने
प्राकट्यको दैवीजीवनको उद्धार करनो ओर समयको तात्पर्यसों वितावनो

या यवीयसस्सहोदरस्याग्रभवो व्यचिंतयत् ॥ निजान्समाहू
य शुभेह्नि माधवे विधिस्सुरस्मिन् व्रतबंधन समे ॥ ५५ ॥
वयं तु विद्यैकघना स्तपोघनास्तदर्थिनां पंचमहायन व्रते॥ समे
तृतीयेऽपि निसर्गजातया न वल्लभोऽलकलितोऽत्रदीक्षित ॥५६
इतोऽभिगंतु खलु वष्टि वल्लभो मुहूर्तमस्मिन्न समेतु चाष्टमे ॥
अतोनुदेशं ददत स्वका स्वय तथाविधेहीति समूचिरेऽखिला
॥ ५७ ॥ महोत्सवेनास्य व्रतोत्सव कृत कृतानुरागे स्वजने
र्यथाविधि ॥ विधेर्विधाने विनिवर्त्त्य सर्वत कृतार्थतामापुरमी
कुलोचिताम्॥५८॥इति काशीतो निर्गमनन्तथा स्वग्रामकाँकर
वाडागम्मनप्रकरणम्॥जाताभीष्ट फलानि शतमखविधितश्चाज्ञ
या श्रीमुरारेराम्नायस्य प्रकाशो जगदुपकृतये चाभवच्छ्रीपुरा
रे ॥ भारद्वाजान्वयस्य श्रुतिरतिविततां पूर्णचंद्रोपमाऽभूत्प्र

शुभदिनमें करवेकी इच्छासों अपने लोगनकों बुलायकें विचार करते भये
॥ ५५ ॥ जो हमारे विद्याही एक धन हे तपस्याही एक धन हे विद्या
ओर तपस्याकी कामनावारेकों पाँचवे वर्ष जनेऊ करनो चहिये ओर
श्रीवल्लभको तो आठवें वर्ष उपवीत दीक्षितजीनें कियो हो निष्काम कारण
जो उनकों तीसरेही वर्षमें सरस्वती स्वभावहीसों प्रगट भई ही ॥५६॥ ओर
श्रीवल्लभ यहाँसों जायवेकी इच्छा करें हैं आठवे वर्ष मुहूर्तभी नहीं बनें हे
एसे विचार करते सब लोगननें कही जो ठीक हे पाँचवेहीवर्षमें अभी करो
॥ ५७ ॥ ये विचारकें बडे अनुरागसों यथाविधि इनको यज्ञोपवीत कियो
जेसी विधिही याकों करकें अपने कुलके उचित कृतकृत्य भये ॥ ५८ ॥
भगवान्की आज्ञासों सौ सोमयज्ञके पीछें अभीष्ट फलसिद्धि भई जगत्के
उपकारके लियें त्रिपुरारिके सम्प्रदायको प्रकाश भयो भारद्वाजके वंशकी
विद्या पूर्णचन्द्रमाके कान्तिके समान फेली ओर लक्ष्मणभट्टजीनें अपने कर्त-

वमेव सः ॥ ७ ॥ तदा जनित्री स्वसुतं जगाद सा नयस्व मां
गच्छति चेद्भवानितः ॥ चिरादिदृक्षा मम व्यङ्कटेशितुः प्रपूर
णीया तनयेन धर्म्मतः ॥ ८ ॥ तदा गुरुः प्रीतमना बभूव स
जगाद गुर्वीं चल साकमेव मे ॥ समाह्वयन्ते वितनोति मातुल
स्तदर्थनामद्यच तेन सार्थये ॥ ९ ॥ विधाय मन्त्रं गुरुरेवमार्य्यं
या ततस्स्वशिष्यानभिधाय तत्कथाम् ॥ प्रणम्य रामं भगिनीं
जनार्दनं तदाज्ञया गन्तुमियेष दक्षिणाम् ॥ १० ॥ स्वभूः स्व
यम्भूरथ शम्भुमुख्याः शिष्या जनित्री भगिनी सरस्वती ॥
तथैव केतुर्लकुटोऽन्वगुर्गुरुं चचाल पद्भ्यां स विधाय मङ्गलम्
॥ ११ ॥ अनन्तसेनं जटया वहन् व्रती स्रगूर्द्ध्वपुण्ड्रारिगदाब्ज
कम्बुभृत् ॥ धृतोपवीताजिनदण्डमेखलो दधत्स रेजेङ्घ्रियुगेन
पादुके ॥ १२ ॥ स घोटकैर्वीविधवाहकैर्वहन् भरं स्वशिष्यैः
प्रचलन् शनैः शनैः ॥ ततः स कृष्णासविधे कियद्दिनैस्ससमा

होय हे ॥ ७ ॥ तब तो माता बोली के जो यहाँसों जाओतो हमकोबी ले चलो
बहोत दिनासों व्यंकटेशके देखवेकी इच्छा हे ताको धर्मसों पुत्रको पूरी
करनी चाहिये ॥ ८ ॥ तब आप प्रसन्न भये ओर कही जो चलो हमारेही संग
मामाबी बुलावे हें उनकोबी कहनो सिद्ध होय जायगो ॥ ९ ॥ या प्रकार
मातासों सलाहकर अपने शिष्यनसों कहकें जनार्दन रामकृष्ण बहिनीकों
प्रणाम कर उनकी आज्ञासों दक्षिणजायवेको विचार कियो ॥ १० ॥
ओर स्वभू स्वयम्भू शम्भु केतु लकुट आदि शिष्य ओर माता बहिन सर
स्वती इनके संग मंगल करकें पावनसों पधारे ॥ ११ ॥ सो अनन्तसेन भगवा
न्कों जटा करकें लियें तथा माला ऊर्द्ध्वपुण्ड्रचक्रादिक शीतलमुद्रा उपवीत
मृगचर्म दंड मेखला पादुका आदिकों धारण कियें अत्यन्त शोभते ॥ १२ ॥ घोड़ा
ओर काँवड आदि अनेक प्रकारके वाहननसों भारकों लेजाते धीरे २ अपने

चारणीयस्समयोऽपि मम्मेत ॥ २ ॥ ततोऽब्रवीन्मातरमग्रजं
प्रभुर्जनार्दन ज्येष्ठसहोदर तथा ॥ स्वतीर्थसङ्कल्पिततीर्थयात्र
या पवित्रणीयेति तनुर्मतिर्मम ॥ ३ ॥ तदाह माता न हि
तात बालको विदेशकष्टाय नियुज्यते जनै ॥ वटोर्गुरुस्तीर्थत
या स्थितो गृहे कथ स हाप्यो भविता भवादृशा ॥ ४ ॥ गुरु
र्जनित्रीं पुनराह सादर सत्यम्भवत्या समुदीरित सति ॥ जन
स्य मोहैकनिबन्धनार्भके निसर्गजा प्रेमतति प्रवर्तते ॥ ५ ॥
भवेदटाव्यां न विनात्र पाटव वटोर्निवार्य्यो न हि सा हितेच्छुना॥
यथागद रोगनिवृत्तये कटु निपाययत्येव भिषक् सुहृत्तम
॥ ६ ॥ अधीत्य वेदानभितोष्य सद्गुरूंस्तदाज्ञया तीर्थविधिं स
चार्हति॥ अतो मृकण्डस्तपसेऽयुजत्सुत व्रती व्रताद्भ्रश्यति नै

इत्यादि प्रयोजन विचारकें यात्रा करवेकों तैयार होते भये ॥ २ ॥
ओर मातासों तथा ज्येष्ठ भाईसों बोले जो अपनी सकल्पकरी तीर्थयात्रासों
शरीरको पवित्रकरवेको मेरो विचार है ॥ ३ ॥ तब माता बोली जो कोई
बी मनुष्य विदेशकष्टके लिये बालकको नहीं कहे है बालकको तीर्थ वो
वाको गुरू घरमें हीं है सो वो आपके जेसेसों केसे छोडवे योग्य है ॥ ४ ॥
तब फिर मातासों सादरपूर्वक बोले जो आपनें सत्य आज्ञाकरी मनुष्यको
स्वभावहीसों बालकमें प्रेम रहे है ॥ ५ ॥ परन्तु बिना भ्रमणके कुशलता
नहीं आवे है यात हितकी इच्छा करवेवारे गुरूकों नहीं रोंकनो चाहिये जेसें
रोगनिवृत्तिके लिये कडूवी ओषधकों अच्छो वैद्य पियावे है ॥ ६ ॥ वे
दनकों पढके गुरूनकों प्रसन्न करके उनकी आज्ञासों बालक तीर्थविधि
करवेकों योग्य है याहीसों मृकण्डऋषिनें मार्कंडेय अपने पुत्रकों तप करवेको
नियोग कियो हो ऐसें करवेसों ब्रह्मचारी अपने ब्रह्मचर्यसों भ्रष्ट नहीं

गतो विजित्य केतुस्समुपागतोगुरून् ॥ विवादमेवम्प्रसमीक्ष्य
चैतयोर्द्विजाननन्दुः प्रशशंसुरार्य्यान् ॥ १९॥ ततस्तु कृष्णाप
रपारमागतश्चकार तत्तीर्थविधिं यथाविधि ॥ समङ्गलप्रस्थमथ
प्रतस्थे नृसिंहदेवं प्रणतोनिजैस्सह ॥ २० ॥ इहागतोढुंढिम
खीविदाम्बरोमखक्रियायां गुरवेऽभियोजयन् ॥ क्रमेण सोमं वद
पद्धतेर्विदां मतानि तत्रेति च संशयान् जगौ ॥ २१ ॥ ततोगु
रुर्व्युत्क्रमतोऽपि पद्धतेः क्रमावलिं सोममखस्य सत्वरम् ॥ नि
वार्य्य पक्षान्निजपक्षतः शयान् बभाष एतत् समभून्महाद्भुतम्
॥ २२ ॥ ततस्सढुंढिर्निपपात पादयोरुवाच वाचां पतिरेव य
द्भवान् ॥ न तत्र चित्रं तव बुद्धिवैभवे कृतापराधेऽपि दयां नि
योजय ॥ २३ ॥ तदा गुरुः प्राह भवान् वयोधिकोनचापराधो
वटुशिक्षणोक्तितः ॥ धरामराः पूज्यतमास्स्वयं सुरैर्न दीनतां

संग भग्यो या प्रकार केतु वाकों जीतकें आपकें पास आये एसे उन दोनों-
नको विवाद देखकें सब ब्राह्मण हँसे ओर आपकी प्रशंसा करवे लगे
॥ १९ ॥ पीछें कृष्णानदीके पार उतरकें यथाविधि तीर्थविधिकों
कियो ओर मंगलप्रस्थकों अपने लोगनके संग पधारे वहाँ नृसिंहदेवको
प्रणाम कियो ॥ २० ॥ यहाँ विद्वाननमें श्रेष्ठ ढुंढि नामके याज्ञिक आये
ओर याज्ञिक विषयमें आपसों प्रश्न कियो जो सोमकी पद्धति क्रमसों बोलो
ओर बी बहोत संदेह किये ॥ २१ ॥ तब आपनें सोमकी पद्धतिकों उलटी
सीधी दोनों चालसों पढ दियो ओर अपने पक्षसों उनकेपक्षको निवृत्त कियो
॥ २२ ॥ तब ढुंढी चरणकमलनमें गिर पर्‍यो ओर कह्यो जो आप तो
वाणीके पति हें आपके बुद्धिवैभवमें कछू चित्र नहीं हे अपराधकरवेवारे
मेरे ऊपर दया करनी ॥ २३ ॥ तब आपनें कही जो आप अवस्थामें
बडे हो बालकके शिक्षाकरवेमें कछु अपराध नहीं हे ब्राह्मण देवतानके बी

गतोऽभूत्स कृताह्निको यदा ॥ १३ ॥ तदैकदन्तोगणपार्चनेरत स्समागतोजल्पकृते द्विजेरित ॥ गुरु स्थित वीक्ष्य च वेदिको परि जगाद वाक्यं विहसन् स वाक्पटीम् ॥ १४ ॥ गणेश्वर पूज्यतम सुरेश्वरैर्विहाय त श्रेयसमाप्नुयात्स क ॥ स मङ्गला मधिपोगणानां भवद्भिर्विं किं न सदा समर्च्यते ॥ १५ ॥ तदा गुरु प्राह गणेश्वरोगणैस्समर्च्यते विघ्नकरैर्निजेश्वर ॥ श्रुतौ गणानामधिपोय ईरित सचेश्वरांशोऽस्य विनायकस्तव॥१६॥ तदा स रुष्टोगणपाभिवेशत प्रदर्श्य दन्तान् करशुण्डयार्दि तुम् ॥ उपासरत्केतुकमण्डलुस्तदा नृसिंहरूपेण तमाह याहि भो ॥ १७ ॥ तत क्षमा तेन च शुण्डया हता दरीव जाता स्वरतोविदीर्य्य सा ॥ कमण्डलो कण्ठरवेण सोऽपतत् करीव कण्ठीरवनादतोर्दित ॥ १८ ॥ तत स्वशिष्यै स पलायितो

शिष्यनके संग चलते थोरें दिनानमें कृष्णानदीके पास पहुँचे और आह्निक कर चुके ॥ १३ ॥ तब गणेशजीके उपासक एकदन्ताचार्य विवाद करवेके लिये आये और वेदीके ऊपर विराजमान आपकों देखकें हँसकें बोले ॥ १४ ॥ जो देवतानके ईश्वरनसों गणेशजी पूजे जायहैं इनकें विना कल्याणको कौन पाय सके है एसे मंगलनके स्वामी गणेशजीकों आप जेसे सदा क्यों नहीं पूजते ॥ १५ ॥ तब आप बोले जो विघ्नकरवे वारे गण अपने ईश्वर गणेश्वरकों पूजन करे हैं वेदमें गणनके जो स्वामी कहे गये हैं वो ईश्वर हैं उनके अंश तुमारे गणेशजी हैं ॥ १६ ॥ तब वो क्रुद्ध होयकें गणेश जीके आवेशसों दाँत निकासकें शूँडतें मारवेकी इच्छासों चल्यो तब आपके शिष्य केतु कमंडलु नृसिंहरूप धरकें बोले जो याहिभो (जाव यहाँसा) ॥ १७ ॥ तब वानें शूंड पृथ्वीपे देमारी सो कदरा होयगई पीछें कमंडलु सिंहकी गर्जनासों हाथीके जेसो वो गिरपर्यो ॥१८॥ओर अपने शिष्यनके

फलिता न च त्वयि॥ ऊषाऽनिरुद्धं जनकश्च मां यथा तथा भव
त्या कृतमेव वीक्षितम् ॥ ३० ॥ अथावशिष्टं तव चेत्कुरुष्व
तदितः प्रयाणं यदनन्तरम्भवेत् ॥ प्रयातुकामा भवती क्व त
द्वद चरासि मातः खलु निर्व्यलीकतः ॥ ३१ ॥ तदा जनित्री
निजगाद तम्पुनर्धियोपहारोभवतः कृतेऽर्पितः ॥ तमत्र हा
रेण समर्च्य चानृणा मनोऽस्ति यातुं तव मातुलालयम्॥३२॥
ततोगुरुर्हारमथोपहारं निवेद्य विष्णोरनु तोष्य वैष्णवान् ॥
निवेदितान्नं चरणावनेजनं हरेर्गृहीत्वा स्वजनैरितोऽचलत्
॥ ३३ ॥ व्रजन् स विद्यानगरं प्रतिस्वकैः सहैव कृष्णासविधे
समागतः ॥ इयेष कोलूरपदं समीक्षितुं यदत्र चाभून्मुनिबिल्व
मङ्गलः ॥ ३४ ॥ त्रिलिङ्गराजस्य पुरोधसः सुतोहरिं स चिं
न्तामणिसङ्गतःश्रितः ॥ उवास वृन्दावनमेत्य निर्ममे हरिं त्वप
श्यत् करुणामृतस्तवम् ॥ ३५ ॥ ततस्स वेणां समुपागतश्श

नहीं भई जेसें ऊषानें अनिरुद्धकों पितानें मोकूं वेसेही आपनें भी सत्यही देख्यो हे ॥ ३० ॥ ओर जो यहाँ करवेको बाकी होय सो करो पीछें यहाँसों चलनो हे ओर कहाँ चलवेकी इच्छा हे सो हेमातः निश्चय कहो ॥ ३१ ॥तब मातानें फिर कही जो तुह्मारे लियें हार भेट करवेको संकल्प कियो हो सो हार भेट करकें अनृण होयकें तुह्मारे माँमाँके घर जायवेको विचार हे ॥ ३२ ॥ तब आप विष्णुको हार भेट करवायकें ओर वैष्णवनकों प्रसन्न करकें महाप्रसाद चरणामृत लेकें अपने लोगनके संग वहाँसों चले ॥ ३३ ॥ सो विद्यानगरकों जाते कृष्णाके तीरसों कोलूरपद गये जहाँ बिल्वमंगल मुनि भये हे ॥ ३४ ॥ जो त्रिलिङ्गदेशके राजाके पुरोहितके पुत्र हे ओर हरि भगवान्के आश्रित भये हे जिननें वृन्दावनमें जायकें हरिके साक्षात् दर्शन किये ओर करुणामृतस्तव नामको ग्रन्थ बनायो ॥ ३५ ॥ पीछें धीरें २ चलते वेणानदीकों पहुँचे सो वामें स्नान करकें

कर्तुमिहात्मनार्हसि ॥ २४ ॥ विसृज्य चैव तमथो ततोऽचल न्समागतोवेंकटपर्वत गुरु ॥ ददर्श त लक्ष्मणबालक हरिं प्रणम्य चोपायनमादधन्निजे ॥ २५ ॥ अथोपिवाँस्तत्र कियद्दिनानि स गवेषयन् भागवतागमानित ॥ सुहृत्तमेभ्यस्त्वधिगम्यतानय विचार्य्य सारं सकल समग्रहीत् ॥ २६ ॥ अथैकदेने जननी जगाद सा विलोकितस्स्वप्नगया मयाद्य वै ॥ तवार्य्यवर्य्योवदने धरामृत प्रभोर्मदस्येप्सितसिद्धिरास मे॥२७॥ तदाह चिन्तामणिरेप चिन्तित हरिर्ददात्येव निजात्मनोगुरु ॥ समागतायस्य कृते सएदवते मनोरथ पूर्तिमगान्न संशय ॥२८॥ परेशमायापटचित्रित जगत् प्रकाशितं क्वापि तिरोहितम्भवेत् ॥ निजेच्छयानुग्रहत प्रदर्शित मृतम्भवत्यै न मृपासुना कृतम् ॥ २९ ॥ स्वप्नोमृपा प्रायशएव दृश्यते जनश्रुति सा

पूज्य हें यासों दीनता करवेके योग्य आप नहीं हें ॥ २४ ॥ एसे कहके पीछें चले सो वेंकट पर्वतकों गये यहाँ लक्ष्मणबालाजीके दर्शन किये ओर प्रणाम करकें अपने लोगनके सग भेट कियो ॥ २५ ॥ ओर श्रीमद्भगवद् सम्बन्धीशास्त्रनकों देखतें कितनेक दिन वहाँ रहे ओर मित्रनसों मिलकें विचारकें सम्पूर्ण सारकों ग्रहण कियो ॥ २६ ॥ एकदिन मातानें आपसों कही जो आज स्वप्नमें लक्ष्मणप्रभुके मुखारविन्दमें तुमारे गुरुको मेनें देख्यो हे सो मेरी इच्छाकी सिद्धि भई ॥ २७ ॥ तब आपने कही जो अपने गुरु हरि चिन्तामणि हे ये वाँछितको देय हें याके लियें आये यो तुमारो मनोर्थ सिद्ध भयो ॥ २८ ॥ भगवानके मायारूपी पटमें ये जगत चित्रके तरह खींच्यो हे कभी प्रकाश होयजाय हे कभी छिप जायहे अपनी इच्छासों अनुग्रहसों आपको देखायो हे सो सत्य देखायो हे झूठो नहीं ॥ २९ ॥ स्वप्न यहोत करकें मिथ्याहोय हें ये जनश्रुति (कहावत) आपमें फलित

चन तत्र वित्तमास्तमोऽस्ति द्रव्यं किमु नेति तद्वद ॥ तमः प
दार्थान्तरमित्यसाधयत्स खण्डयन् तन्मतसम्मतंतमः॥ ४२ ॥
नमस्कृतोऽसावतिमानुषीम्मतिं दधद् बुधैस्तैश्चरणाब्जमाश्रि
तैः॥प्रशस्य तान् प्राज्ञवराँस्ततश्चलन्नितस्स विद्यानगरोपकण्ठ
तः ॥ ४३ ॥ विलोकितं तन्नगरं समागतैः पुरन्दरावासपुरस्य
सोदरम् ॥ सुभद्रया यत्खलु तुङ्गभद्रया द्विगङ्गयान्तर्गतयाऽ
भिशोभितम् ॥ ४४ ॥ सुवर्णकुम्भैस्सुधयापि संस्कृतैस्सुवैज
यन्तैर्नृपमन्दिरैरपि ॥ धियां सदारामवरैश्चनन्दनै स्सुरालयैर्भा
तमिहाप्सरोगणैः ॥ ४५॥ प्राचीनपालीपरिखाभिरक्षितं दृढा
श्मसाररतुङ्गगोपुरम् ॥ वृतंच शाखानगरैरितस्ततोजनाकुलं
शिष्यगणैस्सवल्लभैः ॥ ४६ ॥ अत्र प्राप्तो गुरुरथ निजम्प्रेषया
मास शिष्यं यातोमातामहगृहमयं मातुलायाह वृत्तम् ॥ प्रा

वा नहीं सो कहो तब आपनें उनके मतको खंडन करते तमकों दूसरो पदार्थ सिद्ध कियो ॥ ४२ ॥ तब आये विद्वाननें आपके चरणकमलके आश्रित होयकें नमस्कार करी ओर आप उनकी प्रशंसा करकें वहांसों विद्यानगरकें ओर चले ॥ ४३ ॥ सो आयकें इन्द्रके पुरके सहोदर भाई जेसे वा नगरकों देख्यो जो सुभद्रा ओर तुंगभद्रा नदीके बीचमें शोभायमान हो ॥ ४४ ॥ जो अमृतसों संस्कार किये सुवर्णके कलशानसों अच्छी पताकानसों राजभवननसों बगीचानसों इन्द्रपुर जेसो शोभतो हो ॥ ४५ ॥ जो पत्थरके कोट धूलीके कोट खाई इनसों रक्षित हो जो लोहेके जंगी किवाड वारे गोपुरनके द्वार वारोहो छोटे २ दूसरे नगर पासमें जाके हे जाके चारों आडी जननको शब्द होयरह्यो हो ॥ ४६ ॥ वहाँ आयकें आपनें शिष्यको नानाके घर भेज्यो वानें जायकें आपके मामासों सब वृत्तान्त कह्यो तब वे अपनी बहिन तथा महात्मा भानजाकों आये सुनकें इनकों लेवेके लियें

नैर्निमज्य तस्यां हरिपूजनं व्यधात् ॥ यशस्समाकर्ण्य समाम
तावुधादिदृक्षवस्तस्य चिराद्गुरोरिह ॥ ३६ ॥ स्थितस्सवेणा
तटवेदिकोपरि वृतस्सुशिष्यै र्निजजातिसम्भवै ॥ विलोकित
स्तैर्महसा महीयसा परिष्कृतोऽग्निर्द्विजपुङ्गवैर्यथा ॥ ३७ ॥
सुसत्कृतास्तेन महात्मना वुधा पुरोनिविश्यैव प्रणम्य ते जगु ॥
स्वतोभवान् वेदविदां बृहस्पति श्रुतेन न पाल्य कर्णमण्डल-
म् ॥ ३८ ॥ गुरुस्तदा प्राह यदेव भण्यतां तदेव मे श्राव्यपद
समेष्यति ॥ परस्पर ते प्रसमीक्ष्य चानन निशम्य वाच यमि
तां गतास्तत ॥ ३९ ॥ अथाह विज्ञो रविनाथवैदिको गुरुस्स
पारायणपारगामिनाम् ॥ पद विहायैकमथापरम्पर त्यजन् श्र
तान्ते पुरत पदावलिम् ॥ ४० ॥ तदास्मदाराध्यपद पदाव
लिं जगौ तदुत्सृष्टविलोमत' क्रमात् ॥ तदद्भुत वीक्ष्य सुविस्मि
ताजगुरय वद्धवालसरस्वती स्वयम् ॥ ४१ ॥ स्थिता जगु' के

हरिकी सेवा करी यहाँ यश सुनके देखवेकी इच्छासों बहोत विद्वान् आये ॥ ३६ ॥ सो उननें स्वजातिके शिष्यनसों सेवित वेणानदीके तटपे वेदीके ऊपर विराजमान बडे तेजसों युक्त ब्राह्मणनकरकें सहित अग्निदेवके समान आपकों देख्यो ॥ ३७॥ आपनें उनको सत्कार करकें बेठाये वे भी प्रणाम करकें आगें बेठकें बोले जो आप वेदज्ञनमें बृहस्पति हैं हमारे कर्णमडलनकों पवित्र करिये ॥ ३८ ॥ तब आपनें कही जोई पढो वोही सुनावें तब वे आपसमें परस्परकों मुख देखकें मौन होयगये ॥ ३९ ॥ पीछें बडे प्रतिष्ठित रवि-नाथ वैदिक जो वेदपाठीनके गुरु हे उननें एक २ पद छोंडके पदावलीकों पढी ॥ ४० ॥ तब आपनें याही पदावलीकों विलोम पाठकर दीनों ये अद्भुतपनों देखकें विस्मित होयकें सब बोले जो ये तो स्वयम् बालसरस्वती हैं ॥ ४१ ॥ ओर उनमेंसों कोई विद्वाननें पूछी जो तम (अन्धकार) भ्रम्य हे

नामं नामं निजचरणयोः श्रीमदाचार्य्यवर्य्यै पायं पायं मधु सु मधुरं वाक्पतेर्वाक्ततीनाम् ॥ ध्यायं ध्यायं चरितममलं तस्य विद्यापुरीयं कारं कारं धियमधिगतं भूरि वृत्तं ब्रवीमि ॥ १ ॥ पवित्रसलिला शुभैः किसलयैः फलैरुत्पलै र्विचित्रतरुमालया प्यमरमन्दिरैर्घट्टकैः ॥ पुरारिमुकुटेधुनीपुरवरे यथा स्वर्धुनी विराजतितरां दृशां यदधितुङ्गभद्रा मुदे ॥ २ ॥ स्वच्छाम्भोजैर्भुजगगतिभिः शोभितानां नगानाम् मध्ये यान्ती मधुरसमधुरा तुङ्गभद्रा सुभद्रा ॥ श्रीरङ्गौकः परिपारिगता गृह्यते याऽर्जुनौघैः शृण्वन् सोऽस्याः कलकलरवं वर्णयन् द्रङ्ग मागात् ॥ ३ ॥ एतद्विद्यानगरममलं भूभृता निर्म्मितम्प्राक् विद्यां हृद्यां जगति तनुता निर्मितं बुक्कणेन ॥ विद्यारण्यप्रभृतिविदुषां वेदभाष्योक्तिभाजाम् ॥ प्रादुर्भावस्समभवदिहोद्दामविद्याप्र

श्रीमदाचार्यजीके चरणारविन्दमें बार २ नमस्कार करकें उनकी वाणीके मधुररसकों बार २ पान करकें उनके शुद्ध चारित्रकों बार २ ध्यान करकें उनके विद्यानगरमें भये चारित्रकों बार २ बुद्धिमें लायकें पीछें चारित्र लिखूं हूँ ॥ १ ॥ जा विद्यानगरमें सुन्दर कोमल पत्र फल कमल विचित्रवृक्षनकी माला देवतानके मन्दिर घाट इन करकें नेत्रनके आनन्दके लियें तुंगभद्रा नदी वहरही हे जेसें काशीजीमें गंगाजी ॥ २ ॥ सुंदर पर्वतनके बीचमें सर्पके चालवारी स्वच्छ तरंगनसों मधुर २ जहां तुंगभद्रा ओर सुभद्रा नदी जाय रही हें जो अपनें सुन्दरजलके पूरसों मानों घूंम २ कें नाटकशालामें नाच रहीं हें सो इनको कलकल शब्द सुनते ओर वर्णन करते मामाके गाममें आये ॥ ३ ॥ ये सुंदर विद्यानगर हे जाकों जगत्में मनोहर विद्यानको विस्तार करते पांडुवंशके राजा बुक्कणनें बसायो हो जामें वेदभाष्यके बनायवेवारे वि-

स्तां श्रुत्वा स निजभगिनीं भागिनेयं महान्तमायातोऽसौ नृप
तिमहसा नेतुकामोऽनयोर्द्राक् ॥ ४७ ॥ दृष्ट्वा प्रेमाश्रुभरनय
न स्वाशिषा भागिनेय सयोज्यासावनमदथ तां पादयोर्यल्लमा
श्च ॥ वार्तो स्थित्वोपवननिकटे चक्रुरन्योन्यमेते आर्याणां यद्व्यु
परतिभवं शोकमुन्मार्जयन्त ॥ ४८ ॥ अन्योन्यं ते शुचमि
ह निराकृत्य यानेधिरोढुं याच्भाञ्चक्रे पुनरिह ततस्तन्निषे
धं निशम्य ॥ नीत्वा चाग्रे समचलदसौ वन्धुभिर्दारवर्गै रम्यै
रश्वै कनककलितै कुञ्जरैस्सद्रथैश्च ॥ ४९ ॥ श्रीवेदव्यासवि
ष्णुप्रभुचरणमिते सम्मिते ग्रन्थसार्थे श्रीगोविन्दाभिधानां सम
यनयविदां देशिकानां निदेशात् ॥ आचार्य्याणां चरित्रे हरि
जनसुखदे शास्त्रिकृष्णैर्निवद्धे प्रस्थानेऽस्मिन् द्वितीये समज
नि पटहश्चादिमोऽय जयाख्ये ॥ ५० ॥

जल्दी राजविभूतिसों आये ॥ ४७ ॥ ओर देखकें प्रेमसों आँसूभर आये ओर आशीर्वाद भागनेयको देकें यल्लमाजीके पावनमें प्रणाम करते भये ओर उपवनके पास ठाढे होयकें लक्ष्मणभट्टजीके लीला पधारवेके शोककों दूर करकें परस्पर बात करवे लगे ॥ ४८ ॥ ओर शोककों दूर करकें सवारीनमें चढवेके लियें प्रार्थनाकरी फिर ताको निषेध सुनकें आपकों आगें करकें बन्धुवर्ग स्त्रीवर्गके सहित तथा अच्छे घोडान करकें सुवर्णके आभूषणनसों भूषित हाथी रथन करकें सहित गामको चले ॥ ४९ ॥ समयनीतिके जानवे वारे जगद्गुरु महाप्रभु श्रीगोविन्दाचार्यजी महाराजकी आज्ञासों कृष्णशास्त्रीके बनाये भये श्रीमद्वेदव्यासविष्णुस्वामीजीके सम्प्रदायके ग्रन्थनके अनुकूल हरिभक्तनके सुखदेवेवारे या चरित्रग्रन्थमें दूसरे प्रस्थानमें ये प्रथम पटह समाप्त भयो ॥ ५० ॥

नामं नामं निजचरणयोः श्रीमदाचार्य्यवर्य्यं पायं पायं मधु सुमधुरं वाक्पतेर्वाक्ततीनाम् ॥ ध्यायं ध्यायं चरितममलं तस्य विद्यापुरीयं कारं कारं धियमधिगतं भूरि वृत्तं ब्रवीमि ॥ १ ॥ पवित्रसलिला शुभैः किसलयैः फलैरुत्पलै र्विचित्रतरुमालया प्यमरमन्दिरैर्घट्टिकैः ॥ पुरारिमुकुटेधुनीपुरवरे यथा स्वर्धुनी विराजतितरां दृशां यदधितुङ्गभद्रा मुदे ॥ २ ॥ स्वच्छाम्भोजैर्भुजगगतिभिः शोभितानां नगानाम् मध्ये यान्ती मधुरमधुरा तुङ्गभद्रा सुभद्रा ॥ श्रीरङ्गौकः परिपारिगता गृह्यते यार्जुनौघैः शृण्वन् सोऽस्याः कलकलरवं वर्णयन् द्रङ्ग मागात् ॥ ३ ॥ एतद्विद्यानगरममलं भूभृता निर्म्मितम्प्राक् विद्यां हृद्यां जगति तनुता निर्मितं बुक्कणेन ॥ विद्यारण्यप्रभृतिविदुषां वेदभाष्योक्तिभाजाम् ॥ प्रादुर्भावस्समभवदिहोदामविद्याग्र

श्रीमदाचार्यजीके चरणारविन्दमें वार २ नमस्कार करकें उनकी वाणीके मधुररसकों बार २ पान करकें उनके शुद्ध चारित्रकों बार २ ध्यान करकें उनके विद्यानगरमें भये चारित्रकों वार २ बुद्धिमें लायकें पीछें चरित्र लिखूं हूँ ॥ १ ॥ जा विद्यानगरमें सुन्दर कोमल पत्र फल कमल विचित्रवृक्षनकी माला देवतानके मन्दिर घाट इन करकें नेत्रनके आनन्दके लियें तुंगभद्रा नदी बहरही हे जेसें काशीजीमें गंगाजी ॥ २ ॥ सुंदर पर्वतनके बीचमें सर्पके चालवारी स्वच्छ तरंगनसों मधुर २ जहां तुंगभद्रा ओर सुभद्रा नदी जाय रही हें जो अपनें सुन्दरजलके पूरसों मानों घूंम २ कें नाटकशालामें नाच रहीं हें सो इनको कलकल शब्द सुनते ओर वर्णन करते मामाके गाममें आये ॥ ३ ॥ ये सुंदर विद्यानगर हे जाकों जगत्में मनोहर विद्यानको विस्तार करते पांडुवंशके राजा बुक्कणनें वसायो हो जामें वेदभाष्यके बनायवेवारे वि-

भावे ॥ ४ ॥ द्यौ किं भूमि समभवदथो भूरभूत् किं न वा द्यौः दृश्यन्तेऽस्या यदुपविपनान्यप्सरोभि श्रितानि ॥ यज्ञो पास्याश्श्रुतिविनियता यत्र देवा क्षमास्था सर्वेप्यन्येऽप्रतिम महसोभुंजते संसुधाया ॥५॥ गोनर्दीये शिशुरपि स गोनर्दन क्रीडने पु धीरा कीरा कणभुजि कथां तन्वते सारिकाभि ॥ दिग्ग्रन्थेपु प्रवरमतयोभूसुरा साग्नयोऽत्र विप्रास्तौतातिकमतभृतो व्यासस द्दर्शनज्ञा ॥ ६ ॥ कान्ता कान्ताभरणवसना कान्तमेवार्चे यन्त्यो लावण्यानां निधयइव ता सुस्मितावीरवत्य ॥ देवेन्द्रा भोनरपतिरिभायेभ्रमातङ्गतुल्या आरुह्योच्चै श्रवसममल वा न्ति सर्वेऽपि वीरा ॥७॥ प्राकारेणार्कघृणिहारिणा सिंधुना पारि खेन स्वाय कान्ते क्रकचविकटैर्गोपुराणां कपाटै ॥ हेम्नांहर्म्यै र्निभृतकलशैर्यस्य घण्टापथानाम् घर्म्मव्रातध्वजपटधुतैर्धूयते

यारण्य आदिकनको स्वतन्त्रविपाके प्रभावसों प्रादुर्भाव भयो हो ॥ ४ ॥ ये पृथिवी हे वा स्वर्ग वा दोनों हैं जामें अप्सरानसों आश्रित उपवन हैं य ज्ञनसों उपासना किये गये देवता श्रुतीनसों लाये पृथिवीपे दीख पडे हैं और सब बडे तेजवारे मनुष्य यज्ञके अवशिष्ट (सुधाको) अमृतको पान करें हैं ॥ ५ ॥ और जहां व्याकरणमें बालक वी समर्थ हुकार शब्द करें हैं शुक मेनानके सग तर्कशास्त्रमें कथा करें हैं वेदके दश ग्रन्थनमें बडे बुद्धिमान अग्निहोत्रवारे मीमांसा वेदान्तके जानवेवारे ब्राह्मण जहां हैं ॥ ६ ॥ सुदर आभरण वस्त्रवारी पतिहीकी पूजा करवेवारी सुदरताई की खान जेसीं स्त्री पतिपुत्रवारी जहां हैं राजा इन्द्रके समान हैं हाथी ऐराव- तके समान हैं वीर लोग उच्चै श्रवा घोडा वा बडे यशमें चढकें जाय हैं ॥ ७ ॥ जो सूर्यनेवी ऊँचे अपने कोट करकें समुद्रके जेसे खाँवा करकें कीलनसों विकट गोपुरनके लोहके किवाडान करकें सुवर्णके कलशवारे म

दूरतोद्राक् ॥८॥ अस्मिन् द्रङ्गे समविशदसौ वर्णिते मातुलाद्यैः पौरैर्दृष्टोमहसि महितःसञ्चरन् पादुकाभिः ॥ विद्वद्वृन्दैरुपगतज नैस्सभ्यवर्य्यैस्तथेभ्यै वर्त्मन्याय्यैश्चरणनिकटे वन्दितः कृष्णव र्त्मा ॥ ९ ॥ ग्राव्णां रत्नैः कृतशरणयोर्यत्र मृत्स्नाभिषिक्ताः पण्याली सा द्रविणनिचयैः स्वस्वपण्यैश्च पूर्णा ॥ धूमस्तोमोऽप्य गरुसुरभिश्चारुधूपाग्निजन्मा प्रासादानां किमु पिशुनतां वैजय न्ताय वक्ति ॥१०॥ रम्भास्तम्भैः कुशलकलशैस्तोरणैः पल्लवा नाम् द्वारे द्वारे प्रति प्रति गृहं मण्डलैर्मण्डिता भूः ॥ लाजादध्यक्ष तसुमतले न्यस्तदीपावलीभिःपुम्भिः स्त्रीभिश्शिशुभिरमलैर्भूषि तैर्भूषिता भूः॥११॥ब्रह्मोद्घोषैः क्रतुभिरुचितैर्ब्राह्मणानां निवासान् शस्त्रैरस्त्रैस्तुरगकरिभिर्वन्दिभिः क्षत्रियाणाम् ॥ धान्यैर्धन्यैरपि

हलन करकें ध्वजान करकें अपने राजमार्गनको घाम दूरहीसों दूर करेहे ॥ ८ ॥ ऐसें गाम आदिके वर्णनकरते गाममें प्रवेश कियो ओर अपने तेजसों बडी महीमाकों प्राप्त पादुकानसों मार्गमें चलते आपकों पुरके रहवेवारे विद्वान् सभ्य राजकीय पुरुष धनाढ्य लोगननें देखे ओर आपके चरणकमलनमें प्रणाम कियो ॥ ९॥ जा नगरमें रत्नसों जटित पत्थरनसों बँधे मार्ग हें अपने अपने वस्तुनसों परिपूर्ण द्रव्यके ऊँचे राशीनसों खचित बाजार हें ओर धूपकी अग्निसों उठ्यो अच्छी सुगंधिवारे धूमकोपूंज इन्द्रके महलनसों मानों यहांके महलनकी चुगुली कररह्यो हे ॥ १० ॥ केलाके खम्भे सुंदर कलश नवीन कोमलपत्तानके तोरण इन मांगलिकवस्तुनकरकें घर घरके द्वार द्वारमें पृथिवी मंडित (शोभित) होय रही हे लावा दधि अक्षत पुष्प इनसों ओर दीपनकी पंक्तिसों भूषणआदि धारण किये स्त्री पुरुष बालकन करकें जो पुर शोभित होय रह्यो हे ॥ ११ ॥ वामें वेदकी ध्वनिसों योग्ययज्ञनसों ब्राह्मणनके स्थाननकों शस्त्र अस्त्र घोडे

पुरि विशां लक्षितान् धेनुभिश्च ब्रह्मण्यानां चरणजनुषां शिल्पसे
वादितोवेत् ॥ १२ ॥ मातुर्भ्रातुर्निलयमयितोप्याद्दतस्तैर्निविष्ट
पीठे शस्ते कृतनतिरय श्रेयसां पृष्टवार्ते ॥ शुश्रावात्रागतबुधज
नान्योन्यजल्पप्रजल्पे पौर्णप्राज्ञे सदसि भगवत्पादविज्ञे सजल्प
म् ॥ १३ ॥ पप्रच्छासौ सकलमपि तन्मातुलायैव वृत्तम् व्या
चक्षेऽसौ शृणु तदधुना वृत्तमेतद्यथावत् ॥ माध्वोदण्डी नृपतिम
हिलापूजितोवानदूकोराज्ञोदीक्षां कलयतुमनादिग्जयव्याजयोगा
त् ॥ १४ ॥ भूयोजिज्ञासुरिह समभूत् स्मार्तविज्ञोर्नीपिद्धोवाद
स्तस्मात्सपदि सपणश्चैतयो सम्प्रवृत्त ॥ तत्राद्यानां सनकदर
मावैष्णवास्ते सहाया शैवाश्शाक्तागणपमिहिरोपासकाधा परे
षाम् ॥ १५ ॥ साक्षित्वेनाक्षपदकणभाक्छेषभट्टादयोऽत्र वि

हाथी, सिपाही आदितें क्षत्रीनके स्थाननकों धन धान्य गौ आदिसों वैस्य
नके स्थाननकों कारीगरी आदिसों शूद्रनके मकाननकों आपनें जानें॥ १२॥
पीछें मामाके घर गये उननें आदरसों बेठाये आपनेभी नमस्कार करकें
कुशलवार्ता पूँछी ओर सुन्यो जो यहां देशदेशान्तरनतें विद्वान् आये हें
ओर परस्पर सभामें माध्वमतवारे ओर शाङ्करमतवारेनको शास्त्रार्थ होयरह्यो
हे ॥ १३ ॥ तब सब वृतान्त मांमांसों पूछ्यो मांमांनें कही जो सुनो
यथावत् जेसो ये वृतान्त चल रह्यो हे मध्वसम्प्रदायके आचार्य
दंडी रानीके गुरूनें दिग्विजयकेछलसों राजाकों दीक्षा देवेकी इच्छा करी
॥ १४ ॥ तब राजाकों स्मार्तविद्वाननें मने करदियो सो वो जिज्ञा-
सु भयो के कोन मत अच्छो हे यातें उनदोनोंनको वाद जल्दी बाजीके संग
प्रवृत्त भयो हे यामें माध्वनके सहायक निम्बार्क विष्णुस्वमी रामानुज
वैष्णव हें ओर दूसरनके शैव शाक्त, गाणपत्य, सौर ये सहायक हें॥ १५॥
ओर गौतम, कणाद, पतञ्जलि, मीमांसकभट्ट आदि मध्यस्थ हें तामें स्मा-

द्यातीर्थैर्विजितमिव नोव्यासतीर्थैः स्वकीयैः ॥ प्रातर्भावी विज यिनि बुधे स्वर्णपुष्पाभिषेकः स्वाशापूर्तिश्चिरमिह विदामाशया प्यागतानाम् ॥ १६ ॥ तस्यां रात्र्यां शयनमकरोत्तत्र प्रातस्त तोगाद्विद्याम्भोधिं यदनुससरुः शोभनार्णं स्वशिष्याः ॥ तत्रा त्मीयं निखिलमुचितं चाह्निकं सम्विधाय राजद्वारं समसरदसौ वैष्णवानां जयाय ॥ १७ ॥ दृष्ट्वा विप्रं तरणिकिरणं पावनं वा मनाभम् द्वास्स्थाराज्ञे झटिति झटिति प्रोचुरेतत्प्रभावम् ॥ रा जन् द्वारि स्वयमुपगतः पावकोबालकस्सन् द्रष्टुं संसत्तव विवि दिषुः किन्तु विष्णुर्नु जिष्णुः ॥ १८ ॥ श्रुत्वा राजा सह निज जनैः कृष्णदेवोऽभियातो द्वारे दृष्टेमिहिरमहसा कृष्णदेवोय यमेव ॥ योसौ वर्णी हरिमतभिदोवाग्बलेनैव जेतुम्प्रादुर्भूतः

र्तोचार्यविद्यातीर्थनें मध्वाचार्यव्यासतीर्थको जीत लियोहे सो सबेरे जीतवे- वारे विद्वान्कों सुवर्णाभिषेक होयगो ओर आयेभये विद्वाननकी आशा- पूर्ति विदाई होयगी ॥ १६ ॥ ये बात सुनकें पीछें वा रात्रिमें वहाँ शयन करकें अच्छे जलवारे विद्याकुंडतीर्थमें शिष्यनके संग आप गये ओर वहाँ सब आह्निक अपनों करकें वैष्णवनके जयके लियें राज- द्वारकों चले ॥ १७ ॥ सो सूर्यके जैसे तेजवारे पवित्र वामनके समान आपकों देखकें द्वारपाल जल्दीसों दौडकें आपको प्रभाव राजासों कहते भये जो हे राजन् अग्नि बालक होयकें तुह्मारी सभाकों देखवेकें लिये आप द्वारपे आये हें अथवा विष्णु हें ॥ १८ ॥ राजा कृष्णदेव सुनकें अपने मन्त्रीनके संग चट उठ धायो ओर द्वारपे तेजसों साक्षात् कृष्ण- हीकों देख्यो ओर मनमें विचार करवेलग्यो के ये वर्णी ब्रह्मचारी वैष्णव- नकी रक्षाकरवेकी कामनासों ओर वाणीके बलसों ही स्मार्तनके जीतवेके लिये

पुरि विशां लक्षितान् धेनुभिश्च क्षत्रियाणां चरणजनुषां शिल्पसे वादितोवैव ॥ १२ ॥ मातुर्भ्रातुर्निलयमयितोप्याहृतस्तैर्निविष्ट पीठे शस्ते कृतनतिरथ श्रेयसां पृष्टवार्ते ॥ शुश्रावात्रागतबुधज नान्योन्यजल्पप्रजल्पे पौर्णप्राज्ञे सदसि भगवत्पादविज्ञे सजल्प म् ॥ १३ ॥ पप्रच्छासौ सकलमपि तन्मातुलायैव वृत्तम् व्या चक्षेऽसौ शृणु तदधुना वृत्तमेतद्यथावत् ॥ माध्वोदण्डी नृपतिम हिलापूजितोवाक्कोराज्ञोदीक्षां कलयतुमनादिग्जयव्याजयोगा त् ॥ १४ ॥ भूयोजिज्ञासुरिह समभूत् स्मार्तविज्ञैर्निषिद्धोवाद स्तस्मात्सर्यादि सपणश्चैतयो सम्प्रवृत्त ॥ तत्राद्यानां सनकहर मावैष्णवास्ते सहाया शैवाश्शाक्तागणपमिहिरोपासकाचा परे षाम् ॥ १५ ॥ साक्षित्वेनाक्षपदकणभाक्शेषभट्टादयोऽत्र वि

हाथी, सिपाही आदितें क्षत्रीनके स्थाननकों धन धान्य गौ आदिसों वैस्य नके स्थाननकों कारीगरी आदिसों शूद्रनके मकाननकों आपनें जानें॥ १२॥ पीछें मामाके घर गये उननें आदरसों बेठाये आपनेंवी नमस्कार करकें कुशलवार्ता पूँछी ओर सुन्यो जो यहां देशदेशान्तरनतें विद्वान् आये हैं ओर परस्पर सभामें माध्वमतवारे ओर शाङ्करमतवारेनको शास्त्रार्थ होयरह्यो हे ॥ १३ ॥ तब सब वृत्तान्त मौमांसों पूछयो मौमांनें कही जो सुनो यथावत् जेसो ये वृत्तान्त चल रह्यो हे मध्वसम्प्रदायके आचार्य दंडी रानीके गुरुनें दिग्विजयकेछलसों राजाकों दीक्षा देवेकी इच्छा करी ॥ १४ ॥ तब राजाकों स्मार्तविद्वाननें मने करदियो सो वो जिज्ञा सु भयो के कोन मत अच्छो हे यातें उनदोनोंनको वाद जल्दी बाजीके संग प्रवृत्त भयो हे यामें माध्वनके सहायक निम्बार्क विष्णुस्वमी रामानुज वैष्णव हें ओर दूसरनके शैव शाक्त, गाणपत्य, सौर ये सहायक हें॥ १५॥ ओर गौतम, कणाद, पतञ्जलि, मीमासकभट्ट आदि मध्यस्थ हें तामें स्मा-

द्यातीर्थैर्विजितमिव नोव्यासतीर्थैः स्वकीयैः ॥ प्रातर्भावी विजयिनि बुधे स्वर्णपुष्पाभिषेकः स्वाशापूर्तिश्चिरमिह विदामाशयाप्यागतानाम् ॥ १६ ॥ तस्यां रात्र्यां शयनमकरोत्तत्र प्रातस्ततोगाद्विद्याम्भोधिं यदनुससरुः शोभनार्णं स्वशिष्याः ॥ तत्रात्मीयं निखिलमुचितं चान्हिकं सम्विधाय राजद्वारं समसरदसौ वैष्णवानां जयाय ॥ १७ ॥ दृष्ट्वा विप्रं तरणिकिरणं पावनं वामनाभम् द्वास्स्थाराज्ञे झटिति झटिति प्रोचुरेतत्प्रभावम् ॥ राजन् द्वारि स्वयमुपगतः पावकोबालकस्सन् द्रष्टुं संसत्तव विविदिषुः किन्नु विष्णुर्नु जिष्णुः ॥ १८ ॥ श्रुत्वा राजा सह निजजनैः कृष्णदेवोऽभियातो द्वारे दृष्टोमिहिरमहसा कृष्णदेवोयमेव ॥ योसौ वर्णी हरिमतभिदोवाग्बलेनैव जेतुम्प्रादुर्भूतः

र्थाचार्यविद्यातीर्थनें मध्वाचार्यव्यासतीर्थको जीत लियोहे सो सबेरे जीतवेवारे विद्वान्कों सुवर्णाभिषेक होयगो ओर आयेभये विद्वाननकी आशापूर्ति विदाई होयगी ॥ १६ ॥ ये बात सुनकें पीछें वा रात्रिमें वहाँ शयन करकें अच्छे जलवारे विद्याकुंडतीर्थमें शिष्यनके संग आप गये ओर वहाँ सब आह्निक अपनों करकें वैष्णवनके जयके लियें राजद्वारकों चले ॥ १७ ॥ सो सूर्यके जैसे तेजवारे पवित्र वामनके समान आपकों देखकें द्वारपाल जल्दीसों दौडकें आपको प्रभाव राजासों कहते भये जो हे राजन् अग्नि बालक होयकें तुह्मारी सभाकों देखवेकें लिये आप द्वारपे आये हें अथवा विष्णु हें ॥ १८ ॥ राजा कृष्णदेव सुनकें अपने मन्त्रीनके संग चट उठ धायो ओर द्वारपे तेजसों साक्षात् कृष्णहीकों देख्यो ओर मनमें विचार करवेलग्यो के ये वर्णी ब्रह्मचारी वैष्णवनकी रक्षाकरवेकी कामनासों ओर वाणीके बलसों ही स्मार्तनके जीतवेके लिये

पुनरिह स किं ज्ञातुकामोनिजानाम् ॥ १९ ॥ राजा तस्य प्र णतिमकरोत् पादयो प्राह वाचम् आयान्त्वार्य्यो सदनमखिलं पावयन्तस्तथास्मान् ॥ अन्तर्नीतं गजगतिगतं वीक्ष्य वि द्वज्जनास्ते उत्तस्थुर्द्राक् झटिति किरणायद्वदर्कोदयेन ॥२०॥ यदाङ्घ्रिमिथुनं विकाशिशतपत्रपत्रप्रभम् नखेन्दुदलनंदित नहि विचित्रमत्रांचितम्॥तयोपरि च रम्भयोरचितयोर्वरस्तम्भयो स्त्रपाकरिकरादिगा तदिति वाससाच्छाद्यते ॥ २१ ॥ वलित्रय विभागतोनिजसुखैकसत्तुन्दिलं यदस्य जठरे दलद्वयमिलद्रसोऽ स्त्युज्वलं ॥ हरिन्मणिकपाटयोर्हृदि हरे स्स्वलीलोन्नतिर्गले त्रिवलिरेखया विहरते त्रयी किन्दरे ॥ २२ ॥ भुजौ करिकरोप मौ निजतया ततोप्टितौ दधद्भुजिनभूभृतां विहतये पविं स्व

प्रगट भये हैं ॥ १९ ॥ ओर आपके चरणकमलमें प्रणामकरकें बोल्यो के पधारिये सब स्थाननकों तथा हम सबनकों पवित्र करिये ये कहकें मत्त-हाथीके चालवारे आपकों भीतर ले गयो तब आपको देखकें सब विद्वान् जल्दीसों उठ खडे भये जेसें सूर्यके उदयसों किरण होंय हे ॥ २० ॥ जिनके दोनो चरण विकसित कमलके पत्रके समान हैं उनमें नख चन्द्रके-दलके समान हें ओर उनके ऊपर जंघा दोनों कदलीके स्तम्भके समान हाथीके शुंडादंडको लज्जा करवेवारी हें याहीसों मानो वस्त्रसों ढकी हैं ॥ २१ ॥ जिनको उदर त्रिवलीसों शोभित है जामें दोनो दलनके मिल-वे सों उज्ज्वल रस उत्पन्न भयो है छाती मानों हरितमणिके किवाड ही ताके बीच ह्रदयमें हरिके लीलाकी उन्नति भई है गरेमें वेदत्रयी धारणकी तीन रेखा हें सो मानों शख हे ॥ २२ ॥ हाथ मानो हाथीके शुंडादंड हैं चढे उतार उनकों धारण किये हे जेसें इन्द्र पर्वतनके पक्ष काटवेके लिये वज्रको धारण कियो हो ओर जिनके दोनों कर्ण पराके सुनवेमें लम्पट हैं मुकु-

पीतिः॥ सुधाकररुचा कुतोविकचितं नवेन्दीवरं तपोभरफलं हि तद्यदिह सज्जटायाभरम्॥ २३॥ यशःश्रवणलम्पटे श्रवणयोर्युगे राजतः सरोजमुकुलायिते रविशशिप्रभाढ्योदिते॥ निजाश्रितजनेप्सितावगतये प्रतीहारभे विवेचनपदस्थिते निगमगीतसंगीतयोः॥ २४॥ न कञ्जदलसन्निभे न जलजद्विरेफाश्रिते न खञ्जनतिमिप्रभे नचलवैणहग्गंजने॥ ततोऽनुपामिते च ते करुणयोज्ज्वलेनोज्ज्वले यदत्र नयने गुरोः सुखयतोव्रजेशे रते॥ २५॥ जटातुलसिमालिकाऽजिनमथोपवीतं कुशाः कमण्डलुच दण्डमौञ्जिकटिवस्त्रकौपीनकम्॥ दधन्नपि ललाटके तिलकमूर्द्धगं कौङ्कुमं गदारिदरकञ्जनाममनुमुद्रिकःपादुकाः॥ २६॥ स्वशिष्यगणसम्वृतोगुरुवरः स वैश्वानरः सुधाकरइवोदितोऽभवदयं सभामण्डले॥ कुमुज्जनमुदावहोजलरुहां श्रियः कर्षणः समीक्षणपथङ्गतोनातिमितोऽपि सङ्ख्यावताम्॥२७ श्रीवेदव्यासविष्णुप्रभुचरणमिते सम्मिते ग्रन्थसार्थैः श्रीगोवि

लित कमल जेसे सूर्य चन्द्रकी प्रभावारे भक्तजननके मनोर्थके सुनवेवारे नादवेदके विवेचनके लियें मानों शोभे हें ॥ २४ ॥ जिनके नेत्रनकी उपमा कमलके दलनमें नहीहें भ्रमरवेठेभये कमलनमें नहीं हे न खंजनमें हे नमृगनयननमें हे क्यों जो करुणासों उज्ज्वल अनुपम आपके नेत्र व्रजेश भगवान्में रत हें ॥ २५ ॥ ओर जटा तुलसीकी कंठी मृगचर्म उपवीत कुशा कमंडलु दंड मौंजी कटिवस्त्र कोपीन ललाटमें केशरको ऊर्द्धपुंड्र मुद्रा पादुका आदिकों धारण किये ॥ २६ ॥ अपने शिष्यनके सहित आप सभामें चन्द्रमा जेसे उदित भये ओर अपने जननकों आनन्दित कियो कमलनकी शोभाकों हरलियो विद्वाननके दृष्टिपथकों प्राप्तभये ओर उनके नमस्कारनकों ग्रहणाकियो ॥ २७ ॥ समयनीतिके जानवेवारे जगद्गुरु श्री

न्द्राभिधानां समयनयविदां देशिकानां निदेशात् ॥ आचार्य्या णां चरित्रे हरिजनसुखदे शास्त्रिकृष्णैर्निबद्धे प्रस्थानेऽस्मिन् द्वितीये समजनि पट्ठोदिग्जयाख्ये द्वितीयः ॥ २८ ॥

नृपेण स वरासने समुपवेशितोऽत परम् परैरपि च शङ्कितस्स हि नृसिंहवत् ससदि ॥ जगावथ गुरु कथा किमिह साम्प्रत ब्रह्मणो जगाद नृपतिश्शयोऽस्ति हि सधर्म्मनिधर्म्मयो ॥१॥ पृथक्ततिनिविष्टयोरचितचित्ररोमासने तयोश्च हरिमन्दिराङ्कि तरराट्वृ॰दान्विद ॥ विलोक्य निजसम्मतानुपसरन् यती शेन तत प्रभावहततेजसा कलितमासन स्वार्द्धत ॥ २ ॥ अ थ प्रकटयुक्तिमद्वचनमाह वाचाम्पतिर्वयन्तु सविशेषसम्विदमु पास्महे वैष्णवा ॥ अतोहरिजनैर्मत मतवर समाश्रित्य तव्

गोविन्दाचार्यजीमहाराजकी आज्ञासों श्रीकृष्णशास्त्रीके बनाये हरिभक्तनके सुखदेवेवारे ओर श्रीमद्वेदव्यासविष्णुस्वामीके सम्प्रदायके अनुकूल या च- रित्रग्रन्थके दूसरे प्रस्थानमें ये दूसरो पटह समाप्त भयो ॥ २८ ॥

पीछें राजानें अच्छे आसन पे आपको विराजमान कियो ओर वादीननेंबी सभामें आपकों नृसिंहके समान देख्यो तब आप बोले जो या समय कहा कथा चल रही हे राजाने कही जो ब्रह्मके सधर्म निधर्म में विचार होय रह्यो हे ॥ १ ॥ वाही समय जुदी २ पङ्क्तिनमें चित्र विचित्र आसननपे बैठे वादि प्रतिवादीनके बीचमेंसे वैष्णवाचार्य आपकों अपने आडी देखकें आपके पास अपने आसननकों छोडकें खिसल गये ॥ २ ॥ तब वाणी- पति आप बडी युक्तिवारे वचन बोले जो हम वैष्णव सधर्मक ब्रह्म मानें हैं या सों मतनमें श्रेष्ठ वैष्णवमतकों आश्रय करकें वादि, प्रतिवादीनके आन-

कथा कथकयोर्मुदे शृणुत वाग्यथोदीर्य्यते ॥ ३ ॥ किमस्ति सकलोविभुः किमुत निष्कलोवेत्ययं श्रुतिस्मृतिगिरैव तद्भव ति संशयोब्रह्मणि ॥ ततोविमतमेवयद्वदत तत्र केनोन्मितं मितं यदि गिरां चयैर्वदत तत्कथं निष्कलम् ॥ ४ ॥ ततस्तु प्रति वादिनोजगुरिहास्ति कः संशयोनिजात्मनि सदास्फुरन्मतिरहं स्वतोऽसंशया ॥ अथापि यदि संशयोभवति संशयी स स्वय म् स्वयम्मिहिरभाससोऽवगतिरस्ति किम्वा परैः ॥ ५ ॥ गुरुः पुनरुवाच तान् तदपि किन्नधीसम्मितं स्वयम्मिहिरभाससोव गतिः किम्विना नेत्रयोः ॥ स्वयं यदवगम्यते न हि विशुद्धमे तत्परं त्वथास्तु रविवत्स्फुरत्स्फुरणधर्म्मकं तन्न किम् ॥ ६ ॥ तदाप्यपरवादिभिर्निगदितं किमेतावता मतात्मनि च वृत्तिग त्वमिह नो फलव्याप्यता॥निजावरणभंगतोभवति सम्विदःस्फूर्जि

न्दके लियें जो कहें हें वो सुनो ॥ ३ ॥ ब्रह्म सधर्मक हे के निर्धर्मक हे ये संदेह वेद ओर स्मृतिनके वचननसों ब्रह्ममें होयहे तो जो विमतही हे वो केसे मित होयसके हे जो वेद वाणीसों कह्यो जाय हे वो निष्कल निर्ध-र्मक केसे होयसके हे कहो ॥ ४ ॥ तब प्रतिवादी बोले यामें कहा संशय हे सदा स्फुरणवारे आत्मामें संशय नहीं ओर जो संशय होयगो तो वो संशयी होयगो सूर्यके प्रकाशको ज्ञान कहा दूसरेसों होय हे ॥ ५ ॥ (जगद्गुरु) कहा ब्रह्म बुद्धिसों नहीं जान्यो जाय हे कहा नेत्रनकें विना वी सूर्यके प्रकाशको ज्ञान होय हे ओर सूर्यके तरह मानवे पे स्फुरता धर्मवारो अर्थात् सधर्मकपनो सिद्ध होयगयो ॥ ६ ॥ (प्रतिवादी) ज्ञानरूपी आत्माकों वृत्तिविषय तो मानें हें परन्तु (फलव्याप्यता) अज्ञान नाश करवेवारी वृत्तिमें प्रतिबिम्बित चैतन्यको आश्रय नहीं माने हें आवरणनाशसों ज्ञानको

त स्वतोर्चिरमला स्फुरेद्धटपटादिवन्नान्यत ॥ ७ ॥ जगाद वचन तदा वचनमेव कृष्णप्रभो निरावरणतात्पये भवति वृत्तिसापेक्षता ॥ स्वतोपि परतोपि वा वदत किं समाश्रीयते वृतस्य परता कथ न हि परं समाश्रीयते ॥ ८ ॥ तदा क्षुधवराजगुर्नहि पर परेणावृतोघनेन पिहितेक्षणोघनवृत रविं वक्त्ययम् ॥ तथामतिरियं वृथा भवति दुर्धियोज्ञानतो धियां यदवभासक नाहि पिधीयते वस्तुत ॥ ९ ॥ गिरामधिपतिस्तदा वचनमूचिवान् सस्मितं न वास्तवमिद यदि भ्रमति केन चेदन्तम ॥ रवेरिव तमस्ततिर्नहिपुरोमनाक् तिष्ठति भ्रमोयदि निसर्गज कथमवस्त्वनादि कृत ॥ १० ॥ परेऽपि जगदुस्तदा शशविषाणवन्नैव तत् यथा मरुमरीचिकानृतमृतं न मिथ्येर्ष्यते ॥ अनादिरपि तत्तदा नियमना न नित्यात्मनो यथागगननीलिमा सकलगोचरोऽपि भ्रम ॥ ११ ॥ तदा गुरुरुवाच

फु रण आपही होयहे घट पटके तरह दूसरेसों नहीं होय हे ॥ ७ ॥ आवरणनाशके लिये वृत्तिकी अपेक्षा हे (जगद्गुरु) आपहीसो मानों हो या परसों ओर वृत्ति विषयको परकी अपेक्षा नहीं ये केसे ॥ ८ ॥ (प्रतिवादी) वो दूसरेसों ढँक्यो नहीं, मेघसों ढँके आँखवारे मनुष्य सूर्यको मेघसो ढँक्यो कहे हें वेसेही दुर्बुद्धिमनुष्यके अज्ञानसो ये वृथा मति होय हे जो बुद्धिकों प्रकाश करवेवारो हे वो सिद्धान्तसो नहीं आच्छादित होय हे ॥ ९ ॥ (जगद्गुरु वाचस्पति) जो वास्तव तम नहीं तो केस चले हे ओर सूर्यके आगें नहीं ठहरे हे ओर जो स्वाभाविक हे तो अनादि अवस्तु केसो ॥ १० ॥ (प्रतिवादी) शशलाके सींगके समान तम कोई वस्तु नहीं जेसें मरुमरीचिका न सत्य हे न असत्य हे याते मिथ्या हे अनादितमकोभी वेसेही जानो आकाशकी नीलिमा सबको दीखवेपेभी भ्रम हे ॥ ११ ॥ (जगद्गुरु) सत् ओर अ-

तान् सदसतोनचान्या विधा कथन्वकथनीयता कथकवाक्य योगोंचरा ॥ अनादिरिह नीलिमा गगनगा नचायम्भ्रमः स वै न हि निसर्गजोन नियतोनचोपाधिजः ॥ १२ ॥ इत्थम्प्रजल्पः प्रथमम्प्रवृत्तः कनिष्ठमध्योत्तमपण्डितेभ्यः ॥ यथाक्रमं विस्तरतोजगाद गुरुर्मया सूक्ष्मतया व्यलेखि ॥ १३ ॥

इतिप्रथमदिनविवादप्रकरणम् ।

विद्यागुरुर्गुरुवरं स वभाण तावन्मिथ्यापदार्थमवधारय मन्मतस्य ॥ स्वाभाववत्यपिनिजप्रतियोगिभावोमिथ्येतिलक्षणवशान्नहि कोपि दोषः ॥ १४ ॥ प्राह श्रीवल्लभार्य्यः शृणुत निगदितं स्वामिनोक्त न युक्तं मत्यन्ताभावभावाधिकरणमिह नो तन्तुसङ्घः पटस्य ॥ प्राग्भावो यत्र यस्यावसदिह न पुनः सर्वथा स्यादभावोभावोवान्यस्य चेत्स्यात्स भवति समजातेर्न चैतस्य तस्य ॥ १५ ॥ सप्ताहमेवं चलितोविवादस्सधर्म्मनि

सतकों छोडके कोई दूसरो प्रकार नहीं जो अकथनीय हे वो वादीप्रतिवादी के वाक्यकोविषय केसो आकाशमें रहवेवारी नीलिमा अनादि हे भ्रम उपाधि नहीं ॥ १२ ॥ एसो सब पण्डितनसों पहलें शास्त्रार्थ आरम्भ भयो तामें आपनें बहोत विस्तारसों कह्यो परन्तु मेनें थोरो लिख्यो हे ॥ १३ ॥ ये पहले दिनको विवादप्रकरण हे ॥ अब दूसरे दिन विद्यागुरु नामक कोई विद्वान्नें कह्योके हमारे मतको मिथ्या पदार्थ सुनो "स्वाभाववति तत्प्रतियोगिभावोमिथ्या" ये लक्षण मानें हें यामें कहीं दोष नहीं हे ॥ १४ ॥ तब श्रीमदाचार्यजी बोले जो सुनों स्वामीको कह्यो ठीक नहीं हे तन्तु (सूत) समुदायको अधिकरण भाव रूप हे प्रागभाव जामें जाको रहे हे वहाँ सर्वथा अभाव नहीं रहे क्यों जो तन्तुको समानजातिवारो पट होय हे ॥ १५ ॥ एसो सधर्मनिर्धर्मविचार विद्यागुरुस्वामी ओर श्रीमदाचार्यजीको

र्धर्म्मविचारणायाम् ॥ मायानुमानप्रतिखण्डनेन विद्यागुरुस्वामिभिरीशितुर्न ॥ १६ ॥

इतिसप्ताह्निकविवादप्रकरणम् ।

आसीत्ततोऽध्यासविचारजल्पो वाद्यैस्सभेदैरथ भाट्टविज्ञै ॥ प्राभाकरैस्तार्किकप्रत्नतत्ने साङ्ख्यादिभि शाङ्करवागभिज्ञै ॥ १७ ॥ विष्णुस्वामिमतादसाधयदय सत्ख्यातिवादं विदां मध्ये शून्यमुखान्निरस्य बहुधा नानाविधा ख्यातिक ॥ शुक्तौ सद्रजतांशएव सकल सर्वत्रचैव हि सत् सर्पादिश्च भ्रमोगुणादिषुच य त्साहश्यतोक्ष्णो भवेत् ॥ १८ ॥ सत्ख्यातिवादो बहुधाप्यथायि यतीन्द्रवर्य्यस्य मतात्स्वतोऽपि ॥ समाधिभाषावचनैस्समूचे ख्यातिं धियोवाङ्मगतार्थभासा ॥ १९ ॥ दिनद्वयश्चैवमभूद्विवादोगुरोस्समुक्तं विदुषां समूहे ॥ शम्भु स्स्वयम्भू स प्रभोस्स्वभूश्च वात्ये प्रजल्प विदधुर्निशम्य ॥ २० ॥

इतिद्विदिनान्तप्रथमविवादप्रकरणम् ।

मिथ्यात्वसाधने सृष्टे शाब्दिकानां शिरोमणि ॥ गागाभट्टस्तु

सात दिन चल्यो ॥ १६ ॥ पीछें अद्वैतमतवारे ओर मीमांसक तार्किक सांख्यवादीनसों अध्यासविचारमें वाद चल्यो ॥ १७ ॥ वामें विद्वाननकें बीचमें दूसरे ख्यातिवादनको खंडन कर ओर शून्यवादीनकों निराश कर विष्णुस्वामिमतसों सत्ख्यातिवाद सिद्ध कियो सीपीमें रजतांश सत्य हे रस्सीमें सबेसर्पनकोही भ्रम हे ॥ १८ ॥ एसें अनेक तरहसों यतीन्द्रवर्यके ओर अपने मतसों तथाश्रीमद्भागवतके वचननसों सत्ख्यातिवाद कह्यो ॥ १९ ॥ वामें दो दिन विवाद भयो ओर शम्भुभट्ट आदि शिष्य सुनकें दूसरे अद्वैतीनसों विवाद करते भये ॥ २० ॥ पीछें बडे गर्व ओर क्रोधसों शाब्दिकनमें

सन्नद्धो गर्वामर्षप्लुतोऽब्रवीत् ॥ २१ ॥ कथ्यतां भवतः शास्त्रे वाच्यो मिथ्यादिभिश्च कः ॥ आहाचार्य्योऽल्पगुणवान ल्पस्थायी स्वधर्म्मकः ॥ २२ ॥ एवमुक्ते विवादोऽत्र महाना सीद्विदाम्वरैः ॥ तथाप्यार्य्येण ते सर्वे निर्जितास्सूक्तियुक्तिभिः ॥ २३ ॥ तत्राप्ययं जगादोच्चैर्ब्रह्मात्मकतयाखिलम् ॥ भवन्मते भवेन्नित्य शब्दः किन्न तथा भवेत् ॥ २४ ॥ एवञ्चेत्तर्ह्या गमानामादेशानामसम्भवात्॥स्थानिवत्सूत्रवैयर्थ्यं स्पष्टमेव प्र तीयते ॥ २५॥ तत्र पाणिनिराचार्य्यः प्रवृत्तो ज्ञापनाय हि ॥ नित्यत्वं दुर्लभं ज्ञेयं शब्दानामिति वस्तुतः ॥ २६ ॥ अत्रो त्तरप्रदाने हि न प्रभुर्वाक्पतिस्स्वयम् ॥ इत्युक्ते वाक्पतिः प्रा ह सस्मितं स तदुत्तरम् ॥ २७ ॥ भवत्सन्देहवल्लीनां लवि त्रं तूत्तरं मम ॥ शृणुष्वावहितो भूत्वा वाग्व्यापारविवर्जितः ॥ २८ ॥ नित्यत्वमेव शब्दानां भाष्यकारादिसम्मते ॥ अ

शिरोमणी गागाभट्ट बोले ॥ २१ ॥ जो कहिये आपके शास्त्रमें मिथ्यासों कहा लियो जाय हे श्रीमदाचार्यबोले थोडेगुणवारो थोडे दिन रहवेवारो सधर्मक ॥ २२ ॥ एसे कहवेपे विद्वाननसों बडो विवाद भयो तो बी श्रीमदाचार्यजीनें सुंदर वचन ओर युक्तीनसों उनकों जीत्यो पीछेंबी गागाभट्ट उच्चस्वरसों बोले के आपके मतमें सब ॥ २३ ॥ जगत् ब्रह्मात्मक हे तो शब्द क्यों न नित्य होयगो ॥ २४ ॥ एसो हे तो आगम आदेशनके असम्भवसों (स्थानिवत्) ये सूत्र ही व्यर्थ होयजायगो ॥ २५॥ तब पाणिनि आचार्य ज्ञापन करेंगे जो शब्दनको नित्यत्व दुर्लभ हे ॥२६ ॥ या शंकाके उत्तर देवेमें साक्षात् बृहस्पतीबी असमर्थ हें एसे कहवेपे मुसकायकें श्रीमदाचार्य बोले जो ॥ २७ ॥ अपनी शंकारूपी वल्लीनको काटवेवारो हमारो उत्तर सावधान चुप होयकें सुनो ॥ २८ ॥ भाष्यकारादिकनकें मतमें शब्दन-

र्थापत्ति प्रमाणन्तद्वाक्यान्तरविधौ श्रुतम् ॥ २९ ॥ तथाहि दे वदत्तोऽसौ पीनो भुङ्क्ते दिवा न हि ॥ पीनत्वानुपपत्त्यात्र क्षपाभोजनकल्पनम् ॥ ३० ॥ नित्यत्वानुपपत्त्यैव वाक्यमन्यद्विधीयते ॥ आर्द्धधातुकस्येडिति दोदद्धोरिति विश्रुते ॥ ३१ ॥ वुद्धेर्विपरिणामस्तु कार्यस्तेनान्वयस्तथा ॥ प्रज्ञायामिड्रहिताया सेड् वुद्धि परिकल्प्यताम् ॥३२॥ दाधीर्यत्रास्ति तत्रास्तु दद्धिपणा तथैव च ॥ अयं पुरोहितो राजा भवत्येव हि विश्रुते ॥ ३३ ॥ गम्यते राजवदिति सर्वेषामत्र सम्मतम् ॥ तद्वच्च स्थानिवत्सूत्रे वत्करण नैव युज्यते ॥ ३४ ॥ विना तेन तदर्थस्य लाभेनेष्टन्तु सिध्यति ॥ विद्वन् प्रत्युत्तर ब्रूहि भाष्यादौ चेत्परिश्रम ॥ ३५ ॥ तत्र प्रवक्तुमारेभे शब्दशास्त्र

को नित्यत्वही है ताकी अनुपपत्तिमें अर्थापत्ति प्रमाण है ॥ २९ ॥ देखो "पीनो देवदत्तो दिवा न भुङ्क्ते" मोटो देवदत्त है दिनमें नहीं भोजन करेहै एसे कहवेपे यो भोजनके विना मोटो नहीं होयसके यातें रात्रिमें भोजन करेहे ये कल्पना होय है ॥ ३० ॥ याही प्रकार नित्यत्वकी अनुपपत्तिसों दूसरे वाक्यकी कल्पना करो क्यों जो आर्द्धधातुकको इट् होय घुसंज्ञक दाको दत् होय एसो सुनें हैं ॥ ३१ ॥ सो एसे अर्थकरवेसों नित्यत्वकी हानि होयगी यातें इट्रहितवुद्धिमें सेट् वुद्धि करनी ये कल्पना करनी ॥ ३२ ॥ दाकी बुद्धिमें दत्की बुद्धि (ज्ञान) करनो ये पुरोहित राजा है ये सुनवेसों राजाके सदृश है ये अर्थ जेसे सर्वसम्मत होय है वेसेही "आदेश स्थानी" एसे कहवेसों स्थानीके तुल्य ये अर्थ होई जायगो फिर वत् ग्रहण क्यों चाहिये ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ क्यों जो (वत्ग्रहण) न करवेसोंभी वत् के अर्थको लाभ है तो इष्टसिद्धि होयजायगी सो भाष्यादिकग्रन्थनमें आपने परिश्रम कियो होयतो कहिये ॥ ३५ ॥ तब शब्दशास्त्रके पण्डित गागाभट्ट बोले

विशारदः ॥ आदेशाश्रितकार्य्यार्थं युक्तं वत्करणं त्विह ॥ ३६ ॥ रामायेत्यादिसम्पन्नं भवत्येव न संशयः ॥ अत्र प्रमाणाकांक्षायां कष्टायक्रमणे स्थितम् ॥ ३७ ॥श्रुत्वैवं गुरुरप्याह स्मर भाष्यादिसम्मतम् ॥ पदसंस्कारपक्षं हि वाक्यसंस्कारकं तथा ॥ ३८ ॥ दोपसम्भावना नात्र कर्तुं शक्तो बृहस्पतिः ॥ एवं नित्यत्वव्याघातो नहि दिष्टत्रयेऽपि हि ॥३९॥श्रुत्वा संशयमापन्नः पुनर्वादी जगाद ह ॥ नन्वधीते जनकवदिति न्यायानुरोधतः ॥ ४० ॥ आदेशपदलाभेऽत्र तद्ग्रहणं नेष्यते पुनः ॥ कर्तुमत्र समाधिंहि न शक्तो गीष्पतिः स्वयम् ॥ ४१ ॥ ततो गुरुर्जगादेत्थं सत्यं प्रत्युत्तरं शृणु ॥ आनुमानिक आदशोयत्र सूत्रैर्विधीयते ॥ ४२ ॥ तत्रापि स्थानिवद्भावसमर्पकतया वरम् ॥अन्यथा यत्र साक्षादष्टाध्याय्यावोध्यते यथा ॥४३॥ अदोजग्धिर्ल्यप्तिकिति चैवं यत्र विधिः श्रुतः ॥

जो आदेशके आश्रित कार्यके लियें वत् गहण चहिये ॥ ३६ ॥ रामाय इत्यादि होय हैं यामें संदेह नहीं 'कष्टायक्रमणे' ये प्रमाण हे ॥ ३७ ॥ एसो सनेंक श्रीमदाचार्य बोले जो भाष्य आदिग्रन्थनको सम्मत पदसंस्कार पक्ष ओर वाक्य संस्कारपक्षको स्मरण करो ॥ ३८ ॥ यामें बृहस्पतिबी दोषकी संभावना नहीं कर सके हें यातें नित्यत्वकी हानी बी तीनों कालमें नहीं ॥ ३९ ॥ या बातको सुनकें संदेहमें पडके फिर वादी बोल्यो जो "पितृदवधीते" ये कहवेसों जेसें पुत्रकोही बोध होयहे वेसेही स्थानिवत् कहवेसों आदेशको लाभ होईजायगो फिर आदेश ग्रहण क्यों चहिये याको समाधान करवेको बृहस्पतिबी समर्थ नहीं हें ॥ ४० ॥ ४१ ॥ तब श्रीमदाचार्य बोले जो सत्य हे परन्तु उत्तर सुनो आनुमानिक स्थान्यादेशके ग्रहणके लिये हे ॥ ४२ ॥ नहीं तो जहाँ साक्षात स्थान्यादेश ने

तत्रैव स्थानिवद्भावो न तु स्यादानुमानिके ॥ ४४ ॥ एवां दौहि तदभावे पदत्वं नैव सिध्यति ॥ पचत्वादौ न चेदिष्टं तद् प्रयोगानर्हता भवेत् ॥ ४५ ॥ दृश्यन्ते चाकरग्रन्थे प्रयोगास्ता दृशास्तथा ॥ न हि युक्तं वचो ब्रूप एवं वाद्यब्रवीद्वच ॥४६॥ पचत्वादौ त्वेकदेशविकृतन्यायमाश्रयेत् ॥ पदत्वं तत्र सम्पन्नं बाधकं नैव दृश्यते ॥ ४७ ॥ कुसृष्टेः कल्पनं चेतत्किमर्थं क्रियते बुध ॥ अत्रादेशपदस्यैवं न हि दृष्टं प्रयोजनम् ॥४८॥ विभावयतु सद्बुद्धे समाधिं सप्रमाणतः ॥ ततः सम्यक् समाधानं प्रवक्तुं सोऽब्रवीद्वचः ॥ ४९॥ नित्याः शब्दा इति प्रोक्तं भाष्यकारादिभिः स्वयम् ॥यत्र त्वं विकृतं ब्रूपे महासाहसवान् भवान् ॥ ५० ॥ सर्वे सर्वपदादेशा इति न्यायानुरोधतः ॥

जैसें(अग्रोजग्धि)वहाँही होयगो अनुमानिकर्मे न होयगो ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ तब तो शब्दानित्यत्वके वारणके लिये'इकारान्तस्य स्थाने उकारान्त आदेश' एसे अर्थवारे'एरु' इत्यादिकनको ग्रहण न होयगो तो 'पचतु' इत्यादिकनमें तिङन्तत्वके न आयवेसों पदत्व सिद्ध नहीं होयगो ओर जो पदत्वाभाव इष्ट मानोंगे वो 'अपद न प्रयुञ्जीत' या भाष्यसों प्रयोग नहीं होयगो ॥ ४५ ॥ ओर ये प्रयोग बडे ग्रन्थनमें देखेंहें तब वादीनें कह्यो जो ठीक नहीं कहो हो ॥ ४६ ॥ 'पचतु' इत्यादिकनमें "एकदेशविकृतन्यायसों, पदत्व सिद्ध होयजायगो कछु बाधक नहीं दीसे हे ॥ ४७ ॥ श्रीमदाचार्यजी—कुसृष्टिकी कल्पना क्यों करो हो यहाँ आदेशपदहीको कछू प्रयोजन नहीं दीस पडे हे ॥ ४८ ॥ अच्छी बुद्धिवारे सत् प्रमाणनसों समाधानको विचार करो तब वादी बोल्यो जो अच्छो ठीक समाधान करो ॥ ४९ ॥ श्रीमदाचार्य—भाष्यकारादिकननें स्वयं शब्द नित्य कहे हे तामें तुम विकार कहो हो बडे साहसी हो ॥ ५० ॥ "सर्वे सर्वपदादेशा" या न्यायके अनु-

एकदेशविकारश्च न वक्तुं शक्यते त्वया ॥ ५१ ॥ एवं शीकरनिर्लेपोमहोत्पलदले यथा न दोषगन्धसंस्पर्शोमे धयालोच्यतां हृदि ॥ ५२ ॥ इत्थं विवादस्त्रिदिनं बभूव गागाभिधस्यार्यवरेण साकम् ॥ प्राचाम्मतं साधयतामुनोच्चैः फणीन्द्रवाङ्नर्तनमभ्यकारि ॥ ५३ ॥ गागाभट्टः प्राह न त्वाय्यर्यपादं धन्यायूयं शब्दशास्त्रस्वरूपाः ॥ शेषोयेषां शेषभूतोगुणैः स्वैस्तान् कोजेतुं चेष्पतेऽनीश्वरः सन् ॥ ५४ ॥

इतिदिनत्रयजातस्थानिवत्सूत्रविवादप्रकरणम् ।

विद्यातीर्थोव्यासतीर्थाय यायाः प्राहैषां याः कोटयो व्याहतावै ॥ विद्याभूः सारङ्गराजाभिधेनतास्ताः सर्वावर्णितामातुलेन ॥ ५५ ॥ लक्ष्मीधरेण विदुषा गदितास्तथान्याः श्रुत्वाभ्यखण्डयदयं किल खण्डशोद्राक् ॥ रिंखत्स्फुटोक्तिभरसंवरसत्तरङ्गैराप्लावयद्बुधजनानतिहर्षमग्नैः ॥ ५६ ॥

रोधसों एकदेश विकार तुम नहीं कहसको हो ॥ ५१ ॥ बडे कमलके पत्रमें जेसें जलके कणानको लेप नहीं होयहे वेसेही दोषके गन्धकोवी स्पर्श नहीं हे बुद्धिसों हृदयमें देखो ॥ ५२ ॥ एसो गागाभट्टको विवाद प्राचीन-मतके साधन करवेवारे श्रीमदाचार्यजीसों तीन दिन भयो वा समय साक्षात् शेषजीकी वाणी नाच रही ही ॥ ५३ ॥ गागाभट्ट आचार्यचरणनकों प्रणाम करकें बोले जो धन्य हें आप! आप शब्दशास्त्रके स्वरूप ही हें शेषबी जिनके गुणनके शेष हें उनको कोन जीव जीत सके हे ॥ ५४ ॥ एसे तीन दिन स्थानिवत् सूत्रमें शास्त्रार्थ भयो-पीछें विद्यातीर्थजीनें व्यासतीर्थसों जो जो कोटि(शंका)करीहीं उनको वर्णन तथा दूसरी कोटीनको वर्णन विद्याभूषा रंगराज उपाधिवारे मामा पंडित लक्ष्मीधरजीनें आपसों कर्‌यो उनकों जल्दीसों खंडन करकें सावपंडित जननको आपनें आनन्दके तरंगनमें डुवाये ५५॥५६॥

परस्पर यश्च परैर्विवाद प्रागेव जातो मातिनोऽनुजेन ॥ सोमेश्व रेणोक्तमथानुवाद विधाय तत्खण्डनमभ्यधायि ॥ ५७ ॥ आ द्यात्र कोटि: खलु सद्विशेषसिद्ध्यै विशेषी ध्रुवमेव वाच्य ॥ सचान्तरङ्गोप्यथसोपजीवी तद्बोधनायैवविशेषणोक्ति ॥५८॥ तदुत्तर लक्ष्मणनन्दनोसो जगाद किनो विपरीतमे तत् ॥ विना विशेषैर्न विशेषबोधस्ततोन्तरङ्गा उपजीवका स्ते ॥ ५९ ॥ श्रुतिस्मृतीनां वचनैर्विनिर्णयो दृष्टोभवेद्व्या समहर्षिसूत्रे ॥ विशेषवद्ब्रह्मणएवजायते समाधिभाषाक्वनेर शेषै ॥ ६० ॥ विद्यागुरु प्राह सधर्मकेऽस्मिन्नङ्गीकृते सि घ्यति भेद एव ॥ क्रोडीकृतेऽस्मिन् श्रुतिवाक्यबाधस्ततो विशे षा न हि वास्तवास्ते ॥ ६१ ॥ श्रीवल्लभ प्राह ततो विह स्य किं कल्पितैर्वास्तववस्तुबोध ॥ अवस्तुभूत न खपुष्पम

ओर पहले जो पण्डितनमें आपसमें विवाद भयो वाको अपने छोटे मामा सोमे श्वरसों सुनके वाकोवी अनुवाद करके खडन कियो॥ ५७॥ पूर्वपक्षीकी पहली ये कोटि ही जो विशेष (धर्म) के सिद्धकरवेमें निश्चय विशेषी (विशेष्य) कहोहींगे तो वोही अन्तरंग हे ओर उपजीवी हे ताहीके जानवेके लिये विशेषणको कथन हे अर्थात् निर्धर्मकही ब्रह्म सिद्ध भयो ॥ ५८ ॥ याको उत्तर लक्ष्मणनन्दनें कह्यो के कहा ये विपरीत नहीं होयसके धर्मनके विना धर्मीको बोध नहीं होयसके यातें धर्मही अन्तरग हें ओर उपजीवक हें ॥ ५९ ॥ श्रुतिस्मृतिनके वचननसों ओर व्याससूत्रनसो ओर सम्पूर्ण भाग-वतके समाधिभाषावचननसों सविशेषही ब्रम सिद्ध होयहे ॥ ६० ॥ तब विद्यागुरु बोले के सधर्मक स्वीकार करवेमें भेद सिद्ध होयजायगो ओर जो भेद मानोंगे तो श्रुतिवाक्यनको बाध होयगो तासों धर्म वास्तव नहीं हें ॥ ६१ ॥ तब आप हँसके बोले जो कहा कल्पितसो सिद्धान्तमें वस्तु

त्र सद्वस्तुनः स्यादुपलक्षणं तत् ॥ ६२ ॥ विद्यानन्दस्समभणद
थो नर्तयन्भ्रूलतां स्वां कोपाटोप प्रकटविकटासृक्कटाक्षास्फुटोक्तिः
॥ भो भो भ्रान्त्या पुनरपि पुनर्वेत्सि मिथ्या सतो नो भेदं खेदं वह
सि मम किं बाधकं लक्षकेऽस्मिन्॥६३॥अवदज्जयतीर्थनामधेयः
किमु मिथ्यानृतयोर्विशेषलेशः ॥ यदि नास्ति विशुद्धसंविदोऽ
न्यच्छशशृङ्गायति तत्कथं न मिथ्या ॥ ६४ ॥ जगाद चैत
न्यवनस्ततः स्फुरन्महोष्ठकोष्णाम्बुधिदूषिताधरः ॥ अनादि
भावेन विनाशिना कथं न मिथ्यया मे सदवस्तुनो भिदा ॥६५॥
तोताचार्य्यः प्राह युक्त्या नताङ्गो भावोऽनादिः क्वापि दृष्टो न
नष्टः ॥ दृष्टान्तश्चेत्प्रागभावो न भाव आविर्भावाद्भ्रष्टसिद्धिः स
चापि ॥६६॥ उत्कण्ठेन प्राह शित्यादिकण्ठः कुंठा वाक् ते प
श्य वैकुंठभक्त ॥ आविर्भावः कस्तिरोभाव एतौ नित्यानित्यौ
किञ्च तौ सिद्ध्यतो नो ॥ ६७ ॥ एकाधारे तौ विरुद्धौ न ध
र्म्मौ ताहग्धर्मी कः कुतोधर्म्मसिद्धिः ॥ कादाचित्कत्वे च हे

कों ज्ञान होय हे जो वस्तु नहीं हे आकाशपुष्प वो केसें सद्वस्तुको उपल-
क्षक होयगो ॥ ६२ ॥ तब आडम्बरसों वडे कोपतें अपनी भौंहनको
नचावते विद्यानन्द बोले के कहा भेद बाधक हे ॥ ६३ ॥ जयतीर्थ(माध्व) बोले
के मिथ्या अनृतमें कहा कछू विशेष हे जो ज्ञानसों भिन्न कछू नहीं हे तो
मिथ्या शशलाके शृंगके जेसे क्यों नहीं ॥ ६४ ॥ चैतन्यवन शांकर बोले के अना
दिभाव ओर विनाशीसों सतको भेद क्यों नहीं ॥ ६५ ॥ वडे युक्तिवारे तोताचार्य
(कोई रामानुज) बोले के अनादिभाव कहाँ देख्यो गयो हे प्रागभाव तो दृष्टान्त
नहीं होयसके हे ॥ ६६ ॥ शितिकंठ(कोई शैव) बडी उत्कंठासों बोले के आवि-
र्भाव तिरोभाव ये कहा हें नित्य हें के अनित्य हें ॥ ६७ ॥ एक आधारमें वे
[illegible]

होयगी

तोमेसेषा हीशेच्छान्त धावनेनात्र सिद्धिः ॥६८॥ शेषाचार्य्यः प्राह चाकर्णय त्वं श्रुत्या सिद्धौ तौ तयोरूपमेतत् ॥ साक्षात्कारे वस्तुनोगोचरत्वमाविर्भावोऽतस्तिरोभावकोन्यः ॥ ६९ ॥ ते चोभे भो वस्तुसत्त्वेन नित्ये नित्यं सर्वं भूतभाविप्रयोगात् ॥ श्रुत्या स्मृत्या योगदृष्ट्या च युक्त्या व्यासाहूत्या भारतानां मृतानाम् ॥ ७० ॥ विद्यातीर्थं सस्फुरत्स्वोष्ठयुग्म कोपाटोपादुन्नटद्भ्रूकटाक्षः ॥ धर्म्मोनित्योधर्म्मिणोपीयुषो किं प्रत्यक्षनोनानुमान बलं तत् ॥ ७१ ॥ ततोविकल्प्युक्तिमत्प्रकटवाक्तर्तितत्सदृशे जगौ निकटवर्तिनामकटुवर्णपूर्णो गुरुः ॥ क्रमोपि विभुना तयोर्विरचित पुरा सृष्टये न दूषणमितोमिते न च छलं सतीष्वाचरेत् ॥ ७२ ॥ जगौ नीलकंठस्ततोकुंठबुद्धे गत प्रस्तुत प्रस्तुत प्रोच्यतां भोः ॥ अविद्याह्यनादिर्मतोपाधिरीशे विनष्टाभवेत्तेन मिथ्या तथार्थे ॥ ७३ ॥ रामाचार्य्यः प्राह

कबी आविर्भाव है कबी तिरोभाव है एसे मानवेमें हेतुकी अपेक्षा है सो ईश्वरेच्छाताईं दौडवेसों सिद्धि होयगी॥६८॥शेषाचार्य (कोई विष्णुस्वामी) बोले के सुनो आविर्भाव तिरोभाव श्रुतिसिद्ध हैं उनको ये रूप है के वस्तुके देखवेमें आविर्भाव ओर न देखवेमें तिरोभाव॥ ६९ ॥ ओर ये वस्तुसत्तासों नित्य हैं श्रुति स्मृति योगदृष्टि युक्ति इनसों ओर मरेभये भारतनकों व्यासजीने बुलाये यातें सब नित्य है ॥ ७० ॥ विद्यातीर्थ बडे कोधसों बोले के प्रत्यक्षसों अनुमान बलवान नहीं ॥ ७१ ॥ पीछें यही युक्तिवारे कोमलवर्णनसों पूर्ण वचननकों आप बोले के उनको क्रमभी विभुनें सृष्टिके आदिमें कियो है॥७२॥तब नीलकंठ बोले के हे अकुण्ठ बुद्धे! जो प्रस्तुत (प्रकरण) चल रह्यो हो सो गयो अविद्या अनादि है उपाधि है नाशवारी है यातें मिथ्यारोपी धर्मोही अथ है ॥ ७३ ॥ रामाचार्य बोले माया मिथ्या नहीं

मिथ्या न माया मायावादिन्नीशशक्तिस्तथा किम् ॥ लोके मायामायिकानान्तु सत्या कार्य्यं मिथ्या दर्शयन्ति क्वचित् सत् ॥ ७४ ॥ वैकुंठाख्यः कुंठितक्रोधरक्तनेत्रास्योऽसौ दूषयन् दोषमस्य ॥ आहोच्चैः किं त्वन्न मायोक्तितोनो मिथ्यावादी स्वप्नसृष्टेस्तथोक्त्या ॥ ७५ ॥ सिंहाचार्य्यस्तत्र चैवं ललाप माया वादस्ते रुतः पार्थमिश्रैः ॥ मिथ्यावादी चेति केचिज्जगुर्ज्ञाः स वै चैतत्तत्समुक्त्या तथासि ॥ ७६ ॥ ईशेच्छातः सृष्टिरेषा मते ते मायैवेच्छा सा पराशक्तिरीशे ॥ नेच्छाम्येवं मन्यसे ब्रूहि का सा सृष्ट्यासृष्टिं यां कयेत्याह पेरुः ॥ ७७ ॥ शेषस्वामी गद्गदोक्तीरुषाह ब्रह्मेच्छैषा ब्रह्मरूपा नचान्या ॥ ब्रह्मात्मानं भो यया तामकार्षीत् ज्ञानेच्छौजोरूपिणी सा परान्या ॥ ७८ ॥ आपाभट्टः प्रश्नमन्यं चकार कर्तेशश्चेत्तत्र वैषम्यदोषः ॥

हे किन्तु ईशकी शक्ति हे लोकमेंबी मायाकरवेवारेनकी माया सत्य हे परन्तु कार्य कहीं मिथ्या कहीं सत्य दीखे हे ॥ ७४ ॥ बडे कुंठित होयकें वैकुंठ (कोई शांकर) बोले के हमारी उक्तिसों तुह्मारी अभिमत माया नहीं सिद्ध होती ओर स्वप्नवत् सृष्टिके कहवेसों तुम कहा मिथ्यावादी नहीं हो ॥ ७५ ॥ सिंहाचार्य (कोई विष्णु स्वामी) बोले के तुह्मारो मायावाद पार्थमिश्रनें कह्यो हे ओर विद्वान् मिथ्यावादी जेसे कहे हें वेसेही तुम हो ॥ ७६ ॥ ये सृष्टि ईशकी इच्छासों तुह्मारे मतमें हे मायाही इच्छा हे वोही परा शक्ति हे ईश्वरमें परन्तु एसो में नहीं मानतो एसो पेरुभट्टनें कह्यो ॥ ७७ ॥ शेषस्वामी क्रोधसों गद्गदवाणी बोले के ब्रह्मकी इच्छा ब्रह्मरूप हे दूसरी नहीं ओर ताहींसों अपनी आत्माकों करें हें ॥ ७८ ॥ आपाभट्टनें दूसरो प्रश्न कियो के जो ईश कर्ता हे तो वैषम्य दोष होयगो ओर जीव कर्ता हे तो केसें बंधनको प्राप्त होय हे जेसें कर्म

कर्ताजीवोवध्यतेऽसौ कथमो कर्म्मानादिर्ब्रूहि मायां तथैव ॥ ७९ ॥ दोष रोपाद्गुग्नमप्याह वाचं देवादित्योदूषयन् गां परोक्ताम् ॥ कर्तैवेशोनैव वैषम्यदोष स्वात्मारामे स्वात्मसृष्टे कथ स ॥ ८० ॥ अवदत् खलु देवशङ्करोऽत: प्रतिवादीभ भयङ्करोमृगेन्द्र ॥ यदि कर्ता परमेश्वरोविकारी श्रुतिवाक् तत्र विरुध्यतेऽथ सूत्रम् ॥ ८१ ॥ श्रुतिवाक् नैव विरुध्यते न सूत्र हरिरूचे प्रकट सदोमुदेऽसौ ॥ मिहिरोपि यथात्रलौकिकेद्धा परमात्मा च तथाह्यलौकिकोसौ ॥ ८२ ॥ मयूरनाभिर्गिरमाह गर्जन्न ज्ञानज बन्धनमस्य पुस ॥ शाब्दापरोक्षेर्ननु तत्त्वमस्या दिभिर्विना याति न बोधनेन ॥ ८३ ॥ ततोवभाषे विहसन् कुमार: शब्दापरोक्षं न विनापरोक्षम् ॥ परोक्षभूतोदशमादिवन्नो कदाचिदानन्दतयावभात: ॥ ८४ ॥ एवं बुधानां खलु कोट

अनादि है वैसेंहीं मायाकों समझो ॥ ७९ ॥ दूसरेंकी वाणीको खडन करते देवादित्य बोले के कर्ता ईशही है वैषम्य दोष नहीं है स्वात्मारामेंमें स्वात्मसृष्टिको केसो वैषम्य ॥ ८० ॥ पीछें प्रतिवादी हाथीनको भय करवे वारे सिंह समान देवशंकर बोले के जो कर्ता परमेस्वर विकारी होयगें तो श्रुति सूत्र विरुद्ध होंयगे ॥ ८१ ॥ तब सभाको प्रसन्न करते हरि बोले के न सूत्र विरुद्ध होयगे न श्रुति जेसे ये सूर्य अलौकिक है वेसेही परमात्मा अलौकिक हैं ॥ ८२ ॥ मयूरनाभि गर्जना करते बोले के अज्ञानसों जीवको बधन होय है अपरोक्ष (तत्त्वमसि) आदि वाक्यनके उपदेशकेविना वो नहीं छूटे है ॥ ८३ ॥ तब हँसतेभये कुमार बोले के विना परोक्षके शब्दको अपरोक्ष केसो कभी दशम वो एसे परोक्षज्ञानके तरह आनन्दको भान नहीं होय है ॥ ८४ ॥ एसी पण्डितनकी जो परस्पर कोटि (शंका) हैं जिनको उनने खडन कियो है। उनकों फिर शम्भुभट्टप्रभृतिके उठावने पें सन्यासीनके सामनें

योयाः परस्परं तैरपि खंडिताङ्गैः ॥ उत्थापिताः शम्भुमुखैः पुनस्ता विखंडितामस्कारिणां पुरोद्धा ॥ ८५ ॥

इत्यष्टदितान्तंमिथोविवादप्रकरणम् ।

ततोमुक्तिवादे विदां सद्विवादे स्फुरद्युक्तिसूक्त्या जगर्जात्र शम्भुः ॥ न विद्यागुरुर्नैव विद्यासुखाद्याः पुरोभागितांतत्पुरो भेजुरेते ॥ ८६ ॥ तौतातिकानामथ तार्किकाणां प्राभाकराणां मतगोमुरारेः ॥ प्राज्ञैर्विजिज्ञे द्रुहिणः प्रसादाद्गुरोः सभायां परतः प्रमाणे ॥ ८७ ॥ विदां कथा लक्षणलक्ष्यसिद्धिं श्रीहर्षमिश्रोदितखंडनस्य ॥ चखंड नारायणनामधेयोनारायणस्याङ्घ्रि समाश्रयेण ॥ ८८ ॥ उपक्रमस्य प्रबलत्वसिद्धिं तथोपसंहारगिरोऽबलत्वम् ॥ जहार वाचामधिपप्रसादात् स केशवः केशवसम्प्रदायी ॥ ८९ ॥ हरेर्हरस्यापि विधेरमायाभानोः कृशानोर्यदुपासनास्ति॥श्रुतेर्मता श्रौतमतानुगानां भिन्नाधिकारेण विदां

आपनें खंडन कियो ॥ ८५ ॥ एसे आठ दिन परस्पर विवाद भयो फिर विद्वाननको मुक्तिवादमें अच्छो विवाद भयो वामें सुंदर युक्तीनसों ओर वचननसों शम्भुभट्ट गर्जे सो इनको सामनों विद्यागुरु विद्यासुख आदि काहू विद्वान्नें न कियो ८६ ॥ ओर श्रीमदाचार्यकी कृपासों सबमतनके जानवेसों स्वयम्भूनें दूसरे विद्वाननकों जीत्यो ॥ ८७ ॥ ओर नारायणके चरणनके आश्रयसों नारायण आपके शिष्य स्वभूनें श्रीहर्षमिश्रकी कहीभई लक्षणलक्ष्यसिद्धिको खंडन कियो ॥ ८८ ॥ वैष्णवसम्प्रदायी केशवनें श्रीमदाचार्यजीकी कृपासों उपक्रमकी प्रबलताको ओर उपसंहारकी निर्बलताको दूर कियो ॥ ८९ ॥ ओर श्रीमदाचार्यके शिष्य हरिनें सब विद्वाननसों ये कह्यो के विष्णु शिव ब्रह्मा लक्ष्मी सूर्य अग्नि इनकी उपासना वेदसम्मत हे सो वेदानुयायीनकों भिन्न भिन्न अधिकार

मता सा॥९०॥विशेषलेशोन सुरेषु येषां मतेपि तेषां सगुणेरशे
ष ॥निजस्वभावानुगुणोगुणेश समर्चितोसौ सगुणामृताय ९१॥
संसेवनीय खलु सत्वमूर्तिर्मुमुक्षुभि श्रौतमतान्सुरारि ॥समाधि
भाषादिविनिर्णयोयम् गुरो प्रसादाद्धरिराह विज्ञान्॥९२॥राम
स्ततोमाध्वमुखान् जगाद हरे प्रिया द्वैतगिरोवदन्तु॥विशुद्धमद्वै
तमिहास्ति सिद्धं मयैव साकं यदि चेद्विरुद्धम्॥ ९३ ॥ इत्थं
विवादस्समभूत् सभायां नगाक्षिघस्रेषु गिराम्पतेर्वै॥ पर श्रुता
नाञ्च परस्पर वै भङ्ग्या कुरङ्ग्या यचसां विनोदे ॥९४॥दिग्घ
स्त्रमासीत् प्रथमोपि जल्प विद्यागुरुस्वामिवरैर्गुरोर्न ॥ दिनत्र
यं स्थानिवतोपि याम परे परस्ताच्च मियोपरैस्तत ॥ ९५ ॥
यथा यथा श्रीयदुनाथनाम्ना यथा यथा माधवशर्मणापि ॥
तथा तथायं विनिरूपितोऽत्र गुरोस्सभायां विजयोऽनुबुद्ध्या
॥९६॥जयजयध्वनिरास ततोविदा सदसि सर्वमतानुमता परे॥

पर हे॥९०॥जिनको विशेष आग्रह कोई देवमें नहीं है उनको ओर मुक्तिकी इच्छा करवेवारेनको सत्वमूर्ति विष्णुही सेव्य हैं ये वेदसों ओर समाधिभाषा आदिसों निर्णीत है ॥ ९१ ॥ ९२ ॥ पीछें माध्व आदिकनसों राम बोले के हे भगवत्प्रियो अपनी द्वैतवाणी कहो यहाँ तो शुद्धाद्वैत सिद्ध भयो जो आप विरुद्ध होंय तो मेरेही सग शास्त्रार्थ करें ॥ ९३ ॥ एसे वचनके विनोदकरकें सभामें (श्रीमदाचार्यकोविवाद) अठाइस दिन भयो तामें प्रथम विवाद विद्यागुरुतथास्वामिवरनसों (१०) दिन भयो (३) दिन स्थानिवत्सूत्रमें भयो ओर परस्पर भयो नित्य एक प्रहर विवादको समय हो ॥ ९४ ॥ ९५ ॥ जेसे जेसे श्रीयदुनाथजीनें कह्यो हे ओर जेसे जेसे माधवशर्मा में कह्यो हे वेसेही वेसेही श्रीमदाचार्य-जीको ये विजय मेंनें लिख्यो हे ॥९६॥ पीछें विद्वाननकी सभामें सब मत-
[illegible]

हरिजनामुदिताश्चकिताः पुनः समभवन्नितरे प्रतिवादिनः॥९७॥
धराधिनाथेन धरार्द्धिभिस्ततोनतोनुयातः स्वनिकेतमीयिवान्॥
पुराङ्गनाः पौरजनाः सुमोत्करैर्ववर्षुरेनं पथि मंगलोदयम् ॥९८॥

इतिपरविवादप्रकरणम् ।

विद्याभिर्हरितां जयः क्व च भवेत्प्रज्ञावतां संसदः को लोकस्य यथा सुखं प्रलपतोप्यास्यंप्यधास्यज्जनः ॥ दैवानाञ्च समुद्धृतिर्नतमृते कर्तुं ततोवाक्पतिर्नैजैश्यं प्रकटीचकार तदनायासेन सम्पादितुम् ॥ ९९ ॥ श्रीवेदव्यासविष्णुप्रभुचरणमिते सास्मिते ग्रन्थसार्थैः श्रीगोविन्दाभिधानां समयनयविदां देशिकानां निदेशात् ॥ आचार्याणां चरित्रे हरिजनसुखदे शास्त्रिकृष्णैर्निबद्धे प्रस्थानेऽस्मिन् द्वितीये समजनि पटहोदिग्जयाख्ये तृतीयः ॥ १०० ॥

होयगये ॥ ९७ ॥ पीछें राजासों प्रणाम किये गये आप अपने स्थानमें पधारे मार्गमें पुरके स्त्रीपुरुषननें पुष्पनकी वृष्टि करी ॥ ९८ ॥ विद्वाननकी सभामें दिशानको विघानकरकें जय केसें होतो स्वच्छन्द बोलवेवारे लोगनको मुख कोन बन्द करतो दैवीजीवनको उद्धार केसे होतो ये सब अनायाससों करवेकें लियें वाक्पति श्रीमदाचार्यजीको प्राकट्य भयो ॥ ९९ ॥ देशकालके जानेववारे जगद्गुरु श्रीगोविन्दाचार्यजीमहाराजकी आज्ञासों कृष्णशास्त्रीके बनाये श्रीमद्वेदव्यासविष्णुस्वामिसम्प्रदायके ग्रंथनके अनुकूल भगवद्भक्तनके सुखदेववारे या आचार्य चारित्रग्रन्थमें दूसरे प्रस्थानमें तीसरो पटह समाप्त भयो ॥ १०० ॥

ततोरजन्यामिह वल्लभ प्रभु कृतक्रिय नित्यकथासमुत्थितम् ॥
समागतोव्यासगुरुस्समादृतोरहोवदत्तद्गुणतुष्टधीरयम् ॥ १ ॥
भवान् मदीयाध्वसुरक्षणक्षमोविचक्षणानां प्रवरोविदामपि ॥ अ
लङ्कुरुष्वार्पितमेव मे पदं पदं यतोदुर्लभमत्र धीमताम् ॥२ ॥
जगुस्तदाचार्य्यवराभवद्भुतमनीषिणा सम्यगिवेह दृश्यते॥ तथा
पि चान्तस्स्थितदेवताज्ञया विचार्य्य भूय कथयिष्यते मया
॥ ३ ॥ निशम्य वाच विमनास्समस्कारिर्गतो गते य शयन
व्यधात् प्रभु ॥ प्रभुस्तत स्वप्नगत समूचिवान् भवानमुष्यो
क्तिमपाकरोत्त्विमाम् ॥ ४ ॥ सुदुर्लभ किं भवत पद पदं सु
दुर्लभं यस्य कृपेव यच्छति ॥ मया यदर्थ भवतोऽवतारण कृ
तं तमर्थं कुरु मत्प्रिय प्रिय ॥ ५ ॥ विष्णुस्वामिमत तथागत
जनै पाषण्डिभिर्मायिभि प्राय कालवशेन नाशितमद कुर्वं

पीछें रातमें सन्ध्योपासनादिकर्म ओर भगवान्‌की कथाकों करकें जब श्रीवल्लभ महा प्रभु विराजे तब आपके पास मध्वमतके व्यासाचार्य आये ओर आदरकों पायकें प्रभुनके गुणनसों तुष्ट होयकें एकान्तमें बोले ॥ १ ॥ जो आप हमारे मार्गकी रक्षा करवेमें समर्थ हें ओर विद्वाननमें श्रेष्ठवी हें यासों हमारी गद्दीकों स्वीकार करें ये ओर विद्वाननकों दुर्लभ हे ॥ २ ॥ तब आप बोले जो आपको कथन सत्यहे तथापि हमारे शरीरमें रहवेवारी देवताकी आज्ञासों विचारके पीछें हम कहेंगे ॥ ३ ॥ ये सुनकें वे सन्यासी उदास होयकें चले गये उनके गये पीछें प्रभुनने शयन कियो तब स्वप्नमें भगवान्‌नें आज्ञा करी जो व्यासाचार्यके कथनकों दूर करो ॥ ४ ॥ जिन आपकी कृपासों दूसरेनकों पद मिलि हे उनको पद कहा दुर्लभ हे हमनें जाके लिये अवतार कियो हे वा हमारे प्रिय कार्यकों करो ॥ ५ ॥ विष्णुस्वामीके मतको बौद्धननें ओर मायिक पाखण्डीनन कालवशसों प्रायः नष्ट कर दियो हे ताको उज्जीवन करो

त्र तज्जीवनम् ॥ मन्त्रं मे खलु बिल्वमङ्गलमुनेः स्वीकृत्य ता तेरितम् लोके चारय वारयासुरजनान् श्रीशस्य घंटापथम् ॥ ६ ॥ आज्ञामेवं विधायासौ देवोयातोयथागतम् ॥ निषिध्य व्यासतीर्थोक्ति दाम्ने वृत्तं स तज्जगौ ॥ ७ ॥

इतिभगवदाज्ञाप्रकरणम् ।

अथापरमिहिरोदयावसरे कृतनित्यनैमित्तिककृत्योभृतनूतना म्बरमंडनः समाहूतनिजसामन्तमन्त्रिभृत्यः सुनयविदा बहुवि दा दिष्टविदा निर्दिष्टाभिषेकविजयसमयः पुरोधसा विज्ञापि तयज्ञावसानोपान्तावयवोमुदितमना नरदेवः कृष्णदेवोनिजप्रां गणविहितमंडपे विरचितचित्रयथोचितवितानप्रसरास्तरणमुकु रमणिमालारम्भास्तम्भतोरणपताकाध्वजादिसमलङ्कृते निर्मित मखानुष्ठानसम्पादितकनकाभिषेककनककलशांचिते सभासम र्द्धसमृद्धिसाहित्यं सम्भालयितुं निजजनैः सहोपससर्प ॥ ८ ॥

ओर हमारे मन्त्रको बिल्वमंगल मुनिसों लेकें भगवानके राजमार्गको प्रचार करो ओर आसुरमतनकों दूर करो ॥ ६ ॥ एसी आज्ञा कर देव जेसें आये वेसें पीछें गये ओर आपनें व्यासतीर्थ की बातकों न मॉनके वो वृत्तान्त अपने शिष्य दामोदरदाससों कह्यो ॥ ७ ॥ या आडी दूसरे दिन सूर्योदयके समय राजा कृष्णदेव नित्य नियम करकें नवीन वस्त्र तथा आभूषणनकों धारण कर अपने मन्त्रीनकों तथा सब राजकीयवर्ग ओर सेवकवर्गकों बुलायकें नीति ओर प्रारब्धके जानवेवारे ज्योतिषीनके बताये अभिषेकके विजयमुहूर्त में पुरोहितसों प्रार्थना किये गये बडे प्रसन्न होयकें जो विचित्र चित्र चँदवा बिछौना कॉंच मणीनकी माला केलाके स्तम्भ तोरण पताका ध्वजा आ-दिसों शोभित ओर यज्ञानुष्ठानके अभिषेकके लियें सुवर्णके कलश जहॉं धरे हे एसे अपने अंगनमें विहित यज्ञमंडपमें ऋद्धि समृद्धि सब साहित्य देखवेकों

प्रविश्यात्र समवलोक्य निजानुमत विन्यासविशेषनिहिताशेष पदार्थसार्थशोभितसभासदनम् निजनिदेशकारिणम् सकलका र्य्यमुख्याधिकारिण प्रत्यादेशमाश्रावयत् ॥ ९ ॥ मच्चिकीर्षित सकलविद्वज्जनविजयिद्विजाग्रजनवरकनककुसुमाभिषेकाचार्य्यसम्राट्सिंहासनाधिरोहण दृष्टश्रुतानुभावस्यानुमहैकस्वभास्यापराधृष्यप्रभावस्य श्रीपुरुषोत्तमवदनानलावतारस्य सम्पादयितु समाहूयताम् वरिवस्यास्पदाव्यासतीर्थविद्यातीर्थादिमहान्तो नितान्तकान्तामदातविद्योदया सर्वेपि विद्वांसोबान्धवाश्च सामन्ता सैनिकनायका चतुरगिण्यश्चम्व कुजरतुरगरथमहाडोलशिविकादयोवाहनिवहाश्चिरक्तवीरनिकुरम्बानटनर्तकगंधर्वाप्सरस्समूहा सोमयाजियाजूकद्वादशगतन्त्रस्वतन्त्रबावदूकानिमहवरानदनचन्दनश्रीलक्ष्मणभट्टनन्दनाभिस्यंदनाय ॥ १० ॥

अपने मनुष्यनके संग गयो ॥ ८ ॥ वहाँ जायकें अपनी आज्ञानुसार सब पदार्थनकी तैयारीसो शोभित या स्थानको देखकें आज्ञाकारी मुख्य अधिकारीको आज्ञा सुनाई ॥ ९ ॥ जो सब विद्वाननके जीतवेवारे ब्राह्मणनमें श्रेष्ठ ब्राह्मणको सुवर्णाभिषेक करकें आचार्यसम्राट्के सिंहासनपे बैठावनो ये मेरी करवेकी इच्छा है सो जिनको प्रभाव सुन्यो और देख्यो है जो दयालुस्वभाव वारे और बड़े तेजस्वी हैं उन पुरुषोत्तमवदनावतारको करवेको विचार है सो सब तैयारी करवेके लिये अत्यन्तमनोहर सद्विद्याके उदयवारे महात्मा आचार्य व्यासतीर्थ विद्यातीर्थ आदिकों बुलायो और सब विद्वान भाई बंधु शूर सेनानायक चतुरंगिनी सेना हाथी घोडे रथ पालकी मियाने आदि सवारी विरक्त वीरनकी सेना नाचने गायने वारे नट गन्धर्व अप्सरा आदि इन सबनको तैयार करो सोमयज्ञ करवेवारे बारहो तन्त्रनमें स्वतन्त्र विद्वाननके आनन्द देवेवारे श्रीलक्ष्मणभट्टजीके पुत्रके पधरायवेकेलिये ॥ १० ॥

ततोवरमन्त्रिणा समुक्तजनामंत्रणाय दूतप्रवरनिकराविशिष्टाः समादिष्टपंचजनान् स्वल्पतरेण नेहसा समानयामासुः ॥११॥ समुपयातेष्वखिलेषु समागताचार्यान् यथोचिताभिमुखसर्पणवागमृततर्पणवरासनसमर्पणसमर्चनादिना प्रणतः प्रांजलिः प्राह ॥ १२ ॥ अथ सम्प्राप्तसमयः चिकीर्षिताभिषेकमहोत्सवस्य तत्र भवद्भिः सद्भिर्महद्भिर्बहुभिरनवद्यहृद्भिःशोभनविद्यावद्भिः विचार्य आचार्यपदप्राप्तये श्रीवल्लभाभिषेकाय कनकाभिषेकाय सद्धर्मनिकाय गोपनाय विहितकायाय विजितमायाय मदीयनारायणायादेशः प्रदीयताम् ॥ १३ ॥ एतद्विज्ञापनं निशम्य सर्वेपि वैकुंठप्रिया व्यासतीर्थादितीर्थवराश्च महेशद्धषीकेशाम्नायप्रचारका वैदिकाम्नायसंधारका निजसमाश्रितसमुद्धारका हर्षोत्कर्षा विकासितवदनवनरुहो निजाभीप्सितं पुंडरीकाक्षकृपाकटाक्षोपनतं बाढं बाढं विधीयतामित्याज्ञापयाम्बभूवुः १४

तब मुख्यमन्त्रीसों भेजे गये दूत जल्दीसों सबको बुलाय लाये ॥ ११ ॥ ओर सबके आवने पे आये भये आचार्यनके सामनें जायकें अपनी अमृतमयी वाणीसों तृप्त कर अच्छे आसननपें बैठायकें उनको पूजन कर नम्र होयकें हाथ जोडके राजा बोल्यो ॥ १२ ॥ के हमारे करवेकों अभिषेक महोत्सवको समय प्राप्त भयो हे वामें शुद्ध अन्तःकरणवारे अच्छीविद्यावारे सज्जन महात्मा आप सब विचार कें आचार्य पद प्राप्तिके लियें ओर सुवर्णाभिषेकके लियें सद्धर्मकी रक्षा करवेवारे इन्द्रियनके तथा मायाके जीतवेवारे हमारे नारायण श्रीवल्लभके लियें आज्ञा करिये ॥ १३ ॥ ये राजाकी विज्ञप्ति सुनकें सब सम्प्रदायके वैष्णवाचार्य अपने२ शिष्यनके उद्धार करवेवारे व्यासतीर्थादिक बडे हर्षसों भगवान्‌की कृपा कटाक्षसों प्राप्त अपने मनोरथकों बहोत अच्छो २ करिये ये आज्ञा देते भये॥ १४॥

अथ परेपि प्राप्तसमयानुरूप दैवेन विहितस्वरुपं निजसम यानातिविरूप सकलसत्समयानुरूपम् अचिन्त्यधिपणा स द्धिपणा परमनिपुणा. पवित्रचित्तचारित्रचणा विद्यागुरुस्वामि प्रभृतिगुरवोपि स्मार्त्ताचार्यवरा अन्तर्वाणिप्रवरा वृन्दारकवृन्द समर्चकनिकरा. सर्वेपि सम्यक् सम्यगवश्य विधेयं विधेयमिति कथयाञ्चक्रुः ॥१५॥अथ महीपतिना सुमतिना सुकृतिना पुरो धस पुरोधाय महान्तो बान्धवा मन्त्रिप्रवरा चतुरंगिण्यश्च शिविकादय सर्वेपि समभिसारिता श्रीमदाचार्यसमानयनाय ॥ १६॥ अथ ते सर्वेपि तदीयाश्रमबहिराजिरोपाजिरे सम्प्राप्ता वाद्यविशेषविज्ञापना कारितविज्ञापना निजप्रवेशाज्ञां प्रतीक्ष्य समानीताज्ञा समागतेषु प्रवरा विनीतवेषा केतुकमण्डलुनीता द्वारि प्रविश्य श्रीलक्ष्मणनन्दन निरीक्ष्य साष्टांग प्रणम्य रा जसमर्पितोपायन चरणोपान्तप्रान्ते समर्प्य करयुगल मुकुली

पीछें ओर भी बुद्धिमान् परम चतुर पवित्र चित्तवारे विद्वान प° चेदेवतानकी उपासना करवेवारे स्मार्त्ताचार्य विद्यागुरू प्रभृतिक सबनें कहोत अच्छो।२ अवश्य करिये ये कह्यो ॥ १५ ॥ तब पुण्यात्मा बुद्धिमान राजाने पुरोहितकों आगे कर बडे२भाई बेटे मन्त्री चतुरंगिणी सेना पालकी आदि सब साहित्य श्रीमदाचार्यजीके पधरायवेकेलियें भेजी ॥१६॥ सो वे सब जायकें आपके आश्रमके बाहेर ठाडे रहे यद्यपि बाजानसों ओर धूमधामसों सूचना होयगई तोभी अपने भीतर जायवेकी आज्ञाकी प्रतीक्षा करते भये तब उनमेंसों बुद्धिमान् नम्र वेषवारेनकों केतुकमण्डलु भीतर ले गये वे सब श्रीलक्ष्मणनन्दनके दर्शन कर साष्टांग प्रणाम कर राजाकी करी भई भेट चरणकमलनके पास धरकें हाथ जोडकें सभामें पधारवेकेलियें प्यारी

कृत्य सभासदने समुपधारणाय राजप्रार्थनां प्रियवाचा व्याचख्युः ॥ १७ ॥ ततः श्रीमदार्यनयननलिननिष्पन्दाभिज्ञाताकूतसमुद्भूताज्ञां विज्ञाय दामोदरः सम्यगिति तेभ्यः श्रावयित्वा निजेभ्योऽभिगमनाभिरूपं वेषादि धापयित्वा निवृत्तमाध्याह्निकाः शिविकायामार्यपादुकां चतुःपादिकां निधाय श्रीमदार्यं पुरोधाय राजवाहिनीपरिवृता अमरवाहिनीमिव नगरनीरनिधिं पूरेण पूरयंतः ढक्कानकमुरजमर्दलझर्झरापणगोमुखनिस्वानभांकारकाहलगर्जितेन नटनर्तकगन्धर्वकुतूहलाकर्षितनरनारीबालकुमारनिकरकलकलकोलाहलेन सकलजनं प्रबोधयंतः भाविन्यभिषेकमहोत्सवे निमन्त्रयद्भिः सुरपरिवृढान् कुसुमनिचयासाराक्षते राजद्वारं सुशोभयंतः समाजग्मुः ॥ १८ ॥ अथ नरेश्वरो विविधनिनादपूरपांथिकाभिज्ञापितसमीपागमनसंभावनाय सह निजजनैः समीपमुपेत्य साष्टांगप्रणामोपढौकि

बोलीसों राजाकी प्रार्थनाकों करी ॥ १७ ॥ तब श्रीमदाचार्यके कमलनेत्रनकेओर देखवेसों आपकी आज्ञा समझकें दामोदर अच्छो ठीक है ये उनकों सुनायकें मध्याह्नसों निवृत्त होयकें अपने मनुष्यनकों तैयार करकें पालकीमें चतुःपादिकाके ऊपर पादुका पधरायकें श्रीमदाचार्यकों आगें पधरायकें राजसेनाके सहित ढोल नगाड़ा मृदंग मर्दल झाँझ गोमुख तुरही नरसिंहा आदि बाजानकी गर्जनासों नट नर्तक गन्धर्वनके तमासानसों इकठे भये स्त्री पुरुष बालकनके कलकल कोलाहलशब्दसों सब मनुष्यनकों जनावते होयवेवारे अभिषेकउत्सवमें लोगनकों निमन्त्रण करते सुंदर पुष्पनकी वृष्टि करते राजद्वारमें पहुँचे ॥ १८ ॥ राजानेंबी विविधबाजानकी ध्वनिसों पासमें आये जानकें अपने मनुष्यनके संग पासमें जायकें साष्टांग प्रणाम ओर

अथ परेपि प्राप्तसमयानुरूप दैवेन विहितस्वरुप निजसम यानतिविरूप सकलसत्समयानुरूपम् अचिन्त्याधिषणाः स द्धिषणा परमनिपुणा. पवित्रचित्तचारित्रत्वणा विद्यागुरुस्वामि प्रभृतिगुरवोपि स्मार्ताचार्यवरा अन्तर्वाणिप्रवरा वृन्दारकवृन्द समर्चकनिकरा. सर्वेपि सम्यक् सम्यगवश्य विधेयं विधेयमिति कथयाञ्चक्रु ॥ १५॥ अथ महीपतिना सुमतिना सुकृतिना पुरो धस पुरोधाय महान्तो बान्धवा मन्त्रिप्रवरा चतुरंगिण्यश्चम्व. शिबिकादय' सर्वेपि समभिसारिता श्रीमदाचार्यसमानयनाय ॥ १६॥ अथ ते सर्वेपि तदीयाश्रमबहिराजिरोपाजिरे सम्प्राप्ता वाद्यविशेषविज्ञापना कारितविज्ञापना निजप्रवेशाज्ञां प्रतीक्ष्य समानीताज्ञा समागतेपु प्रवरा विनीतवेषा केतुकमडलुनीता द्वारि प्रविश्य श्रीलक्ष्मणनन्दन निरीक्ष्य साष्टांग प्रणम्य रा जसमर्पितोपायन चरणोपान्तप्रान्ते समर्प्य करयुगलं मुकली

पीछें ओर धी बुद्धिमान् परम चतुर पवित्र चित्तवारे विद्वान् पं- चेदेधलानकी उपासना करवेवारे स्मार्ताचार्य विद्यागुरु प्रभृतिक सबनें यहोत अच्छो २ अवश्य करिये मे कयो ॥ १५ ॥ तब पुण्यात्मा बुद्धिमान् राजाने पुरोहितकों आगे कर बडे भाई बेटे मन्त्री चतुरंगिणी सेना पालकी आदि सब साहित्य श्रीमदाचार्यजीके पधरायबेकेलियें भेजी ॥ १६॥ सो वे सब जायकें आपके आश्रमके बाहेर ठाडे रहे यद्यपि बाजानसों ओर धूमधामसों सूचना होयगई तोभी अपने भीतर जायवेकी आज्ञाकी प्रतीक्षा करते भये तब उनमेंसों बुद्धिमान् नम्र वेषवारेनकों केतुकमडलु भीतर ले गये वे सब श्रीलक्ष्मणनन्दनके दर्शन कर साष्टाग प्रणाम कर राजाकी करी भई भेट चरणकमलनके पास धरकें हाथ जोडकें सभामें पधारवेकेलियें प्यारी

कृत्य सभासदने समुपधारणाय राजप्रार्थनां प्रियवाचा व्याच ख्युः ॥ १७ ॥ ततः श्रीमदार्यनयननलिननिष्पन्दाभिज्ञाता कृतसमुद्भूताज्ञां विज्ञाय दामोदरः सम्यगिति तेभ्यः श्रावयि त्वा निजेभ्योऽभिगमनाभिरूपं वेषादि धापयित्वा निवृत्तमाध्या ह्निकाः शिबिकायामार्यपादुकां चतुःपादिकां निधाय श्रीम दार्यं पुरोधाय राजवाहिनीपरिवृता अमरवाहिनीमिव नगरनी रनिधिं पूरेण पूरयंतः ढक्कानकमुरजमर्दलझर्झरापणगोमुखनि स्वानभांकारकाहलगर्जितेन नटनर्तकगन्धर्वकुतूहलाकर्षितनर नारीबालकुमारनिकरकलकलकोलाहलेन सकलजनं प्रबोधयं तः भाविन्यभिषेकमहोत्सवे निमन्त्रयद्भिः सुरपरिवृढान् कुसुम निचयासाराक्षते राजद्वारं सुशोभयंतः समाजग्मुः ॥ १८ ॥ अथ नरेश्वरो विविधनिनादपूरपांथिकाभिज्ञापितसमीपागमनसं भावनाय सह निजजनैः समीपमुपेत्य साष्टांगप्रणामोपढौकि

बोलीसों राजाकी प्रार्थनाकों करी ॥ १७ ॥ तब श्रीमदाचार्यके कमलने-त्रनकेओर देखवेसों आपकी आज्ञा समझकें दामोदर अच्छो ठीक है ये उन-कों सुनायकें मध्याह्नसों निवृत्त होयकें अपने मनुष्यनकों तैयार करकें पाल-कीमें चतुःपादिकाके ऊपर पादुका पधरायकें श्रीमदाचार्यकों आगें पधरायकें राजसेनाके सहित ढोल नगाड़ा मृदंग मर्दल झाँझ गोमुख तुरही नरसिंहा आदि बाजानकी गर्जनासों नट नर्तक गन्धर्वनके तमासानसों इकट्ठे भये स्त्री पुरुष बालकनके कलकल कोलाहलशब्दसों सब मनुष्यनकों जनावते होयवेवारे अभिषेकउत्सवमें लोगनकों निमन्त्रण करते सुंदर पुष्पनकी वृष्टि करते राजद्वारमें पहुँचे ॥ १८ ॥ राजानेंबी विविधबाजानकी ध्वनिसों पासमें आये जानकें अपने मनुष्यनके संग पासमें जायकें साष्टांग प्रणाम और भेट करकें अपने हाथको आपके श्रीहस्तको अवलम्ब करायकें किञ्चित्

तसम्भावनाभावितभारतीभेगेण सम्भावनां चरन् दत्तनिजहस्त हस्तावलम्बन सस्मितप्रसादालापविलम्बितहलनेन संजवने प्रविश्य विद्वद्भिर्नमस्कृताय तान् नमस्कुर्वाणाय वरासन प्रदाय विश्रामयामास ॥ १९ ॥ अथाह वचन विद' सदसि शम्भुभट्टोऽभवत् खिल यदुत बाधितं गदत योभिऽ योगेषु न ॥ यतोतिरभसोदिते स्खलितमस्ति नैवाहसे तथापि विनिरूपित पुनरित समाधास्यते ॥ २० ॥ रुत बुधजनैर्नतैर्न खलु वाक्पतेरग्रतोऽमरोपि यदि साम्प्रत किं सु परो वदेत्प्राकृत ॥ उरुक्रमपदक्रमे कथय तुल्यता विक्र म करोति ननु दर्दुरो बहुरटन्नटन् पल्वले ॥ २१ ॥ उवाच व चन भवत्करुणया स शम्भुर्विद सभाभिभवसम्भवो भवतु मा पराधाय न ॥यतो जनसुबुद्धये निगमसारसंसिद्धये पुरैव मुनिना कृतो मिहिरसेविना योगिना ॥ २२ ॥ पुनर्बुधवरा जगु कथ

हास्यपूर्वक बात करते सभामें पधरायके नमस्कार किये गये विद्वाननको नमस्कार करने आपको अच्छे आसनपे विराजमान कराये ॥ १९ ॥ पीछे विद्वाननकी सभामें शम्भुभट्ट बोले जो कलह समाधान करवेमें जो कछू रह गयो होय अथवा अधिक भयो होय सो कहो क्यों के अतिशीघ्रतामें जो कछु अशुद्ध होय जाय सो पापके लिये नहीं होयहे सो अब फिर आपलोग कहिये फिर समाधान करेंगे ॥ २० ॥ तब नम्र होयके विद्वाननने कह्यो जो वाक्पतिके सामने स्वर्गवासी नहीं बोलसकेहे और प्राकृत मनुष्य तो कहा बोलेंगे विष्णुका गतिको कीचम बहुत शब्द करतो भयो चलनो मेंडूक कहा पावेहे ॥२१॥ फिर शम्भुभट्टने कह्यो जो सभामें तिरस्कारको सभय रहे है सो कभी निरस्कार हायगयो होयतो क्षमा करनो पहलेभी जनक-याज्ञवल्क्यके सम्वादम भयो है ॥ २२ ॥ तब विद्वाननने कह्यो के सारी प्रनि-

कयोर्मिथोजल्पतोर्भवेत्परुषभाषणं हितकृते न मिथ्यापि वाक् ॥ मणेरिव विशुद्धये भवति शाणसंघर्षणं मलापहामितोपरं खलु विलेपनं स्नेहतः ॥ २३ ॥ इत्थं सौहृदसंलापकलापं कुर्वतां पुरः नरदेवः कृष्णदेवःपुरोधागणकनिवेदिते सद्गुणसमये साक्षाद्विष्णुरूपस्य विष्णुरूपातिथेर्वैष्णवीं सपर्यां विधातुं वैष्णवोद्धाराय वैष्णवाचार्यतामापादयितुं वैष्णवाचार्यानुमत्या अन्येषामपि सम्मत्या श्रीमदार्यं समुत्थाप्य कृतमंडले धौतकलधौतकलितपट्टोपरि ऋत्विगुपाध्यायमहीध्रसन्निधिं विधाय सदस्यैःपरितो विराजमाने विराजमानमकरोत् ॥२४ ॥ ततः नूत्ना राजविभूतीर्दैवविभूतीर्दैववर्चोभ्योभूदेवेभ्योवैष्णवेभ्यः शम्भ्वादिभट्टेभ्योनरदेवः कृष्णदेवः समर्प्य आचार्यार्चनं कर्तुं निजपुरोधसमुपाध्यायं चानुज्ञाप्य संकल्पादिपुरस्सरं पाद्यार्घ्याचमनादि

वादीके परस्पर भाषणमें कठोर वचन हितकेलिये होय हे मणिको सानमें घिसनो मल दूर करकें ताकी शुद्धिकेलियें होय हे पीछें स्नेहसों लेप होयहे ॥ २३ ॥ या प्रकार मित्रतासों बात करते विद्वाननके समक्ष राजा कृष्णदेव पुरोहित ज्योतिषीनके बताये अच्छे समयमें विष्णुरूप अतिथिकी वैष्णवी पूजा करवेकेलियें वैष्णवनके उद्धारके लियें वैष्णवाचार्यताको सिद्ध करवेकें लियें वैष्णव आचार्यनकी आज्ञासों दूसरेनकीबी सम्मतिसों श्रीमदाचार्यजीकों चौकके ऊपर सुवर्णकलित पट्टाके ऊपर विराजमान करते भये ओर ऋत्विज उपाध्याय राजा सभ्य इन सबनकोंबी पासमें बेठावते भये ॥ २४ ॥ ओर नवीन राजविभूति छत्र चमर देवविभूति घंटा शंख आदि देवता सरीखे वैष्णव ब्राह्मण शम्भुभट्टप्रभृतिनकों देकें राजा कृष्णदेवनें आचार्यके पूजन करवेके लियें अपने पुरोहित उपाध्यायकों कहकें संकल्प आदि पहलें करकें यथाविधि विधानसों पाद्य अर्घ्य आचमन आदिसों पूजा कर पवित्रतीर्थनके जल-

ना समर्च्य यथाविधिविधानेन पूतैस्तीर्थसमुद्भूतैर्मन्त्रपूतैर्वैदिकै स्वर्णघर्मादिमन्त्रैर्महाभिषेकाचार्यसाम्राज्याभिषेकमन्त्रैश्च ऋत्विग्भि पुरोधसा साकमभ्यषिंचत् ॥ २५ ॥ अथ पट्टान्तरे समुपविष्टान् निजेष्टान् श्रीमदाचार्यान् निजशिष्यै गुर्जरगोविन्दरामसुकुन्दरामशंकरानदश्यामानन्दै समानीतजलै शम्भुभट्ट संस्नाप्य वस्त्रान्तरेण सम्प्रोक्ष्य नूतनकौपीनकटिवस्त्रोत्तरीययज्ञसूत्रतुलसीकाष्ठस्रक्मृगचर्म्मादि धापयित्वा काश्मीरतिलकगोपीचन्दनपण्मुद्रालङ्कृतान् सम्भृतपादुकान् कनकसिंहासनाग्रे समानमानयत ॥ २६ ॥ अथ व्यासतीर्थादय सर्वेपि वैष्णवाचार्या महीभृता पुरोधसा स्वोपाध्यायेन पुरो नीता तेषामन्येषामाचार्याणां पंडितानां वैदिकानां देवोपासकानां सम्मत्या राजसिंहेन श्रीमदाचार्या सम्भृतकौशेयाम्बरमहासने सिंहासने समुपवेशिता ततोवशिष्टपूजन विदधन् राजदेवविभूत्या

सों वैदिक स्वर्णघर्मादिमन्त्रनसों ऋत्विजपुरोहितके संग साम्राज्य महा अभिषेक कियो ॥ २५ ॥ पीछे दूसरे पट्टाके ऊपर विराजमान अपने इष्ट श्री मदाचार्यजीको निजशिष्य गुर्जर गोविन्दराम शंकरानन्द श्यामानन्दके लाये जलसों शम्भुभट्टन स्नान करायके दूसरे वस्त्रसों पोछके नवीन कोपीन कटिवस्त्र उपरणा यज्ञोपवीत तुलसीकाष्ठकी दो कंठी मृगचर्म आदि धरायके तिलक गोपीचन्दनकी छे मुद्रानसों शोभित पादुकानकों धारण किये श्रीमदाचार्यकों बडे मानसों सुवर्णके सिंहासनके पास पधराये॥ २६ ॥ और व्यासतीर्थादि सब वैष्णवाचार्यनकों आगे बुलायके उनकी तथा और आचार्य पंडित वैदिकनकी सम्मतिसों राजसिंह कृष्णदेवने केशरी-वस्त्रकी बडी गादीमें सिंहासनके ऊपर पधरायके और अवशिष्ट पूजन करने

संयोजिताः ॥ २७ ॥ तत्र शम्भुभट्टः सितातपवारणं हरिभट्टः सूर्याभिमुखवारणं शंकरानन्दश्यामानन्दौ चामरे स्वभूस्वयम्भ्वाचार्य्यौ मायूरपिच्छगुच्छे केतुकमंडलू सौवर्णदंडे गोविन्दराममुकुन्दरामौ राजतलकुटे रामभट्टकेशवभट्टौ राजतशंखचक्रदंडे अन्ये सात्वतवैष्णवाः घंटाझिल्लरीगोमुखादिवादित्राणि जगृहुः ॥ २८ ॥ ततस्तिलकं माल्यमाले धूपं दीपं नैवेद्यम् आचमनीयं मुखवासं दर्शयित्वा वहुसुवर्णनिचयो दक्षिणापर्यायेणोपढौकिततयाग्रे निवेशितः तदवसरे विज्ञापितम् अभिषेकेऽर्पितं सुवर्णपात्रादीन्यपि श्रीमद्भ्यो मया निवेदितानि स्वीकुर्वन्तु ॥ २९ ॥ तदा श्रीमदाचार्यनयनाभिनीताकूतं निजहृद्यनुभूतं सुन्दरया गिरा दामोदरः सभासदः श्रावयन् अवनिवृद्धश्रवसं कृष्णदेवं सम्बोध्य नैतच्छ्रीमदाचार्य्यैः

राजदेवविभूतीनकों भेट कियो ॥ २७ ॥ तामें शम्भुभट्टनें सुपेद छत्र लियो हरिभट्टनें सूर्यमुखीकों लियो शंकरानन्दश्यामानन्दनें चामर लिये स्वभूस्वयम्भूनें मूर्छल लिये केतुकमंडलुनें सुवर्णके छडीनकों लियो गोविन्दराम मुकुन्दरामनें चाँदीकी छडी लीनी रामभट्ट केशवभट्टनें चाँदीके शंखचक्रके दंडानकों लियो ओर सब वैष्णवननें घंटा झांझ गोमुख आदि बाजानकों लियो ॥ २८ ॥ पीछें राजानें तिलक करकें पुष्पमाला धरायकें धूप दीप नैवेद्य आचमन मुखवास दिखायकें दक्षिणाके बदलेमें बहोत सुवर्णकी राशि भेटमें आगे धरी ओर ताही समय विज्ञप्ति करी जो अभिषेकमें आये सब पदार्थ ओर सुवर्णके पात्रबी आपके लियें मेनें निवेदन किये हें सो आप स्वीकारकरें ॥ २९ ॥ तब श्रीमदाचार्यके नेत्रकमलनके ओर देखकें आपको अभिप्राय समझकें अपनें हृदयमें अनुभव करकें सुन्दर वाणीसों दामोदर सब सभासदनको सुनावतें पृथिवीपति कृष्णदेवकों सम्बोधन करकें ये बोले के

कनकस्नानीयकनकामत्रादिस्पर्शितमपि स्नानाम्बुवत् अस्पर्शनीयम् यत प्रपन्नजनमन्तरान्येनार्पितमुपढौकितमपि न गृह्यत इति गृहीतानियमा निर्वर्तनाय किमपि न गृह्यत इत्याह ॥ ३० ॥ इत्येव पठितवचन निशम्य विमनस्केऽवनीशे देयमेतेभ्यो दूराशात समागतेभ्यो सिद्दिताशापाशेन चिरतरनिवद्धेभ्य स्नानीयमुपढौकितं चेति पार्षद्ये स्थितो दामोदर एव पुनर्निजगाद ॥२१॥ अथ धरणिधवेन निजोपाध्यायपुरोधोभ्यां सम्म न्त्र्य यथोचितविभाग सविभज्य तद् द्रव्य व्यासतीर्थाद्याचार्यशिष्येभ्य समागतेभ्यो वैदिकेभ्यो विद्वद्भ्यो विप्रेभ्यो कूपारामकन्यादानादिधर्म्मकार्यार्थिभ्यो देवालयाधिकारिभ्य कारागारादिनिरुद्धेभ्योरुग्णेभ्योऽधपग्वादिभ्यो दीनेभ्यश्चादापि ते व्यासतीर्थाद्याचार्या विष्णुस्वामिसम्प्रदायिनोहरिस्वामिशेषस्वामिनोर्हस्ताभ्याम्

सुवर्णाभिषेकके सुवर्णके पात्र स्नानके जलके समान श्रीमदाचार्यके स्पर्श करवेके योग्य नहीं हैं ओर अपनी शरणागतिके विना दूसरेकी भेटकोंभी नहीं ग्रहण करनो एसे नियमकों ग्रहण कियो है सो ताके पालवेकें लिये कछूभी नहीं ग्रहण करते ॥ ३० ॥ या वचनकों सुनकें राजाके उदास होयवे पे दूरदेशनसों आये आशारूपी रस्सीनसों बहुतदिनानसों बँधे भये इन विद्वाननकों मे अभिषेकके भेटको द्रव्य देवेके योग्य हे ये पार्षदपनेमें ठाडे भये दामोदरनें फिर थी कह्यो ॥ ३१ ॥ तब पृथिवीपतिनें अपने उपाध्याय पुरोहितसों सलाह करकें या द्रव्यको यथोचित विभाग करकें आये भये व्यासतीर्थादिक आचार्यनके शिष्यनकों वैदिकनको विद्वान्ब्राह्मणनकों कूप बगीचा कन्यादानादिक धर्म्मकार्यके लिये जो आये हे उनकों मंदिरनके अधिकारीनकों कैदीनको रोगी अन्ध लँगडे दीन इनसबनकों दिवायो ओर व्यासतीर्थादिक आचार्यननें विष्णुस्वामीसम्प्रदायके हरिस्वामी शेष-

आचार्यसाम्राज्यतिलकं कारयित्वा स्वयमप्यकुर्वन् सम्राजा चा
कारयन् ॥३२॥ अथ श्रीमदाचार्येभ्यः श्रीवेदव्यासविष्णुस्वा
मिसम्प्रदायसमुद्धारसंभृतश्रीपुरुषोत्तमवदनावतारसर्वाम्नायसंचा
रवैष्णवाम्नायप्राचुर्यप्रकारश्रीबिल्वमंगलार्पितसम्राजासनाखंड
भूमंडलाचार्य्यवर्यजगद्गुरुमहाप्रभुश्रीमदाचार्य इति विरदावलि
रूपवालिस्तैः कृता ॥ ३३ ॥ ततो राज्ञा सकुटुम्बेन तथान्यैरपि
स्वकीयैः सह प्रपत्तिरर्थिता आचार्यैश्च तेभ्यः कृतविज्ञापनेभ्यः
शरणाष्टाक्षरं दत्वा हरिगुरुसमर्पिता तुलसीकाष्टमाला अर्पिता
ततस्तैः सह धराधिपेन स्वर्णपात्रिकासम्भृताः सुवर्णसतसहस्रमुद्रा
उपढौकिते निवेदिताः ततः श्रीमद्गुरुपादावनेजनं संहृतविविध
जनजानिसमुद्वेजनं विहितसहितांगप्रपत्तिसम्पत्तिसम्पादकं संपा
दयितुं सिंहासनाग्रे चतुष्पादिकां निधाय तदुपरि गुरुचरण
पादुके स्थापयित्वा ततः चरणं पवित्रमित्यादिमन्त्रैः प्रक्षाल
नपुरस्सरं सम्पूज्य तत्तीर्थं पात्रे गृहीत्वा नरदेवकृष्णदेवेन स

स्वामीजीके हाथसों आचार्यसाम्राज्यको तिलक आपके करायकें आपनेंबी कियो ओर राजासोंबी करायो ॥ ३२ ॥ ओर श्रीमदाचार्यके लियें 'श्रीमद्वेदव्यास' इत्यादि ऊपरकी लिखी पदवीकों दियो ॥ ३३ ॥ पीछें कुटुम्ब ओर दूसरे अपने मनुष्यनके संग राजानें शिष्य होयवेकी प्रार्थना करी तब आपनें प्रार्थना करवेवारे उनसबनकों शरणाष्टाक्षर मन्त्र देकें प्रसादी तुलसीकाष्टकी माला दीनी तब उनके संग राजानें सुवर्णके थारमें धरके सात हजार असरफी भेट कीनी ओर अनेक जन्मनके पाप दूर करवेवारे शरणहोयवेको एक अंग एसे चरणामृत करवेके लियें सिंहासनके आगें चौकी धरकें ताके ऊपर गुरूकी चरणपादुकानको स्थापन करकें 'चरणम्पवित्रम्'इत्यादि मन्त्रनसों स्नान करवायकें पजन करकें वो तीर्थ पात्रमें धरकें

कनकस्नानीयकनकामत्रादिस्पर्शितमपि स्नानाम्बुवत् अस्पर्श नीयम् यत प्रपन्नजनमन्तरान्येनार्पितमुपढौकितमपि न गृह्यत इति गृहीतनियमा निर्वर्तनाय किमपि न गृह्यत इत्याह ॥ ३० ॥ इत्येव पठितवचनं निशम्य विमनस्केऽवनीशे देयमेतेभ्यो दूराशात समागतेभ्यो विदिताशापाशेन चिरतरनिबद्धेभ्य स्नानीयमुपढौकितं चेति पार्षद्ये स्थितो दामोदर एव पुनर्निजगाद ॥३१॥ अथ धरणिधवेन निजोपाध्यायपुरोधोभ्यां सम्मन्त्र्य यथोचितविभाग सविभज्य तद् द्रव्य व्यासतीर्थाद्याचार्यशिष्येभ्य समागतेभ्यो वैदिकेभ्यो विद्वद्भ्यो विप्रेभ्यो कूपारामकन्यादानादिधर्म्मकार्यार्थिभ्यो देवालयाधिकारिभ्य कारागारादिनिरुद्धेभ्योरुग्णेभ्योऽपपग्वादिभ्यो दीनेभ्यश्चादापि ते व्यासतीर्थाद्याचार्यो विष्णुस्वामिसम्प्रदायिनोर्हरिस्वामिशेषस्वामिनोर्हस्ताभ्याम्

सुवर्णाभिषेकके सुवर्णके पात्र स्नानके जलके समान श्रीमदाचार्यके स्पर्श करवेके योग्य नहीं हैं ओर अपनी शरणागतिके विना दूसरेकी भेटकोंभी नहीं ग्रहण करनो एसे नियमकों ग्रहण कियो हे सो ताके पालवेकें लियें कछूभी नहीं ग्रहण करते ॥ ३० ॥ या वचनकों सुनकें राजाके उदास होयवे पे दूरदेशनसों आये आशारूपी रस्सीनसों बहुतदिनानसों बँधे भये इन विद्वाननकों ये अभिषेकके भेटको द्रव्य देवेके योग्य हे ये पार्षदपनेंमें ठाडे भये दामोदरनें फिर भी कह्यो ॥ ३१ ॥ तब पृथिवीपतिनें अपने उपाध्याय पुरोहितसों सलाह करकें वा द्रव्यको यथोचित विभाग करकें आये भये व्यासतीर्थादिक आचार्यनके शिष्यनकों वैदिकनको विद्वान्ब्राह्मणनकों कूप बगीचा कन्यादानादिक धर्म्मकार्यके लियें जो आये हे उनकों मंदिरनके अधिकारीनको कैदीनकों रोगी अन्ध लँगडे दीन इनसबनकों दियो ओर व्यासतीर्थादिक आचार्यननें विष्णुस्वामीसम्प्रदायके हरिस्वामी शेष-

र्यैता साधिता तस्याचार्यशिरोमणेश्चरणयोः पुष्पाञ्जलिर्दीय
ते ॥ ३८॥ उपाध्यायः–कुम्भोद्भूतप्रपूतपूतहरितश्चांध्रद्विजाते
रथो भारद्वाजमुनेश्च तित्तिरिरुताम्नायस्य सौभाग्यभूः ॥ वेदव्या
समुनेर्मतस्य भृतये प्राप्तः सदाचार्यतां यज्ञर्षेः कुलमंडनो
विजयतां श्रीलक्ष्मणस्यात्मजः ॥ ३९ ॥ अन्ये आचार्य्याः-
ब्रह्मात्मैक्यमतं तदात्मकतया सद्वादसंस्थापनं यद्वर्णाश्रमसेव
नाभिमुखतो विष्णोः सदा सेवनम्॥तन्नाम्नोप्युपदेशनं स्वशरणप्रा
प्ताय सर्वात्मने एवं यस्य मतं मतं स विदुषां तत्केन नो म
न्यते ॥ ४० ॥ अन्यदेवोपासकाः–सर्वे येन सुराः परेशवपुषः
कल्पप्रभेदाद्भुताः सत्यं येन समस्तमेव गदितं सत्यात्मना साध
नम्॥भक्तिर्येन विमुक्तयेऽपि पठिता लोके विरक्तिर्धृता कस्यायं

भग्न वैष्णवनकों उद्धार करकें वेदमार्गके प्रचार करवेके लियें जिननें आचार्य पद धारण कियो हे उन आचार्यशिरोमणीके चरणकमलनमें हम पुष्पाञ्जलि दें हें ॥ ३८॥ उपाध्याय–अगस्त्य ऋषिसों पवित्र करी गई दक्षिणदिशाके भारद्वाजमुनिके आन्ध्र ब्रह्मणनके तैत्तिरीयशाखाके सौभाग्यके स्थान जो हें और वेदव्यासमुनिके मतके रक्षाके लियें आचार्यपदको जिननें स्वीकार कियो हे वे यज्ञर्षिकुलकेभूषण श्रीलक्ष्मणभट्टजीके पुत्र सबसों श्रेष्ठ होंय ॥ ३९ ॥ दूसरेआचार्य–ब्रह्मजीवकीएकता ब्रह्मात्मक जगत् सद्वादस्थापन वर्णाश्रमधर्म पालते विष्णुकी सदा सेवा उनके नामको उपदेश एसो जिनको मत हे उनको कौन नहीं मानें हें ॥ ४० ॥ और देवतानकी पूजाकरवेवारे सब देवता कल्पभेदसों परत्माके शरीर हें ये जगत सत्य हे मुक्तिके लियें भक्ति हे ये उपदेश करवेवारे संसारमें विरक्तिकेधारण करवेवारे ये आचार्य किनके मतमें पूज्य नहीं

कुटुम्बेन सह निजजनैः सह प्रजाभिः पीत्वा शिरसि धारितम् ॥ ३४ ॥ ततो हस्तप्रक्षालनं विधायाचशिष्टार्चनमारब्धम् । तत्र हरिस्तोत्रेण नीराजनं गुरुस्तोत्रेण पुष्पाञ्जलिं विधाय सर्वे स्तुतिमचकलन् ॥ ३५ ॥ तत्र राजा—वन्दे श्रीपुरुषोत्तमस्य सुहृदं वन्दे पुरारेर्मतं वन्दे नारदकृष्णयोरभिमतं सदर्शयन्तं सताम् ॥ वन्दे विष्णुमुनेर्गुरुक्रमगताचार्यत्वमासादितं वन्दे देवहिताय सम्भृततनुं श्रीवल्लभम् वल्लभम् ॥ ३६ ॥ आचार्य श्रीमत्पुरुषोत्तमात्पुरभिदो यो नारदाद्व्यासतो विष्णुस्वामिसुबिल्वमंगलमुखाल्लब्ध्वा पदं लक्ष्मणात् ॥ आचार्योसि निसर्गतो हरिमताचार्यांतितायाधुना तस्याचार्यपदार्पणं विजयतां पूष्ण प्रदीपं यथा ॥ ३७ ॥ पुरोधा—कृत्वा विज्ञजयं सभासु बहुधा सम्भर्त्स्य पापण्डिनः प्रोद्धृत्यैव च वैष्णवान् परजितान् शोकाब्धिमग्नानपि ॥ येनाम्नायपथप्रचारणविधेराचा

कुटुम्ब और निजजनप्रजाके संग राजा कृष्णदेवनें पानकर मस्तकमें धारण कियो ॥ ३४ ॥ पीछें हाथ धोयकें बाकीके पूजनको प्रारम्भ कियो तामें हरिस्तोत्रसों नीराजन गुरुस्तोत्रसों पुष्पाञ्जलि करके सब स्तुति करवे लगे ॥ ३५ ॥ राजा—श्रीपुरुषोत्तमके सखा महादेव नारद व्यास इनके अभिमत मतकों सज्जननकों दिखायवेवारे विष्णुस्वामीसों आईभई गुरुपरम्परा तथा आचार्यपद्वीकों धारण करवेवारे दैवीजीवनके उद्धारकेलियें शरीरको धारण करवेवारे सबके प्यारे श्रीवल्लभकों मैं प्रणाम करूं हूं ॥ ३६ ॥ आचार्य-जो श्रीपुरुषोत्तम महादेव नारद व्यास विष्णुस्वामी बिल्वमंगल लक्ष्मण एसी परम्परासों आये पदको पायकें स्वभावहीसों आचार्य हो उनको या समयको आचार्यपद सूर्यकें प्रकाशके समान प्रकाश होय ॥ ३७ ॥ पुरोहित-सभानमें विद्वाननकों जय करके अनेक प्रकारसों पाखंडीनकों तिरस्कार करकें दुःखेनमें जीन शोकसमुद्रमें

भ्यासप्रवीणतागमततो नैपुण्यतात्यद्भुता ॥ व्यासार्यस्य मतो हरेः प्रियतयाप्याचार्यतायाः पदं के के सन्ति गुणा नृभाव करणे के तेनु लोकोत्तराः ॥४५॥ प्रजाः—जातो योह्यनले तटे ननु महानद्याः शमिद्रोस्तले जेता दिग्जयिनां विदां दिविषदां भव्यप्रभावोदयः ॥ स्तव्यः सर्वगुणैर्जगद्धितकृते योऽत्राव तीर्णो हरिः श्रीमल्लक्ष्मणनन्दनो विजयतां श्रीयल्लमायाः सुतः ॥ ४६ ॥ स्वकीयाः—किं क्लेशाय प्रजल्पनेन विदुषां किं कर्मभिः स्वर्गदैः किं विज्ञानहरेण चात्र भवति ज्ञानेन भक्तिद्विषा॥ किं संसारसुखैर्विषैरपि हरेः सेवा कथा यत्र नो श्रीमद्वल्लभसंश्रयोपि न तमोरूपं तमर्थं स्तुमः ॥ ४७ ॥ तूर्याणां निनदे तते जयजयध्वन्या च तौर्यत्रिके लोके जाग्रति शोकमूलविगमे हर्षप्रकर्षोदये ॥ आचार्यैर्विहितं निवेश्य तिलकं स्वाचार्य सिंहासने सर्वाचार्यशिरोमणेर्विजयतां श्रीवल्लभाधीशितुः॥४८॥

णता भगवान्के प्रीतिसों आचार्य पद इत्यादि कोन कोन गुण संसारभरसों उत्तम नहीं हें ॥ ४५ ॥ प्रजा—जो महानदके पास अग्निमें शमीवृक्षके तरे उत्पन्न भये हे दिग्विजयी विद्वाननके जीतवेवारे देवतानके मध्यमें बडी प्रभावारे सब गुणनसों स्तुतिकरवेके योग्य जो साक्षात् भगवान्ही अवतीर्ण भये हें एसे श्रीमान् लक्ष्मणनन्दन श्रीयल्लमाजीके पुत्र विजयकों पावें ॥४६॥ अपनेमनुष्य—विद्वाननको वाद वृथा क्लेशके लिये हे स्वर्गके देवेवारे कर्मनसोंवी कहा हे विज्ञानके हरवेवारे भक्तिके द्वेषीज्ञानसोंवी कहा हे विषरूपसंसारके सुखसों कहा हे जो भगवान्की सेवा ओर कथा ओर श्रीवल्लभको आश्रय न भयो ॥ ४७ ॥ नगाडानकी चोटके संग जय जयकी ध्वनि होते बाजानके वजते सब लोगनके जागते शोकके मूलको दूर करते बडे हर्षके उदयमें आचार्यननें सिंहासनपे विराजमानकरकें जो तिलक कियो वो सर्वाचार्यशिरो

नमते मतो विजयतामाचार्यचूडामणि ॥४१॥ विद्वांस -न्यायं का णभुजीमपीपठद्य यो गौतमीं चाभ्यसत्यस्तौतातिकभारतीं स मतरद्वैयासकीं चाद्दत ।योभौजंगमभापितामचकलद्य कापिलीं चालपत्सर्वंचार्य्यशिरोमणिर्विजयतां बौद्धादिविध्वंसन ॥४२॥ वैदिका -यो वेदान्निखिलान् पपाठ सरहस्यान् वैदिकान्नागमान् वेदव्यासमुनेर्मते समचरज्जिग्ये परांस्तद्द्विप ॥ श्रौतस्मार्तप थप्रचारणकृते नद्धोहरेर्भक्तितो ब्रह्मण्यप्रवर सदैव जयता च्छ्रीवल्लभाधीश्वर ॥ ४३ ॥ अन्येब्राह्मणा -विप्रर्षि प्रथम त थाप्रसुखजोतोयज्ञविष्णो कुले जातो लक्ष्मणदीक्षितेन जठरे यो यल्लमाया भृत ॥ वेदव्यासमत दधार परमा भक्तिं हरेराश्रि तो भव्यस्तव्यगुणैर्न कस्य भवति श्लाघ्यो गुणैर्वल्लभ ॥४४॥ राजकीया -विप्रत्वं प्रथम सुदुर्लभमितो वृत्त च विद्यानुग वेदा

है सो ये आचार्यचूडामणी विजयको प्राप्त होंय ॥ ४१ ॥ विद्वान्-जो न्यायकों पढते भये वैशेपिककों अभ्यास करते भये मीमांसाकों तरते भये वेदान्तकों आदर करते भये योग सांख्यको कहते भये एसे बौद्धादिकनके विध्वंस करवेवारे सर्वाचार्यशिरोमणि विजयकों पावे ॥ ४२ ॥ वैदिक-जो रहस्यनकरकें सहित सब वेदनको पढते भये वेदव्यासमुनिके मतको प्रचार करते भये ओर उनके द्वेषीनको जीतते भये श्रौतस्मार्तमार्गके प्रचार करवेमें भक्तिसों दृढ भये एसे ब्राह्मण्य श्रीवल्लभाधीश सदा विजयकों पावे ॥ ४३ ॥ ओर ब्राह्मण-पहले ब्रह्मर्षि भये फिर आप्त ब्राह्मण याके उपरान्त लक्ष्मणदीक्षितसों यल्लमाजीके उदरमें जो भये ओर व्यासजीके मतकों ओर भक्तिकों आश्रय कियो ये श्रीवल्लभ अपने कल्याणकारी स्तुति करवेके योग्यगुणनसों किनके स्तुति करवेके योग्य नहीं है ॥ ४४ ॥ राजकीय-पहले ब्राह्मण पद दुर्लभ फिर विद्याके अनुसार सदाचार वेदके पढवेमें कुशलता आगमनमें निपु

भ्यासप्रवीणतागमततो नैपुण्यतात्यद्भुता ॥ व्यासार्येस्य मतो हरेः प्रियतयाप्याचार्यतायाः पदं के के सन्ति गुणा नृभाव करणे के तेनु लोकोत्तराः ॥४५॥ प्रजाः—जातो योह्यनले तटे ननु महानद्याः शमिद्रोस्तले जेता दिग्जयिनां विदां दिविष दां भव्यप्रभावोदयः ॥ स्तव्यः सर्वगुणैर्जगद्धितकृते योऽत्राव तीर्णो हरिः श्रीमल्लक्ष्मणनन्दनो विजयतां श्रीयल्लमायाः सुतः ॥ ४६ ॥ स्वकीयाः—किं क्लेशाय प्रजल्पनेन विदुषां किं कर्म भिः स्वर्गदैः किं विज्ञानहरेण चात्र भवति ज्ञानेन भक्तिद्विषा॥ किं संसारसुखैर्विषैरपि हरेः सेवा कथा यत्र नो श्रीमद्वल्लभसं श्रयोपि न तमोरूपं तमर्थं स्तुमः ॥ ४७ ॥ तूर्याणां निनदे तते जयजयध्वन्या च तौर्यत्रिके लोके जाग्रति शोकमूलविग मे हर्षप्रकर्षोदये ॥ आचार्यैर्विहितं निवेश्य तिलकं स्वाचार्य सिंहासने सर्वाचार्यशिरोमणेर्विजयतां श्रीवल्लभाधीशितुः॥४८॥

णता भगवान्‌के प्रीतिसों आचार्य पद इत्यादि कोन कोन गुण संसारभरसों उत्तम नहीं हैं ॥ ४५ ॥ प्रजा—जो महानदके पास अग्निमें शमीवृक्षके तरे उत्पन्न भये हे दिग्विजयी विद्वाननके जीतवेवारे देवतानके मध्यमें वडी प्रभा-वारे सब गुणनसों स्तुतिकरवेके योग्य जो साक्षात् भगवान्‌ही अवतीर्ण भये हैं एसे श्रीमान् लक्ष्मणनन्दन श्रीयल्लमाजीके पुत्र विजयकों पावें ॥४६॥ अपनेमनुष्य—विद्वाननको वाद वृथा क्लेशके लिये हे स्वर्गके देवेवारे कर्मनसोंवी कहा हे विज्ञानके हरवेवारे भक्तिकें द्वेषीज्ञानसोंवी कहा हे विषरूपसंसारके सुखसों कहा हे जो भगवान्‌की सेवा ओर कथा ओर श्रीवल्लभको आश्रय न भयो ॥ ४७ ॥ नगाडानकी चोंटके संग जय जयकी ध्वनि होते बाजा-नके बजते सब लोगनके जागते शोकके मूलको दूर करते बडे हर्षके उदयमें आचार्यननें सिंहासनपे विराजमानकरकें जो तिलक कियो वो सर्वाचार्यशिरो

ततः सर्वेपि जना जनाधिपेन सह साष्टांगप्रणतिमाकलय्य प्रणयार्द्रचित्ताः संसारभ्रमणपरिश्रमापवर्गमपवर्गप्रदं श्रीमदाचार्यचरणसिंहासनप्रदक्षिणपरिभ्रमणं व्यदधन् ॥ ४९ ॥

इति श्रीमदाचार्यकनकाभिषेकाचार्यपदप्राप्तिप्रकरणम् ।

अथ महीमहेन्द्रो मुदितमानसः समागतान् व्यासतीर्थाद्याचार्यान् विद्वत्प्रवरान् आचार्यपरिकरं च सन्तोषयितुं यथाविधि सर्वानेव समर्च्य उपढौकितादिभिर्यथार्हं समर्हयाम्बभूव ॥ ५० ॥ तत्र नारायणाचार्यद्रुहिणाचार्याभ्यां विष्णुधामद्वयाधिपत्यं शम्भवे ग्रामं हरिभट्टादिभ्योधराद्रविणादि यथोचितं सर्वेभ्यो व्यतरत् ॥५१॥ अथाचार्यान् प्रणिपत्य वसुधानाथेन विज्ञापितम् । मां सनाथं कुर्वन्तो मदर्पितं स्वीकुर्वन्तु ॥५२ ॥ ततः श्रीमदाचार्यैर्निजकरकमलेन सुवर्णपात्रिकास्थसुवर्णनिचये देव्योदीनारमुद्रिका दीनदासाख्यक्षत्रियेण भगवदर्थं निजविशुद्धाजीव्यपष्टभा

मणि श्रीवल्लभाचार्यको तिलक विजयको पावे ॥ ४८ ॥ पीछें सब मनुष्य राजाके संग साष्टांग प्रणाम करकें नम्र होयकें संसारके भ्रमणको दूर करवेवारी मोक्षके देवेवारी श्रीमदाचार्यजीके सिंहासनकी प्रदक्षिणा करते भये ॥ ४९ ॥ इति आचार्यपदप्राप्तिप्रकरणम् ॥ पीछें महीमहेन्द्र राजानें प्रसन्नमन होयकें आये भये व्यासतीर्थादिक आचार्यनकों और विद्वाननको आचार्यनके सेवकनकों सन्तोष करवेकेलियें यथाविधि सबको पूजन करकें भेंट विदाई करी ॥५०॥ तामें नारायणाचार्य द्रुहिणाचार्यको दो मंदिरनको आधिपत्य शम्भुभट्टकों गाम हरिभट्टको जमीन द्रव्य यथोचित सबकों दियो ॥ ५१ ॥ पीछें अपने आचार्यनकों प्रणाम करकें राजानें प्रार्थना करी जो मोकों उद्धार करते मेरे किये भेट को स्वीकार कीजिये ॥५२॥ तब श्रीमदाचार्यजीनें अपने श्रीहस्तमों सात असर्फी निकासके भगवानके भूषणके लियें दामोदरके

र्गविभागस्थापिता राजकोशे समागता समन्विष्योद्धृत्य भगवद्भूषार्थं दामोदरहस्ते समर्प्य तद्द्रव्यं पुरोधसा चतुर्धा विभाज्य भागमेकं कार्यार्थं हरिभट्टहस्तेन मात्रे समर्पितम् भागमेकं शम्भुभट्टहस्तेन पितुरुत्तमर्णेभ्यः समर्पितम् भागमेकं श्रीविठ्ठलनाथप्रभुभूषार्थं तदधिकारिणे समर्पितम् । भागमेकमपरधर्म्मकार्यार्थं मातुलहस्ते स्थापितम् ॥ ५३ ॥ अथाचार्यान् निजावमोचने गन्तुं राजाऽभ्यर्थयोजयत् निबद्धाञ्जलिः किंचिन्निजदासाय निजप्रसादोचितं मदुचितं कार्यं विज्ञापयन्तु ॥५४॥ ततः श्रीमदाचार्योः—आश्रित्याश्रमधर्म्ममत्र भवता स्थेयं च रक्ष्याः प्रजाः सेव्यः श्रीरमणः सदा हरिजनैः कार्याधिका संगतिः ॥ आजीव्यं विदुषां विधाय जगतां योज्याश्च ते शिक्षणे दीनानां दयया नयेन विनयैः कीर्तिर्विधेयाऽचला ॥ ५५ ॥ ततो राजा—

हाथमें दीनी ओर पीछें पुरोहितसों वा द्रव्यके चार भाग करायकें एक भाग कार्यकें लिये हरिभट्टके हाथसों माताजीकों दियो ओर एक भाग शम्भुभट्टके हाथसों पिताके ऋणवारेनको दियो ओर एक भाग श्रीविठ्ठलनाथजीके आभूषणनके लियें उनके अधिकारीकों दियो ओर एक भाग धर्मकार्यके लियें मामाके हाथमें दियो ॥ ५३ ॥ पीछें राजानें अपने उतारामें पधारनेका आचार्यनसों प्रार्थना करी ओर हाथ जोड़के बोल्यो जो कछू अपने दासके लियें मेरे लायक कार्यकी आज्ञा करिये ॥ ५४ ॥ तब श्रीमदाचार्यजीनें आज्ञा करी जो अपने आश्रमधर्ममें रहो प्रजाकी रक्षा करो भगवान्‌की सेवा करो भगवद्भक्तनके संग सत्संग करो विद्वाननकों जीविका देकें लोक शिक्षणमें उनको नियोग करो दीननके ऊपर दया करकें नीति ओर विनयसों अचल कीर्तिकों बढावो ॥ ५५ ॥ पीछें राजा वा उत्सवके

तदुत्सवहर्षेणे कारागारनिबद्धान् कृतापराधानपि तीर्थावभृथ स्नानविशुद्धान् समोच्य निखिलप्रजासुखकृते विविधकरादानमपिपरावृत्य निजकौटुम्बिनोदारजनान् बन्धुजनान् सामन्तान् मन्त्रिण समाश्रितान् किंकरान् सैनिकान् नटनर्तकगन्धर्वान् अन्यान् उपस्थितानपि यथोचितेन दानमानेन सन्तोष्य महता गीतवादित्रनृत्यपुरस्सर सकलबन्धुसामन्तादिजनेन सैन्येन सह शिविकाया श्रीमदाचार्यपादुकां समारोप्य यापनाय सन्नद्धोवभूव ॥ ५६ ॥ अथाचार्या —सर्वानेवाचार्यान् विदुषो वैदिकान् नमस्कुर्वाणान् नमस्कुर्वाणा धरापतिकरविधृत करा पादुकाभ्या चलन्त सितातपत्रचमरव्यजनाद्युपलक्षिता व्यासाद्यार्यैर्विद्वद्वृन्दैश्च परिवारिता राजवाहिनीमध्येऽभिससरु ॥ ५७ ॥ तत पणवानकगोमुखनिर्झरनिस्साणनिनादप्रबोधित सकलराजवनिता पौरजनता निजप्रासादहर्म्याट्टालगवाक्षगोपुरप्र

आनन्दमें कैदीनकों छोडकें सब प्रजाके सुखके लियें अनेक प्रकारके कर बी छोडकें अपने कुटुम्बीनकों स्वीजननकों भाईनकों शूरनकों मन्त्रीनकों ओर आश्रितवर्ग किंकर फौज नट नाचनेवारे गधर्व ओर या समय जो आये हे उन सबनकों उचित दानमानसों सन्तोष करकें बडे गाजे बाजेके संग सब भाई बेटे सेनाके संग बडी पालकीमें श्रीमदाचार्यजीकी पादुकानकों पधरायकें पांछें पधरावनेके लियें तैयार भयो ॥ ५६ ॥ पीछे श्रीमदाचार्यजीकी नमस्कार करेसबरे आचार्य विद्वान् वैदिकनकों नमस्कार करते राजाके हाथमें श्रीहस्त दियें भये सुपेद छत्र चमर पखाकें होत व्यासतीर्थादिक आचार्य विद्वाननसा चारो आडी घिरे भये सेनाके बीचमें पादुकानसों चलने पधारे ॥ ५७ ॥ वा समय नगाडा आदि बाजानके शब्दसों सवारी जाती जानकें सब रानी तथा पुरकी स्त्री अपने २ मकाननके छजनपे तथा गोपुरनमें

तोलिकापणघंटापथेषु निकुरम्बीभूता बभूवुः ॥ ५८ ॥ अथच कुसुमनिचयैः किरन्त्यो राजमहिलाः—येनैकादशवार्षिकेण सकलाविद्या सुहृद्याभृताविद्वद्वृन्दजयः सभास्वधिगतः स्वाचार्यसम्राट्पदम् ॥ नैतत्क्वापि हि सम्भवेद्भगवतः पूर्णावतारं विना धर्म्मत्राणकृते यदेति वचनाज्जातः स निश्चीयते ॥ ५९ ॥ इत्येवं श्लोकैः श्लोकयाम्बभूवुः । ततः पुरमहिलाः—वृद्धाः पश्यति मातृवन्निजसमा यः प्रेक्षते स्वसृवन्न्यूनाः स्वस्य दुहितृवत्परधनं जानाति यो लोष्टवत् ॥ बालोयं सखि दृश्यते मम दृशा श्रीनन्दलालः स्वयं भार्यात्वं यदि नो भवेत्खलु तदा संसेव्य इत्यस्तुवन् ॥ ६० ॥ ततः कुमाराः—प्रेक्ष्यास्मान्दयते स्मितं वितनुते दत्ते समिष्टंफलं विद्यात्हृद्यतरास्य भाषणवशाज्जागर्ति नः शेमुषी॥ बालेऽस्मिन् खलु भालनाद्भवति

वारीनमें झरोखनमें चौरहनमें एकठी भई ॥ ५८ ॥ पीछें फूलनकी वर्षाकरती भईं रानीननें कही जो जिननें ग्यारहवेंही वर्षतक सब विद्यानकों पढ लियो ओर सभामें विद्वाननकों जीतकें आचार्यके सम्राट् पदकों पायो ये सब बात विना भगवान्‌के पूर्णावतार कहीं नहीं सम्भव होय सके यासों धर्म्मकी रक्षा करवेके लिये वेही प्रगट भये हें ये निश्चय हे ॥ ५९ ॥ फिर पुरकी स्त्री—जो वृद्धस्त्रीनकों माताके समान आपनी समान अवस्थावारीनकों बहिनीनके समान अपनेसों छोटी उमरवारीनकों कन्यानके समान देखें हें ओर दूसरेके धनकों लोहाके समान जानें हें सो ये बालक हे सखि! मेरी दृष्टिसों साक्षात् श्रीकृष्ण हे जो हम स्त्री न होतीं तो हमारे सेवा करवेके योग्य हे या प्रकार स्तुति करती भईं ॥ ६० ॥ बालक—हमको देखकें दया करें हें मंदहास करें हें अच्छे इष्ट फलको देवें हें जिनके भाषण हीसों मनोहर विद्या जाग उठे हे इन बालकके देखवेहीसों हमारी गोपाल-

नो गोपालबाले रतिर्विन्यस्याखिलखेलन प्रतिदिन सोयं समालो क्यते ॥ ६१ ॥ ततः प्रजा —यस्यांघ्र्योरवनेजनं त्रिजगतां विध्वंसनायांहसां पत्युर्योप्यवनेर्बलेर्विजयत प्राप्त महद्भ्यो यश ॥ देवानंदकरोऽथ पेशलकरो दैत्यात्मना मायिनां सोयं भूतलपावनो विजयतां श्रीवामनाख्यो हरि ॥ ६२ ॥ इति सुमासारैरभिवर्षन्तो ववंदिरे ॥ ६३ ॥ एवं चलन्तो मातुलगृहद्वारिसमुपगतास्ते सन्मुखोपसर्पणादिभि सादरमाकारिताआशिषांमन्त्रैरभिषिक्ता अन्त प्रविश्य मातरं मातामहीं मातृष्वसृमातुलादीन्दत्ताशिषो नमश्चक्रु ॥ ६४ ॥ महीपतिरपि तेषां प्रणामादिसन्मान विधाय श्रीमदाचार्यान् बहिरानाय्य आचार्यान् स्वस्वस्थाने संप्रेष्य विद्यातीर्थासने स्वसेनया समानयत् ॥ ६५ ॥ ततः किञ्चित् कालं सपरिकरो राजा समुपविष्टो वैष्णवधर्मजिज्ञा

बालमें प्रीति होय है यासों सब खेल छोडके प्रति दिन मानों इन्हींको देख्यो करें ॥ ६१ ॥ प्रजा—जिनको चरणामृत तीनों लोकनके पाप दूर करबेके लियें है जिननें पृथिवीपति अथवा बलिके यहाँ महात्मानसों यशको पायो है देवी जीवनके आनन्दके देवेवारे दैत्यात्मामायावादीनके शुद्ध करवेवारे जो ये वामनरूप हरि हैं वो विजयको पावें ॥ ६२ ॥ या प्रकार स्तुति करते पुष्पनकी वृष्टि करते प्रणाम करते भये ॥ ६३ ॥ सो या प्रकार चलते मामाके घरके द्वारपे आय पहुँचे उननें सामनें आयकें आदरपूर्वक लेकें आशीर्वादमन्त्रनसों अभिषेक कियो । आप भीतर जायकें माता मातामही मौसी मामा आदिकों नमस्कार करते भये ॥ ६४ ॥ राजाभी उनको प्रणामादि सन्मान करकें श्रीमदाचार्यकों बाहेर पधरायकें दूसरे आचार्यनको उनके २ स्याननमें भेजकें अपनी सेनाके संग विद्यातीर्थके आसनमें पधराये ॥ ६५ ॥ पीछें थोरी देर परिकरसमेत राजा बैठकें वैष्ण

स्यमानो बभूव । तदाचार्य्याः—दैवत्वेन गुरोरनुग्रहवशाज्जातः प्रपत्तिर्यदा स्रक्पुंड्रादि विधारयेत्परजयंत्येकादशीनां व्रतम् ॥ धर्मं भागवतं चरेद्धरिकथास्वाचार्यभक्तार्चनं पापं तद्विमुखाननर्पितभुजीं चान्याश्रयं वर्जयेत् ॥ ६६ ॥ इत्थमाचार्यैः समुपदिष्टो निजप्रासादं गन्तुं तदाज्ञां लब्ध्वा साष्टांगं प्रणिपत्य भगवत्प्रसादमालामाचार्यैर्दत्तां शिरसि निधाय पुनः प्रणामं विधाय पार्श्वतः परिवर्तनवंदमानो निजालयं समगात् ॥६७॥ विद्वद्वृन्दकरीन्द्रदर्पदलने शार्दूलविक्रीडितं शम्भ्वाद्येऽपि तत्कृतं गुरुपदाम्भोजातमात्राश्रयात् ॥ वाचां किं विजयोऽजयापरिवृढस्याहोनिबद्धात्मभिर्यन्मानुष्यविडम्बनं कृतवतस्तद्वर्णितं माद्विधैः ॥ ६८ ॥ श्रीवेदव्यासविष्णुप्रभुचरणमिते सम्मितेग्रन्थसार्थैः श्रीगोविन्दाभिधानां समयनयविदां देशिका

वधर्मकी जिज्ञासा करतो भयो तब आपनें आज्ञा करी जो प्रारब्धवश गुरुके अनुग्रहसों जब शरणागत होय तब माला ऊर्द्ध्वपुंड्र आदि धारण करे ओर जयंती तथा एकादशीको व्रत करे भागवतधर्मकों पाले हरिकथा सुने आचार्यको पूजन करे ओर पापको छोडे तथा अन्याश्रय ओर असमर्पित तथा असत्संग न करे ॥ ६६ ॥ या प्रकार आचार्यनसों उपदेश कियोगयो अपने घर जायवेकी आज्ञा लेकें साष्टांग प्रणाम करकें आचार्यनकी दीनी भई भगवत्प्रसादीमालाकों मस्तकपे धरकें फिर प्रणाम करकें अपने पार्श्वचरनसों स्तुति कियो गयो राजा अपने स्थानको गयो ॥ ६७ ॥ विद्वानरूपी जो हाथी हें उनके अहंकारके दलन करवेमें शम्भु आदिभट्टननें जो गुरुके चरणकमलनके मात्र आश्रयसों सिंहनकी जेसी चेष्टा करी ही उन वाणीके पतिको मायावादीनके संग कहा विजय होय परन्तु मनुष्य नाट्यसों जो कियो हो ताकों मेरे जेसेननें वर्णन कियो हे ॥ ६८ ॥ समय नीतिके जानवेवारे जगद्गुरु श्रीगोविन्दाचार्यजीमहाराजकी आज्ञासों

र्ना निदेशात् ॥ आचार्याणां चरित्रे हरिजनसुखदे शास्त्रिकृष्णैर्निवद्धे प्रस्थानेऽस्मिन् द्वितीये समजनि पटहो दिग्जयाख्ये चतुर्थे ॥ ६९ ॥

हरिहरनारदकृष्णाद्याविष्णुस्वामिबिल्वार्यो ॥
विजयन्तामार्याणामाचार्य्याणां ब्रुवे कथा वृत्तैः ॥ १ ॥
क्षणदावसानयामे कृताभिषेकं कृतक्षणं ध्याने ॥
प्रादुर्बभूव योगी तत्र श्रीबिल्वमंगलाचार्यः ॥ २ ॥
सर्वज्ञैर्भ्रतिराजे समादृतोऽसौ नमस्कृत प्रीत्या ॥
लब्ध्वासनमातिथ्यं हृष्टः स्वाशीः समर्पयामास ॥ ३ ॥
श्रीवल्लभाः समूचुः पूज्यार्य्ये स्वागतं कुशलम् ॥
वृत्तं ब्रूत यथावद्यदर्थमत्रागमो जातः ॥ ४ ॥
स्मृत्वा निजगुरुचरणानथावभाषे स बिल्वभद्रार्यः ॥
कथयामि वृत्तजातं यदर्थमहमागतोस्मि भगो ॥ ५ ॥

श्रीमद्वेदव्यासविष्णुस्वामिसम्प्रदायके ग्रन्थनके अनुकूल कृष्णशास्त्रीके बनाये भये या चरित्रग्रन्थके द्वितीयप्रस्थानमें ये चतुर्थ पटह समाप्त भयो ॥६९॥

श्रीविष्णु महादेव नारद व्यासादिक विष्णुस्वामि बिल्वमंगल श्रीमदाचार्य ये सबसों उत्कर्ष वर्तमान होंय और श्रेष्ठ आचार्यनकी कथा छन्दसों में कहूं हूं ॥ १ ॥ रात्रिके पीछले प्रहरमें ध्यानके समय श्रीवल्लभाचार्यजीके पास बिल्वमंगलाचार्य योगी प्रगट भये ॥ २ ॥ उनकों सर्वज्ञ ब्रह्मचारीनके राजा श्रीमदाचार्यजीनें आदरसों नमस्कार करकें प्रीतिसों आसनपें बेठाये तब प्रसन्न होयकें उननें आशीर्वाद दियो ॥ ३ ॥ तब श्रीवल्लभाचार्य बोले जो पूज्यपाद आर्य, आपको शुभागमन भयो कुशल है वृत्तान्त कहिये जाके लिये यहाँ आगमन भयो ॥ ४ ॥ तब अपने गुरुचरणनको स्मरण करके बिल्व

वृन्दावने निवसता शैथिल्यं वीक्ष्य सम्प्रदायस्य ॥
श्रीगोपालनिदेशादुपदेष्टुं त्वां समायातः ॥ ६ ॥
विष्णुस्वामिगुरूणां मतं मतं व्यासदेवानाम् ॥
अवितुं प्रादुर्भूतो हुताशनस्त्वं शृणुष्वान्यत् ॥ ७ ॥
आसीद्दक्षिणदेशे कश्चित्पृथिवीपतिर्द्राविडे ॥
कश्चित्तस्य पुरोधा विष्णुस्वामी सुतो यस्य ॥ ८ ॥
शाके युधिष्ठिरस्य ऋषिभिस्तिष्ये ऽवितुं शिष्यान् ॥
जन्मेजयस्य यज्ञावसानसमये प्रवर्तिते धर्मे ॥ ९ ॥
तस्मिन् समये जातो विष्णुस्वामी शनैर्ववृधे ॥
संस्कारान् प्रतिपद्य च पंचमवर्षे पपाठ पितुरेव ॥ १० ॥
तस्मिन्नध्ययनेऽसौ सकृद्गृहीतेषु वेदवाक्येषु ॥
आयातः प्रतिपन्नो ह्यर्थाँगाधीतिनोऽर्भस्य ॥ ११ ॥

मंगलाचार्य बोले जो हे भगवन् ! सब वृत्तान्त कहूँ हूँ जाकेलिये आयो हूँ ॥ ५ ॥ वृन्दावनमें रहते सम्प्रदायकी शिथिलता देखकें श्रीगोपालजीकी आज्ञासों तुमकों उपदेश करवेकों आयो हूँ ॥ ६ ॥ विष्णुस्वामिगुरूके मतके ओर व्यासदेवके मतके रक्षा करवेके लियें आपको प्रागट्य है आप साक्षात् अग्निरूप हो ओर सुनो ॥ ७ ॥ दक्षिणदेश द्रविडदेशमें कोई राजा हो वाको कोई पुरोहित हो जाके पुत्र विष्णुस्वामी हे ॥ ८ ॥ युधिष्ठिर राजाके सम्वत्में कलियुगमें जनमेजयके यज्ञके अन्तसमयमें शिष्यनके रक्षाके लियें ऋषीनके धर्म प्रवृत्त करते ॥ ९ ॥ विष्णुस्वामी भये वे धीरे२ बढे ओर संस्कारनकों पायकें पाँचवे वर्ष पिताहीसों पढे ॥ १० ॥ एकही वारके ग्रहण करवेसों वेद ओर अंगनके पढवेसों उनके अर्थनसों सम्पन्न भये ॥ ११ ॥

योनामरूपवर्णादिभिर्विहीनस्तथा च तैर्युक्त ॥
योसावीश कथितोऽनीशास्तस्मात्परेप्यवरा ॥ १२ ॥
स प्रसीदति किमु मह्य राजविभूत्या करोमि तत्पूजाम् ॥
यत्पूजयैव पूज्या जाता ब्रह्मादयो देवा ॥ १३ ॥
इत्थं विचिन्त्य चित्ते परिचर्या भावतश्चक्रे ॥
राजोपचारविधिना पितृसदने मन्त्रतोबाल ॥ १४ ॥
हायनमेकमतीत समर्हण कुर्वतो नित्यम् ॥
प्रत्यक्षतां न चागादग्लानिमवापार्भकस्त्वेवम् ॥ १५ ॥
न प्रसीदति परमेशो न मत्सपर्यां स गृह्णाति ॥
न प्रत्यक्षीभवति न ममापराध समाख्याति ॥ १६ ॥
प्रायश्चित्तकृतेऽहं निरशनमस्यापराधस्य ॥
यावद्दर्शनमीशो ददाति तावच्चरामि नियतात्मा ॥ १७ ॥
इति निश्चित्य हृदासौ वरिवस्यां पूर्ववत्कलयन् ॥
जगदीश्वर दिदृक्षुर्व्रतं स चोवाह सप्तदिनम् ॥ १८ ॥

ओर जो नाम रूप वर्णसों हीन हैं ओर उनसों युक्तवी हैं जो ईश हैं ओर उनसों अतिरिक्त सब परतन्त्र हैं ॥ १२ ॥ वो कहा मोपे प्रसन्न होंयगे राजविभूतिसों उनकी पूजा करू हूं जिनकी पूजा करवेसों ब्रह्मादिक देवनकी पूजा होय जायगी ॥ १३ ॥ ये मनमें विचारके राजोपचारविधिसों ओर मन्त्रनसों पिताके घरमें भावसों उननें सेवा करी ॥ १४ ॥ इनको नित्य सेवा करते एकवर्ष बीत्यो परन्तु भगवान् प्रत्यक्ष न भये यासों इनको ग्लानि भई ॥ १५ ॥ ओर कहवेलगे जो परमेश्वर प्रसन्न नहीं होंयहैं न मेरी सेवाको अगीकार करें हैं न प्रत्यक्ष होंयहैं न मेरे अपराधकों कहें हैं ॥ १६ ॥ यासों या अपराधके प्रायश्चित्तके लिये जबतक भगवान् दर्शन न देंगे तबतक निरशनव्रत करूंगो ॥ १७ ॥ ये मनसों निश्चय

आविर्बभूव शयने करुणावरुणालयः स्वप्ने ॥
भक्तजनेष्वनुरागी हरिरिति संघुष्यते प्राज्ञैः ॥ १९ ॥
द्विभुजो मुरलीहस्तः श्रीमान् पुरुषोत्तमः साक्षात् ॥
इन्दीवरवरकान्तिर्महेन्दिरावृन्दसंसेव्यः ॥ २० ॥
आनखशिखशृंगारी सौन्दर्यानन्दसन्मूर्तिः ॥
पीतांशुकवनमालामायूरापीडकुंडलैर्भ्राजन् ॥ २१ ॥
ललितालकैर्विराजन्सुभ्रूभ्यां कामचापाभ्याम् ॥
अतसीसुमनानुपमितप्रोन्नतया नासया भातः ॥ २२ ॥
विकचकंजदलाभ्यां नयनाभ्यामंजनेन मञ्जुभ्याम् ॥
रुचिरारुणमधुराभ्यां रदच्छदाभ्यां च पूरयन् वेणुम् ॥ २३ ॥
कोकनदच्छविकरतलधृतवंशच्छिद्रगांगुलीचारैः ॥
व्यक्तीकृतसंगीतस्वरमंडलमूर्छितैः स्फूर्जन् ॥ २४ ॥

करकें पहलेकी तरह सेवा करते भगवान्के दर्शनकी इच्छासों सात् दिन व्रत कियो ॥ १८ ॥ तब स्वप्नमें करुणालय भगवान् प्रगट भये जिनकों बुद्धिमान् भक्तनमें अनुरागी "हरि" या नामसों पुकारें हैं ॥ १९ ॥ दो भुजावारे हाथसें मुरली हे जिनके श्रीमान् साक्षात् पूर्ण पुरुषोत्तम सुंदर कमलकी कान्तिवारे लक्ष्मीसों सेवा किये गये ॥ २० ॥ नखसों शिखा तक शृंगार कियें भये सुंदरता ओर आनन्दकी अच्छी मूर्ति पीताम्बर वनमाला मायूरपिच्छ कुंडल ॥ २१ ॥ सुंदर केशपाश कामके धनुषरूप भौंहें अलसीके फूलके समान अनुपम ऊँची नासिका ॥ २२ ॥ विकसितकमलके दलके समान अंजनकरकें सुंदर नेत्र इनसों शोभते ओर रुचिर लाल ओठनसों वंशीकों पूरते ॥ २३ ॥ कमलदलके छविवारे करतलसों वंशीको पकडें ताके छिद्रनके ऊपर अंगुलीनकों फेरते संगीतें

चिबुकीकृतहरिच्छटया सछादिताशांक ॥
शारदराकाशशधरनिभेन मुखमडलेनोच्चै ॥ २५ ॥
जीवं जीवजनानां स्वीयजनानां सुधां वर्षन् ॥
आनन्दक्षीराब्धे कल्लोलै पूरयन् वेलाम् ॥ २६ ॥
अमृताम्बुधिजनिदरवरकंठेनांकीकृतेन सुषमायाः ॥
ग्रैवेयकेण हारे पदकेलैतया च वैजयन्त्या च ॥ २७ ॥
शोभौकसोरसासोतनुमध्येनापि निम्ननाभ्या च ॥
बाहुभ्यां फणिराजप्रतिमाभ्यां सांगदाभ्यां च ॥ २८ ॥
कंकणकटकसुवलयोर्मिकादिनखरावलीपुष्पे ॥
स्वर्णसवर्णोत्तरपटमखसूत्राभ्यां च रत्नमेखलया ॥ २९ ॥
भ्राजद्विचित्रनृत्यच्छदेन परितो विसर्पिणा चारु ॥
कटकैर्मंजीरैरपि पदपुष्पैर्नूपुराद्यैश्च ॥ ३० ॥
तामरसांघ्रितलाभ्यां शरणाभ्यां मुक्तलोकस्य ॥
मंदस्मितं प्रसन्नापांगं सद्भावगंभीरम् ॥ ३१ ॥

स्वरनकों प्रगट करते आप प्रकाशमान होते ॥ २४ ॥ ठोडीके हीराकी छटासा दिशानको प्रकाश करते शरदकालके पूर्णिमाके चन्द्रके समान सुन्दर मुखसों अपने जीवनकों अमृत वर्षते उनकी आनन्दरूपी समुद्रकी वेलाकों तरङ्गनसों पूरते ॥ २५ ॥ २६ ॥ अमृतके समुद्रसों उत्पन्न शंख जेसें कंठसों परमशोभाकों धारण करते हार पदक लता वैजयंती माला इनकी शोभाके स्थान छातीसों और गम्भीर नाभीसों तथा सूक्ष्म तनुमध्य कटिसों बाजून करकें शोभित सहित सर्पके समान बाहूनसों ॥ २७ ॥ २८ ॥ कंकण कडा सुन्दर पीताम्बर उत्तरीय उपवीन रत्नकी कोंधनी इनसों शोभते ॥ २९ ॥ विचित्र नृत्यके छलसों चारो ओर शोभाकों विथराते कडा मजीर नूपुर आदिसों शोभित चरणकमलनसों ॥ ३० ॥ और संसारसें उद्धार कर-

तुलसीदलपुष्पावलिगुंजास्त्रग्वेत्रसंकलितम् ॥
मृगमदकुंकुमतिलकं त्रिभंगललितं सुलावण्यम् ॥ ३२ ॥
कर्णोत्पलावतंसं गोकुलनाथं ददर्शासौ ॥
संप्रेक्ष्य प्रणतोऽसौ प्रणयान्नतकंधरः प्रसन्नात्मा ॥ ३३ ॥
प्रेमप्रसरनिमग्नः कृताञ्जलिः पुत्तिकेव संतस्थौ ॥
मन्दस्मितोप्यमन्दप्रसादपूर्णः प्रसन्नगम्भीरम् ॥ ३४ ॥
भगवानाह गिरा तं साधु कृतं किंकृते वृथा ततम् ॥
मनसार्पितमपि वपुषा व्यापिविकुंठस्थितेन विभुना भोः ॥३५॥
क्रियते अंगी न कथं सर्वज्ञेनैव सर्वसुहृदा च ॥
वद वद किमभिप्रेतं साक्षात्कर्तुं त्वया ततम् ॥ ३६ ॥
सर्वेषामपि साक्षी साक्षादहमस्मि मा शंक ॥
दाताभीष्टवराणां त्राता शरणागतानां च ॥ ३७ ॥

वेवारे कमलदलके समान चरणतलनसों शोभते मंद मुसकान वारे प्रसन्न भावसों पूर्ण मुखवारे ॥ ३१ ॥ तुलसीदल फूल गुंजा इनकी माला वेणु केशरको तिलक इनकों धारण किये त्रिभंगीसों ललित अच्छी लावण्यवारे ॥ ३२ ॥ कुंडलनसों शोभित एसे श्रीगोकुलचन्द्रमाजीकों इन बालकनें देख्यो ओर देखकें प्रणाम करकें नीचेको कँधा करकें प्रसन्न होयके ॥ ३३ ॥ प्रेममें मग्न होयकें हाथ जोडकें पुतलीके तरह ठाडे होयगये तब मंद मुसकातें चतुरशिरोमणि प्रसन्नतासों परिपूर्ण भगवान् प्रसन्नतासों गंभीर इन बालकसों बोले जो अच्छो कियो काहेकों वृथा तप कियो मनसों अर्पण किये गयेकोंबी वैकुंठमें रहवेवारे अपने व्यापक शरीरसों ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ प्रभु कहा अंगीकार नहीं करते वे सबके मित्र सबके जानवेवारे हें भला कहो २ कहा इच्छा हे काहेके लियें तुमनें तप कियो हे ॥ ३६ ॥ सबको साक्षी साक्षात् में हूं शंका मत करो इच्छित वरनके

गोपीदृक्कुमुदाना गोकुलचन्द्रोऽस्मि गोकुलानन्दी ॥
बद्धाञ्जलिस्तदोचे भूयोभूयो नमन् देवम् ॥ ३८ ॥
प्रणयप्रश्रप्रेम्णा मृदु मधुर निर्व्यलीकगिरम् ॥
भगवन्ननुचितमुचित विहित यद्बालभावेन ॥ ३९ ॥
तत्क्षन्तव्यं भृतक कृतापराधोपि प्रभुभिरसौ ॥
निगमागमयोर्महिमा भवतो भातो महीयान् य ॥ ४० ॥
तस्यावगतुकाम काम्यं चक्रे ततो धामम् ॥
अनुकम्पिनानुकम्पा विहिता नैजेन भावेन ॥ ४१ ॥
तेनाह कृतकृत्यस्तवांघ्रिसेवां सदा याचे ॥
श्रीमद्गोकुलचन्द्रस्तदा बभाषे निजोद्धारी ॥ ४२ ॥
उद्धर्त्तुं सुरजीवान् निजान् सदा योऽवतारयति ॥
वत्स भवाँस्तेिनेऽस्मिन् सद्धर्मस्थापनाय सव्यक्त ॥ ४३ ॥

दवेवारे शरणागतनकी रक्षा करवेवारे ॥ ३७ ॥ गोकुलम आनन्द करवेवारे गोपीनके नेत्र कजनको गोकुलचन्द्र में हूँ तब हाथ जोडकें बार बार नमस्कार करते प्रेमसों मधुर कोमल कपटरहित वाणीकों ये बालक बोले जो हे भगवन ! बालबुद्धिसों अनुचित वा उचित जो मैंने कियो ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ सो क्षमा करिये क्यों जो अपराध किये भये भी अपने दासकों स्वामी क्षमा करें हें वेदपुराणमें जो बडी महिमा गाई है ताके जानवेके लिये ये मैंने काम कियो हे सो दया करवेवारे आपनें अपनो समझकें दया करी हे ॥ ४० ॥ ४१ ॥ यासों में कृतकृत्य होयके आपकी चरणसेवाकों सदा मांगू हूँ तब अपने जनके उद्धार करवेवारे श्रीगोकुलचन्द्र बोले ॥ ४२ ॥ जो दैवीजीवनके उद्धार करवेको सदा अपने जननकों जो अवतार दिवावे हें उनने ही या कलिमें सद्धर्मस्थापनके लिये तुमको प्रगट कियो हे ॥ ४३ ॥

कंचित्कालं तिष्ठ त्वमौपगववत्तदस्य संव्यक्तैः ॥
आम्नायोसौ नेयो हरिहरनारदमुखैर्गीतः ॥ ४४ ॥
व्यासादपि च शुकादपि कौंडिन्यादप्यधीत्य सिद्धान्तम् ॥
अक्षररूपा चेयं मम लीला भाति चापरा तस्याः ॥ ४५ ॥
देवास्तथासुराश्च द्विविधा जीवास्तथा त्रिविधाः ॥
ज्ञाने कर्मणि भक्तौ देवाः प्राधान्यतोऽधिकृताः ॥ ४६ ॥
ये मल्लीलाकामा ये योग्या मुक्तिमार्गस्य ॥
तेषां कृते कृतस्त्वं मदीयमार्गस्य प्रथनाय ॥ ४७ ॥
अविकृतपरिणतिभावात्सद्रूपं माययान्यथा भातम् ॥
अक्षरमेव तदेतत्प्रादुर्भूतं तिरोभूतम् ॥ ४८ ॥
हरवदनसंमितार्णं गृहाण मन्त्रं स्वतः सिद्धम् ॥
शरणमनुप्राप्तेभ्यो देहि सदाचारशुद्धेभ्यः ॥ ४९ ॥

सो तुम हरि हर नारद आदिकनसों गान किये या सम्प्रदायकी रक्षा करते ओर चलाते थोरे दिन रहो ॥ ४४ ॥ ओर व्याससों शुकसों कौंडिन्यसों सिद्धान्तकों पढकें ये जो हमारी अक्षर लीला प्रगट होय-रही है ताके दैव आसुर दो भेद हें तथा तीन हें सो ज्ञान भक्ति कर्ममें प्रायः दैवीही अधिकारी हें ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ उनमें जो हमारी लीलाके कामवारे हें जो मुक्तिमार्गके योग्य हें उनके लियें तथा हमारे मार्गके प्रचार करवेके लियें तुम किये गये हो ॥ ४७ ॥ अविकृत परिणाम वादसों ये सब सत् हे परन्तु मायासों मिथ्याजेसो दीखे हे सो वा अक्षरहीको आविर्भाव तिरोभाव होय हे ॥ ४८ ॥ अब सिद्ध विष्णुपंचाक्षर मन्त्रकों ग्रहण करो सो सदाचारसों शुद्ध एसे शरणमें आये जननकों देंनों ॥ ४९ ॥

तुलसीदलोपनद्धा गृहाण मालां ममोत्तीर्णाम् ॥
सकर्षणकांडस्योद्धर्ता भव वेदमार्गेणाम् ॥ ५० ॥
परिचर मामर्चायामर्चारूपे सदार्चनीयोऽहम् ॥
इत्युक्त्वान्तर्यात प्रतिमां सम्प्राप्य तत्रासौ ॥ ५१ ॥
श्रीमद्गोकुलचन्द्र तत सिषेवे स राजभूत्येव ॥
अथ वेदान् सांगानपि सार्थाञ्छास्त्राणि पठितुमना ॥
गुरुकुलवास चक्रे दृढव्रतोब्रह्मचर्येच ॥ ५२ ॥
श्रीवदव्यासविष्णुप्रभुचरणमिते संम्मिते ग्रन्थसार्थे
श्रीगोविन्दाभिधानां समयनयविदां देशिकानां निदेशात् ॥
आचार्याणां चरित्रे हरिजनसुखदे शास्त्रिकृष्णैर्निबद्धे
प्रस्थानेऽस्मिन् द्वितीये समजनि पटह पञ्चमोयं जयाख्ये ५३

ओर हमारी उतारी तुलसीदलनकी गुँफित माला न्ले लेओ ओर वेदमार्गके संकर्षणकाडके करवेवारे होओ॥५०॥ओर हमारी सदा प्रतिमा सेवा करो ये कहके प्रतिमारूपसों प्रगट होयके अन्तर्ध्यान होयगये॥५१॥ तबसों उद्धार ये वालक राजविभूतिसों श्रीगोकुलचन्द्रकी सेवा करवे लगे ओर सार्थ वेद तथा शास्त्रनके पढवेकी इच्छासों ब्रह्मचर्यमें दृढ होयके गुरुकुलमें वास करते भये ॥ ५२ ॥ समयनीतिके जानवेवारे जगद्गुरु श्रीगोविन्दाचार्यजी महाराजकी आज्ञासों कृष्णशास्त्रीके बनाये श्रीमद्वेदव्यासविष्णुस्वामीके सम्प्रदायके ग्रन्थनके अनुकूल या दिग्विजयग्रन्थके दूसरे प्रस्थानमें ये पाँचवों पटह समाप्त भयो ॥ ५३ ॥

हरिवचनाद्गुरुवचनात्सोऽथ प्रतस्थे दिदृक्षुरपि कृष्णम् ॥
कतिपयविद्यार्थिगणैर्विद्याप्त्यै चोत्तरामाशाम् ॥ १ ॥
नारायणाश्रमेऽसौ ददृशे नारायणं सनरम् ॥
नत्वाऽर्चित्वा स्तुत्वा सोऽगाद्व्यासाश्रमं पुण्यम् ॥ २ ॥
पाराशर्योटजमथ सम्प्राप्तस्तुहिनगिरिपृष्ठे ॥
कृष्णद्वैपायनमृषिमृषिवृन्देऽसौ ददर्श प्रणतोऽभूत् ॥ ३ ॥
सर्वज्ञेन च मुनिना सम्यक् संवेशितश्च पृष्टश्च ॥
सूनृतया गिरयाऽसौ बद्धाञ्जलिराह सम्प्रीतः ॥ ४ ॥
भगवन् किन्न हि विदितं सर्वज्ञानां भवादृशां स्वधिया ॥
यद्यपि तथापि वक्ष्ये स्वाचार्याज्ञा शिरोधार्या ॥ ५ ॥
हरिणा दत्तनिदेशो भवदुपदेशं गृहीतुमहमागाम् ॥
आदेशिकेन युक्तं यत्तत्त्वं तत्समुपदेश्यम् ॥ ६ ॥
श्रुत्वाऽव्यलीकवचनं मधुरं सद्भावगम्भीरम् ॥
सत्यवतीतनयोऽमुं जगाद भगवद्वचः स्मृत्वा ॥ ७ ॥

पीछें वे भगवान्‌की आज्ञासों ओर गुरुके वचनसों व्यासजीके दर्शनकी इच्छासों विद्याप्राप्तिके लियें थोरे विद्यार्थीनके संग उत्तरदिशाकों गये ॥ १ ॥ ओर नारायणाश्रममें जायकें नरनारायणके दर्शन किये ओर प्रणाम पूजा स्तुति करकें पुण्य व्यासजीके आश्रमकों गये ॥ २ ॥ हिमाचलपर्वतके ऊपर व्यासजीकी कुटीमें ऋषिनके बीचमें व्यासजीकों देख्यो ओर प्रणाम कियो ॥ ३ ॥ पीछें सर्वज्ञ मुनि व्यासजीनें उनकों बेठायो ओर पूँछ्यो तब ये हाथ जोडके प्रसन्न होयकें अच्छी वाणीसों बोले ॥ ४ ॥ जो हे भगवन् आपके जेसे सर्वज्ञ कहा नहीं जानें हें तो बी आचार्यनकी आज्ञा शिरोधार्य हे तासों कहूँ हूँ ॥ ५ ॥ भगवान्‌की आज्ञासों आपसों उपदेश लेवेकों में आयो हूँ सो जो उचित होय वो तत्त्व आप उपदेश करिये ॥ ६ ॥ ये इनके कपटरहित मधुरभावसों गंभीर

साधु भवानिह भगवान् यदर्थमाहमा सवोद्धुम् ॥
तिष्ये शिष्यजनानां त्वमुपज्ञस्त्व प्रयाहि धर्मकृते ॥ ८ ॥
सुस्नाताय कृताह्निककृतये सम्यग् धृतोर्द्ध्वपुड्राय ॥
विधिना मन्त्रान् दत्वाऽक्षात्त नारायणाष्टार्णम् ॥ ९ ॥
माले श्लक्ष्णे सूक्ष्मे तुलसीकाष्ठस्य संस्कृते दत्ते ॥
आकठहृत्प्रमाणे कठे चाधात्तत प्रणत ॥ १० ॥
मुद्रापञ्चमयादाद्गोपीचन्दनमृदैव स तदाधात् ॥
आचारं पुनरूचे गुरुक्रमं सम्प्रदायस्य ॥ ११ ॥
शृणु वत्स सावधानं कृतावधानो भवात्र कृतौ ॥
श्रौतस्मार्तं स्वीय वर्णाश्रमधर्ममाचर भो ॥ १२ ॥
धर्मो भागवतानामादरणीय सदामहत ॥
अष्टादशाक्षरोय हरिणा दत्तो हराय गोलोके ॥ १३ ॥

वचन सुनकें ओर भगवान्के वचननकों स्मरण कर सत्यवतीपुत्र इनसा बोले ॥ ७ ॥ जो बहुत ठीक हे जो अर्थको भगवान्नें उपदेश करवेको कह्यो हे वो ये हे जो कलियुगमें शिष्यजननकों धर्म्मके उपदेश करवे वारे प्रथम तुम होओ ॥ ८ ॥ एसें कहकें स्नान आह्निक ऊर्द्ध्वपुड्रको अच्छी तरहसों किये भयें इनकों विधिसों मन्त्रनकों देकें नारायणाष्टाक्षर मन्त्र दियो ॥ ९ ॥ ओर सचिक्कण छोटी सस्कार करी गई तुलसीकाष्ठकी कठसा हृदयतक प्रमाणकी दो माला दीनी सो नम्र होयके इनन कठमे धारण करलीनी ॥ १० ॥ ओर पचमुद्रा दीनी सोभी इननें गोपीचन्दनकी धारण करलीनी फिर व्यासजीनें आचार ओर सम्प्रदायकी गुरुपरम्परा कही ॥ ११ ॥ ओर कह्यो जो हे वत्स! सावधान होयकें सुनो ओर ताके करवेमेंभी सावधान होओ श्रौत स्मार्त अपने वर्णाश्रमधर्मनको पालो

धुरजित्पुराणवर्णं दिग्वर्णं नारदाय च प्राह ॥
द्वादशवर्णेनैनान्प्रादान्मह्यं स देवर्षिः ॥ १४ ॥
भवते मया प्रदत्तं मन्त्राणां षट्कमेतद्धि ॥
अष्टार्णं पंचार्णंचाष्टदशार्णं प्रदेहि शिष्येभ्यः ॥ १५ ॥
दिग्वर्णं वस्वर्णं चक्राद्यैर्धेहि मुद्रायाम् ॥
द्वादशवर्णं संध्यासमये संधेहि नित्यं वै ॥ १६ ॥
भगवत्प्रसादकुंकुमद्रव्येणाकोर्द्ध्वपुंड्राणि ॥
गोपीतडागसुमृदा मुद्रालेपोऽथ चरणमृदा ॥ १७ ॥
माले धार्ये नित्यं कार्याचा नित्यदा च हरेः ॥
गुरवोहरिवन्मान्या गुरुवाचोऽजस्रमभ्यस्याः ॥ १८ ॥
पाठ्यं भगवच्छास्त्रमन्यच्छास्त्रं च लौकिकार्थं चेत् ॥
पातिव्रत्यव्रतानामदूषितानामनुष्ठितिर्धार्या ॥ १९ ॥

दशाक्षरमंत्रकों गोलोकमें महादेवजीकों श्रीहरिनें दियो ॥ १३ ॥ ओर महादेवजीनें अष्टादशाक्षर ओर दशाक्षरकों नारदकों दियो उननें द्वादशाक्षरकरकें मोकों दियो ॥ १४ ॥ ओर ये छहो मंत्र आपको मेनें दिये सो अष्टाक्षर पंचाक्षर अष्टादशाक्षर मंत्र शिष्यनकों देने ॥ १५ ॥ ओर दशाक्षर अष्टाक्षर चक्रादिकरकें मुद्रानमें राखने द्वादशाक्षर मन्त्रको नित्य सन्ध्याके समय धारण करनों ॥ १६ ॥ भगवत्प्रसादी कुंकुमसों बारह ऊर्द्ध्वपुंड्र गोपीचन्दनसों मुद्रा धारण करनी ॥ १७॥ चरणामृत लेनों तुलसीकाष्ठकी दो माला राखनी नित्य भगवान्‌की सेवा करनी गुरूनकों भगवान्‌जेसे माननों गुरुवचननको निरन्तर अभ्यास करनों ॥ १८ ॥ भगवच्छास्त्र पढनों ओर शास्त्रवी लौकिकके लियें पढनो एकादशीसहित चारो जयन्तीनको व्रत करनों ॥ १९ ॥ भक्तनकी भक्ति करनी ोर उनके आमनकी करनी निन्दा कबी नहीं करनी संसारको भगवद्रूप

भक्तिर्भक्तजनानां तद्धामादेर्विधेयालम् ॥
निन्दा सदैव हेया पश्यन् विश्वं हरेरूपम् ॥ २० ॥
धर्माणां प्राबल्यं दौर्बल्यं वीक्ष्य कालगतिम् ॥
त्यक्त्वा पापमशेषं शक्त्या वर्तेत सुमनाः सन् ॥ २१ ॥
एतैर्धर्मैरन्यैश्शास्त्रोक्तैः कालमनुरुध्य ॥
धर्मं प्रचारयेनं चरति सहाय हरिर्भवत ॥ २२ ॥
मद्दर्शनसूत्राणां मदभिप्रेतार्थमवगच्छ ॥
इत्युक्त्वा चिरतोऽमु सूत्ररहस्यं ददौ कृष्ण ॥ २३ ॥
सूत्राण्यधीत्य वेदागमसिद्धान्त समालोच्य ॥
पूर्णार्थं परिपूर्णार्थं त सश्लोकयन्नाह ॥ २४ ॥
निगमवनानां मुदिरो मिहिरो जगदधकारशमनाय ॥
शरदसि मानसशुद्ध्यै सुरतरुरसि सेवमानानाम् ॥ २५ ॥
निगमा येन विभक्तास्तेषां सूत्राणि भारत कृत्वा ॥
व्यक्तीकृतस्तदर्थो जगदुद्धारस्ततोजात ॥ २६ ॥

देखनों ॥ २० ॥ धर्मकी दुर्बलता तथा प्रबलता ओर कालगतिको देखके सब तरहके पापनकों छोडकें शक्तिसों मित्र होयके रहना ॥ २१ ॥ ये धर्म ओर वी शास्त्रनके कहे धर्मनसो कालकों रोकके धर्मको प्रचार करो तुह्मारी सहायतामें भीभगवान् हैं ॥ २२ ॥ हमारे सूत्रनकों हमारे अभिप्रायके अनुसार अर्थ जानों ये कहके जल्दीसों सूत्रनको रहस्य इनको दियो ॥ २३ ॥ तब ये सूत्रनका पढके वेदनके सिद्धान्तकों जानके पूर्ण होयके परिपूर्ण जो व्यासजी है उनकी स्तुति करते बोले ॥ २४ ॥ जो आप निगमवेदरूपी वनके लिये मेघ हैं अन्धकारके नाश करवेको सूर्य हैं मानसशुद्धिके लिये शरद ऋतु हैं सेवकनके लिये कल्पवृक्ष है ॥ २५ ॥ जिन ने वेदनको विभाग कियो ओर उनके सूत्र किये ओर भारत करके

नारायणतः षष्ठः षष्ठोनारायणस्त्वमसि ॥
षण्णां तस्य गुणानां ज्ञानकलां यो विभर्ति वै पूर्णाम् ॥ २७॥
हरिहरविरंचिसूर्यानलशक्तीनां परा मूर्तिः ॥
विश्वग्द्रष्टा विष्वग्वक्ता विष्वग्जनैश्च संमान्यः ॥ २८ ॥
एवं स्तुत्वा नत्वा व्यासाश्रमतः परावृत्तः ॥
प्राप्योद्धवं कलापे जातोऽसौ सोद्धवोलापे ॥ २९ ॥
भागवतानां प्रवरं प्रणतः संगम्य तुष्टमनाः ॥
उपविष्टोऽमुं रीत्या व्यजिज्ञपत् प्रश्रयप्रीत्या ॥ ३० ॥
पूर्णार्थोऽस्य खिलार्थैर्भक्तिकलापैः कलापमुज्ज्वलयन् ॥
हरिणा तरिरिव तिष्ये भवाम्बुधेस्तारणाय विन्यस्तः ॥ ३१ ॥
येनानुभूतमखिलं भक्तिरहस्यं तथा हरेर्ज्ञानम् ॥
तन्मामादिश दयया ह्युपदेष्टा को भवादृशोऽभिज्ञः ॥ ३२ ॥

उनको अर्थ जगत्के उद्धारके लियें प्रगट कियो ॥ २६ ॥ नारायणसों छठे स्थान पे छठे आप नारायण हें जो उनके छहो गुणनकों ओर पूर्ण ज्ञान कलाकों धारण करें हें ॥ २७ ॥ हरि हर ब्रह्मा सूर्य अग्नि शक्ति इनकी श्रेष्ठ मूर्ति हो सबके देखवेवारे सबकों कहवेवारे सबके माननीय आप हें ॥ २८ ॥ या प्रकार स्तुति ओर प्रणाम करकें व्यासजीके आश्रमसों लोटकें कलापगाममें उद्धवजीके स्थानमें गये ॥ २९ ॥ वहाँ भागवतनमें श्रेष्ठ उद्धवजीकों मिलके प्रणाम कियो ओर प्रसन्नमन होयकें बेठकें रीतिसों नम्र होयकें प्रीतिसों प्रार्थना करी ॥ ३० ॥ जो सब अर्थ भक्तिसमूहसों परिपूर्ण कलापगामकों प्रकाश करते कलियुगमें संसारसागरसों उतारवेकों नौकारूप आपकों श्रीहरि छोड गये हें ॥ ३१ ॥ सो आपनें सब भक्तिरहस्य ओर ज्ञान जो भगवान्सों अनुभव कियो हे वो दया करकें मोकों उपदेश करिये

भक्तिर्भक्तजनानां तद्धामादेर्विधेयालम् ॥
निन्दा सदैव हेया पश्यन् विश्वं हरेरूपम् ॥ २० ॥
धर्माणां प्राबल्यं दौर्बल्यं वीक्ष्य कालगतिम् ॥
त्यक्त्वा पापमशेषं शक्त्या वर्तेत सुमनाः सन् ॥ २१ ॥
एतैर्धर्मैरन्यैश्शास्त्रोक्तैः कालमनुरुध्य ॥
धर्मं प्रचारयैनं चरति सहाय हरिर्भवतः ॥ २२ ॥
मद्दर्शनसूत्राणां मदभिप्रेतार्थमवगच्छ ॥
इत्युक्त्वा चिरतोऽमुं सूत्ररहस्यं ददौ कृष्णः ॥ २३ ॥
सूत्राण्यधीत्य वेदागमसिद्धान्तं समालोच्य ॥
पूर्णार्थं परिपूर्णार्थं तं सश्लोकयन्नाह ॥ २४ ॥
निगमघनानां मुदिरो मिहिरो जगदघकारशमनाय ॥
शरदसि मानसशुद्ध्यै सुरतरुरसि सेवमानानाम् ॥ २५ ॥
निगमा येन विभक्तास्तेषां सूत्राणि भारतं कृत्वा ॥
व्यक्तीकृतस्तदर्थो जगदुद्धारस्ततोजातः ॥ २६ ॥

देखनों ॥ २० ॥ धर्मकी दुर्बलता तथा प्रबलता ओर कालगतिकों देखकें सब तरहके पापनकों छोडकें शक्तिसों मित्र होयकें रहना ॥ २१ ॥ ये धर्म ओर श्री शास्त्रनके कहे धर्मनसों कालकों रोककें धर्मको प्रचार करों तुमारी सहायतामें श्रीभगवान् हें ॥ २२ ॥ हमारे सूत्रनको हमारे अभिप्रायके अनुसार अर्थ जानों ये कहकें जल्दीसों सूत्रनको रहस्य इनकों दियो ॥ २३ ॥ तब ये सूत्रनकों पढकें वेदनके सिद्धान्तकों जानकें पूर्ण होयकें परिपूर्ण जो व्यासजी हें उनकी स्तुति करते बोले ॥ २४ ॥ जो आप निगमवेदरूपी घनके लिये मेघ हें अन्धकारके नाश करवेकों सूर्य हें मानस-शुद्धिके लियें शरद् ऋतु हें सेवकनके लिये कल्पवृक्ष हें ॥ २५ ॥ जिन आपने वेदनको विभाग कियो ओर उनके सूत्र किये ओर भारत करकें

भगवन् भागवतानां सारं मे ब्रूहि पाराध्यै ॥
संसाराकूपारादवतारस्त्वं जनोपकाराय ॥ ३९ ॥
कृपया वद विज्ञानं यज्ज्ञानान्नस्समुद्धारः ॥
शुकमुनिराह तथामुं भज भज भगवंतमेकमनाः ॥ ४० ॥
जहि जहि चान्यदसारं सारमनुस्यूतमेकमेव हि यत् ॥
इत्येवंबहुधैनं प्रबोध्य निरगाद्यथा यातम् ॥ ४१ ॥
तमसौ प्रणम्य भूयो माथुरमंडलमुपायातः ॥
तत्र हरेर्लीलानां निलयान् पश्यन् स्वलीलया व्यक्तान् ॥४२॥
महिमानं व्रजभूमेर्भुवनार्चाधामजनकस्य ॥
द्वादशवन्या यात्रा धन्याः कृत्वानुभूय लीलार्थान् ॥ ४३ ॥
व्यक्तीकुर्वन्नागान्निजविषयानेव चाम्नायम् ॥
गौतमकणभुङ्मतयोः पातंजलसांख्ययोश्च तन्त्राणाम् ॥ ४४॥
संजवनेषु जवेन कोविदगर्वं सखर्वतां निन्ये ॥
वेदान् स वेदभेदैः स्वीयैः ख्यातोऽत्र वेदगर्भोऽभूत् ॥ ४५ ॥

हाथ जोडकें विष्णुमुनि बोले ॥ ३८ ॥ जो हे भगवन् ! भगवद्धर्मनको सार कहो संसारसों पार होयवेके लियें जननके उपकारहीके लियें आपको अवतार हे ॥ ३९ ॥ सो कृपासों वो विज्ञान कहो जासों हमारो उद्धार होय तब शुकमुनि इनसों बोले जो एकमन होयकें भगवान्कों भजो भजो ॥ ४० ॥ ओर असारकों छोंडो २ जो एकही सार सबमें हे या प्रकार अनेक तरहसों बोध देकें जेसें आये वेसेही गये ॥ ४१ ॥ ओर ये उनकों प्रणाम करकें मथुरामंडलकों आये वहाँ भगवान्की लीलानकों लीलानसों चमत्कारीस्थाननकों देखते ॥ ४२ ॥ व्रजकी बारहो वनकी यात्रा करकें वहाँकी लीलानको अनुभव करकें अपने सम्प्रदायकों प्रगट करते अपने देशमें आये ओर सभानमें गौतम कणाद योग सांख्य तन्त्रनमें अहंकार राख-

एवं पृष्टो वटुना प्रेमाम्भोधौ निमज्य तत्स्मृत्या ॥
त्यक्तसमाधिरिवाह प्रकटीकर्तुं हरेराज्ञाम् ॥ ३३ ॥
धर्मः सेवा विष्णोरर्थो विष्णुः सएव परमार्थः ॥
कामोपि तस्य कामः मोक्षस्तेनैकताऽन्यमोक्षश्च ॥ ३४ ॥
भक्तिज्ञानविरागान् यथाश्रुतार्थाञ्जगौ कृष्णात् ॥
तत्पादुकासपर्यां शिक्षितवानेष पादुकानुकृतौ ॥ ३५ ॥
कंचित्कालमुषित्वा लब्ध्वा लाभं महोत्तमज्ञानम् ॥
अभिवाद्यागतवानथ शुकाश्रमं सुरसरित्तीरे ॥ ३६ ॥
तत्रावात्सीदय यो दिदृक्षया परमहंसमुनेः ॥
प्राप्तोयदृच्छयासौ भाग्यवतां सिद्ध्यः क न हि ॥ ३७ ॥
नामं नामं पदयोरभ्यर्थितोपचासने स्थातुम् ॥
तं तस्थिवांसमग्रे कृताञ्जलिः प्राह विष्णुमुनिः ॥ ३८ ॥

आपके समान ज्ञानी उपदेष्टा कोन हे ॥ ३२ ॥ या प्रकार बालकसों पूंछे गये प्रेमसमुद्रमें डूबके उनकी स्मृतिसों समाधिकों छोडकें हरिकी आज्ञा प्रगट करवेकों बोले ॥ ३३ ॥ जो विष्णुकी सेवाही धर्म हे वोही अर्थ, ओर परमार्थ हे उन्हीकी कामना काम हे ओरको छोडकें उन्हींके संग एक होनो येही मोक्ष हे ॥ ३४ ॥ इत्यादि कृष्णभगवान्सों जेसें भक्ति ज्ञान विराग सुने हे वेसे कहे ओर ये बालक उनसों पादुकाकी सेवा सीखकें थोरे दिन यहाँ रहकें उत्तम ज्ञानको सम्पादन करकें उनकों प्रणाम कर पीछें गंगाजीके तट शुकदेवस्वामीके आश्रममें आये ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ वहाँ उनके देखवेकी इच्छासों रहे सो अकस्मात् वे मिलगये क्यों जो भाग्यवानको सिद्धि कहाँ नहीं हे ॥ ३७ ॥ सो उनके चरणनमें बारबार प्रणाम करकें आसनपें विराजवेके लियें प्रार्थना करी ओर उनके विराजवेपे

भगवन् भागवतानां सारं मे ब्रूहि पाराश्यै ॥
संसाराकूपारादवतारस्त्वं जनोपकाराय ॥ ३९ ॥
कृपया वद विज्ञानं यज्ज्ञानान्नस्समुद्धारः ॥
शुकमुनिराह तथामुं भज भज भगवंतमेकमनाः ॥ ४० ॥
जहि जहि चान्यदसारं सारमनुस्यूतमेकमेव हि यत् ॥
इत्येवंबहुधैनं प्रबोध्य निरगाद्यथा यातम् ॥ ४१ ॥
तमसौ प्रणम्य भूयो माथुरमंडलमुपायातः ॥
तत्र हरेर्लीलानां निलयान् पश्यन् स्वलीलया व्यक्तान् ॥४२॥
महिमानं व्रजभूमेर्भुवनाचोंधामजनकस्य ॥
द्वादशवन्या यात्रा धन्याः कृत्वानुभूय लीलार्थान् ॥ ४३ ॥
व्यक्तीकुर्वन्नागान्निजविषयानेव चाम्नायम् ॥
गौतमकणभुङ्मतयोः पातंजलसांख्ययोश्च तन्त्राणाम् ॥ ४४॥
संजवनेषु जवेन कोविदगर्वं सखर्वतां निन्ये ॥
वेदान् स वेदभेदैः स्वीयैः ख्यातोऽत्र वेदगर्भोऽभूत् ॥ ४५ ॥

हाथ जोडकें विष्णुमुनि बोले ॥ ३८ ॥ जो हे भगवन् ! भगवद्धर्मनको सार कहो संसारसों पार होयवेके लियें जननके उपकारहीके लियें आपको अवतार हे ॥ ३९ ॥ सो कृपासों वो विज्ञान कहो जासों हमारो उद्धार होय तब शुकमुनि इनसों बोले जो एकमन होयकें भगवान्कों भजो भजो ॥ ४० ॥ ओर असारकों छोंडो २ जो एकही सार सबमें हे या प्रकार अनेक तरहसों बोध देकें जेसें आये वेसेही गये ॥ ४१ ॥ ओर ये उनकों प्रणाम करकें मथुरामंडलकों आये वहाँ भगवान्की लीलानकों लीलानसों चमत्कारीस्थाननकों देखते ॥ ४२ ॥ व्रजकी बारहो वनकी यात्रा करकें वहाँकी लीलानको अनुभव करकें अपने सम्प्रदायकों प्रगट करते अपने देशमें आये ओर सभानमें गौतम कणाद योग सांख्य तन्त्रनमें अहंकार राख-

मीमांसाद्वयप्रथमाचार्य्यै सैकोपि जैमिनि कृष्ण ॥
जनमेजयसत्रान्ते मुनिभि समयोचितो धर्म ॥ ४६ ॥
भक्तिज्ञानविरागौ तेन सहासौ प्रचारयामास ॥
आद्याश्रमं समाप्य द्वितीयमेवाश्रमं भेजे ॥ ४७ ॥
विधिवद्धरे सपर्या वसुपर्यायैर्निजात्मना चक्रे ॥
दिक्चक्रवालयात्राचक्रमणेऽसौ प्रवर्तयन् धर्मम् ॥ ४८ ॥
निजसाम्प्रदयिकार्थान् सुरजीवेभ्यो यथायथ व्यतरत् ॥
माले सदैव बिभ्रत्तुलसीकाष्ठोद्भवे सूक्ष्मे ॥ ४९ ॥
आकण्ठहृत्प्रमाणे मखसूत्रालि च वसनयुगे ॥
हरिचरणोपमतिलकं माले नाभ्यादिकांगेषु ॥ ५० ॥
मुद्रापञ्च तदुपरि बिभ्राणो वैष्णवांश्च दिशन् ॥
नित्याग्निहोत्रमुख्यान् श्रौतान् स्मार्तान् क्रतूंश्चक्रे ॥ ५१ ॥

वेवारे जो विद्वान् हे उनकों जल्दीसों जितकें छोटे करदिये ओर ये सब भेदनके सहित वेदनकों जानते हे यासों इनको नाम वेदगर्भ विख्यात भयो ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ दोनों मीमांसानके आचार्य व्यास जैमिनीके संग इनकी गणना होती ही जनमेजयके यज्ञके अन्तमें ऋषीननें जो धर्म चलायो ॥ ४६ ॥ ताके संग भक्ति ज्ञान वैराग्यको इननें प्रचार कियो ओर ब्रह्मचर्यको समाप्त कर गृहस्थाश्रमकों स्वीकार कियो ॥ ४७ ॥ भगवानकी सेवा विधिसों धन तन मनसों करी ओर धर्मको प्रचार करते सब दिशानकी यात्रा चल्क करी ॥ ४८ ॥ साम्प्रदायिक सिद्धान्तकों देवीजीवनकों यथायोग्य दियो ओर सवदा छोटी कठसों हृदयताईंकी दो तुलसीकाष्ठकी माला यज्ञोपवीत संग वस्त्र हरिचरणाकृति तिलक मस्तकमें ओर दूसरे अंगनमें ॥ ४९ ॥ ५० ॥ उनके ऊपर पञ्चमुद्रा इनकों धारण करते वैष्णवनकों उपदेश करते नित्य अग्निहोत्र करते श्रौतस्मार्त यज्ञ किये॥ ५१ ॥

प्राकृतवैकृतरूपान् शामित्रैः सोमपीथैश्च ॥
षण्णवतिश्राद्धानां देवद्रव्यर्पिशुद्धानाम् ॥ ५२ ॥
शुद्धात्मा प्रातानां चचार भक्त्याशयेन विधिना च ॥
इष्टान् पूर्तान् धर्मान् देवार्चादीन् प्रवर्तयामास ॥ ५३ ॥
आतिथ्यव्रततीर्थं शांतिव्यवहारराजनियमांश्च ॥
दुर्जननिग्रहसज्जनसंत्राणप्राणिवृत्तींश्च ॥ ५४ ॥
देशोन्नतिं च नीतिं भूपेभ्यः शिक्षयामास ॥
स्वस्वोचितांश्च धर्मान् वर्णाश्रमजाँस्तथागमिकान् ॥ ५५ ॥
निगमादनतिविरुद्धान् चरतां संरक्षकानकरोत् ॥
एकैकदेवभक्तान् वैदिकमार्गेण तद्भक्तान् ॥ ५६ ॥
स्वस्वाधिकारयोग्याननुमन्येऽसौ जगद्धितकृत् ॥
पलपैतृकं पलान्नं पलदैवं वा पलं च मधुपर्के ॥ ५७ ॥
नरवृषहयजातानां यज्ञे हिंसां न्यषेधयदसौ ॥
असवर्णैः सह भुक्तिं सम्बधंचाप्यविज्ञातैः ॥ ५८ ॥

प्राकृत वैकृत नामके यज्ञ छानवे श्राद्ध इनकों भक्तिसों कियो इष्टापूर्त धर्म देवपूजा इनको प्रचार कियो॥५२॥५३॥अतिथिको सन्मान व्रत तीर्था- दिक शान्ति व्यवहार राजनियम दुष्टनकों दंड देनों सज्जननकी रक्षा करनी प्राणीनकों वृत्तिदान करनों देशोन्नति नीति अपने २ उचित वर्णाश्रमधर्म्म ओर बी वैदिकधर्म्म राजानकों सिखावते भये ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ ओर वेदसों विरुद्ध चलेववारेनकों एक २ देवताके भक्तकरकें वैदिकमार्गसों चलावते भये ॥ ५६ ॥ जगतके हित करवेवारे इननें अपने २ अधिका- रके योग्य सबकों कियो ओर मांसके पिंड मांसभक्षण देवतानकों यज्ञमें मांस अर्पण करनो मधुपर्कमें मांस यज्ञमें नरमेध गोमेध अश्वमेध हिंसा असवर्णके संग भोजन दूसरीजातके संग विवाह मद्य पतितनको संग्रह आशौचमें

उच्छिष्टमधुयोरपि संग्रहणं समर्ह च पतितानाम् ॥
संकोचं च तयोर्वाशौचानामेनसां प्रहाणो च ॥ ५९ ॥
पापानां ससर्गे वशे ग्रामे च जनपदे कर्तुं ॥
स्त्रीणां विकृतौ त्याग सयोग क्षेत्रजादीनाम् ॥ ६० ॥
इत्येवमाद्यधर्मान् कलिवर्ज्यान् वर्जिता श्चक्रे ॥
भक्तिं हरेरनन्यां धर्म्माचरणं यथाशक्ति ॥ ६१ ॥
निजसाम्प्रदायिकार्थान् कुर्वन् स्वान् कारयामास ॥
आविर्भावतिरोभावाभ्यां सत्कार्यवाद च ॥ ६२ ॥
शुद्धाद्वैत जगतो ब्रह्मणि साकारतां तथा द्दढयन् ॥
सस्थापनाय चैषां पाराशर्याज्ञया लोके ॥ ६३ ॥
दिग्जययात्रां कर्तुं विजयं भूप समाश्रितवान् ॥
सवीतच्छात्रौघे सामन्तानां बलैर्विलसन् ॥ ६४ ॥
बहुविधराजविभूत्या बहुवाद्यैश्च संयात ॥
शिविकारूढो निरगाच्छलाभ्यां पूरयन् क्ष्मां द्याम् ॥ ६५ ॥

सकोच पापनको ससर्ग वशमें गाममें देशमें विकृतिमें स्त्रीनको त्याग क्षेत्रज पुत्रादिकनको सग्रह इत्यादि कलि वर्जित धर्मनको त्याग करते भये ओर भगवानकी अनन्यभक्तिको चलावते भये ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ ॥ ५९ ॥ ६० ॥ ६१ ॥ अपने साम्प्रदायिकतत्त्वनकों उपदेश करते मनुष्यनको अपन करते भये ओर आविर्भाव तिरोभावसों सत्कार्यवाद शुद्धाद्वैतको प्रचार कियो ॥ ६२ जगत्ब्रह्मकी एकता ओर ब्रह्ममें साकारता करवे ताके स्थापन करवेके लिये व्यासजीकी आज्ञासों ॥ ६३ ॥ दिग्यात्रा करवेके लिये विजयनामके राजाको आश्रय लेते भये ओर विद्यार्थिनके सहित सेनासा आकाशको गुंजते ॥ ६४ ॥ अनेकप्रकारकी राजविभूति लेके बडे बाजे गाजेसों पालकीमें सवार होयकें शत्रनके

जयजयशब्दालोकैः शोकं छेत्तुं सुलोकानाम् ॥
आसेतुबंधपांड्यान् चौलांश्चैवाकुमारिकानिलयान् ॥ ६६ ॥
जित्वैव धर्ममार्गं तेभ्यः संबोध्य चायातः ॥
कर्णाटकेषु सम्यङ् निजधर्मं दर्शयन्नघुटत् ॥ ६७ ॥
शिष्टानेव विशिष्टान् कुर्वन्नागान्महाराष्ट्रान् ॥
सोमसुतामुत्क्रान्तो गुर्जरविषयाननुक्रम्य ॥ ६८ ॥
सौराष्ट्रानानर्तानुपादिश्य द्वारकामागात् ॥
तत्रानिरुद्धिनिर्मितप्रासादे वीक्ष्य भगवन्तम् ॥ ६९ ॥
निजपरिवारसमेतं सम्पूज्यैनं ततोऽगच्छत् ॥
क्षेत्रं प्रभासमन्यत्तत्रत्यं तीर्थजातं च ॥ ७० ॥
निजसम्प्रदायधर्म्मान् सम्यक् संचालयन्नचरत् ॥
सिन्धोः पूर्वतटेनच सैन्धवविषयांश्च सौवीरान् ॥ ७१ ॥
दरवरनादैर्घुष्टानुपदिष्टार्थांश्चकारासौ ॥
काश्मीरं प्रति यातः स चकाशोच्चैर्यथा हेलिः ॥ ७२ ॥

शब्दसों पृथिवी आकाशकों पूरते चले ॥ ६५ ॥ लोगनके जयजयशब्दसों सज्जननके शोक दूर करवेके लियें पांड्य सेतुबंधसों लेकें चौल आदि जितने देश कन्याकुमारिका ताईं हैं उनकों जीतकें धर्ममार्ग उनकों उपदेश कर लौट आये ओर कर्णाटकमें अपने धर्मको दिखावते अच्छी प्रकारसों विचरते ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ महाराष्ट्रदेशमें आये वहाँसों नर्मदा उतरकें गुर्जर सौराष्ट्र आनर्त यहाँके मनुष्यनकों उपदेश करते द्वारकामें आये वहाँ वज्रनाभजीके बनाये मंदिरमें अपने परिवारसहित भगवान्के दर्शन कर ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ उनको पूजन करकें वहाँसों चले सो प्रभासक्षेत्रमें आये वहाँकी सब तीर्थविधिकर ॥ ७० ॥ अपने साम्प्रदायिक धर्मकों अच्छीतरहसों चलावत विचरते भये ओर समुद्रके पूर्वतटसों सिन्धुके सौवीर आदि देशनकों ॥ ७१ ॥ शंखके शब्दसों

जित्वैव हेलया तान् धर्म्मे सयोज्य चावृत्त ॥
पंचनदानथ विषयान् चंक्रम्यायात् कुरुक्षेत्रम् ॥ ७३ ॥
तत्राम्नायाचारान् प्रचारयन्नार्षधर्मं च ॥
अथ यमुनां सस्नातो गगामगमद्धरिद्वारम् ॥ ७४ ॥
निजदर्शन प्रदर्श्यैव कटक सस्थाप्य चलितोऽथ ॥
विपिनं तपसो यातस्तापसवर्गं समागम्य ॥ ७५ ॥
नारायण दिदृक्षु समारुहद्गधमादन शैलम् ॥
तीर्थान्यटमानोसौ नर च नारायण दृष्ट्वा ॥ ७६ ॥
देवर्षिप्रवरेणहि सगम्यागाद्गुरु व्यासम् ॥
उक्त्वा वृत्तमशेष तौ सम्पूज्य प्रसादमपि लब्ध्वा ॥ ७७ ॥
गतवर्त्मनैव चागान्निजकटक प्रस्थितश्च तत ॥
अनुगगं यमुनामनु छात्रीकुर्वन् जनाश्छात्रे ॥ ७८ ॥

पूरित करकें यहाँवारेमकों उपदेश कर काश्मीरकों गये जो सूर्यके समान ऊँचो शोभतो हो ॥ ७२ ॥ ताको विना प्रयासहीमों जीतके यहाँके वासीनकों धर्ममें लगायकें लोटे सो पचनदके पासके देशनमें फिरते कुरुक्षेत्र आये ॥ ७३ ॥ यहाँ वेदोक्त आचारको ऋषीनके धर्मनको प्रचार करते यमुनामें स्नान करके गगाके तट हरिद्वार गये ॥ ७४ ॥ यहाँ अपने श्रीविष्णुके दर्शन कर सेनाको छोड तपस्वीनके सग तपोवनको गये ॥ ७५ ॥ ओर नारायणके दर्शनकी इच्छासो गन्धमादनपर्वतपे चढे यहाँ तीर्थनमें फिरते नरनारायणके दर्शन कर ॥ ७६ ॥ श्री नारदसों मिलकें गुरु व्यासजीके पास गये उनसों सब वृत्तान्त कहकें दोनो मुनीनकी पूजा करके उनके प्रसादको पायकें ॥ ७७ ॥ पीछें याही मार्गसो लोटकें अपनी सेनामें आयके वाहीके सग यहाँसो चले सो

निजनेत्रयोरकार्षीत्पात्रीभूतं व्रजं सप्रजम् ॥
विश्रान्ते विश्रान्तान् भवविश्रान्तान् जनानचरत् ॥ ७९ ॥
विश्रान्तोध्वश्रान्तैर्निष्क्रान्तोर्कोपमः स्नातैः ॥
हरिदेवं बलदेवं केशवदेवं च गोविन्दम् ॥ ८० ॥
दृष्ट्वार्चित्वा यात्रां चक्रे वनयोर्व्रजस्य भुवः ॥
प्रातान् सभ्भवविरक्तान् धर्म्मासक्तांश्च हरिभक्तान् ॥ ८१ ॥
निजनिर्जाचिह्नविभक्तानकरोद्धर्मोपदेशेन ॥
पीतारुणतिलकाभ्यां मृद्गोपीचन्दनस्य विहिताभ्याम् ॥ ८२ ॥
भक्तिज्ञानविरागैर्भक्तांश्चक्रे विभक्तान् सः ॥
सम्यक् कृत्वा यात्राधर्मं संस्थाप्य चलितोऽसौ ॥ ८३ ॥
क्षेत्रं च सौकराख्यं ब्रह्मावर्तादि चाक्रामत् ॥
नैमिषविपिनमयोध्यामृषींस्तथा रामचन्द्रं च ॥ ८४ ॥

गंगायमुनानिकटवासीनको छात्रद्वारा शिष्य करते ॥ ७८ ॥ शिष्यनके संग अपने नेत्रनको पात्र व्रजकों कियो ओर थके भये मनुष्यनकों विश्रान्तघाटमें आयकें जननमरणसों विश्रान्त(छुड़ाय) किये॥ ७९॥ ओर मार्गके श्रमसों थके आप स्नान करकें सूर्यके समान निकसे ओर हरिदेव बलदेव केशवदेव गोविन्द देव इनके दर्शन पूजन करकें व्रजकी पृथिवी ओर वृन्दावन बृहद्वनकी यात्रा करी ओर संसारसों विरक्त जो मिले उनकों हरिभक्तधर्ममें आरूढ किये ॥ ८० ॥ ८१ ॥ ओर धर्मोपदेशसों अपने २ चिन्हनसों पृथक् कर दिये पीले लाल मृत्तिका गोपीचन्दन इत्यादिकनके तिलकनकरकें ॥ ८२ ॥ ओर भक्ति ज्ञान वैराग्यसों विना भक्तिवारेनको भक्त करकें अच्छीतरहसों यात्रा करकें धर्मको स्थापन करके वहाँसों चले ॥ ८३ ॥ सो सोंरोजी होयकें ब्रह्मावर्तमें आये वहाँसों नैमिषारण्यमें ऋषीनको अयोध्याजीमें श्रीरामचन्द्रजीको दर्शन नमन पूजन करकें प्रयागमें जायकें वहाँकी विधिकरी

दृष्ट्वार्चित्वा नत्वा प्रयागमागाद्विधिं विदधे ॥
वाराणसीं प्रविष्टस्ततोनिविष्टो विदां सदसि ॥ ८५ ॥
मणिकर्णिकां निमज्यार्चितवान् देवान् वृषाकपिप्रमुखान्॥
सत्कार्यवादमाविर्भावतिरोभाववादौ च ॥ ८६ ॥
भक्त्येश्वरभजनादि धर्मं संबोध्य स यात ॥
गत्वा गयां पितॄणां कृत्वा तृप्तिं गदाधरं नत्वा ॥ ८७ ॥
हरिहरतीर्थं स्पृष्ट्वा पुष्पपुरं चागतो बोधैः ॥
सनद्धोपगतानिह सौगतवर्यान् प्रजल्पेन ॥ ८८ ॥
स प्रतिज्ञाय विजिग्ये प्राग्जोतिपविद्रुतानकरोत् ॥
तद्गीतयेऽनुयातः क्षेत्रं पुरुषोत्तमस्य सत ॥ ८९ ॥
तत्रोचितं विधाय श्रीजगदीशप्रसादेन ॥
तस्मादसौ जगाम गंगायाः सगमं चाब्धेः ॥ ९० ॥
श्रीकपिलर्षिं नत्वा प्रस्थितमकरोन्महेन्द्रमनु ॥
तीर्त्वा ततः कलिङ्गान् सतस्रोतां सगोदां च ॥ ९१ ॥

पीछे काशीजीमें जायकें विद्वाननकी सभामें विराजमान भये ॥ ८४ ॥ ॥८५॥ और मणिकर्णिकामें स्नान करके वृषाकपि विश्वनाथ अथवा विष्णु आदिकदेवतानको पूजन करकें सत्कार्यवाद आविर्भावतिरोभाववाद स्थापन कर ॥ ८६ ॥ भक्तिसों भगवान्‌को भजन आदि धर्म उपदेश कर वहाँसों चले सो गयामें जायकें पितरनकों तृप्त कर गदाधरकों नमस्कार कर॥ ८७॥ हरिहरतीर्थको स्पर्श कर बडी तैयारीसो पुष्पपुर (पटना) आये वहाँ आये भये बौद्धनको वादमें प्रतिज्ञापूर्वक जीतके फटकरकें देशसों बाहेर निकाल दिये और पीछें जगन्नाथपुरीको गये ॥ ८८ ॥ ८९ ॥ वहाँ जगदीशकी प्रसन्नतासों यथोचित करके वहाँसों गंगासागर गये ॥ ९० ॥ वहाँ कपिल ऋषिको नमस्कार करके महेन्द्राचलपर्यन्तके और चले सो कलिंग और सप्त

तैलिंगानुपयातः श्रौतं स्मार्तं जगौ धर्मम् ॥
कृष्णां ततार यातोनृहरेःक्षेत्रं च वेंकटाद्रिं च ॥ ९२ ॥
तत्र प्रसाद्य तदीशं प्रसादमस्याग्रहीद्भक्त्या ॥
काञ्चीमितः प्रयातो ददृशे श्रीवरदराजाङ्घ्री ॥ ९३ ॥
तद्भुक्तशेषतीर्थं भुक्त्वा श्रीरंगमेवमागात् ॥
दक्षिणमथुरामागादेवमसौ दिग्जयं चक्रे ॥ ९४ ॥
वर्णाश्रमधर्म्मांश्च वैष्णवधर्मान् स्थिरांश्चक्रे ॥
श्रीमद्गोकुलनाथं वसुपर्यायैः स लालयामास ॥ ९५ ॥
यामाष्टकं न तस्य हरिसम्बन्धेन वीतमभूत् ॥
इजे स पंचयागैर्विद्यासत्रं तथा व्यतरत् ॥ ९६ ॥
ग्रंथान् भाष्यादिमुखान्निवबन्धासौ निबन्धाँश्च ॥
वंशं विधाय भव्यां कीर्तिं लोके वितत्य सुजनमुदे ॥ ९७ ॥
संसारात् स विरज्य प्राजापत्यां चकारेष्टिम् ॥
क्रमशः सचाश्रमाणां जगृहे तुर्याश्रमं क्रमतः ॥ ९८ ॥

गोदावरी होयकें ॥ ९१ ॥ तैलंगदेशकों आये श्रौत स्मार्त धर्म्म प्रचार करते कृष्णाकों उतरकें पणानृसिंहजी तथा वेंकटाचलकों गये ॥९२ ॥ वहाँ भगवान्कों प्रसन्न कर भक्तिसों प्रसाद लियो फिर वहाँसों कांची आये श्रीवरदराजके चरणनको दर्शन कियो ॥ ९३ ॥ वहाँ प्रसाद तीर्थ लेकें श्रीरंगजी गये ओर दक्षिणमथुरा गये याप्रकार दिग्विजय करकें ॥ ९४ ॥ वर्णाश्रमधर्म तथा वैष्णवधर्मको स्थिर कियो ओर तन मन धनसों श्रीगोकुलचन्द्रमाजीकी सेवा करते भये ॥ ९५ ॥ ओर आठो प्रहर उनके हरिसम्बन्धहीमें जाते हे पंचयज्ञनसों हरिकी सेवा कर पाठशाला आदि स्थापन किये ॥ ९६ ॥ भाष्य आदिक ग्रन्थ ओरबी निबन्ध धर्म्मशास्त्रके अनेक बनाये पीछें वंश उत्पन्न करकें सज्जननके लियें संसारमें भव्यकीर्तिको विस्तार कर ॥ ९७ ॥ संसारसों विरक्त होयकें प्राजापत्ययज्ञकों कियो

जात: कुटीचकोऽसौ मौञ्जीं सूत्रं शिखां च दधत् ॥
काषायाम्बरयुगले वेणुत्रितयं कमण्डलुं च दधत् ॥ ९९ ॥
तस्थौ स्वजनसमीपे तैः साकं प्रस्थितः काञ्च्याम् ॥
तत्र बहूदकवेषं कृत्वा वासं चकारासौ ॥
तद्वासादिह किमहो विख्याता विष्णुकाञ्ची सा ॥ १०० ॥
तत्राभिषिच्य शिष्यान् स्वमठे श्रीदेवदर्शनप्रख्यान् ॥
श्रीवरदराजदेवं ध्यायन् हंसो विमुक्तोऽभूत् ॥ १०१ ॥
श्रीवेदव्यासविष्णुप्रभुचरणमिते सम्मिते ग्रन्थसार्थे
श्रीगोविन्दाभिधाना समयनयविदां देशिकानां निदेशात् ॥
आचार्याणां चरित्रे हरिजनसुखदे शास्त्रिकृष्णैर्निबद्धे ॥
प्रस्थानेऽस्मिन् द्वितीये समजनि पटहश्चैष षष्ठो जयाख्ये॥१०२॥

ओर क्रमसों चतुर्थाश्रमको ग्रहण कियो ॥ ९८ ॥ मौञ्जी यज्ञोपवीत शिखाकों धारण करते ओर दो गेरुसे रंगे अंचला तीन दंड कमंडलु धारण करते अपने मनुष्यनके संगही बसते भये पीछें उनके संग काञ्ची गये वहाँ बहूद ककों वेश करकें इननें वास कियो ॥ ९९ ॥ १०० ॥ कदाचित् उन्हींकि वाससों काञ्चीको विष्णुकाञ्ची ये नाम पड्यो होय वहाँ अपने मठमें देवदर्शना दिक शिष्यनको अभिषेक कर श्रीवरदराजदेवको ध्यान करते हंस विमुक्त भये ॥१०१॥ समयनीतिके जानवेवारे जगद्गुरु श्रीगोविन्दाचार्यजी महाराजकी आज्ञासों कृष्णशास्त्रीकि बनाये, श्रीमद्वेदव्यासविष्णुस्वामिसम्प्रदायके ग्रन्थ नसों प्रमित या दिग्विजयग्रन्थके दूसरे प्रस्थानमें ये छठो पटह समाप्त भयो ॥ १०२ ॥

परमाचार्यस्याथो चरमाचार्यस्य शिष्योऽभूत् ॥
भूतौ यः सम्भूतः श्रीविष्णुस्वामिराजार्यः ॥ १ ॥
स हि वामनार्करूपी निरुपमविद्योमहातेजाः ॥
कृतसद्धर्मकलापोऽजस्रं हरिनामसंलापः ॥ २ ॥
आन्ध्रो बह्वृग्यज्वा गुरुभिर्योग्यो धृतः पीठे ॥
स तपोभिर्विद्याभिः श्रीकृष्णानुग्रहेण सम्पन्नः ॥ ३ ॥
भक्तिज्ञानविरागान् सद्धर्मान् स्थापयामास ॥
दिग्जयमिषतस्तीर्थानि च पुण्यानि स्वयं चक्रे ॥ ४ ॥
प्राचीं जित्वावाचीं गतः प्रतीचीं च धर्मकृते ॥
यत्पारसीकसैन्योपद्रवतोद्वारकाधीशम्
संगोपितं समुद्धृतवान् स्थाने स्थापितं चक्रे ॥ ५ ॥
गत्वोदीचीमार्यावर्तं स्वाम्नायमुन्निन्ये ॥
बौद्धैः कृतयुद्धोऽभूत् प्रतीपबलतोजितस्तीर्थे ॥ ६ ॥
काञ्चीमितः प्रयातो गोकुलनाथं सिषेवेऽसौ ॥
सम्पन्नः सर्वार्थैः कालं दृष्ट्वातिविकरालम् ॥ ७ ॥

ओर उनके शिष्यनमें फिर अन्तिम शिष्य राजविष्णुस्वामी भये जो दक्षिणके भूतिग्राममें उत्पन्न भये हे ॥ १ ॥ वे वामन तेजसों सूर्य जेसे अनुपम विद्वान् बडे तेजस्वी सद्धर्मकरवे वारे निरन्तर हरिनामके जपवेवारे ॥ २ ॥ तैलङ्गब्राह्मण ऋग्वेदी यज्ञकरवेवारे योग्य हे इनकों गुरुननें गादीपें बेठाये सो वे तपस्या विद्या भगवद्भक्ति इनसों युक्त हे ॥ ३ ॥ ओर भक्ति ज्ञान वैराग्य अच्छे धर्म इनको प्रचार करते भये दिग्विजयके छलसों तीर्थनकों पवित्र आपनें किये ॥ ४ ॥ जो पूर्वदिशाकों जीतकें दक्षिण ओर पश्चिम गये ओर पारसीसेनाके उपद्रवसों द्वारकाधीशकी रक्षा करी ॥ ५ ॥ ओर उत्तरआर्यावर्तकों जायकें अपने सम्प्रदायको उत्तेजन कियो बौद्धनके संग युद्ध कियो उनकों तीर्थनमें चन्द्रवंशीराजानके बलसों जीत्यो ॥ ६ ॥ पीछें कांची

जात कुटीचकोऽसौ मौञ्जीं सूत्रं शिखां च दधत् ॥
काषायाम्बरयुगले वेणुत्रितयं कमण्डलुं च दधत् ॥ ९९ ॥
तस्थौ स्वजनसमीपे तैः साकं प्रस्थितः काञ्च्याम् ॥
तत्र बहूदकवेषं कृत्वा वासं चकारासौ ॥
तद्वासादिह किमहो विख्याता विष्णुकाञ्ची सा ॥ १०० ॥
तत्राभिषिच्य शिष्यान् स्वमठे श्रीदेवदर्शनप्रख्यान् ॥
श्रीवरदराजदेवं ध्यायन् हंसो विमुक्तोऽभूत् ॥ १०१ ॥
श्रीवेदव्यासविष्णुप्रभुचरणमिते सम्मिते ग्रन्थसार्थे
श्रीगोविन्दाभिधानां समयनयविदां देशिकानां निदेशात् ॥
आचार्याणां चरित्रे हरिजनसुखदे शास्त्रिकृष्णैर्निबद्धे ॥
प्रस्थानेऽस्मिन् द्वितीये समगनिपटहश्चैषपद्यो जयाख्ये॥१०२॥

और क्रमसों चतुर्थाश्रमको ग्रहण कियो ॥ ९८ ॥ मौंजी यज्ञोपवीत शिखाकों धारण करते और दो गेरुसे रंगे अचला तीन दंड कमण्डलु धारण करते अपने मनुष्यनके संगही वसते भये पीछें उनके संग काञ्ची गये वहाँ बहूदकको वेश करकें इननें वास कियो ॥ ९९ ॥ १०० ॥ कदाचित् उन्हींके वाससों काञ्चीको विष्णुकाञ्ची ये नाम पड्यो होय वहाँ अपने मठमें देवदर्शनादिक शिष्यनको अभिषेक कर श्रीवरदराजदेवको ध्यान करते हंस विमुक्त भये ॥१०१॥ समयनीतिके जाननेवारे जगद्गुरु श्रीगोविन्दाचार्यजी महाराजकी आज्ञासों कृष्णशास्त्रीके बनाये, श्रीमद्वेदव्यासविष्णुस्वामिसम्प्रदायके ग्रन्थनसों प्रमित या दिग्विजयग्रन्थके दूसरे प्रस्थानमें ये छठो पग्ह समाप्त भयो ॥ १०२ ॥

परमाचार्यस्याथो चरमाचार्यस्य शिष्योऽभूत् ॥
भूतौ यः सम्भूतः श्रीविष्णुस्वामिराजार्यः ॥ १ ॥
स हि वामनार्करूपी निरुपमविद्योमहातेजाः ॥
कृतसद्धर्मकलापोऽजस्रं हरिनामसंलापः ॥ २ ॥
आन्ध्रो बह्वृग्यज्वा गुरुभिर्योग्यो धृतः पीठे ॥
स तपोभिर्विद्याभिः श्रीकृष्णानुग्रहेण सम्पन्नः ॥ ३ ॥
भक्तिज्ञानविरागान् सद्धर्मान् स्थापयामास ॥
दिग्जयमिषतस्तीर्थानि च पुण्यानि स्वयं चक्रे ॥ ४ ॥
प्राचीं जित्वावाचीं गतः प्रतीचीं च धर्मकृते ॥
यत्पारसीकसैन्योपद्रवतोद्वारकाधीशम्
संगोपितं समुद्धृतवान् स्थाने स्थापितं चक्रे ॥ ५ ॥
गत्वोदीचीमार्यावर्तं स्वाम्नायमुन्निन्ये ॥
बौद्धैः कृतयुद्धोऽभूत् प्रतीपबलतोजितस्तीर्थे ॥ ६ ॥
काञ्चीमितः प्रयातो गोकुलनाथं सिषेवेऽसौ ॥
सम्पन्नः सर्वार्थैः कालं दृष्ट्वातिविकरालम् ॥ ७ ॥

ओर उनके शिष्यनमें फिर अन्तिम शिष्य राजविष्णुस्वामी भये जो दक्षिणके भूतिग्राममें उत्पन्न भये हे ॥ १ ॥ वे वामन तेजसों सूर्य जेसे अनुपम विद्वान् बडे तेजस्वी सद्धर्मकरवे वारे निरन्तर हरिनामके जपवेवारे ॥ २ ॥ तैलङ्गब्राह्मण ऋग्वेदी यज्ञकरवेवारे योग्य हे इनकों गुरूननें गादीपें बेठाये सो वे तपस्या विद्या भगवद्भक्ति इनसों युक्त हे ॥ ३ ॥ ओर भक्ति ज्ञान वैराग्य अच्छे धर्म इनको प्रचार करते भये दिग्विजयके छलसों तीर्थनकों पवित्र आपनें किये ॥ ४ ॥ जो पूर्वदिशाकों जीतकें दक्षिण ओर पश्चिम गये ओर पारसीसेनाके उपद्रवसों द्वारकाधीशकी रक्षा करी ॥ ५ ॥ ओर उत्तरआर्यावर्तकों जायकें अपने सम्प्रदायको उत्तेजन कियो बौद्धनके संग युद्ध कियो उनकों तीर्थनमें चन्द्रवंशीराजानके बलसों जीत्यो ॥ ६ ॥ पीछें कांची

कर्मंदी स वभूव त्रिदंडिरिति विश्वविख्यात ॥
भाष्यादयो निवन्धा समुद्धृता पूर्वससिद्धा ॥ ८ ॥
नूत्नाअपि वहुविहिता यस्मा द्धेर्धर्मरक्षार्थे ॥
श्रीगोपाल प्राप्तो गत्वा श्रीहेमगोपालम् ॥ ९ ॥
अभिपिक्तोहं द्रविडो गुरुवरछात्रैर्गुरो स्थाने ॥
मय्यनुशासति मार्गे वद्दवोगोपीशमेवापु ॥ १० ॥
अथ तिष्यस्योद्रेकाद् दुष्कर्मोद्रिकसम्पर्कात् ॥
मायिकजनैश्च बौद्धैस्तनुतां नीतो मदाम्नाय ॥ ११ ॥
विमनस्कोऽहमभूवं गोकुलनाथ गृहीत्वेत ॥
वृन्दावनमुपयातस्तत्र निवास निजैर्विहितम् ॥ १२ ॥
तत्रैकदा स्थितोऽहं ध्यायन् श्रीनन्दनन्दनं देवम् ॥
आविर्भूतो भगवान् परमानन्दैकसन्मूर्तिं ॥ १३ ॥

गये वहाँ श्रीगोकुलचन्द्रमाजीकी सेवा करते भये ओर सर्वार्थ सिद्ध होयके विकराल कालकों देखके त्रिदंडी सन्यासी होयगये जो ससारमें प्रसिद्ध भये ओर पहलेके बनाये भाष्य आदिक ग्रन्थनको उद्धार कियो ॥ ७ ॥ ८ ॥ ओर धर्मके रक्षाके लिये नयेभी बहुत बनाये पीछें हेमगोपालमें आयके श्रीगोपालकों पावते भये ॥ ९ ॥ ओर पीछें उनके शिष्यननें गुरुके स्थानपे द्रविड मोकों अभिषिक्त कियो मेरे मार्गकी रक्षा करते बहोतसे मेरे गुरुभाई भगवद्धामकों पाते भये ॥ १० ॥ पीछें कलियुगके बढवेसों पापकर्मके उद्-बहोयवेसों मायावादी ओर बौद्धननें हमारे सम्प्रदायकों दुर्बल करदियो ॥ ११ ॥ तब में उदास होयके वहाँसों श्रीगोकुलचन्द्रमाजीकों लेके वृन्दा-वनकों चल्योगयो ओर वहाँ अपनेलोगनके सग निवास कियो ॥ १२ ॥ वहाँ एक समय श्रीकृष्णकोंध्यान करतो हो सो आनन्दमूर्ति भगवान् प्रगट

तं प्रणिपत्य मुदाहं व्यजिज्ञपं तत्पदं प्राप्तुम् ॥
भगवँस्तिष्यो गर्जति कर्षति सारं सतामपि यः ॥ १४ ॥
नय मां निजभृत्यानां पार्श्वं कार्यं किमत्र मम ॥
भगवानाह तदा मां का भीतिस्ते कलेः साधो ॥ १५ ॥
भविता हुतभुग्यावत्त्वाचार्यस्तावदिह तिष्ठ ॥
तस्मै वृत्तमशेषं कथयित्वाम्नायतत्त्वं च ॥ १६ ॥
दत्वाचार्यपदं त्वं कृतकृत्यात्माथ मामेहि ॥
इत्युक्त्वान्तर्यातो योगेशो योगमास्थाय ॥
न्यवसं तत्र सदाहं वियोगतो येन तस्यैव ॥ १७ ॥
उक्ते गुरुक्रमेऽस्मिन्नाचार्याः सप्तशतसंख्याः ॥
शाखाभेदादासँस्तेषां चरमोहमधुनाऽस्मि ॥ १८ ॥
अथ मत्पीठे बहवोप्याचार्यास्तत्र संजाताः ॥
तेषां पुरारिरूपो विष्णुस्वामी पुनर्जातः ॥ १९ ॥

भये ॥ १३ ॥ उनकों प्रणाम करकें आनंदसों उनके स्थानप्राप्तिके लियें मेनें प्रार्थना करी जो हे भगवन्! कलियुग गर्जे हे जो सज्जननकोबी सार खींच रह्यो हे ॥ १४ ॥ यासों मोकों अपने दासनके पास ले चलो यहाँ मेरो कहा हे तब भगवान् बोले जो तुमकों कलियुगसों कहा डर हे ॥ १५ ॥ जबताईं अग्निरूप आचार्य प्रगट न होंय तबताईं यहाँही रहो उनकों सम्प्रदायके सब तत्वकों कहकें आचार्यपद देकें कृतकृत्य होयकें पीछें हमारे पास आइयो ॥ १६ ॥ ये कहकें योगसों अन्तर्ध्यान होयगये उनके वियोगहींमें में सदा वहाँ रह्यो ॥ १७ ॥ ये जो गुरुपरम्परा कही तामें भिन्न भिन्न गोत्री सात सौ आचार्य शाखाभेदसों भये उनमें पीछलो में हूँ ॥ १८ ॥ ओर हमारे पीठमेंबी वहाँ बहोत आचार्य भये उनमें शिवको अवतार प्रभुविष्णुस्वामी फिर भये ॥ १९ ॥

तस्मिन् शासति तिष्ये शिष्या॰ पापंडिभि क्लिष्टा ॥
आयुधभृद्भिरसद्भि संघीभूतैश्चरद्भि क्ष्माम् ॥ २० ॥
कालं वीक्ष्य कराल कालेशश्चिन्तया चित्ते ॥
व्यक्तीभूतो ध्यातो बदिरागत्याब्रवीदेवम् ॥ २१ ॥
मा विमना भव ब्रह्मन्ननुचितसमय समालोक्य ॥
दैवादपि पुरुषार्थाद्बलीयसी केवलेशेच्छा ॥ २२ ॥
दुष्कर्मणउद्रेकात्सम्पर्कों दु खसघानाम् ॥
सर्वेषां भूतानां तामसभूतानि भूतिभृत ॥ २३ ॥
तत्रोपाय वक्ष्ये साध्यं किं तेन नहि लोके ॥
यादृक्परोऽपरोपे तादृक् प्रभवेच्छठाय शठ ॥ २४ ॥
एतद् गृहाण मंत्रं श्रीगोपालस्य गायत्र्याः ॥
शरणमनुप्राप्तेभ्योदेहि ततो देहि गोपालम् ॥ २५ ॥
शिष्यान् कुरु रणवीरान् दृढान् बलिष्ठान् हरेर्भक्तान् ॥
गोपीमृदोर्द्ध्वपुंड्रांस्तत्र समुद्रान् सबिन्दून् वा ॥ २६ ॥

कलियुगको शासन करते पाखंडीनसों शिष्यनने क्लेश पायो जो पाखंडी हथियारनकों धारण किये दुष्ट सब मिलके पृथिवीमें विचरते हैं ॥ २० ॥ तब प्रभुविष्णुस्वामी भयानक कालकों देखके चित्तमें चिन्ता करवेलगे तब काल भगवान् प्रगट होयकें ऐसें बोले ॥ २१ ॥ जो खराबसमयको देखकें, उदास न होवो पुरुषार्थसों भगवदिच्छा प्रबल है ॥ २२ ॥ दुष्कर्मके उदयमां दु खनको मिलाप होयहे सो प्राणीनमें जो तामस हैं ये रुद्रकी सृष्टिके हैं ॥ २३ ॥ सो उपाय बताऊँहू जासों संसारमें कहा साध्य नहीं है जैसो शत्रु होय वैसोही होनो चहिये शठकी प्रति शठ ॥ २४ ॥ ये गोपालगायत्रीके मन्त्रकों ग्रहण करो सो शरणम आयेभयेनकों देकें पीछें गोपालमन्त्रकों देनो ॥ २५ ॥ ओर संग्राममें वीर पुष्ट बली भगवद्भक्त शिष्य करो जो मुद्रान

कंठीकृतसुरसासृग्लक्षितवेशाश्च वर्णिनश्चापि ॥
सम्पूजितध्वजास्ते सम्भृतशस्त्रास्त्रजेतारः ॥ २७ ॥
भवितारोमद्वचनान्मन्त्रमहिम्ना गुरोर्भक्त्या ॥
गोब्राह्मणदेवानां त्रातारः सम्प्रदायस्य ॥ २८ ॥
इत्युक्त्वान्तर्यातः श्रीकंठस्तत्समाधिस्थः ॥
स च संबुध्य तथान्यान् शिष्याँश्चक्रे व्रतस्थान् वै ॥ २९ ॥
तेषां ध्वजनीं कृत्वा जिग्ये पाषण्डिनश्च खलान् ॥
गृहिणो यतयो व्रतिनः शिष्यास्त्रिविधाः कृतास्तेन ॥ ३० ॥
तेभ्योर्पितं निजैश्यं पीठं तेभ्यः पृथक् पृथक् दत्तम् ॥
दिग्विजयाय ततोगात् प्रथमं प्राचीं प्रतस्थे सः ॥ ३१ ॥
श्रीगजदीशं नत्वा स्तुत्वासौ गद्यपद्यैश्च ॥
नैवेद्येन हरेरिह स्वीयाँश्चक्रे कृतार्थान् वै ॥३२ ॥
तस्य प्रसादमहिम्ना सर्वाचार्यातिशायि महिमोभूत् ॥
विद्यायाश्च समृद्ध्या तपसा भक्त्या च सम्पन्नः ॥ ३३ ॥

करकें या बिन्दुकरकें सहित गोपीचन्दनके ऊर्द्ध्वपुंड्र करें ॥ २६ ॥ तुलसीकी माला पहरे ब्रह्मचारी होय ध्वजा निशान रोपें शस्त्र अस्त्रसों जीतें ॥ २७ ॥ हमारी आज्ञासों ओर मंत्रकी महिमासों तथा गुरुभक्तिसों गो ब्राह्मणनकी ओर सम्प्रदायकी रक्षाकरवेवारे होंयगे ॥ २८ ॥ ये कहकें महादेव अन्तर्ध्यान होय गये ओर वो उठकें ब्रह्मचारी शिष्यनकों करते भये ॥ २९ ॥ ओर उनकी सेना करकें पाखंडी दुष्टनकों जीत्यो ओर गृही, संन्यासी, ब्रह्मचारी, ये तीन प्रकारके शिष्य किये ॥ ३० ॥ उनको पृथक् २ अधिकार ओर गादी दीनी पीछें दिग्विजय करवेकों निकसे सो पूर्वदिशाकों गये ॥ ३१ ॥ वहाँ जगदीशको नमन करकें गद्य पद्यनसों स्तुति करते भये ओर भगवान्के नैवद्यसों अपने मनुष्यनको कृतार्थ किये ॥ ३२ ॥ उनके प्रसादकी महिमासों सब आचार्यनसों अधिक महिमा-

उत्कलदेशे धर्मान् प्रचार्य तस्यैव रक्षार्थम् ॥
तद्देशीय बिल्वं विप्रवर दिक्पतिं चक्रे ॥ ३४ ॥
अथ चलित सह सैन्यै पाषण्डानां पराभव कर्तुम् ॥
आर्यावर्तमितोयात् तीर्थवराणां चरन् यात्राम् ॥ ३५ ॥
मगधे बौद्धमतस्थान् तर्कीकृतसप्तभङ्गिगिर' ॥
सद्वादेन स जिग्ये पारीन्द्रो वा करीन्द्रगणान् ॥ ३६ ॥
वाराणस्यां स्नात्वा विश्वेश बिन्दुमाधव नत्वा ॥
विद्वद्वरान् प्रतोष्य स्वाम्नायस्थान् बहूँश्चक्रे ॥ ३७ ॥
एव सतीर्थराजे ब्रह्मावर्ते चरन्नेक' ॥
माथुरमण्डलयात्रा कृत्वा सम्यङ्निजाभीष्टाम् ॥ ३८ ॥
स्वीयाम्नायकृतेऽयं भर्गश्रीकान्तमिश्रार्यम् ॥
आर्यावर्तजनानां शिक्षायै योजयामास ॥ ३९ ॥
अथ पुष्करमभियातस्तत्र वराह विरिंचि संपूज्य ॥
यातस्ततोविशालां क्षिप्रां नत्वा महाकालम् ॥ ४० ॥

वारे वे भये ओर विद्या तपस्या भक्तिसा सम्पन्न भये ॥ ३३ ॥ उत्कल देशमें धर्मको प्रचार करकें ताकी रक्षाके लियें वाही देश के ब्राह्मणराजा बिल्वको स्थापन कियो ॥ ३४ ॥ फिर वहाँसों सेनासहित पाखंडीनके जीतबेके लियें चले सो तीर्थनकी यात्रा करते आर्यावर्तमें आये ॥ ३५ ॥ मगधदेशमें तर्क करवेवारे बौद्धनको वादसों जीत्यो जैसें सिंह गजनकों जीते है ॥ ३६ ॥ फिर काशीजीमें आपकें स्नान करकें विश्वनाथ बिन्दुमाधवकों नमनकर विद्वाननकों सन्तोषकर बहुतनकों अपने मतके किये ॥ ३७ ॥ याही प्रकार प्रयाग ब्रह्मावर्तमें विचरते अच्छी तरहसों अपनी अभीष्ट ब्रजयात्रा करकें ॥ ३८ ॥ अपने सम्प्रदायकी रक्षाके लियें आर्यावर्तके लोगनके शिक्षाके लियें श्रीकान्त मिश्रको स्थापन कियो ॥ ३९ ॥ पीछें पुष्करजी आये वहाँ वराहको ओर

सोमोद्भवां ततार गोदां कृष्णां च संस्पृश्य ॥
सोमं शिष्यं कृतवान् योऽभूद्यतिराड् जगत्पूज्यः ॥ ४१ ॥
यः कोलूरेचान्ध्रं चिन्तामणिसंगतो विज्ञम् ॥
श्रीकृष्णैकप्रसक्तं कृतवान् बहुजन्मना सिद्धम् ॥ ४२ ॥
योमाधवानलोऽभूत् स्मरकंदलयाकृतासंगः ॥
शशिकलयारंजितधीर्विल्हणसंज्ञोऽथ जयदेवः ॥ ४३ ॥
नृहरिं दृष्ट्वा व्यंकटनाथं कांचीं समायातः ॥
तत्रोवास सुखेन प्रादुश्चक्रे बहून् ग्रन्थान् ॥ ४४ ॥
एवं गतः प्रतीचीं जित्वोदीचीं तथा प्राचीम् ॥
जिग्ये निजामपाचीं धर्मं संस्थापयाञ्चक्रे ॥ ४५ ॥
श्रौतनिधिं निजशिष्यं कृत्वा पट्टेऽभिषिच्याथ ॥
तपसे वनाय निरगात्तत्र मुकुन्दात्मतां दध्रे ॥ ४६ ॥
एतत्पारंपर्यात् पारंपर्यं नु युष्माकम् ॥
लोकेऽतीव पुनीतं लोकानुद्धर्तुकामानाम् ॥ ४७ ॥

ब्रह्माजीको पूजनकर वहाँसों चले सो उज्जैनमें आये वहाँ क्षिप्रामें स्नानकर महाकालकों नमनकर ॥ ४० ॥ नर्मदा गोदावरी कृष्णाकों उतरकें सोमकों शिष्य कियो सो वो शिष्य जगत्पूज्य सन्यासीभयो॥४१॥ जिननें कोलूरपुरमें चिन्तामणिनामक वेश्यासक्त कोई आन्ध्र पुरुषकों श्रीकृष्ण-सेवामें तत्पर ओर ॥ ४२ ॥ सिद्धवनायो जो पीछें वेही माधवानल भये ओर विल्हण जयदेव भये ॥ ४३ ॥ ओर ये प्रभुविष्णुस्वामी पीछें लक्ष्मणबालाजीके दर्शनकर काँचीमें सुखसों वासकर वहोतसे ग्रन्थ बनाये ॥ ४४ ॥ या प्रकार पश्चिम उत्तर पूर्व दक्षिणकों जीतकें धर्म्मको स्थापन कियो ॥ ४५ ॥ पीछें श्रौतनिधिको अपनो शिष्य-कर गादीमें अभिषेककर तपके लियें वनकों गये सो वहाँ भगवान्के शरण भये ॥ ४६॥ ये आपकी गुरुपरंपरा हे सो लोगनके उद्धार करवेके

ब्रह्मैकमेव शुद्धं जगदाकारेण निर्विकारेण ॥
भाति विचित्रं चित्रैरनन्तशक्तिप्रभावैः स्वैः ॥ ४८ ॥
तस्यानादिमहिम्ना सृष्टिप्रवाहस्य नादितासादि ॥
सृष्टिश्चैकैकेय न विरोधो वाक्यतात्पर्ये ॥ ४९ ॥
यद्यत्तर्कविरुद्धमविरुद्धं तद्धि ब्रह्मणि ज्ञेयम् ॥
श्रुत्यैवं प्रतिपन्नं सूत्रैरेतत्तथाभिहितम् ॥ ५० ॥
परमात्मा साकारोजगदाकारो निराकार ॥
सद्धर्म्मा सत्कर्मा सद्गुणपूर्ण सनिर्गुण साक्षात् ॥ ५१ ॥
श्रीपुरुषोत्तमरूपी भक्त्यागम्योऽस्त्यनन्यगत्याद्धा ॥
आत्मा ब्रह्मेतिधिया ब्रह्मैवेतीह शुद्धात्मा ॥ ५२ ॥
श्रौतात्मतानुकार्या कार्या वर्णाश्रमानुगुणा ॥
भक्तिज्ञानविरागाः सम्पाद्या शुद्धचित्तेन ॥ ५३ ॥
सद्भिश्चरितोधर्मं सेव्य शक्त्येन्द्रियाणि जेयानि ॥
आम्नायार्थो ध्येय पापकृति- सर्वथा हेया ॥ ५४ ॥

लिये अत्यन्त पवित्र हे ॥ ४७ ॥ जगतके आकारसों निर्विकार एक ही शुद्ध ब्रह्म हे सो अपनी विचित्रशालिनी अनन्तशक्तिनसों शोभ रह्यो हे ॥ ४८ ॥ ताकी अनादिमहिमासो सृष्टि प्रवाहको अनादि ओर सादिपनो हे ये कोई कहे हें ॥ ४९ ॥ जो जो तर्क विरुद्ध हे वो २ ब्रह्ममें सब अविरुद्ध हे श्रुतिनमें कह्यो हे ओर सूत्रनमेंभी एसोही कह्यो हे ॥ ५० ॥ परमात्मा साकार जगदाकार हे ओर निराकार हे सद्धर्मवारो क्रियावारो गुणवारो हे ओर निर्गुणभी साक्षात हे ॥ ५१ ॥ सो अनन्य-भक्तिसों जान्यो जाय हे दूसरी गति नहीं हे आत्मा ब्रह्मही हे या बुद्धिसों ब्रह्मही शुद्धात्मा हे ॥ ५२ ॥ परन्तु वर्णाश्रमके अनुरूप वेदोक्त कर्म करनो भक्ति ज्ञान वैराग्य सम्पादन शुद्धचित्तसों करनो ॥ ५३ ॥ आचार्यनके किये धर्मनको करनो इन्द्रियनकों जीतनो वेदके अर्थको विचारनो पापकामकों

तथाचक्रुरनुज्ञातं ज्ञातं वृत्तं ततो जनैः ॥
राज्ञा विज्ञैस्तथा सद्भिः पौरैर्जानपदैरपि ॥ ६ ॥
जनेशस्तां समाकर्ण्य विमनाविप्रियां गिरम् ॥
विद्वांसो वैष्णवाचार्याः सभ्याः सर्वे समागताः ॥ ७ ॥
प्रणेमुस्ते यथान्यायं कृतोपायनसत्क्रियाः ॥
बभाषे भूपतिस्तेषां निबद्धांजलिसंपुटः ॥ ८ ॥
श्रीमदाचार्यपादानां सांप्रतं किं चिकीर्षितम् ॥
युष्मद्दर्शनसंलापसेवासौख्याधियो वयम् ॥ ९ ॥
श्रुत्वैवं प्राहुराचार्य्यास्तीर्थयात्रासमुद्यमम् ॥
रोचिष्णुरदरोचिर्भिः प्रकाशितसभोदराः ॥ १० ॥
अगस्त्यपूता दिक् पूता तीर्थैरप्यमरालयैः ॥
दिवस्संपदमापन्नादिग्दंतिबलविश्रुता ॥ ११ ॥
तस्या यात्रां प्रति मनः सोत्कंठं चिरतो मम ॥
लब्धावकाशैरेतस्याः कृतेऽस्माभिः प्रवत्स्यते ॥ १२ ॥

कमलनमें अत्यन्त बँधे ओर आपके कथनमें अनुरागी शिष्यननें कह्यो बहुत ठीक जो आज्ञा ॥ ५ ॥ ओर ये कहकें वेसेही कियो तब या वृत्तान्तको लोगननें जान्यो ओर राजा विद्वान् सज्जन सब पुरके रहवेवारेननें जान्यो ॥६॥ राजा आपके जायवेकी सुनकें उदासभयो ओर विद्वान् वैष्णवाचार्य सभ्य सब आये ॥ ७ ॥ ओर प्रणाम करकें भेट करते भये उनमेंसों हाथ जोडकें राजा बोल्यो ॥ ८ ॥ जो श्रीमदाचार्यजीकी या समय कहा करवेकी इच्छा हे हम सब आपके दर्शनतें ओर सदुपदेशसों अतिसुखी हें ॥ ९ ॥ ये सुनकें प्रकाशमान अपने दन्तनकी किरणनकरकें सभाके मध्यकों प्रकाश करते श्रीमदाचार्यजीनें तीर्थयात्राके लियें आज्ञा करी ॥१०॥ जो अगस्त्यऋषिसों पवित्र तीर्थ ओर देवतानके मंदिरनकरकें पवित्र हाथीनकरकें प्रसिद्ध स्वर्गकी सम्पत्तिवारी जो दिशा हे ॥ ११ ॥ ताकी यात्रा करवेकों बहोत दिनासों

अथ तृतीयप्रस्थानप्रारंभ ।

येऽकुर्वन् मुरवैरिणोतिविततां भक्तिं धरायां परा
माम्नाय पुरवैरिणोपि जगदानन्दाय नदादिवत् ॥
ये धर्मं स्मृतिसमतं श्रुतिगत सचारयत पुन
प्राचेरुस्तमनुत्तमं गुरुवरांच्छ्रीवल्लभांस्तान्नुम ॥ १ ॥
दक्षिणाविजयोत्कर्षोनपरार्कान् गुरून्नुम ॥
यत्प्रकाशे प्रकाशंते भक्ताब्जानि दिवानिशम् ॥ २ ॥
अथात श्रीमदाचार्या कृतकार्या कृताह्निका ॥
आसन् कृतधियोगंतु पुरोऽस्याश्च पुरोदिशम् ॥ ३ ॥
अंतेवासिजनानाह्वयमास्मोयिवासव ॥
ततोमातुल्मात्रादेरनुज्ञामानयंतु न ॥ ४ ॥
वाढ वाढमिति प्रोचुस्तदुक्तार्थेनुरागिण ॥
गाढ निबद्धास्तत्पादपद्मयो सुखसद्मनो ॥ ५ ॥

अब प्रथमयात्रामें तृतीयप्रस्थानको आरम्भ करते मगलकरें हैं जिनने पृथ्वी-पे भगवानकी भक्तिको विस्तार कियो ओर रुद्रसम्प्रदायकों चलायो ओर जगतके आनन्दके लियें श्रेष्ठ श्रौत स्मार्त धर्मको प्रचार करते विचरे एसे गुरुवर श्रीवल्लभाचार्यजीकों प्रणाम करें हें ॥ १ ॥ दक्षिणआदिदिशाके जयकरवेवारे दूसरे सूर्य गुरुनकों नमस्कार करें हें जिनके प्रकाशमें दिन रात भक्तरूपी कमल प्रकाशित होंयहें ॥ २ ॥ बिल्वमंगलाचार्यके गये पीछें आह्निक करकें श्रीमदाचार्यजीने या पुरसो आगे जायवेको विचार कियो॥ ३ ॥ ओर अपने सगके शिष्यनसों कह्यो जो हम जायवेकी इच्छा करें हें सो मामा तथा माताकी आज्ञा लावो ॥ ४ ॥ तब सुखके स्थान एसे आपके चरण

तथाचक्रुरनुज्ञातं ज्ञातं वृत्तं ततो जनैः ॥
राज्ञा विज्ञैस्तथा सद्भिः पौरैर्जानपदैरपि ॥ ६ ॥
जनेशस्तां समाकर्ण्य विमनाविप्रियां गिरम् ॥
विद्वांसो वैष्णवाचार्याः सभ्याः सर्वे समागताः ॥ ७ ॥
प्रणेमुस्ते यथान्यायं कृतोपायनसत्क्रियाः ॥
बभाषे भूपतिस्तेषां निबद्धांजलिसंपुटः ॥ ८ ॥
श्रीमदाचार्यपादानां सांप्रतं किं चिकीर्षितम् ॥
युष्मद्दर्शनसंलापसेवासौख्याधियो वयम् ॥ ९ ॥
श्रुत्वैवं प्राहुराचार्य्यास्तीर्थयात्रासमुद्यमम् ॥
रोचिष्णुरदरोचिर्भिः प्रकाशितसभोदराः ॥ १० ॥
अगस्त्यपूता दिक् पूता तीर्थैरप्यमरालयैः ॥
दिवस्संपदमापन्नादिग्दंतिबलविश्रुता ॥ ११ ॥
तस्या यात्रां प्रति मनः सोत्कंठं चिरतो मम ॥
लब्धावकाशैरेतस्याः कृतेऽस्माभिः प्रवत्स्यते ॥ १२ ॥

कमलनमें अत्यन्त बँधे ओर आपके कथनमें अनुरागी शिष्यननें कह्यो बहुत ठीक जो आज्ञा ॥ ५ ॥ ओर ये कहकें वेसेही कियो तब या वृत्तान्तको लोगननें जान्यो ओर राजा विद्वान् सज्जन सब पुरके रहवेवारेननें जान्यो ॥६॥ राजा आपके जायवेकी सुनकें उदासभयो ओर विद्वान् वैष्णवाचार्य सभ्य सब आये ॥ ७ ॥ ओर प्रणाम करकें भेट करते भये उनमेंसों हाथ जोडकें राजा बोल्यो ॥ ८ ॥ जो श्रीमदाचार्यजीकी या समय कहा करवेकी इच्छा हे हम सब आपके दर्शनतें ओर सदुपदेशसों अतिसुखी हें ॥ ९ ॥ ये सुनकें प्रकाशमान अपने दन्तनकी किरणनकरकें सभाके मध्यकों प्रकाश करते श्रीमदाचार्यजीनें तीर्थयात्राके लिये आज्ञा करी ॥१०॥ जो अगस्त्यऋषिसों पवित्र तीर्थ ओर देवतानके मंदिरनकरकें पवित्र हाथीनकरकें प्रसिद्ध स्वर्गकी सम्पत्तिवारी जो दिशा हे ॥ ११ ॥ ताकी यात्रा करवेकों बहोत दिनासों

आनंदनाम्नोसाग्भर्तुर्निरानदाय गी श्रुता ॥
मेघानां च यथा नादो मुदे विरहिण कथम् ॥ १३ ॥
प्रपद्यते तीर्थसर्थ्यैं सतीर्थ्यैं सह गम्यते ॥
वितीर्थैर्जीव्यतेऽस्माभि कष्ट तीर्थमृतेहि न ॥ १४ ॥
निमज्जतां भवांभोधौ भवदंघ्रिधरातलम् ॥
प्राप्त चिराद्यदृच्छातस्तत्सद्योध्य प्रहाप्यते ॥ १५ ॥
सिंधुभि सद्गुणानां वै दीनोहं दीनबंधुभि ॥
कृपार्द्रैश्च कृपानाथैर्विधेय इति नाथ्यते ॥ १६ ॥
स्मरणीया सदैव स्म स्वकीया इति चेतसा ॥
कैंकर्यमुररीकार्य्यं समर्प्य स्वात्मदर्शनम् ॥ १७ ॥
गुरूणां समदृष्टीनामनुग्राह्या जगज्जना ॥
जानन्नपि जनोथापि स्वार्थायैवार्थयत्ययम् ॥ १८ ॥

हमारो मन उत्कठित हे यासों याके लियें अवकाशसों प्रवास करेंगे ॥१२॥ एसी वाणीके पति श्रीमदाचार्यजीकी वाणी राजाके कर्णनके लियें आनन्दप्रद नहीं भई जेसें मेघको शब्द विरहीके लिये ॥१३॥ राजा बोल्यो जो आप प्रवास करेंगे तो हमारे गुरुभाई भी सग जायेंगे तब शास्त्रकथासों शून्य होयकें में कैसें रहूंगो आपके विना मोकों अत्यन्त दुःख हे ॥१४॥ संसारसमुद्रमें डूब नेवारेनको आपके चरण पृथिवीतल हें बहुतदिनमें मिले हे सो जल्दीही आज छूटें हें ॥ १५॥ सो सद्गुणनके सिन्धु दीननके बन्धु कृपानाथ में दीन हूं मेरे ऊपर फिर भी कृपा करनी ये प्रार्थना करू हूं ॥१६॥ में आपको दास हूं ये चित्तसों सदा स्मरण राखनो मेरी सेवाको स्वीकार करनो फिर जल्दी अपने दर्शन देने ॥ १७ ॥ समदृष्टी गुरुनको जगत्के मनुष्य नके ऊपर अनुग्रह करनो चाहिये ये जानतेभी ये जन अपने स्वार्थके

अवश्यं यदि गंतव्यमागंतव्यं तथा पुनः ॥
अमोघास्त्वर्थनाऽस्माकं गुरूणां का निवारणा ॥ १९ ॥
विज्ञापनां धरेशस्य निशम्योचुस्तथास्तु ते ॥
आचार्य्या विदुषश्चैवं व्यसृजँस्तानथागतान् ॥ २० ॥
निजशिष्यजनैः साकं चलिताः पुरवर्त्मना ॥
अनुयाताः प्रजेशेन विद्भिः सद्भिर्जनैरपि ॥ २१ ॥
कौपीनाच्छादने धृत्वाऽजिन दंडकमंडलून् ॥
जटोपवीतमौंजीसृङ्मुद्राः पुंड्रं च पादुके ॥ २२ ॥
शोभिताःश्रीमदाचार्याश्चेलुः श्रीवामनायिताः ॥
छत्रं दधार भूपालो ग्रंथं दामोदरः स्वयम् ॥ २३ ॥
चामरद्वितयं शंभुः स्वयंभूश्च समादधे ॥
पूजावटिं स्वभूः साक्षाच्छेषं शेषादयः परे ॥ २४ ॥
अथाक्रमन् पुरात्तस्माद्यज्ञादिव त्रिविक्रमः ॥
विक्रमंतो नरानार्यः जगुर्यात्रां परस्परम् ॥ २५ ॥

लियेंही प्रार्थना करे हे ॥ १८ ॥ सो जो अवश्य पधारनोही हे तो फिर बी अवश्य पधारनो ये मेरी प्रार्थना सफल होय ॥ १९ ॥ ये प्रार्थना राजाकी सुनकें वेसेही होयगो ये कहकें आये भये विद्वाननसों विदा होयकें अपने शिष्यनके संग श्रीमदाचार्यजी वहाँसों पधारे ओर पीछें राजा विद्वान् सज्जनबी चले ॥ २० ॥ २१ ॥ कौपीन आच्छादनवस्त्र मृगचर्म दंड कमंडलु जटा जनेऊ मौंजी माला ऊर्द्ध्वपुंड्र षणमुद्रा पादुका इनकों धारण किये श्रीवामनजी जेसें चलते श्रीमदाचार्यजी शोभते हे राजानें छत्र दामोदरनें ग्रन्थ शम्भु स्वयम्भुनें दोनों चामर स्वभूनें सेवाकी झाँपी शेषभट्ट आदिनें शेष बाकीकी चीज लीन्ही ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥ पीछें वा पुरसों

हर्म्याट्टालगवाक्षेषु हट्टद्वाराजिरेषु च ॥
सधीभूता निशम्यैतामन्योन्यं तेऽभिभाषिरे ॥ २६ ॥
अथ हुताशन साक्षाज्जातो धर्मप्रवृत्तये ॥
श्रीविष्णुस्वामिपादानां शुद्धाद्वैतानुवादिनाम् ॥ २७ ॥
पाषण्डपक्षकक्षाणां दाहक पावकोनु किम् ॥
सुधांधसां सुधावाह्य सेव्योऽसौ भूसुधांधसाम् ॥ २८ ॥
वर्णाश्रमत्रयीधर्मकर्त्ता भर्त्ता तदध्वन ॥
समुद्धर्त्ता हरेर्भक्तिमार्गाणां चरमे युगे ॥ २९ ॥
घट्टनानेन विद्वास पटुना शास्त्रवर्त्मना ॥
जितास्सजवने राज्ञोऽधिगताचार्यपद्धति ॥ ३० ॥
अथ बालवपुश्चैकश्चरत्येव हि दिग्जयम् ॥
अर्द्धजातोऽपि पारीन्द्रः करीन्द्रान् धर्षितुं क्षम ॥ ३१ ॥

यज्ञसों वामनके जेसे पधारे सो ओर स्त्री पुरुष उनकी यात्राको परस्पर गान करते हे ॥ २५ ॥ महलनमें अटारीनमें झरोखानमें खिडकीनमे बाजारनमें द्वारनमें अगननमे चौरस्तानमें जमा होयके परस्पर बात करते हे ॥ २६ ॥ जो ये साक्षात् अग्निदेव हें धर्मको प्रवृत्त करवेके लिये प्रगट भये हे शुद्धाद्वैतवादी श्रीविष्णुस्वामीके मतके आचार्य हें ॥ २७ ॥ पाषडपक्षरूपी सूखे वनके दाह करवेवारे अग्नि हें देवतानको अमृत देवेवारे ब्राह्मणनके पूज्य हे ॥ २८ ॥ कलियुगमें वर्णाश्रम वैदिकधर्मके करवेवारे वैदिकमार्गकी रक्षा करवेवारे भगवानके भक्तिमार्गनके उद्धार करवेवारे हें ॥ २९ ॥ चतुर इन बालकन शास्त्रनके मार्गसों राजाकी सभामें पंडितनको जीत लियोहे ओर आचार्यपद पायो हे ॥ ३० ॥ ये बालशरीर एक ऐसें दिग्विजय करतहें छोटेभी सिंह हाथीनके मारवेमें समर्थ होय हे॥ ३१ ॥

किंवदंती श्रुता चास्य चंपारण्येऽभिजन्मनः ॥
सौमनस्यं सतामासीद्वृष्टिः सुमनसामपि ॥ ३२ ॥
व्यक्तीभूता दिवोवाचो याता तिष्योंचिता कृतः ॥
वर्तिष्यते त्रयीधर्मो भक्तिधर्मो विभास्यति ॥ ३३ ॥
वाराणस्यां निवसता तनुता शिवयोर्मुदम् ॥
वदतः प्रथमं वाचं व्यक्तीभूता पदावलिः ॥ ३४ ॥
अनल्पतपसां नोस्य दर्शनं नः पुरौकसाम् ॥
सुलभं वल्लभप्रभोर्द्रष्टारः पुण्यशालिनः ॥ ३५ ॥
इत्थं वृद्धांगनालापं जनालापमनेकधा ॥
शृण्वंतः श्रीमदाचार्य्यमानयंतः स्मितादिभिः ॥ ३६ ॥
विद्यानगरतो यातावियापाद्य विज्जयम् ।
सत्कृत्य तान् समायातान् परिवृत्य सहेश्वरान् ॥ ३७ ॥

ओर चम्पारण्यमें इनके जन्मकी कहावत सुनी हे जो जन्मसमय सब प्रसन्न भये ओर देवताननें पुष्पवृष्टि करी ॥ ३२ ॥ आकाशवाणी भई जो कलियुग जायगो सत्ययुग आवेगो वैदिकधर्म प्रवृत्त होयगो भक्तिधर्म विशेषकरके प्रकाशमान होयगो ॥ ३३ ॥ ओर भवानीमहादेवजीके आनन्दको बढावते काशीमें वास करते पहले पहेल इनके बोलते स्पष्ट वाणी निकसी ही ॥ ३४ ॥ जो बडी तपस्यावारे हमारे पुरमें वास करवेवारे मनुष्यनको वल्लभमहाप्रभुनको दर्शन सुलभ हे दर्शन करवेवारे पुण्यात्मा हें ॥ ३५ ॥ या प्रकार श्रीआचार्य्यजी वृद्धस्त्रीनकी ओर मनुष्यनकी अनेक तरहकी बातें सुनते स्मित आदिसों उनको मान करते ॥ ३६ ॥ आये भये राजाके सहित ओर सब लोगनको सत्कारसों पीछें लौटायकें विद्यासों जय करकें विद्यानगरसों पधारें

अथातरँस्तुगभद्रां कुर्वन्तस्तत्कथां मुदा ॥
व्रजतां पथि कस्मिंश्चिद्दिने तेषां महात्मनाम् ॥ ३८ ॥
श्रुत्वा विद्यापुरजयं तीर्थराजे समागतः ॥
कृष्णदासः प्रचलितो जवादायादिहैकलः ॥ ३९ ॥
स पादयोर्निपतितोऽनुगृहीतः कृपालुभिः ॥
शरणं समनुप्राप्तः कृपापात्रोऽभवत् प्रभो ॥ ४० ॥
तमाहुः श्रीमदाचार्याः कुतः कृष्ण समागतः ॥
आयातः कुशलं मार्गे साधु तत्किं कृते भवान् ॥ ४१ ॥
स चाह प्रणतो भूत्वा प्रयागात्समुपागतः ॥
श्रीमतां दर्शनाकांक्षी कुशली सर्वदास्म्यहम् ॥ ४२ ॥
हरेर्गुरोर्निदेशेन शरणार्थी समागतः ॥
अनुग्राह्यस्ततोनाथो नाथैः श्रीनाथमूर्तिभिः ॥ ४३ ॥
ततस्तु श्रीमदाचार्यैः कृपया मनुरर्पितः ॥
माला दत्ता मेघनाख्य क्षत्रियोऽयं कृतार्थितः ॥ ४४ ॥

॥ ३७ ॥ ओर तुंगभद्रा उतरके आनन्दसों कथा करते मार्गमें चलवे कोई दिन उन महात्मानकों ॥ ३८ ॥ प्रयागमें विद्यानगरको जय सुनके जल्दीसों एकले चले कृष्णदास आयके मिले ॥ ३९ ॥ ओर चरण कमलनमें गिरपडे तब दयालु श्रीमदाचार्यजीनें उनके ऊपर कृपा करके अपनो कृपापात्र बनायो ॥ ४० ॥ ओर उनसों आपनें आज्ञाकरी जो कृष्णदास कहाँसों आये कुशल हे क्यों आये ॥ ४१ ॥ तब वे नम्र होयके बोले जो आपके दर्शनकी इच्छासों प्रयागसों आयो हूं में आपकी कृपासों सदा कुशल हूं ॥ ४२ ॥ भगवान्की ओर गुरुनकी आज्ञासों शरण होयवेकी इच्छासों आयो हूं सो या अनाथके ऊपर भगवत्स्वरूप आप अनुग्रह करें ॥ ४३ ॥ तब श्रीमदाचार्यजीनें कृपा करके मन्त्र दियो

निजैस्तेन सहैवातः शिष्यैराचार्यसत्तमाः ॥
ससरुः सरसीं पंपां महर्ष्योपीतशंबराम् ॥ ४५ ॥
न्यग्रोधस्य तले तत्र न्यूषुरादेशिकोत्तमाः ॥
सस्नुस्तीर्थविधिं चक्रुराह्निकौपासनाहुतिम् ॥ ४६ ॥
पारायणं समारब्धं श्रीमद्भागवतस्य च ॥
तत्र वृत्तं समभवत् गीयते तत्पुराविदाम् ॥ ४७ ॥
अंतेवासिजनः कृष्णः पूजा सत्रकृते गुरोः ॥
कुशान् कुसुमपर्णैधश्चयं हर्त्तुं वनं गतः ॥ ४८ ॥
तत्राऽपश्यत् पतंगस्य पतंगं तप्तमंशुभिः ॥
तृषार्तमार्त्तं तं ज्ञात्वा नीत्वांब्वस्मै ददौ घृणी ॥ ४९ ॥
गुरुपादोदकं पीत्वा हित्वा तिर्यक्कलेवरम् ॥
सद्द्विजोऽजद्धरेर्द्धाम धृत्वा दिव्यकलेवरम् ॥ ५० ॥
श्रीमदाचार्यमाहात्म्यं छात्रेष्वेव न चित्रताम् ॥
चक्रे सुपर्ववर्गेषु भालयत्सु द्विपात्स्वपि ॥ ५१ ॥

ओर माला दीनी ओर या मेंघन क्षत्रीकों कृतार्थ कियो ॥ ४४ ॥ ओर पीछें इनकें तथा ओर सब अपने शिष्यनके संग महर्षिनसों पान कियो जाय हे जल जाको एसे पंपासरोवरकों गये ॥ ४५ ॥ वहाँ वटके नीचे विराजे स्नान तीर्थविधि आन्हिक औपासन होम कियो ॥ ४६ ॥ श्रीमद्भागवतको पारायण प्रारम्भ कियो वहाँ सबके समक्ष जो वृत्तान्त भयो वो ये हे ॥ ४७ ॥ जो वहाँ आपकी सेवा करवेके लियें कृष्णदास कुशा पुष्प पत्ता समिधा इनकों लेवेकों वन गये ॥ ४८ ॥ वहाँ सूर्यके किरणसों तपते प्यासे दुःखित एक पक्षीकों जानकें वाकों लायकें जल पियायो ॥ ४९ ॥ सो वो पक्षी गुरुनको चरणामृत पीकें पक्षीकी देह छोडकें दिव्य शरीर धारण करकें हरिकें धामको गयो ॥ ५० ॥ या श्रीमदाचार्यके माहात्म्यनें

जगुर्नित्यकथाया ते कोशलेन्द्रकथां निशि ॥
गुरवस्तत्र शिष्येभ्य शबरीसमनुग्रहम् ॥ ५२ ॥
उषित्वात्र त्रिरात्रातेऽपररात्रे समुत्थिता ॥
स्नात्वा कृत्वाह्निक याता ऋष्यमूकाय सगवे ॥ ५३ ॥
यात्राविधिं विधायात्र स्थिता सिंहासनार्चने ॥
तावत्तत्र समयातो रामदासो महत्तर ॥ ५४ ॥
सेर्ष्योदररवं श्रुत्वा निरोद्धु स्वगणान् जगौ ॥
श्रुत्वा प्रभावमार्याणां सगणश्शिष्यतां गत ॥ ५५ ॥
माहात्म्य रामनाम्नोपि मन्त्रराजस्य कीर्तितम् ॥
आचार्यै कर्णपीयूषं पीत्वायोऽमरतां गत ॥ ५६ ॥
किष्किधामृष्यमूक च यात्रया चैकघस्रया ॥
सेवित्वाऽभ्यसरैंस्तस्मात् द्रष्टु स्कदं सुरेश्वरम् ॥ ५७ ॥

शिष्यनकोहीं आश्चर्यवारे नहीं किये किन्तु याके देखवेवारे देवतावी आश्चर्य पावते भये ॥ ५१ ॥ आप रातको नित्य कथामें श्रीराम चन्द्रजीकीवी कथाकरते हे वामें शिष्यनको शबरीके अनुग्रहकी कथा सुनाई ॥ ५२ ॥ ओर तीन रात यहाँ रहकें चौथे दिन स्नानादिक नित्य आन्हिक करकें ऋष्यमूक पर्वतकों गये ॥ ५३ ॥ यहाँकी यात्रा करकें सिंहासनपे विराजमान भये तब कोई रामभक्त महात्मा आये ॥ ५४ ॥ ओर ईर्षासों शब्दको शब्द सुनकें अपने शिष्यनसों रोकवेके लियें कह्यो परन्तु आचार्य नको प्रभाव सुनकें शिष्यसमेत पीछें शिष्य भये ॥ ५५ ॥ ओर आचार्यनसों मन्त्रराज रामनामकोवी अमृतरूपी माहात्म्य सुनकें देवीजन होयगये ॥ ५६ ॥ एसे किष्किन्धा ऋष्यमूककी एक दिनकी यात्रा करकें यहाँसों

दहशुः शिखिपत्रं तं त्यक्तसाचीहरालयम् ॥
नत्वा स्तुत्वा विधिं कृत्वा तत्रत्यमवसान्निशाम् ॥ ५८ ॥
कथायां कथ्यमानायां क्षणदायां विचक्षणाः ॥
पंडिताः समनुप्राप्ताः स्कांददर्शनमंडिनः ॥ ५९ ॥
कथावसाने ते सर्वे प्रणम्योचुर्महाप्रभून् ॥
अंतस्तद्धर्मसूत्रेऽस्मिन् कथं स्कंदोन वर्णितः ॥ ६० ॥
सोंतर्यामी शक्तिधरः षडाम्नायैः समर्चितः ॥
परास्यशक्तिरित्यादौ सोक्तोमंत्रांतरेष्वपि ॥ ६१ ॥
वभाषिरे तदाचार्योवाढं तद्भक्तिशालिनाम् ॥
तथा विधिः स युष्माकं माननीयः षडाननः ॥ ६२ ॥
शैवं च वैष्णवं शाक्तं सौरं गाणपतं तथा ॥
स्कांदं च भक्तिमार्गस्य दर्शनानि षडेव हि ॥ ६३ ॥
इत्थं पुराणसारोक्त्या दर्शनानां समत्वतः ॥
स्वस्वदर्शनसंस्थेन ध्येयोंतर्याम्यसौ भवेत् ॥ ६४ ॥

स्कंदस्वामि (कार्तिकेय) स्वामीके दर्शनकों चले ॥ ५७ ॥ सो उनके दर्शन स्तुतिकरकें एक रात्र वहाँ वसे ॥ ५८ ॥ ओर रात्रिमें कथा करते समय वहाँके पंडित आये सो कथाके अन्तमें वे सब प्रणाम करकें महाप्रभुनसों बोले जो "अन्तस्तद्धर्म" या व्यासजीके सूत्रमें स्वामिकार्तिककोवर्णन क्यों नहीं कियो ॥ ५९ ॥ ६० ॥ वे अन्तर्यामी शक्तिके धारण करवेवारे वे दमें "परास्यशक्तिः" इत्यादिमंत्रनमें ओर दूसरेबीमंत्रनमें गाये हें ॥ ६१ ॥ तव आपनें कही बोले जो ठीक हे उनके भक्तनको वोही विधि हे वे तुमको माननीय हें ॥ ६२ ॥ शैव वैष्णव शाक्त सौर गाणपत्य ओर स्कांद भक्ति मार्गके येही छा शास्त्र हें ॥ ६३ ॥ या प्रकार पुराणके सारसों दर्शन-

मयात्र श्रुतिमार्गेण पुरुष समुदाहृत ॥
गीतादिमानबलत कथित पुरुषोत्तम ॥ ६५ ॥
यथा यथा गुणादर्शे दृश्यंतेर्का स्वतोर्कत ॥
तथा तथा क्षरा पुंसो भ्राजंते पुरुषा परे ॥ ६६ ॥
यत्र सर्वे सम यांति स्वभासेन पृथक् पृथक् ॥
सोक्षर पुरुष प्रोक्तोयोन्तस्थ पुरुषोत्तम ॥ ६७ ॥
एकत्वेन पृथक्त्वेन ध्यायता विश्वतोमुखम् ॥
पारपर्य्यात्तमेत्येव सरित सागरं यथा ॥ ६८ ॥
अन्यथा वचसा भेदे न ह्यभेद प्रसिध्यति ॥
तदसिद्धो वृथा शास्त्रं तथा वेदांतमाश्रितम् ॥ ६९ ॥
वेदांतविवृतिर्गीता गीतया पुरुषोत्तम ॥
गीयते सद्धरिर्नूनं सर्वाकारोयतोमतः ॥ ७० ॥
इत्युक्ते श्रीमदाचार्ये कुमारार्यस्तदाऽब्रवीत् ॥
सर्वाकारोयदाकारस्तदाकार स कीदृशः ॥
हरिसंज्ञा कुतस्तास्य मानं गीतैव किं प्रभो ॥ ७१ ॥

मकी समतासों अपने २ मार्गके अनुसार अन्तर्यामीको ध्यान करनो ॥ ६४ ॥ ओर हम वेदमार्गसों पुरुष कहे हें गीताआदिके प्रमाणसों पुरुषोत्तम कहे हें ॥ ६५ ॥ जेसे जेसे गुणवारे सूर्यके बिम्ब काँचमें दीख पडे हें वाहीप्रकार क्षर पुरुषभी भासे हे ॥ ६६ ॥ ओर जामें वे सब अपने २ तेजसों सम होयजाय हें वो व्यापक अक्षर पुरुष हे ताकों पुरुषोत्तम कहे हें ॥ ६७ ॥ एकतरहसों अथवा अनेकतरहसों ध्यान करवेवारेभी परम्परासों वाहीमें पहुँचतहें जेसे नदी समुद्रमें ॥ ६८ ॥ नहीं तो वचनमके भेदसों अभेद नहीं सिद्ध होयगो वाकी असिद्धिमें वृथा शास्त्र हें ओर वेदान्तको आश्रय वृथा हे ॥६९॥ वेदान्तको विवरण गीता पुरुषोत्तमको मान करे हे ओर वे सर्वाकार हें ॥ ७० ॥ एसे श्रीमदाचार्यजीके कहत पे

तमाहुः पुनराचार्या विश्वतश्चक्षुरादिभिः ॥
निरूप्यते यदाकारस्तदाकारोऽस्य संमतः ॥ ७२ ॥
हरिसंज्ञा श्रुतौ तस्य गीयते शब्दतोऽर्थतः ॥
गीतैव मानं पूर्वेषामाचार्याणां समादरात् ॥ ७३ ॥
वेदे रामायणे चैव पुराणे भारते तथा ॥
आदौ मध्ये तथा चान्ते हरिः सर्वत्र गीयते ॥ ७४ ॥
पुरुषोत्तमसंज्ञस्य हरिसंज्ञा निरूप्यते ॥
शिष्टव्याख्यातमानानां प्रामाण्यं चाप्यसंशयात् ॥ ७५ ॥
श्रुतिस्तु प्रथमं मानं स्मृतिस्तदनुगामिनी ॥
आद्यद्वैधे ह्युभौ मान्यौ कल्पः कल्पोऽपरः परे ॥ ७६ ॥
दर्शनानां मिथो बाधात् कल्प्यते विषयः परः ॥
वेदांतदर्शनात्तत्र सर्वात्मा पुरुषोत्तमः ॥ ७७ ॥

कुमारार्य बोले जो जाको आकार सर्वाकार हे वो केसो हे ताकी हरिसंज्ञा क्यों हे गीताही क्यों प्रमाण हे ॥ ७१ ॥ तब उनसों श्रीमदाचार्य फिर बोले जो 'विश्वतश्चक्षुः, इत्यादि मन्त्रनसों जो आकार निरुपण कियो गयो हे वोही उनको हे ॥ ७२ ॥ उनको हरि ये नाम श्रुतिमें शब्द ओर अर्थसों बी कह्यो गयो हे पहलेके आचार्यनके आदरसों गीताही प्रमाण हे ॥ ७३ ॥ वेद रामायण पुराण भारत इनमें पहलें, बीचमें, अन्तमें, सब जगह हरि हीं गाये जाँय हें ॥ ७४ ॥ पुरुषोत्तमहीको हरि ये नाम हे शिष्टनके व्याख्यानबी संशय न होयवेसों प्रमाण हें ॥ ७५ ॥ पहलें श्रुतिप्रमाण हे पीछें ताके अनुसार स्मृति प्रमाण हे दो तरहकी स्मृति होंय तो दोनों प्रमाण हें स्मृति विरुद्ध होयतो भिन्नाधिकारसों पक्ष कल्पना करनों ॥ ७६ ॥ शास्त्रनके परस्पर बाधसों दूसरे विषयकी कल्पना करनी वहाँ वेदान्तशास्त्रसों सर्वात्मा

तं यूय स्कंदरूपेण पूजयंत सनातनम् ॥
स्कदलोकं समासाद्य गमिष्यथ परां गतिम् ॥ ७८ ॥
इत्थं निशम्य वचनमाचार्य्याणां मुखोत्थितम् ॥
सर्वे प्रसन्नमनस साधु साध्विति सस्तुवन् ॥ ७९ ॥
सत्य सत्यगिरोयूय गुरवो गुरवो हि न
दर्शितं तत्त्वमस्माक हरि स्कदस्वरूपधृक् ॥ ८० ॥
स्कदरूपेण हि हरिं वय तु भवदाज्ञया ॥
नित्य वै पूजयिष्यामो यास्यामो हरिमव्ययम् ॥ ८१ ॥
केचित्प्राहु पुनर्विप्रा हरिर्यद्यखिलात्मक ॥
तदा तमेव देवेशं पूजयाम परैर्नु किम् ॥ ८२ ॥
शाखिनोमूलसेकेन शाखा तृप्यति चेद्यदि ॥
शाखासेकेन किं तत्र शाखितर्पणमुत्तमम् ॥ ८३ ॥
मूलनालायितोविष्णु सुरशाखिवरस्य च ॥
विशाखाद्या स्मृता शाखास्ततो विष्णुमुपास्महे ॥ ८४ ॥

पुरुषोत्तमही हे ॥७७॥ उन सनातनको स्कदरूपसों पूजन करवेवारे तुम भी स्कदलोककों पायकें अच्छी गतिकों जावोगे ॥ ७८ ॥ एसे आचार्यनके वचननकों सुनके वे प्रसन्न मन होयके बहुत ठीक बहुत ठीक एसी स्तुति करवे लगे ॥ ७९ ॥ सत्य हे सत्यवादी आप हें हमारे गुरु हें हमको आपने तत्व दिखायो स्कदरूपधारण करवेवारे हरि हें ॥ ८० ॥ स्कंदरूपसों हरिकी आपकी आज्ञासों नित्य पूजा करें गे ओर अविनाशी हरिको पावेंगे ॥ ८१ ॥ उनमेंसों कोईमें कह्यो जो हरि सर्वात्मक हे तो उन्हींकी पूजा करेंगे ॥ ८२ ॥ वृक्षके मूलमें सींचवेसों जो शाखा तृप्त होयहे तो शाखासींचवेसों कहा हे वृक्षको सींचनोही अच्छो हे ॥ ८३ ॥ देवता रूपशाखानके मूल जड विष्णु हें स्कद आदि शाखा हें यासों विष्णुहीकी

इत्युक्त्वाचार्य्यचरणौ गृहीत्वा शरणं गताः ॥
वर्णाश्रमाचारधर्मानाचार्येभ्यः प्रपेदिरे ॥
प्रणम्य च प्रशस्यैवं ते सर्वे स्वगृहान् ययुः ॥ ८५ ॥
आचार्य्याः प्रस्थितास्तस्माच्छ्रीशैलं प्रति सानुगाः ॥
श्रीशैलं समनुप्राप्य दृष्ट्वा श्रीमल्लकार्जुनम् ॥ ८६ ॥
कृतोपढौकिता नेमुश्चक्रुः क्षेत्रप्रदक्षिणम् ॥
औपासनंच निर्वर्त्य पूजयामास माधवम् ॥ ८७ ॥
पाकं समर्प्य देवाय भुक्त्वा तत्र यदा स्थिताः ॥
योगिनस्तत्र संप्राप्ता धृतभोगिकलेवराः ॥ ८८ ॥
भस्मना दिग्धसर्वांगाः शैवा विप्रविदस्तथा ॥
कश्चिदाह पुरस्तेषामाचार्याणां पुरः स्थितः ॥ ८९ ॥
के यूयं कुत आयाताः क्व यातारः क्व तिष्ठथ ॥
आचार्यास्तु तदा वाक्यं प्रहस्यैतज्जगुस्तदा ॥ ९० ॥

उपासना करेंगे ॥ ८४ ॥ ये कहके आचार्यनके चरणकमल धरकें शरण आये ओर वर्ण आश्रम के आचार धर्म सीखते भये ओर प्रणाम करकें प्रशंसा करकें सब अपने २ घरनकों गये ॥ ८५ ॥ श्रीमदाचार्य परिकरसमेत वहाँसों श्रीशैलकों गये वहाँ श्रीमल्लकार्जुनके दर्शन कर ॥ ८६ ॥ भेंट कर प्रणाम करकें क्षेत्रकी प्रदक्षिणा करते भये ओर औपासनसों निवृत्त होयकें भगवानकी सेवा कर ॥ ८७ ॥ देवकों पाक अर्पण कर भोजन करकें जब विराजमान भये तबही सर्पनकों लियें योगी आये ॥ ८८ ॥ ओर भस्मसों सब शरीरपोतें शैव ब्राह्मण विद्वान्भी आये उनमेंसों कोई एक आचार्यनके सामनें आयकें बोल्यो ॥ ८९ ॥ जो तुम कोन हो कहाँसों आये कहाँ जावोगे कहाँ ठाडे हो तब आचार्य हँसकें बोले ॥ ९० ॥

त यूयं स्कदरूपेण पूजयंत सनातनम् ॥
स्कदलोकं समासाद्य गमिष्यथ परां गतिम् ॥ ७८ ॥
इत्थं निशम्य वचनमाचार्य्याणां मुखोत्थितम् ॥
सर्वे प्रसन्नमनसः साधु साध्विति सस्तुवन् ॥ ७९ ॥
सत्य सत्यगिरोयूय गुरवो गुरवो हि न
दर्शितं तत्त्वमस्माक हरि स्कदस्वरूपधृक् ॥ ८० ॥
स्कंदरूपेण हि हरिं वय तु भवदाज्ञया ॥
नित्य वै पूजयिष्यामो यास्यामो हरिमव्ययम् ॥ ८१ ॥
केचित्प्राहु पुनर्विप्रा हरिर्यद्यखिलात्मक ॥
तदा तमेव देवेशं पूजयाम परैर्नु किम् ॥ ८२ ॥
शाखिनोमूलसेकेन शाखा तृप्यति चेद्यदि ॥
शाखासेकेन किं तत्र शाखितर्पणमुत्तमम् ॥ ८३ ॥
मूलनालायितोविष्णु सुरशाखिवरस्य च ॥
विशाखाद्या स्मृता शाखास्ततो विष्णुमुपास्महे ॥ ८४ ॥

पुरुषोत्तमही है ॥७७॥ उन सनातनको स्कंदरूपसों पूजन करवेवारे तुम बी स्कदलोकको पायकें अच्छी गतिकों जावोगे ॥ ७८ ॥ एसे आचार्यनके वचननकों सुनके वे प्रसन्न मन होयके बहुत ठीक बहुत ठीक एसी स्तुति करवे लगे ॥ ७९ ॥ सत्य हे सत्यवादी आप हे हमारे गुरु हें हमको आपने तत्व दिखायो स्कदरूपधारण करवेवारे हरि हे ॥ ८० ॥ स्कदरूपसों हरिकी आपकी आज्ञासों नित्य पूजा करें गे ओर अविनाशी हरिकों पावेंगे ॥ ८१ ॥ उनमेंसों कोईनें कह्यो जो हरि सर्वात्मक हे तो उन्हीकी पूजा करेंगे ॥ ८२ ॥ वृक्षके मूलमें सींचवेसों जो शाखा तृप्त होयहे तो शाखाओंसींचवेमों कहा हे वृक्षको सींचनोही अच्छो हे ॥ ८३ ॥ देवता रूपशाखानके मूल जब विष्णु हें स्कद आदि शाखा हें यासों विष्णुहीकों

इत्युक्त्वाचार्य्यचरणौ गृहीत्वा शरणं गताः ॥
वर्णाश्रमाचारधर्मानाचार्येभ्यः प्रपेदिरे ॥
प्रणम्य च प्रशस्यैवं ते सर्वे स्वगृहान् ययुः ॥ ८५ ॥
आचार्य्याः प्रस्थितास्तस्माच्छ्रीशैलं प्रति सानुगाः ॥
श्रीशैलं समनुप्राप्य दृष्ट्वा श्रीमल्लकार्जुनम् ॥ ८६ ॥
कृतोपढौकिता नेमुश्चक्रुः क्षेत्रप्रदक्षिणम् ॥
औपासनंच निर्वर्त्य पूजयामास माधवम् ॥ ८७ ॥
पाकं समर्प्य देवाय भुक्त्वा तत्र यदा स्थिताः ॥
योगिनस्तत्र संप्राप्ता धृतभोगिकलेवराः ॥ ८८ ॥
भस्मना दिग्धसर्वांगाः शैवा विप्रविदस्तथा ॥
कश्चिदाह पुरस्तेषामाचार्याणां पुरः स्थितः ॥ ८९ ॥
के यूयं कुत आयाताः क्व यातारः क्व तिष्ठथ ॥
आचार्यास्तु तदा वाक्यं प्रहस्यैतज्जगुस्तदा ॥ ९० ॥

उपासना करेंगे ॥ ८४ ॥ ये कहके आचार्यनके चरणकमल धरकें शरण आये ओर वर्ण आश्रम के आचार धर्म सीखते भये ओर प्रणाम करकें प्रशंसा करकें सब अपने २ घरनकों गये ॥ ८५ ॥ श्रीमदाचार्य परिकरसमेत वहाँसों श्रीशैलकों गये वहाँ श्रीमल्लकार्जुनके दर्शन कर ॥ ८६ ॥ भेंट कर प्रणाम करकें क्षेत्रकी प्रदक्षिणा करते भये ओर औपासनसों निवृत्त होयकें भगवानकी सेवा कर॥८७॥ देवकों पाक अर्पण कर भोजन करकें जब विराजमान भये तबही सर्पनकों लियें योगी आये ॥८८॥ओर भस्मसों सब शरीरपोतें शैव ब्राह्मण विद्वान्भी आये उनमेंसों कोई एक आचार्यनके सामनें आयकें बोल्यो ॥ ८९ ॥ जो तुम कोन हो कहाँसों आये कहाँ जावोगे कहाँ ठाडे हो तब आचार्य हँसकें बोले ॥ ९० ॥

वय तु ब्राह्मणा ब्रह्मनीवृत्त समुपागता ॥
ब्रह्मैव पुनरेष्यामो नित्य ब्रह्मनिवासिन ॥ ९१ ॥
भोगिकायस्तदा प्राह वयं योगप्रभावत ॥
गधर्वयक्षवेतालसिद्धलोकान् व्रजामहे ॥ ९२ ॥
आचार्यास्तु तदा प्राहु किमाभि क्षुद्रसिद्धिभि ॥
येषां स्वर्गेऽपवर्गेपि न स्पृहा जायते हृदि ॥ ९३ ॥
अणिमाद्या महत्यो या योगीन्द्रैरपि वांछिता ॥
ता स्वयं समनुप्राप्ता ये न पश्यति चक्षुपा ॥ ९४ ॥
तेषां श्रीहरिभक्तानां किं नस्ते क्षुद्रसिद्धिभि ॥
पदवाक्यप्रमाणेषु वद सिद्ध्याऽसि गर्वित ॥ ९५ ॥
शेषभट्टस्तदा प्राह ह्याचार्याणां पुरस्तव ॥
सिद्ध्यो न समेष्याति सिद्धश्चेद्याहि केतनम् ॥ ९६ ॥

जो हम ब्राह्मण हैं ब्रह्मदेशसों आये हैं ब्रह्महीकों जायेंगे ब्रह्महीमें वसे हैं ॥ ९१ ॥ तब सर्पधारी बोल्यो जो हम योगके प्रभावसों गधर्व यक्ष वेताल सिद्ध इनके लोकनकों जॉय हैं ॥ ९२ ॥ तब आचार्य बोले जो इन क्षुद्रसिद्धीनसों कहा है जिनके हृदयमें कभी स्वर्गमोक्षकीभी इच्छा नहीं रहे है ॥ ९३ ॥ जिनकी बडे २ योगी इच्छा करे हैं वे अणिमादिक बडी सिद्धि अपने आप प्राप्त होंय हैं तो बी नेत्रसों उनकों नहीं देखें हैं ॥ ९४ ॥ एसे हरिभक्तनकों तुम्हारी क्षुद्रसिद्धीनसों कहा है ओर जो सिद्धिको अहंकार राखो हो तो पद वाक्य प्रमाणमें कछु बोलो ॥ ९५ ॥ तब शेषभट्ट बोले जो आचार्यनके सामने तुम्हारी सिद्धि नहीं चलेगी सिद्ध होवो तो स्थानकों जावो ॥ ९६ ॥ तब वो बड़ो क्रोध करकें अपने मनुष्यनके संग उठ्यो ओर जायवेकों बडो यत्न

स तदा क्रोधमुन्निन्ये निजैः सह समुत्थितः ॥
गंतुं प्रयतमानोपि भग्नयत्नोऽपतद्भुवि ॥ ९७ ॥
दंडवत्प्रणिपत्याह वयं शंभुगणाः प्रभो ॥
क्षंतव्या अनुकंप्याश्च महद्भिस्तु भवादृशैः ॥ ९८ ॥
शेषभट्टस्तदा प्राह गच्छ गच्छ यथासुखम् ॥
गुरूणां पादयोर्नत्वा मुच्यते संसृतेरपि ॥ ९९ ॥
ततस्तु स गतः सिद्धो वृद्धः शिष्यजनैः सह ॥
विदो विप्राः प्रणम्याथ शिष्यत्वं समुपागताः ॥ १०० ॥
श्रीवेदव्यासविष्णुप्रभुचरणमिते संमिते ग्रन्थसार्थैः
श्रीगोविन्दाभिधानां समयनयविदां देशिकानां निदेशात् ॥
आचार्याणां चरित्रे हरिजनसुखदे शास्त्रिकृष्णैर्निबद्धे
प्रस्थानेऽस्मिंस्तृतीये समजनिपटहश्चैषआद्योजयाख्ये॥ १०१॥



कियो तो बी जमीन पे गिर पड्यो ॥ ९७ ॥ ओर दंडवत् प्रणाम करकें बोल्यो जो हम महादेवके गण हें हे प्रभो क्षमा करो ॥ ९८ ॥ तब शेष-भट्ट बोले जो जावो २ सुखसों गुरूनके चरणनकों नमस्कारकर संसारसोंबी मुक्त होयजाँय हें ॥ ९९ ॥ तब वो वृद्ध अपने शिष्यनके संग गयो ओर वहाँके विद्वान् ब्राह्मण प्रणाम करकें शिष्य होते भये ॥ १०० ॥ समय-नीतिके जाननेवारे जगद्गुरु श्रीगोविन्दाचार्यजी महाराजकी आज्ञासों कृष्ण-शास्त्रीके बनाये भये श्रीमद्वेदव्यासविष्णुस्वामिसम्प्रदायके ग्रन्थनके अनुकूल हरिभक्तनके सुख देवेवारे या श्रीमदाचार्यचरित्रग्रन्थके तीसरे प्रस्थानमें ये प्रथम पटह समाप्त भयो ॥ १०१ ॥



गुरस परमानंदास्तत प्रचलिता शनैः ॥
पाठयंतश्च शास्त्राणि त्रिपतिग्राममाययु ॥ १ ॥
गोविन्दस्वामिन तत्र दृष्ट्वा नत्वा कृतार्चना ॥
स्नात्वा कपिलधारायां शेषाचलमथारुहन् ॥ २ ॥
ततो वेदाचल जग्मुरितोऽथ गरुडाचलम् ॥
वृषभाचलमारुह्यांजनाचलमुतारुहन् ॥ ३ ॥
नारायणाचल प्राप्यावतीर्णा व्यंकटाचलम् ॥
अधित्यकायां तस्याऽपि क्षेमकरतरोरध ॥ ४ ॥
उपविष्टा वेदिकायां सस्नुश्चक्रुर्निजाह्निकम् ॥
श्रीलक्ष्मणप्रभो श्रुत्वा तदाचार्याश्च सेवका ॥ ५ ॥
आयाताञ्छ्रीमदाचार्यानभिनेतुं समागता ॥
शंखघंटादिनिनदैर्गद्यपद्यजयस्वनै ॥ ६ ॥
चामरव्यजनच्छत्रैर्नीता स्वाचार्यवर्त्मना ॥
प्रणेमुर्व्यंकटाधीश दृष्ट्वा कृत्वोपढौकितम् ॥ ७ ॥

पीछें परमानन्दस्वरूप आप वहाँसों धीरें २ चल्ते शास्त्रनकों पढावते त्रिपतिग्राममें आये ॥ १ ॥ वहाँ गोविन्दस्वामीके दर्शन नमन अर्चन ओर कपिलधारामें स्नान करकें शेषाचलमे चढे ॥ २ ॥ सो वेदाचल गरुडाचल वृषभाचल अजनाचल ॥ ३ ॥ नारायणाचल इन पर्वतनपे चढकं व्यंकटाचलपे उतरे ओर वाके उपरकी भूमिमें क्षेमकरवृक्षके नीचे ॥ ४ ॥ वेदीके ऊपर विराजे ओर स्नान करकें आह्निककर्म कियो तब श्रीलक्ष्मणप्रभुके आचार्य तथा सेवक सुनकें ॥ ५ ॥ आये भये श्रीमदाचार्यकों लेवेके लियें आये ओर शख घटा आदिके शब्दसों गद्यपद्यके जय जय शब्दसों ॥ ६ ॥ चामर पखा छत्र इनसों अपने आचार्यनकी रीतिसों आपको पधराये ओर

नैवेद्यं कारयामासुः स्नानं पूजांशुकादिकम् ॥
तीर्थं प्रसादं जगृहुस्तीर्थयात्रां तथा व्यधुः ॥ ८ ॥
मधुद्विषो मुदे तत्र चक्रुः पारायणं श्रुतेः ॥
श्रीमद्भागवतस्यापि कथासत्रं कृतं महत् ॥ ९ ॥
तेन श्रीलक्ष्मणेशस्य प्रीतिः प्रत्ययदाभवत् ॥
व्यंकटाद्रेः परस्तात्तु धारां पातकहारिणीम् ॥ १० ॥
मूर्ध्नां विमलपानीयमूद्वासस्तुः पृथक् पृथक् ॥
इंदिरामलवालंबां स ददर्शानुगैस्ततः ॥ ११ ॥
अहोबलनृसिंहं च परस्ताद्ददृशुर्गताः ॥
परावृत्यागतास्तस्माल्लब्ध्वाऽनुज्ञां हरेरथ ॥ १२ ॥
कामकोष्णीं समायाताः प्रेमधूरीं ततो गताः ॥
तत्राहुः परमानंदाचार्याः कांचीनिवासिनः ॥ १३ ॥
विष्णुस्वामिप्रभोरत्र तृतीयस्य जनिः शुभा ॥
श्रीसंप्रदायाचार्यस्य रामानुजमुनेरपि ॥ १४ ॥

आप व्यंकटाधीशकों प्रणाम दर्शन भेट करकें ॥ ७ ॥ स्नान पूजा वस्त्र आदि करायकें नैवेद्य करावते भये ओर तीर्थ चरणामृत प्रसाद लेकें तीर्थयात्रा करते भये ॥ ८ ॥ ओर श्रीहरिकी प्रसन्नताके लियें वेदको पारायण श्रीमद्भागवतको पारायण एसो बडो कथायज्ञ कियो ॥ ९ ॥ तामें श्रीलक्ष्मणबालाजीकी प्रीति परिचयके देवेवारी भई ओर वा पर्वतसों आगे पापनाशिनी गंगाकों गये ॥१०॥ ताकी विमलधारा मस्तकपे लेकें स्नान कियो पीछें अलंवालम्बा लक्ष्मीके ओर अहोबलनृसिंहके दर्शन करक पीछे आये फेर भगवान्‌की आज्ञा लेकें ॥ ११ ॥ १२ ॥ कामकोष्णीकों आये वहांसों प्रेमधुरी गये वहाँ कांचीके निवासी परमानंद आचार्यने कह्यो जो काञ्ची निवासी तीसरे विष्णुस्वामीजी ओर श्रीसम्प्रदायके

संभूतिस्तेन विख्यातो भूतिग्रामोयमेव हि ॥
तत्रत्यै पूजिताचार्यै कांचीं प्रति ततो गता ॥ १५ ॥
नित्य पुण्यजनाकीर्णां वृषाकप्यो प्रियां पुरीम् ॥
सप्ततंतो शतधृतेर्मिपत्स्वनिमिपेषु च ॥ १६ ॥
प्रादुर्भूतो हरिर्यत्र श्रीहस्तगिरिनायकः ॥
एकाम्बरेश्वर तत्र शिवकांच्यां महेश्वरम् ॥ १७ ॥
सुरासुरशिरोरत्नैर्नीराजितमनीनमन् ॥
गगाधर प्रसाद्यैव समर्हणसमर्पणे ॥ १८ ॥
नदीं वेगवतीं नत्वा कृत्वा तीर्थविधिं पुन ॥
विष्णुकाञ्च्यामनुप्राप्ता निविष्टाश्च शमेरध ॥ १९ ॥
द्रष्टु श्रीवरदेशांघ्री यद्यप्युत्कंठिताश्चिरात् ॥
तथापि नाचलञ्छ्रुत्वाऽष्टपद्यांकितपद्धतिम ॥ २० ॥

रामानुजाचार्यजीकी ये जन्मभूमि हे ॥ १३ ॥ १४ ॥ याहीसों याको नाम भूतिग्राम पर्‍यो हे पीछें वहाँके आचार्यनसों पूजा किये गये काञ्चीकों गये ॥ १५ ॥ जो पुण्यात्माजननसों व्याप्त हे हरिहरकी प्यारी पुरी हे जहाँ ब्रह्माके यज्ञमें देवनानके देखतें ॥ १६ ॥ श्रीहस्तपर्वतके नायक श्रीवरदराज हरि प्रगट भये हे यहाँ शिवकाञ्चीमें एकाम्बरेश्वर महादेवजी ॥ १७ ॥ जिनकी देवदैत्यनके मस्तकरूपीरत्ननसों नीराजना होयहे उनकों नमन कर भेट आदिके अर्पणसों उनकों प्रसन्न कर ॥ १८ ॥ वेग वती नदीका नमस्कार कर तीर्थविधि कर विष्णुकाञ्चीमें आये ओर शमीवृ क्षके तल विराजे ॥१९॥ यद्यपि श्रीवरदराजजीके चरणनके देखवेकी बहुत दिनासों उत्कठाही तोभी अष्टपदीसो चिन्हितभई सीढीनकों सुनके न पधारे२०

तद्धर्मसंकटे तप्ता दधुस्तं श्रीहरिं हृदि ॥
अपृच्छत् कारणं व्यक्तोनिश्यसावववदंस्तु ते ॥ २१ ॥
न चोल्लंघति नाम्नाऽपि सरितं यः सरस्वतीम् ॥
सोल्लंघति कथं साक्षाद्भवत्कीर्तिसरस्वतीम् ॥ २२ ॥
श्रुत्वैतद्भगवानाह विष्णुस्वामिमतानुगः ॥
जयदेवोवसदिह तेन चित्ते विचिंतितम् ॥ २३ ॥
कीर्तिकायोऽक्षरैर्नद्धो नित्त्यस्स्यादिति सोऽकरोत् ॥
स्तोत्रात्मना भक्तपद्मां सोपानालिं समाश्रितम् ॥ २४ ॥
मया पूर्वमपूर्वं ते भावं चित्ते विजानता ॥
गीतगोविंदगीतालिस्तद्भित्तिषु निवेशिता ॥ २५ ॥
अतः सुखेनागंतव्यं मंतव्यं वचनं मम ॥
युष्मास्वहं सदा प्रीतोवशन्नीतो भवादृशैः ॥ २६ ॥
विष्णुस्वामिमुखैः प्रत्नैः संप्रदायप्रवर्तकैः ॥
लालितो भवदाचार्यैर्धाम चाप्यावितं मम ॥ २७ ॥

ओर वा धर्मसंकटमें तप्त होयकें हृदयसों हरिको ध्यान कियो तव हरिनें रातमें प्रगट होयकें आपसों न पधारवेको कारण पूँछ्यो तव आपनें कह्यो ॥ २१ ॥ जो जानें नामकीवी सरस्वती नदीकों नहीं नाँघी वो आपकी साक्षात्कीर्तिरूपी सरस्वतीको कैसे नाँघे ॥ २२ ॥ ये सुनकें भगवान् बोले जो विष्णुस्वामि संप्रदायके जयदेव यहाँ वसते हे उननें चित्तमें विचाऱ्यो ॥ २३ ॥ जो अक्षरनसों बँध्यो कीर्तिरूपी शरीर नित्य रहे यासों उननें कियो हे स्तोत्ररूपीशरीरसों भक्तनके चरणनमें पडें यासों सीढीनमें लिख्यो ॥ २४ ॥ सो अब अपूर्वभाव आपके चित्तको जानकें गीतगोविन्दकी पंक्तीनकों भीतमें कर दीनी हें ॥ २५ ॥ यातें सुखसों आवो हमारे वचननकों मानों हम आपसों सदा प्रसन्न हें आपनें मोकों वशमें कर लियो हे ॥ २६ ॥ विष्णु-

इत्युक्त्वांतर्भतो विष्णुरार्याश्चोपसि प्रोत्थिता ॥
कृत्वाह्निकं समुचित दर्शनार्थं द्रुत गता ॥ २८ ॥
तत्रत्याचार्यपुरुषा आचार्याणां समागमम् ॥
श्रुत्वाचार्यविधानेनोपाधारयितुमागता ॥ २९ ॥
श्रीमद्वरदराज त हस्तागाधित्यकाश्रितम् ॥
आचार्या सानुगा दृष्ट्वा नेमु सोपायना प्रभुम् ॥ ३० ॥
कृत्वा स्तोत्रवरं तस्य नैवेद्य कारयन हरे ॥
तीर्थं च प्रायण चास्मिन् प्रसाद्याध समागता ॥ ३१ ॥
तीर्थयात्रां विधायास्य वेदपारायण तथा ॥
श्रीभागवतशास्त्रस्याऽरभन् पारायणाध्वरम ॥ ३२ ॥
चक्रवर्तिनृसिंहार्यशिष्यास्तत्र समागताः ॥
विवादाय तथा नीलकंठाचार्यमताऽनुगा ॥ ३३ ॥
तेभ्यो दत्वासन विद्भ्योनतिं कृत्वोपवेशयन् ॥
तैर्वैदितास्स्तुताश्चाह्नुर्भवन्मतमुदीर्यताम् ॥ ३४ ॥

स्वामि आदि सम्प्रदायके प्रवर्तक आपके आचार्यन ने हमारो लालन कियो हे ओर हमारे धामकी रक्षा करी हे ॥ २७ ॥ ये कहके विष्णु अन्तर्धान होपगये तब श्रीमदाचार्यजी सवेरे उठके आह्निक करके जल्दीसों दर्शनके लिये गये ॥ २८ ॥ सो वहाँके आचार्यनके मनुष्य श्रीमदाचार्यको समागम सुनके आचार्यनकी रीतसों पधरायवेके लिये आये ॥ २९ ॥ श्रीमदाचार्य अपने शिष्यनके सहित श्रीवरदराजप्रभुके दर्शन करके भेटके सहित प्रणाम करते भये ॥ ३० ॥ ओर स्तुति करके नैवेद्य करायके तीर्थ नैवेद्य लेके उनको प्रसन्न करके नीचे आये ॥ ३१ ॥ तीर्थयात्राकरके वेदको पारायण कियो ओर श्रीमद्भागवतके पारायणको प्रारम्भ कियो ॥ ३२ ॥ वहाँ चक्रवर्ती नृसिंहार्यके शिष्य ओर नीलकंठाचार्यके मतानुयायी विवाद करवेकों आये ॥ ३३ ॥ उनकों आसन देके नमस्कार करके वेठावते भये ओर उनसों मम

ते समूचुस्ततोगर्वगरिष्ठं प्रथमं वचः ॥
विशिष्टाद्वैतमस्माकं मतं सिद्धाततः पृथक् ॥ ३५ ॥
नारायणः परो देवोऽपरो देवो महेश्वरः ॥
जीवाः परात्मनो भिन्ना बंधो मायाकृतः प्रभो ॥ ३६ ॥
तस्योपासनया मुक्ता भवंतीति द्वयोर्मतम् ॥
किमत्र शंक्यतेऽस्माकं मते तदभिधीयताम् ॥ ३७ ॥
श्रूयतामाह तत्रार्यः वैशिष्टयं कस्य कुत्र भोः ॥
ब्रह्मैवेदं जगत्सर्वमित्यादिश्रुतिबाधितम् ॥ ३८ ॥
तत्राह वैष्णवाचार्योन्तर्यामिब्राह्मणादिदम् ॥
चिदचिद्वस्तुनोस्तत्त्वे वैशिष्टयं प्रतिपाद्यते ॥ ३९ ॥
तत्राहुः श्रीमदाचार्या मुख्या व्याप्तिस्तदात्मनः ॥
मृत्सुवर्णादिदृष्टांतैर्दर्शितोद्दालकेन सा ॥ ४० ॥
प्रतिवादी पुनः प्राह व्याप्यव्यापकयोर्भिदा ॥
मानसिद्धा तथा कार्यात्कारणस्यापि सा न किम् ॥ ४१ ॥

स्कार किये गये आप बोले जो अपने मतको कहो ॥ ३४॥ तब वे अहंकारपूर्वक बोले जो विशिष्टाद्वैत हमारो मत है ॥ ३५ ॥ नारायण प्रधान देवता हैं अप्रधान महेश हैं जीव परमात्मासों भिन्न हैं संसार मायाकृत है ॥ ३६ ॥ नारायणकी उपासनासों मुक्त होते हैं ये दोनोंनको मत है यामें कहा शंका करो हो सो कहो ॥ ३७॥ तब श्रीमदाचार्यबोले जो सुनो वैशिष्टयकाकी कामेहे "ब्रह्मैवेदं जगत् सर्वम्" या श्रुतिसों बाधितहे ॥ ३८ ॥ तब वे बोले "अन्तर्यामिब्राह्मणात्" या श्रुतिसों चित् अचित्वस्तुको तत्वमें वैशिष्टय हे ॥ ३९॥ तब श्रीमदाचार्यबोले जो मुख्यव्याप्ति आत्माकी हे मृत्तिका सुवर्ण आदि दृष्टान्तनसों उद्दालकऋषिनें दिखायो हे॥ ४०॥ प्रतिवादी फिर बोल्यो

तत्राचार्यो जगुर्भूय शृणुध्व वचन मम ॥
यौक्तिकानां च मानानां सूत्रसिद्धा प्रतिष्ठिता ॥ ४२ ॥
नेहनानेत्यादिवाक्ये सा श्रुतावतिनिंदिता ॥
तस्मान्न भेदगधोपि व्यासपादैर्निरूप्यते ॥ ४३ ॥
शैवाचार्यस्तदा प्राह पृथगात्मेति या श्रुति ॥
विस्मृता व्यासपादेन किं वा न स्मर्यते हि वः ॥ ४४ ॥
अस्माक दर्शने जीवा पशव सप्रकीर्तिता ॥
तेषां पतिर्महेशान पाशो मायानिबंधन ॥ ४५ ॥
पाशविच्छित्तये योग साक्षात्पाशुपतो महान् ॥
जीवेशयोस्ततो भेदश्चाभेदस्त्स्मृतिलक्षण ॥ ४६ ॥
वभाषिरे तदाचार्यो पृथगात्मेति या श्रुति ॥
सा भक्त्या मुक्तिमाख्याति नाभेद दूषयत्यलम् ॥ ४७ ॥
उपक्रमोपसहाराभ्यामभेदस्य साधनात् ॥
तत्रैवान्यत्र च तया श्रुतियुक्तिशत ब्रुवे ॥ ४८ ॥

जो व्याप्यव्यापकके भेदसों कार्य सो कारणको भेद क्यो नहीं ॥ ४१ ॥ तब श्रीम दाचार्य फिर बोले जो सुनो युक्तिरूपप्रमाणनको मान सूत्रसिद्ध हे ॥ ४२ ॥ "नेहनानास्ति" इत्यादि वाक्यनसों श्रुतमें वो निन्दित हे यासों भेदको गन्धभी नहीं हे ये व्यासजीनें निरूपण किया हे ॥ ४३ ॥ तब शैवाचार्य बोले जो "पृथगात्मा" या श्रुतिको व्यासजी भूल गये हें कहा आप स्मरण नहीं करते ॥ ४४ ॥ हमारे शास्त्रम जीवनकी पशु सज्ञा हे उनके पति महादेवहें बन्ध मायासों हे ॥ ४५ ॥ बन्धनके नाशके लिये महान पाशुपत योग हे जीवईश को भेद हे चेतन्यलक्षण अभेद हे ॥ ४६ ॥ तब श्रीमदाचार्य बोले जो पृथ गात्मा ये जो श्रुति हे वो भक्तिसों मुक्तिकों कहे हे अभेदको दूषित नहीं करे हे ॥ ४७ ॥ उपक्रम उपसहारसो अभेदके साधनसों वहाँ ओर दूसरी जगह सो

तत्र श्रुतिशतं प्राहुर्नानाविच्छित्तिमंडितम् ॥
पुनराहुस्तथाचार्याः स्वतंत्रं हि भवन्मतम् ॥ ४९ ॥
व्यासैः पत्युरसामंज्यस्यादित्यत्र निराकृतम् ॥
व्याख्यानेच कृते तस्य जहसुर्वैष्णवोत्तमाः ॥ ५० ॥
सेर्ष्याः शैवास्तद्दिशंतोजगुरीशमहेशताम् ॥
शैवागमानां प्रामाण्यं तदाचारस्य चोन्नतिम् ॥ ५१ ॥
तत्र भागवताः प्राहुस्तैः साकं कलहं गताः ॥
तदागमतदाचारतदीशानामनर्हताम् ॥ ५२ ॥
परस्परं कलकले जायमाने महत्तरे ॥
मध्यस्थास्तु तदा स्मार्त्ताः शांतयित्वेदमब्रुवन् ॥ ५३ ॥
ब्रुवंतु श्रीमदाचार्याः शिवकेशवयोरिह ॥
जीवतेश्वरता कस्य कस्य नेत्यनयोर्भ्रमे ॥ ५४ ॥
गुरवस्तु तदा प्राहुर्ब्रुवे कस्य मतादहम् ॥
शैववैष्णवयोरत्र विवादोऽनादिरेव हि ॥ ५५ ॥

श्रुति ओर युक्ति कहे हें ॥ ४८ ॥ वहाँ अभेदके मंडनकी सौ श्रुति पढीं ओरवी श्रीमदाचार्यजीनें कह्यो जो तुम्हारे मतको ॥ ४९ ॥ "पत्युरसामंज्य स्यात्,, या सूत्रमें व्यासजीनें निराकरण कियो हे ओर याके व्याख्यान करवे पे वैष्णव हँसे ॥ ५० ॥ तब ईर्षासों भरे शैव महादेवकी प्रधान ईशता शैवदर्श-ननकी प्रामाणिकता ओर अपने आचारकी उन्नतिकों दिखावते बोले ॥ ५१ ॥ ओर उनके शास्त्रनको आचारनको उनके ईशको अयोग्य ठहरावते उनसों लड़ते वैष्णव बी बोले ॥ ५२ ॥ परस्पर बड़ो कोलाहल होयवे पे मध्यस्थ स्मार्त दोनोनको शान्त करकें ये बोले ॥ ५३ ॥ जो श्रीमदाचार्य आज्ञा करें शिवकेशवके मध्यमें कोनको जीवपनो ओर कोनको ईश्वरपनो हे ॥ ५४ ॥ तब आप बोले जो कोनके मतसों कहें शैव वैष्णवनको विवाद तो अनादि हे ॥ ५५ ॥

तत्राचार्यो जगुर्भूय शृणुध्व वचन मम ॥
यौक्तिकाना च मानानां सूत्रसिद्धा प्रतिष्ठिता ॥ ४२ ॥
नेहनानेत्यादिवाक्ये सा श्रुतावतिनिंदिता ॥
तस्मान्न भेदगंधोपि व्यासपादैर्निरूप्यते ॥ ४३ ॥
शैवाचार्यस्तदा प्राह पृथगात्मेति या श्रुति ॥
विस्मृता व्यासपादेन किं वा न स्मर्यते हि व ॥ ४४ ॥
अस्माक दर्शने जीवा पशव सम्प्रकीर्तिता ॥
तेषां पतिर्महेशान पाशो मायानिबंधन ॥ ४५ ॥
पाशविच्छित्तये योग साक्षात्पाशुपतो महान् ॥
जीवेशयोस्ततो भेदश्चाभेदस्स्मृतिलक्षण ॥ ४६ ॥
बभाषिरे तदाचार्या पृथगात्मेति या श्रुति ॥
सा भक्त्या मुक्तिमाख्याति नाभेद दूषयत्यलम् ॥ ४७ ॥
उपक्रमोपसहाराभ्यामभेदस्य साधनात् ॥
तत्रैवान्यत्र च तथा श्रुतियुक्तिशत ह्युषे ॥ ४८ ॥

जो व्याप्यव्यापकके भेदसों कार्य सों कारणको भेद क्यों नहीं ॥ ४१ ॥ तब श्रीम दाचार्य फिर बोले जो सुनो युक्तिरूपप्रमाणनको मान सूत्रसिद्ध है ॥ ४२ ॥ "नेहनानास्ति" इत्यादि वाक्यनसों वेदमें वो निन्दित है यासों भेदको गन्धभी नहीं है ये व्यासजीनें निरूपण कियो है ॥ ४३ ॥ तब शैवाचार्य बोले जो "पृथगात्मा" या श्रुतिको व्यासजी भूल गये हैं कहा आप स्मरण नहीं करते ॥ ४४ ॥ हमारे शास्त्रमें जीवनकी पशु संज्ञा है उनके पति महादेव हैं बन्ध मायासों है ॥ ४५ ॥ बन्धनके नाशके लिये महान् पाशुपत योग है जीवईश्वरको भेद है चैतन्यलक्षण अभेद है ॥ ४६ ॥ तब श्रीमदाचार्य बोले जो पृथगात्मा ये जो श्रुति है वो भक्तिसों मुक्तिकों कहे है अभेदको दूषित नहीं करे है ॥ ४७ ॥ उपक्रम उपसंहारसों अभेदके साधनसों यहाँ और दूसरी जगह सो

तत्र श्रुतिशतं प्राहुर्नानाविच्छित्तिमंडितम् ॥
पुनराहुस्तथाचार्याः स्वतंत्रं हि भवन्मतम् ॥ ४९ ॥
व्यासैः पत्युरसामंज्यस्यादित्यत्र निराकृतम् ॥
व्याख्यानेच कृते तस्य जहसुर्वैष्णवोत्तमाः ॥ ५० ॥
सेर्ष्याः शैवास्तद्दिशंतोजगुरीशमहेशताम् ॥
शैवागमानां प्रामाण्यं तदाचारस्य चोन्नतिम् ॥ ५१ ॥
तत्र भागवताः प्राहुस्तैः साकं कलहं गताः ॥
तदागमतदाचारतदीशानामनर्हताम् ॥ ५२ ॥
परस्परं कलकले जायमाने महत्तरे ॥
मध्यस्थास्तु तदा स्मार्त्ताः शांतयित्वेदमब्रुवन् ॥ ५३ ॥
ब्रुवंतु श्रीमदाचार्याः शिवकेशवयोरिह ॥
जीवतेश्वरता कस्य कस्य नेत्यनयोर्भ्रमे ॥ ५४ ॥
गुरवस्तु तदा प्राहुर्ब्रुवे कस्य मतादहम् ॥
शैववैष्णवयोरत्र विवादोऽनादिरेव हि ॥ ५५ ॥

श्रुति ओर युक्ति कहे हें ॥ ४८ ॥ वहाँ अभेदके मंडनकी सौ श्रुति पढीं ओरबी श्रीमदाचार्यजीनें कह्यो जो तुम्हारे मतको ॥ ४९ ॥ "पत्युरसामंज्य स्यात्" या सूत्रमें व्यासजीनें निराकरण कियो हे ओर याके व्याख्यान करवे पे वैष्णव हँसे ॥ ५० ॥ तब ईर्षासों भरे शैव महादेवकी प्रधान ईशता शैवदर्शननकी प्रामाणिकता ओर अपने आचारकी उन्नतिकों दिखावते बोले ॥ ५१ ॥ ओर उनके शास्त्रनको आचारनको उनके ईशको अयोग्य ठहरावते उनसों लड़ते वैष्णव बी बोले ॥ ५२ ॥ परस्पर बड़ो कोलाहल होयवे पे मध्यस्थ स्मार्त दोनोनको शान्त करकें ये बोले ॥ ५३ ॥ जो श्रीमदाचार्य आज्ञा करें शिवकेशवके मध्यमें कोनको जीवपनो ओर कोनको ईश्वरपनो हे ॥ ५४ ॥ तब आप बोले जो कोनके मतसों कहें शैव वैष्णवनको विवाद तो अनादि हे ॥ ५५ ॥

वयं च वैष्णवास्तत्र विष्णोरुत्कर्षदर्शिन ॥
तथ्य ब्रूतेति व प्रश्ने ब्रुवे वेदांतदर्शनात् ॥ ५६ ॥
उभयोरीशितैवास्ति प्रमाणंचोभयागमम् ॥
अधिकारानुसारेण रुच्याचारोऽपि संमत ॥ ५७ ॥
वैदिकैर्वैदिकाचारान्निर्गुणोय स सेव्यते ॥
स्वस्वाभेदाभिदामुक्तिस्तत्तद्भक्त्याभिजायते ॥ ५८ ॥
निर्दोषपूर्णगुणता द्वयोरस्मन्मतेशयो ॥
इत्युक्ते श्रीमदाचार्ये स्मार्ता साध्विति चाब्रुवन् ॥ ५९ ॥
गर्जतो वैष्णवा शैवा विवदंतोबहिर्गता ॥
पारायणं समाप्यैव ह्याचार्या प्रसृतास्तत ॥ ६० ॥
गच्छन्त सगवे नित्य मध्ये माध्यान्हिकीं क्रियाम् ॥
चरतश्चाययु पक्षितीर्थं ते योजनद्वयम् ॥ ६१ ॥
तत्र पूपाविधाताख्यो गृध्रौ शापवशानुगौ ॥
यच्छतोदर्शन पुण्यवद्भ्य क्षीराज्यभोजिनो ॥ ६२ ॥

तामें विष्णुके उत्कर्ष दिखावनेवारे हम वैष्णव हैं तुम कहो हो सत्य कहो सो या तुह्मारे प्रश्नमें वेदान्तसों कहें हैं ॥ ५६ ॥ दोनोंही ईश हैं दोनोंहीके शास्त्र प्रमाण हैं अधिकारके अनुसार रुचिसों आचार यी दोनोंको प्रमाण है ॥ ५७ ॥ वैदिक वैदिकाचारसों निर्गुणकी सेवा करें हैं भेदअभेदसों उनकी भक्तिसों मुक्ति कहें हैं ॥ ५८ ॥ हमारे मतमें निर्दोषपूर्णगुणता दोनोंहीको है श्रीमदाचार्यके एसे कहवे पे स्मार्तननें कह्यो जो बहुत उत्तम है ॥ ५९ ॥ वैष्णव शैव विवाद करते गर्जते बाहेर गये ओर श्रीमदाचार्य पारायण समाप्तकरके वहाँसों चले ॥६०॥ सो नित्य प्रातःकालकेआह्निकके पीछें तीन मुहूर्त तक चलते मध्यमें माध्याह्निककी क्रिया करते एसे दोयोजन (आठकोश) नित्यचलते पक्षि तीर्थमें आये ॥ ६१ ॥ जहाँ शापसों भये पूषा

निर्वृत्यैव च तद्यात्रां कथयित्वा तयोः कथाम् ॥
ततः प्रचलिताभूयश्चिदंबरमुपाययुः ॥ ६३ ॥
आकाशलिंगरूपं तं सद्यः प्रत्ययदायकम् ॥
महेशं दृष्टवंतस्ते प्रणेमुः सोपढौकितम् ॥ ६४ ॥
अर्चनं कारयामासुः स्तुतिं चक्रुर्महेशितुः ॥
पुरारिर्गुरुरस्माकं विजयस्व जगत्पते ॥ ६५ ॥
क्षपयंतः क्षपां तत्र कथांतेऽकथयन् कथाम् ॥
गुरवः शंकरार्यस्य जयिनो वेदविद्द्रुहाम् ॥ ६६ ॥
इहासीद्ब्राह्मणः कश्चित्सर्वज्ञश्च तपोधनः ॥
तस्य भार्यापि कामाक्षी जितकामा पतिव्रता ॥ ६७ ॥
ताभ्यां प्रसादितो देवः स्वयमेव चिदंबरः ॥
तुष्टः कन्यां ददौ ताभ्यां विशिष्टा नामरूपतः ॥ ६८ ॥
शिष्टैः संमानिता साध्वी विशिष्टगुणशालिनी ॥
पूर्णाख्या सरितः कालत्यग्रहारे द्विजन्मने ॥ ६९ ॥

विधाता नामके गीध हैं जो दूधघृतको भोजन करत हैं पुण्यात्मानको दर्शन देत हैं ॥ ६२ ॥ ताकी यात्रा करकें उनदोनोंनकी कथा कहकें फिर वहाँसों चले सो चिदम्बरकों आये ॥ ६३ ॥ वहाँ जल्दी परिचयदेवेवारे आकाश-लिंग महादेवके दर्शन कर भेंट सहित प्रणाम करते भये ॥ ६४ ॥ ओर पूजा करायकें स्तुति करी जो हमारेगुरुमहादेवपुरारि हैं तासों हे जगत्पते तुम्हारो विजय होय ॥ ६५ ॥ पीछें नित्य कथाके वाद वेदविरोधीनके जयकरवेवारे शंकराचार्यकी कथा कहते रातकों विताते बोले जो ॥ ६६ ॥ यहाँ एक सर्वज्ञ तपोधन ब्राह्मण हे उनकी कामकों जीतवेवारी पतिव्रता कामाक्षी नाम-की स्त्री ही ॥ ६७ ॥ उन दोनोंस्त्रीपुरुषननें इन्हीं चिदम्बर महादेवको प्रसन्न कियो सो प्रसन्न होयकें इननें उनको नामरूपसों विशिष्टा नामकी कन्या-दीनी ॥ ६८ ॥ विशेषगुणवारी साध्वी वा कन्याकों पूर्णानदीके पास कोई

लब्धुरिद्रविडायैषा दत्ता विश्वजिते सती ॥
स तां चिदम्बरे सक्तां विरक्तां विषयांतरे ॥ ७० ॥
विरक्तः सोपि विषये त्यक्त्वैष विपिनं ययौ ॥
तस्या भक्त्या विरक्त्या च तुष्टोऽथ जगदीश्वरः ॥ ७१ ॥
माहात्म्यं निजपूजाया दर्शयन् जगतीतले ॥
आविशज्जृम्भमाणाया पूजाकाले स्वतेजसा ॥ ७२ ॥
पश्यतां विस्मयो जातस्सुराणां च नृणां मुखे ॥
देवानां कार्यसिध्यर्थमसुराणां क्षयाय च ॥ ७३ ॥
आम्नायानां च रक्षायै गर्भे श्रीशंकरोऽवसत् ॥
ससत्त्वा शुशुभे साध्वी विशिष्टा महसा प्रभो ॥ ७४ ॥
चक्रुः कृत्वाथ संस्कारं यजमानं द्विजा हरम् ॥
दशमे मासि सञ्जातः शंकरः शंकरः स्वयम् ॥ ७५ ॥
माधवे सितपञ्चम्यां गुरावाद्येश्वरे समे ॥
संस्कृतः पंचमे वर्षे सन्न्यस्तः सोष्टमे समे ॥ ७६ ॥

अग्रहारमें ॥ ६९ ॥ लम्बूरी प्रविड विश्वजित नामके ब्राह्मणको दीनी वो ब्राह्मण चिदम्बरमें आसक्त विषयनमें विरक्त ॥ ७० ॥ अपनी स्त्रीकों देखकें आप भी विषयनमें विरक्त होयकें वाकों छोड वनमें चल्यो गयो पीछें वाकी भक्तिसों चिदम्बर प्रसन्न भये ॥ ७१ ॥ ओर संसारमें अपनीपूजाके माहात्म्यको दिखावते पूजाके समय वाके जमुहाई लेते अपने तेजसों मुँहमें प्रवेश होयगये ॥ ७२ ॥ सो देखते भये देवता ओर मनुष्यनको बडो विस्मय भयो ओर जब देवनके कार्यसिद्धिके लियें असुरनके नाशके लियें ॥ ७३ ॥ वेदकी रक्षाके लियें गर्भमें श्रीशंकर बसे तब वो साध्वी विशिष्टा सगर्भा बडे तेजसों शोभती भई ॥ ७४ ॥ ताको पीछें ब्राह्मणनें महादेवको यजमान करकें संस्कार कियो ओर दशवें महीना आप शंकर उत्पन्न भये ॥ ७५ ॥ विक्रमादित्यसों चौर

श्रीमद्गोविंदयोगींद्राच्छुकस्वामिमतानुगात् ॥
स बाल एव पुरुषः कृतविद्यो महोदयः ॥ ७७ ॥
मध्यार्जुनाल्लब्धवरः शिष्यान् कृत्वा बहून् बुधान् ॥
कर्मतंत्रप्रणेतारं मिश्रं श्रीमंडनाभिधम् ॥ ७८ ॥
जित्वैव सपणं वादे शिष्यं चक्रे सुरेश्वरम् ॥
सुधन्वनः सहायेन पद्मपादमुखैर्निजैः ॥ ७९ ॥
बौद्धानुत्सार्य कापालिकादीन् पाषंडिनः परान् ॥
वर्णाश्रमाचारधर्मान् विष्णुमुख्यसुरार्चनम् ॥ ८० ॥
देशकालानुगुण्येनासद्वादं समघोषयत् ॥
वैदिकान् सकलानेकीकृत्य बौद्धान् विजित्य सः ॥ ८१ ॥
निर्माय ग्रंथान् शिष्यांश्च धृत्वा हरपुरं ययौ ॥
एवं शंकरचारित्रं कथयित्वाऽपराः कथाः ॥ ८२ ॥

हवे ईश्वर नामक सम्बत्सरमें वैशाख शुक्लपंचमीको प्रगट भये पाँचवे वर्षमें उपवीत भयो ओर आठवेमें सन्यासी भये ॥ ७६ ॥ शुकस्वामीजीकेमतके अनुयायी श्रीमद्गोविन्दयोगीन्द्रसों विद्या पायकें बालकहीवे बडे तेजसों शोभते भये ॥ ७७ ॥ ओर मध्यार्जुनसों वर पायकें बहोत विद्वाननकों शिष्य करकें कर्मतन्त्रके चलायवेवारे श्रीमंडनमिश्रकों बाजीके संग जीतकें शिष्य करकें सुरेश्वराचार्य ये नाम धन्यो ॥ ७८ ॥ ओर सुधन्वा नामके राजाकी सहायतासों अपनें शिष्य पद्मपादाचार्य आदिकनसों बौद्ध कापालादिक आदि पाखंडनकों निकासकें ॥ ७९ ॥ वर्णाश्रम धर्म आचार विष्णुआदिदेवनकी पूजा चलाई ओर देशकालके अनुसार असद्वादकी घोषणा करी ॥ ८० ॥ सब वैदिकनकों एक मत कर बौद्धनकों जीतकें ग्रन्थनकों बनायकें शिष्यनकों करकें कैलाशकों गये ॥ ८१ ॥ एसें शंकरके चारितकों कहकें ओर दूसरीवी कथा कहकें थोरो सोयकें प्रातःकाल अपनों

किंचित्सुप्तास्ततश्चक्रु प्रत्यूषे ते निजाह्निकम् ॥
प्रभाते प्रस्थितास्तस्माद्वैद्यनाथे समागता ॥ ८३ ॥
तत्र यात्राविधिं चक्रु शिवभक्तानतोषयन् ॥
श्रीवेदव्यासविष्णुप्रमुखचरणमिते सम्मिते ग्रन्थसार्थे
श्रीगोविन्दाभिधानां समयनयविदां देशिकानां निदेशात् ॥
आचार्याणां चरित्रे हरिजनसुखदे शास्त्रिकृष्णेनिबद्धे
प्रस्थानेऽस्मिंस्तृतीये समजनि पटहो दिग्जयाख्ये द्वितीय ८४

गौरमायूरमायाता शिखिनाभमहेश्वरम् ॥
दृष्ट्वा नत्वा च तत्क्षेत्रयात्रां कृत्वा ततोगता ॥ १ ॥
कुंभकोणं समासाद्य द्वादशेश्वरदर्शनम् ॥
चक्रपाणिमुखान् विष्णून् दृष्ट्वैव चतुरोऽव्यधु ॥ २ ॥
तत्र विप्रान् समायातान् वेदविद्याविशारदान् ॥
विद्यान्तरेषु कुशलान् विद्यया समतोषयन् ॥ ३ ॥

कृत्य करे ॥ ८३ ॥ चले सो वैद्यनाथको आये यहाँ तीर्थविधि करके शिवभक्तनको प्रसन्न कियो ॥ ८४ ॥ समयनीतिके जानवेवारे जगद्गुरु श्रीमद्विद्यानन्दार्यजी महाराजकी आज्ञासों कृष्णशास्त्रीके बनाये भये श्रीमद्व्यास विष्णु स्वामीके मतके ग्रन्थनके अनुकूल या चरित्रग्रंथमें दक्षिण दिग्विजयमें तीसरे प्रस्थानमें दूसरो पटह समाप्त भयो ॥ ८४ ॥

यहाँसों गौरमायूरम आये शिखिनाभिमहादेवके दर्शन नमन कर या तीर्थकी यात्रा करके आगे चले ॥ १ ॥ सो कुम्भकोणको गये यहाँ बारह महादेवनके दर्शनकर चक्रपाणि आदि चार विष्णुमूर्तिनके दर्शन किये ॥ २ ॥ यहाँ वेदविद्याके पंडित और विद्यानमें कुशल जो आये उनको विद्यासों संतुष्ट

अभूवँस्ते स्वयं शिष्या आचार्याणां प्रभावतः ॥
दृष्टं श्रुतं स्वकीयेभ्यः कृष्णदेवसभाजयम् ॥ ४ ॥
दक्षिणां द्वारकां तस्मात् सशिष्या गुरवो गताः ॥
तत्र श्रीराजगोपालं प्रेम्णैव प्रणताः प्रभुम् ॥ ५ ॥
ऊषुस्तत्र निजस्थाने तन्माहात्म्यंजगुर्हरेः
राजविष्णुस्वामिसेव्यं गोपालं तं समादिशन् ॥ ६ ॥
अबोधयन् स्वशिष्येभ्योऽतिष्ठँस्तत्र निशाद्वयम् ॥
तेषां समागमं श्रुत्वा तद्देशीयाः स्ववैष्णवाः ॥ ७ ॥
आचार्याणां दर्शनार्थं समायाताः सहस्रशः ॥
साष्टांगं प्रणताः सर्वे सोपढौकितपाणयः ॥ ८ ॥
चक्रुस्ते सुमनोवृष्टिं गीतवाद्यमहोत्सवम् ॥
जगुराशीर्मंत्रगणं तोत्रसामरथंतरम् ॥ ९ ॥
प्रोचुर्बद्धांजलिपुटा वयमद्य सनाथिताः ॥
श्रीमद्भिर्नोनिजाचार्यैर्दिक्चक्रविजयोद्यतैः ॥ १० ॥

किये ॥ ३ ॥ पीछें आचार्यनके प्रभावसों वे सब अपने आप शिष्य होते भये क्यों के उननें राजाकृष्णदेवकी सभाको जय देख्यो हो और सुन्यो हो ॥४॥ पीछें शिष्यनके सहित आप दक्षिणद्वारका (मन्नारगुडी) कों गये वहाँ राजगोपालकों प्रेमसों प्रणाम कियो ॥ ५ ॥ अपने स्थानमें ठहरे और उनको माहात्म्य वर्णन करतेभये और राजविष्णुस्वामीके सेव्य उन श्रीगोपालकों बताते भये ॥ ६ ॥ अपने शिष्यनकों बोध देते दो दिन वहाँ रहे सो आपको आगमन सुनकें श्रीमदाचार्यके दर्शनके लिये वा देशके अपने हजारन वैष्णव आये वैष्णवननें भेट करकें साष्टांग प्रणाम कियो ॥ ७ ॥ ॥ ८ ॥ पुष्पनकी वृष्टि कर गाजे बाजेसों बडो उत्सव कियो और तोत्र सामरथंतर या आशीर्वादमंत्रकों पढ्यो ॥ ९ ॥ और हाथ जोडकें बोले जो

समा पचशत याता विष्णुस्वामिप्रभोरध ॥
नासीत्कोपि जगज्जेता देशिक सर्वदेशग ॥ ११ ॥
श्रीमद्भि कृष्णदेवस्य सभाया वैष्णवाध्वन ॥
रक्षा कृता तथा लब्धा वैष्णवाचार्यताथ न ॥ १२ ॥
तीर्थं यच्छतु धर्म नो ब्रुवतु सांप्रदायिकम् ॥
भवत श्रीमदाचार्यास्तथाचक्रुस्तदीप्सितम् ॥ १३ ॥
हरि सेव्यो हरि सेव्यो भक्तियुक्तेन चेतसा ॥
वर्णाश्रमसदाचार सदा कार्यः स्वशक्तित ॥ १४ ॥
स्वधर्माचरण शक्त्या विधर्माच्च निवर्तनम् ॥
कार्यश्चेवेंद्रियजयो घातकानींद्रियाणि हि ॥ १५ ॥
परद्रव्येषु मलवत्परस्त्रीषु च मृत्युवत् ॥
परद्रोहेषु विषवद्यस्य धी स हि वैष्णव ॥ १६ ॥
अर्थे पचदशानर्था साक्षाद्भगवतोदिता ॥
स कष्टसाध्यो ह्यनर्थस्तदर्थेऽज्जनार्थेना ॥ १७ ॥

आज हम सनाथ भये हमारे आचार्य आप दिग्विजयमें उद्यत हें ॥ १० ॥ पाँचसौ वर्ष व्यतीत भये विष्णुस्वामीके पीछें कोई जगत्को जीतवेवारो सर्वदेशी गुरु नहीं भयो ॥ ११ ॥ श्रीमाननने कृष्णदेवराजाकी सभामें वैष्णवमार्गकी रक्षा करी ओर हमारे आचार्यपदकों पायो ॥ १२ ॥ सो आप अपनो चरणामृत दीजिये ओर साम्प्रदायिक धर्म कहिये तब श्रीमदाचार्यजीनें उनकी इच्छा पूरी करी ॥ १३ ॥ ओर आज्ञा करी जो भक्तियुक्तचित्तसों हरिको भजन करो अपने शक्तिके अनुसार वर्णाश्रम धर्म सदाचार सदा करो ॥ १४ ॥ यथाशक्ति स्वधर्मको आचरण करनों दूसरेके धर्मसों निवृत्त होंनों इन्द्रियनको जय करनों क्योंकि जो इन्द्रियही नाश करवेवारी हें ॥ १५ ॥ पराये द्रव्यमें मलकी जेसी परस्त्रीमें मृत्युकी जेसी ओर परद्रोहमें विषकी जेसी जाकी बुद्धि होय ताको नाम वैष्णव हे ॥ १६ ॥ अर्थमें पन्द्रह अनर्थ

मातरं पितरं भ्रातॄन् गुरून् भार्यां सुतानपि ॥
निर्हंति सुहृदोऽन्यान् किं कपर्दार्थेऽपि लुब्धधीः ॥ १८ ॥
मलमूत्रास्थिमांसासृक्पूर्णां घूर्णन्मदेक्षणाम् ॥
कामिनीं कामिनो यांति विष्टामिव हि विड्भुजः ॥ १९ ॥
सुरते सुखधीर्येषां तेषां हास्याय किं पुनः ॥
यत्सुखं तत्र तत्किं न मलमूत्रविसर्जने ॥ २० ॥
परापवादपैशुन्यपरद्रोहे च किं सुखम् ॥
तथापि प्राणिनो मूढाः साटोपास्तत्कथां विना ॥ २१ ॥
कामे किंचित्सुखं बौद्धं क्रोधे स्वप्नेऽपि तन्न हि ॥
तथापि क्रोधिनो लोकाः शिष्टायंते सुसंविदा ॥ २२ ॥
द्रोहोभूतेषु नो कार्यो द्रोग्धुर्वै परतो भयम् ॥
देवानां देशिकानां च विदां तन्नाचरेत्क्वचित् ॥ २३ ॥

साक्षात् भगवाननें कहे हैं तासों वे अनर्थ हैं तामें मरवेनकी इच्छा होय हैं ॥ १७ ॥ माता, पिता, भाई, गुरू, स्त्री, पुत्र, मित्र, इनकोंवी कौडीके लियें लोभी मनुष्य मारडारें हैं दूसरेनकों कहा कहें ॥ १८ ॥ मल, मूत्र, हाड, मांस, लोहू, इनसों भरी मदसों बाँके नेत्रवारी कामिनी स्त्रीकों कामी लोग जाँय हैं जेसे शूकर विष्टाकों ॥ १९ ॥ जिनकी सुखबुद्धि काममें हे उनकों हास्यके सिवाय कहा कहें जो सुख वामें हे वो कहा मलमूत्र छोडवेमें नहीं हे ॥२०॥ पराई निन्दा चुगुली दूसरेको बुरो विचारनो यामें कहा सुख हे तो वी मूर्ख प्राणी इनके विना नहीं रहें हैं ॥ २१ ॥ कदाचित् काममें कल्पित सुखकी कल्पना करो परन्तु क्रोधमें तो स्वप्नमेंवी सुख नहीं हे तोवी क्रोधी जन अपनी गोष्ठीमें शिष्ट बनें हैं॥ २२॥ द्रोह (अनिष्टचिन्तन) करवेवारेकों दूसरेसों डर हे तासों प्राणीनमें द्रोह न करे ओर देवता गुरु विद्वान् इनको तों कवी

वैष्णवेषु चरेन्मैत्रीमनुकंपां परेष्वपि ॥
आत्मवत्सर्वभूतानि प्रपश्येत् सुखदुःखयो ॥ २४ ॥
नवयोगेश्वरैर्धर्मा वैष्णवा ये निरूपिता ॥
ते सदैवानुसर्त्तव्या कर्त्तव्या भक्तिरुत्तमा ॥ २५ ॥
इत्यूचुः श्रीमदाचार्यास्तेभ्यः सिद्धांतमात्मन ॥
शुद्धाद्वैतमत सूत्रै श्रुतिभिस्तान्समादिशन् ॥ २६ ॥
भक्त्याचार पुन प्राहुर्वैष्णवादेशिक चरेत् ॥
विशुद्ध विद्यया योऽन्यशीलाचारेण भूसुरम् ॥ २७ ॥
सस्कृतो वैदिके पूर्व कुर्वन् कर्माणि सूत्रत ॥
चरेद्भागवताचार भक्त्या सपूजयेद्धरिम् ॥ २८ ॥
व्रतानां पचक कुर्यादविद्ध हरिवल्लभम् ॥
नवम्यां शोधयेद्देह गेह पूजार्हमानयेत् ॥ २९ ॥
दशम्याद्युत्सव कुर्यात्रिदिन व्रतमाचरेत् ॥
शास्त्रोक्तेन विधानेन हरेर्जन्मदिनेषु च ॥ ३० ॥

पी दोहन करे॥ २३ ॥ वैष्णवनमें मित्रता करे दूसरेनमेंभी दया राखे सुखदु खमें प्राणीनका अपनी आत्माके समान देखे ॥ २४ ॥ नवयोगेश्वरनन जो वैष्णवधर्म कहे है उनको सदा पाले ओर उत्तम भक्ति करे ॥ २५ ॥ ये अपनो सिद्धान्त उनसो श्रीमदाचार्यजीनें कह्यो ओर श्रुति सूत्रनसों शुद्धाद्वैतमतको उपदेश कियो ॥ २६ ॥ फिर भक्तिमार्गको आचार कह्यो जो पहले वैष्णवाचार्यको गुरुकरे जो विद्यामें शीलमें आचारमें शुद्ध ब्राह्मण होय ॥ २७ ॥ ओर वैदिक संस्कारनसों संस्कृत होयके सूत्रनके अनुसार कर्मको करतो भयो भागवताचारको आचरण करे भक्तिसों हरिको पूजन करे ॥ २८ ॥ भगवानके प्यारे वेधरहित पाँच व्रत करे नवमीको देह ओर पूजाके योग्य घर शुद्ध करे ॥ २९ ॥ दशमी एकादशीद्वादशी उत्सव करे ऐसे तीन दिन व्रत करे ओर शास्त्रमें कहे

कुर्याद्द्वादशपुंड्राणि मुद्राषट्कं च धारयेत् ॥
तुलसीकाष्ठजां मालां नाद्याद्विष्णोरनर्पितम् ॥ ३१ ॥
श्रवणं कीर्तनं कुर्यात्स्मरणं च समर्चनम् ॥
प्रदक्षिणं वंदनं च तथा तीर्थनिषेवणम् ॥ ३२ ॥
वैष्णवेभ्यो विभज्याग्रे शेषं नैवेद्यमाहरेत् ॥
पठेद्भागवतं शास्त्रं चरेद्यात्रां महोत्सवान् ॥ ३३ ॥
न निंदेद्देवताः क्वापि तद्भक्तान्नैव दूषयेत् ॥
बुद्धिभेदमनुत्पाद्य साधयेद्धर्ममात्मनः ॥ ३४ ॥
पूर्वाचार्यनिबंधेषु यदुक्तं तत्समाचरेत् ॥
दुष्टाग्रहं च दुर्वादं दौष्ट्यं निर्दयतां त्यजेत् ॥ ३५ ॥
श्रुत्वा धर्मान्निजार्येभ्यो वैष्णवा मोदमागताः ॥
नत्वा स्तुत्वा गताः केचित्केचित्तानेव संश्रिताः ॥ ३६ ॥
आचार्यैः प्रस्थितं तस्मादयोध्यां दक्षिणां प्रति ॥
दृष्ट्वा स्पृष्ट्वा च तां तत्र रामभक्तानशिक्षयन् ॥ ३७ ॥

विधानसों भगवान्के जन्मदिनमें व्रत करे ॥ ३० ॥ बारह तिलक षट् मुद्रा तुलसीकाष्ठकी माला धारण करे विष्णुके विना अर्पण किये भोजन न करे ॥ ३१ ॥ श्रवण कीर्तन स्मरण सेवा प्रदक्षिणा वंदन तीर्थसेवा करे ॥ ३२ ॥ वैष्णवनको भोजन करायकें पीछें शेष आप लेवे भागवत शास्त्र पढ़े यात्रामहोत्सव करे ॥ ३३ ॥ कोई देवताकी निन्दा न करे न उनके भक्तनकों दोष लगावे बुद्धिको भेद न करकें अपने धर्मको साधन करे ॥ ३४ ॥ पूर्वाचार्यनकें ग्रन्थनमें कही भई बार्तानको आचरण करे तथा दुराग्रह दुर्वचन दुष्टता निर्दयताकों छोड़े ॥ ३५ ॥ एसे वैष्णवनके धर्मनकों अपने आचार्यसों सुनके वे वैष्णव प्रसन्न भये ओर दंडवत् स्तुति करकें कोई गये कोई उन्हींके आश्रित होयगये ॥ ३६ ॥ ओर श्रीमदाचार्यजी वहाँसों दक्षिणअयोध्यामें जायकें

राजधानीं च चोलाना तजावरमुपागता ॥
तत्रत्येन प्रजेशेन प्रजाभि समुखीकृता ॥ ३८ ॥
राजभृत्या समानीता श्रुतविद्या महोदया ॥
कृष्णदेवसभावृत्त वृत्त तीर्थांतरस्य च ॥ ३९ ॥
राज्ञा पृष्टं समवदैंस्तच्छिष्या दिग्जय पुन ॥
तत्रापि भारतेशाख्य शिवलिंग महत्तरम् ॥ ४० ॥
दृष्टवतश्च तान् शिष्यानकुर्वंश्च शरणागतान् ॥
तत प्रचलितायाता श्रीरगाख्य हरे पदम् ॥ ४१ ॥
कावेरीद्वीपमध्यस्थ सप्तावरणमडितम् ॥
तत्र स्नात्वा तु विधिवत् कृत्वा तीर्थविधिं पुन ॥ ४२ ॥
शेपशायिरमेशस्य दर्शनार्थं गतास्तत ॥
तत्रत्या वैष्णवाचार्या समानेतु समागता ॥ ४३ ॥
निन्यु स्वाचार्यविधिना शठकोपपुर सरम् ॥
श्रीदेव्या चापि भूदेव्या सहित ददृशुर्हरिम् ॥
दडवत्प्रणता देव स्तुतिं चक्रु प्रहर्षिता ॥ ४४ ॥

दर्शन आदि करकें रामभक्तनकों उपदेश करते गये ॥ ३७ ॥ पीछें चोलनकी राजधानी तजावरमें पधारे सो वहांको राजा अपनी प्रजाके सग सामनें आयो ॥ ३८ ॥ सुनी है विद्या जिनकी एसे बडे उदयवारे आपकों राजविभूतिसों पधरायकें कृष्णदेवराजाकी सभा तथा ओर तीर्थनको वृत्तान्त पूँछ्यो ॥ ३९ ॥ राजाके पूँछवेपे शिष्यननें पीछे दिग्विजय बतायो वहांभी भारतेश नामक बडो शिवलिंग हे ॥ ४० ॥ उनके दर्शन कर शरणागतनकों शिष्य करते वहाँसों चले सो हरिके स्थान श्रीरगजीकों गये ॥ ४१ ॥ जो कावेरीके द्वीपकें बीचमें ओर सातप्राकरनसों मडित हे वहाँ स्नान विधिपूर्वक तीर्थविधि करकें पीछें ॥ ४२ ॥ शेपशायी भगवान्के दर्शनकों चले सो वहाँके वैष्णव आचार्य लेवेकों आये ॥ ४३ ॥ ओर अपने आचार्यनकी रीतिसों पधराये

चिदानंदाकारं सकलजगदाधारममलं ॥
स्फुरत्संविद्रूपं भृतविविधरूपेप्यनुपमम् ॥
स्वयं श्रीभूदेव्यौ चरणकमले यस्य भजतो ॥
भजे तं देवेशं भुजगशयिनं रंगनिलयम् ॥ ४५ ॥
सुरा यं सेवंते निगमनिचया यस्य विमलान्
गुणान् संगायंति स्फुरति हृदये यश्च विदुषाम् ॥
स्वयं शेते शेषे जगदपि च यच्छेषमयते
भजे तं देवेशं भुजगशयनं रंगनिलयम् ॥ ४६ ॥
रमा रामा कामो भुवनविजयी यस्य तनयो
क्षमादेवी दासी भवति यदुमाधीश्वरहरः ॥
विकुंठप्रासादो खगपतिरसौ वाहनवरो
भजे तं देवेशं भुजगशयनं रंगनिलयम् ॥ ४७ ॥
गजो येन त्रातो मकरगलितो वारिधिगतो ॥
हरीत्याख्या प्राप्ता शरणमयतां दुःखहरणात् ॥

हाँ शठकोप श्रीदेवी भूदेवी सहित हरिके दर्शन किये दंडवत् प्रणाम करकें हर्षसों स्तुति करवेलगे ॥ ४४ ॥ जो चिदानन्दाकार सब जगत्के आधार सुंदर ज्ञानरूप धारण कियें भयें रूपनमें अनुपम श्रीदेवीभूदेवी जिनके चरणकमलनकी सेवा करें हें उन सर्पके ऊपर सोयवेवारे देवतानके ईश रंगनिलयको में भजूँहूँ ॥ ४५ ॥ जिनकी देवता सेवा करें हें वेद जिनके विमलगुणनकों गान करें हें जो विद्वाननके हृदयमें प्रकाशित होंयहें आप शेषके ऊपर सोवें हें ओर जगत् जिनको अवशेष हे उनकूं में भज हूँ ॥ ४६ ॥ जिनकी स्त्री लक्ष्मीजी हें ओर पुत्र संसारको विजयकरवेवारो काम हे दासी पृथिवी हे स्थान वैकुंठ हे गरुड वाहन हें एसे देवतानके ईश रंगनिलयको में भजूं हूँ ॥ ४७ ॥ जिननें जलमें मगरसों लीले गजकी

स्वतो विश्वांभोजं समजनि यतो नाभिसरसो ॥
भजे तं देवेशं भुजगशयनं रंगनिलयम् ॥ ४८ ॥
निजान्पातु मीनो जरठकमठोप्यर्भककिटि ॥
द्विपाद् पचास्यस्तुरगवदनो हंसतनुभृत् ॥
धरादेवो देवो समजनि स देवो नरकजिद् ॥
भजे तं देवेशं भुजगशयनं रंगनिलयम् ॥ ४९ ॥
सदा शेषे शेते निगदितगुणोऽशेषनिगमैः ॥
निवृत्तः सक्लेशैर्भवति भजनादस्य मनुजः ॥
विशेषैर्भव्यानां स्फुरति महिमा काप्यनुपमा
भजे तं देवेशं भुजगशयनं रंगनिलयम् ॥ ५० ॥
वसतः कावेर्य्यां स्वकृतनिजवैकुंठभवने ॥
विशाले प्राकारे रचितसदने द्राविडभुवि ॥
सिषेवे यं धाता सुरमुनिवरा विप्रतनवो ॥
भजे तं देवेशं भुजगशयनं रंगनिलयम् ॥ ५१ ॥

रक्षा करी ओर शरण आये भयनके दुःख हरवेसों हरि ये नाम पायो जिनके नाभिसरोवरसों विश्वरूपी कमल उत्पन्न भये हे उनकों में भजूं हूं ॥ ४८ ॥ अपने भक्तनकी रक्षा करवेकों मत्स्य कच्छप वराह नृसिंह हयग्रीव हंस परशुराम वामन आदि रूप धरे हैं उन श्रीरंगजीकों में भजूं हूं ॥ ४९ ॥ जो सदा शेषमें सोवें हें जिनके अशेष गुण वेद गान करें हैं जिनके भजन करवेसों मनुष्य दुःखनसों छूट जॉय हैं जिनकी सुंदरतासों अनुपम महिमा दीख पडे हे उन श्रीरंगजीकों में भजूं हूं ॥ ५० ॥ द्रविडदेशमें विशाल परकोटवारे कावेरीनदीके बीचमें अपने किये भये वैकुंठ भवनमें जो विराजमान हे जिनकों ब्रह्मा आदि देवता

चतुर्वक्त्रैर्वेधा विषमनयनः पंचवदनैः
षडास्यैः सेनानीः फणपतिरसौ दिक्छतमुखैः ॥
गृणंतो यत्कीर्तिं न हि परमितास्तेपि चिरतो
रमेशं तं वंदे भुजगशयनं रंगनिलयम् ॥ ५२ ॥
इत्थमाचार्यवर्यास्ते स्तुतिं रंगेश्वरप्रभोः ॥
कुर्वंतः प्रणतिं चक्रुरर्चांनैवेद्यमार्पयन् ॥ ५३ ॥
तत्प्रसादं च तत्पादोदकमश्नन् निजैः सह ॥
चक्रुः पारायणं तत्र सूपविष्टा दिनाष्टकम् ॥ ५४ ॥
तत्र श्रीराघवाचार्यमुख्याश्चायन् बुधोत्तमाः ॥
प्रणता स्सत्कृतास्तेन स्वासनोत्थानमानतः ॥ ५५ ॥
पूजितास्तैश्च संपृष्टा विद्यानगरविज्जयम् ॥
यथावृत्तं च तद्वृत्तं तदंतेवासिनो जगुः ॥ ५६ ॥
द्वैताद्वैतमते तत्र जाता विप्रतिपत्तयः ॥
तत्राहुर्वैष्णवाचार्या विशिष्टाद्वैतमेव नः ॥ ५७

मुनिगण सेवें हें उन रंगनिलयकों में भजूं हूँ॥५१॥ जिनकी कीर्ति ब्रह्मा चार मुखसों शिव पांच मुखसों कार्तिकेयस्वामी ६ मुखसों शेषजी हजार मुखसों गान करें हें बहुत दिनासों तोबी पार नहीं पायो उनकों मैं भजूं हूं॥५२॥ या प्रकार श्रीमदाचार्य श्रीरंगजीकी स्तुति करकें प्रणाम करते भये पीछें पुजाके सँहित नैवेद्यकों अर्पण कियो ॥ ५३ ॥ ओर अपने मनुष्यनके संग उनको चरणामृत प्रसाद लेते आठ दिन विराजे पारायण कियो ॥५४ ॥ वहाँ उत्तम विद्वान् श्रीराघवाचार्यनें आयके प्रणाम किये। ओर अभ्युत्थान आसनकों पायकें ॥५५॥ विद्यानगरके विद्वाननके जयको वृत्तान्त पूँछ्योसो विद्यार्थीननें यथावत् वृत्तान्त कह्यो॥५६॥ओर वहाँ द्वैताद्वैतमतके पूर्वपक्ष भये तामें वैष्णवाचार्यननें

सम्यङ्मत यतो वेदा सर्वे यत्रैकसस्थिता ॥
तदाह श्रीमदाचार्यो द्वैताद्वैत कुतो न सत् ॥ ५८ ॥
व्याख्यान प्रथमं सूत्रे गीतायां तत्र सशये ॥
समाधिभाषा तत्रापि सशये निर्णयाय न ॥ ५९ ॥
सोऽनुवीक्ष्येत्यादिमंत्रे प्रागेकात्मानुगीयते ॥
निषेधादितरस्यैव जडजीवो न तत्र यो ॥ ६० ॥
सूत्रे चात्मकृतेरित्यादावात्मैकोऽस्य कारणम् ॥
अह सर्वस्य प्रभव इत्यादौ च तयोदित ॥ ६१ ॥
अहमेवासमेवाग्रे यथा स्वर्णादिसद्गिरा ॥
समाधिभाषया चैकात्मन कारणतोदिता ॥ ६२ ॥
वादिनस्तत्र सामर्षा साश्चर्या उच्चकैर्जगुः ॥
समाधिभाषा का चेयं प्रमाणेषु गरीयसी ॥ ६३ ॥
वाल्मीकिना तु या प्रोक्ता व्यासैर्दृष्टा समाधित ॥
रामायण भागवत सा चास्माक समाधिगी ॥ ६४ ॥

कह्यो विशिष्टाद्वैतही हमारो मत ॥ ५७ ॥ समीचीन है जामें सब वेदनको समन्वयहे तब श्रीमदाचार्य बोले जो द्वैताद्वैत क्यों ठीक नहीं ॥ ५८ ॥ प्रथम व्याससूत्रमें निर्णय हे फिर गीताजीमें यामें भी संदेह होय तो निर्णयके लिये समाधि भाषा हे ॥ ५९ ॥ ओर "सोऽनुवीक्ष्य" इत्यादि मन्त्रनमें पहलें एक आत्माही हे दूसरेको निषेध हे यहाँ जड ओर जीव नहीं हे ॥ ६० ॥ "आत्मकृते" इत्यादिक सूत्रनमें भी सबको कारण एक आत्माही कह्यो हे ओर "अहसर्वस्यप्रभव" इत्यादिकनमेंभी वेसोही कह्यो हे ॥ ६१ ॥ मेंही पहलें हो जेसें सुवर्ण एसें समाधिभाषा सो भी एक आत्माहीकी कारणता कही गई हे ॥ ६२ ॥ सबते वादी कुछ होयके आश्चर्यके सग जोरसों बोले जो ये समाधिभाषा कहा हे जो प्रमाणनमें भेठ गिनी हो ॥ ६३ ॥ तब श्रीमदाचार्यजीने कह्यो जो वाल्मीकि-

इत्युक्ते श्रीमदाचार्यैः प्रतिवादी तदा जगौ ॥
किं वैशिष्ट्यं भागवते श्रद्धा वोऽत्र गरीयसी ॥ ६५ ॥
प्रोचुस्तदा निजाचार्याः पुराणानां शिरोमणिः ॥
श्रीमद्भागवतं नाम पुराणं व्यासतुष्टिदम् ॥ ६६ ॥
अर्थोऽयं व्याससूत्राणां भारतार्थविनिर्णयः ॥
गायत्रीभाष्यरूपोसौ ग्रंथो भागवताभिधः ॥ ६७ ॥
इत्येवं निर्णये तस्य सर्वाभ्यर्हत्वकीर्तनात् ॥
वैशिष्ट्यं दर्शनादेव तस्य भाति विदां हृदि ॥ ६८ ॥
यदि रामानुजाचार्यैः पुराणं वैष्णवं मतम् ॥
प्रचारात्तद्धि लिखितं नाप्रामाण्यमलेखनात् ॥ ६९ ॥
बहूनामपि ग्रन्थानां तदलेखादमानता ॥
स्यादन्यथोपनिषदां तथा स्मृतिपुराणयोः ॥ ७० ॥
मृत्स्नाभक्षणलीलायाः शंकरार्यैर्निरूपणात् ॥
व्याख्यानाच्चित्सुखस्यापि तदीयानां च संमतम् ॥
हेमाद्रिमाधवाद्यैश्च धर्मशास्त्रादिदिग्गजैः ॥ ७१ ॥

जीनें जो कह्यो हे ओर व्यासजीनें जो समाधिसों कह्यो हे वो वाल्मीकिरामायण ओर श्रीमद्भागवत हमारी समाधिभाषा हे ॥ ६४ ॥ ये कहवेपें वे वादी बोले जो भागवतमें कहा विशेष हे जासों आपकी बडी श्रद्धाहे ॥ ६५ ॥ तब श्रीमदाचार्य बोले जो पुराणनमें शिरोमणि व्यासजीको तुष्टि देवेवारो श्रीमद्भागवत पुराणहे ॥ ६६ ॥ व्यासजीके सूत्रनको अर्थ भारतके अर्थको निर्णय गायत्रीको भाष्यरूप ये भागवत ग्रंथ हे ॥ ६७ ॥ एसे निर्णय होयवेसों सबसों पूजनीय हे ओर विद्वाननके हृदयमें देखवेहीसों विशेषपनों भासे हे ॥ ६८ ॥ रामानुजाचार्यजीनें जो विष्णुपुराण मान्यों हे सो प्रचारसों लिख्योहे ओर उनके न लिखवेसों भागवतको अप्रामाण्य नहीं होयसके हे॥६९॥ओर एसें मानोंगे तो उनके न लिखवेसों बहुत ग्रंथ उपनिषद् स्मृति ओर पुराणनकी अप्रामाण्यता होयजायगी ॥ ७० ॥ मृत्स्नाभ-

प्रमाणैस्तस्य वैशिष्ट्य कस्य शिष्टस्य नोन्मितम् ॥
तस्मात् समाधिभाषायाव्याख्यानाच्छ्रुतिसूत्रयो ॥ ७२ ॥
गीताया गृह्यते चार्थे शुद्धाद्वैत तत प्रमा ॥
लक्षण तत्र चाचार्यै शुद्धाद्वैतस्य साधितम् ॥ ७३ ॥
श्रुतित सूत्रतो युक्त्या प्रीता जातास्ततो बुधा ॥
आचार्यान् समनुज्ञाप्य प्रशस्य च प्रणम्य ते ॥ ७४ ॥
यथागता गता केचित्केचिच्छरणमागता ॥
श्रीरंगेशमनुज्ञाप्य सशिष्या गुरवोऽव्रजन् ॥ ७५ ॥
श्रीवेदव्यासविष्णुप्रभुचरणमिते सम्मिते ग्रन्थसार्थे
श्रीगोविन्दाभिधानां समयनयविदां देशिकानां निदेशात् ॥
आचार्याणां चरित्रे हरिजनसुखदे शाब्दिकृष्णैर्निबद्धे ॥
प्रस्थानेऽस्मिँस्तृतीये समजनि पटलो दिग्जयाख्ये तृतीय ७६

क्षणलीलाको शंकराचार्यजीने निरूपण कियो है और चित्सुकके व्याख्यानसों उनके अनुयायीनकों संमत है ॥ ७१ ॥ धर्मशास्त्रके दिग्गज हेमाद्रि माधवके प्रमाणन करकें विशिष्ट होयवेपे कोनसे शिष्टजनकों याको वैशिष्ट्य प्रमाण नहीं है ॥ ७२ ॥ श्रुतिसूत्रनके व्याख्यान औरगीताके अर्थ होयवेसों सामाधिभाषावो प्रामाण्य है और इन्हींसों शुद्धाद्वैत प्रमाण है और यहाँ श्रीमदाचार्यजीने श्रुति सूत्र युक्ति इनसों शुद्धाद्वैतको लक्षण कियो तब विद्वान् प्रसन्न भये ॥ ७३ ॥ ७४ ॥ और आचार्यनकी प्रशंसा करकें प्रणाम करकें आज्ञा लेकें जेसे आये हे वेसेंही गये उनमेंसों कोई शरणभी भये और आप श्रीरंगजीकी आज्ञा लेकें शिष्यसमेत यहाँसों पधारे ॥ ७५ ॥ समयनीतिके जाननेवारे जगद्गुरु श्रीगोविन्दाचार्यजी महाराजकी आज्ञासों श्रीमद्वेदव्यासविष्णुस्वामिसम्प्रदायके ग्रन्थनके अनुकूल श्रीकृष्णशास्त्रीके बनाये या दिग्विजयग्रन्थके तीसरे प्रस्थानमें ये तीसरो पटल समाप्त भयो ॥ ७६ ॥

ऋषभाद्रिं प्रचलिता यः स्वयं ह्यृषभादृतः ॥
तं दृष्ट्वाद्रिं परिक्रम्य चालगर्दं चतुर्भुजम् ॥ १ ॥
दृष्ट्वा प्रणम्य ते याता दक्षिणां मथुरां प्रति ॥
सत्यव्रतस्य राजर्षेर्मत्स्यरूपी जनार्दनः ॥ २ ॥
प्रव्यक्तः कृतमालायां कुर्वतो जलतर्पणम् ॥
तत्र पारायणं चक्रुर्मीनाक्षीं सुंदरेश्वरम् ॥ ३ ॥
अपश्यँस्तत्र संप्राप्ता विद्वांसो वैष्णवा अपि ॥
प्रणम्य श्रीमदाचार्यान् प्रोचुस्ते पूर्वदर्शनान् ॥ ४ ॥
वयं शृणुमहे पूर्वं पांड्यान्विजयिनो नृपान् ॥
आसीद्गुरुर्गुरुस्तेषां विष्णुस्वाम्यत्र शिक्षकः ॥ ५ ॥
श्रौतस्मार्तसमाचारवैष्णवाचारदेशिकः ॥
जगज्जेता निजाम्नायं स्थापयामास भूतले ॥ ६ ॥
तत्संप्रदायनेतार आचार्या बहवोऽभवन् ॥
इदानीं नैव दृश्यंते तादृशा लोकशिक्षकाः ॥ ७ ॥

ऋषभदेवनें जाको आदर कियो हे एसे ऋषभाद्रिपर्वतमें आये ओर ताके दर्शन परिक्रमाकरकें चार भुजा वारे आलगर्दजीके ॥ १ ॥ दर्शन प्रणाम करकें दक्षिण मथुराकों गये जहाँ राजर्षि सत्यव्रतके कृतमाला नदीमें तर्पण करते मत्स्यरूपी भगवान् प्रगट भये हे वहाँ पारायण कियो ओर मीनाक्षी देवी तथा सुंदरेश्वरके दर्शन किये वहाँ विद्वान् वैष्णवबी आये सो अपूर्व हे दर्शन जिनको एसे श्रीमदाचार्यजीकों प्रणाम करकें बोले जो हम सुनें हें जो पांड्य विजयी राजानके शिक्षा देवेवारे गुरू गुरुविष्णुस्वामी यहाँ भये हे ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ जिननें श्रौतस्मार्त सदाचार वैष्णवाचारको उपदेश कर जगत्को जीतकें संसारमें अपने सम्प्रदायकों चलायो हो ॥ ६ ॥ उनके सम्प्रदायके चलायवेवारे बहोत आचार्य भये परन्तु या सम-

किंवदती श्रुता काचित् विद्यानगरविज्जयी ॥
समुद्भूतोऽधुनाचार्यो विष्णुस्वामिमतेश्वर ॥ ८ ॥
किं श्रीमंतस्त एव स्युर्वैकुंठआचार्यवेषिण ॥
चिरात्कर्णपुट प्राप्ता अद्यदृष्टास्सुभाग्यत ॥ ९ ॥
दामोदरस्तदा प्राह श्रीमंतोऽमी त एव हि ॥
तदा ते ननृतुर्भक्ता कुर्वंतोजयनिस्स्वनम् ॥ १० ॥
शखघटामृदगाद्ये कीर्तयतो गुरोर्यश ॥
पप्रच्छु संप्रदायस्य प्रस्थानानि च सस्कृतिम् ॥ ११ ॥
सदाचारं विचारं च तदंतेवासिनो जगु ॥
वेदा सूत्राणि गीता च श्रीमद्भागवतं तथा ॥ १२ ॥
अस्माक दर्शने मुख्य प्रस्थानानां चतुष्टयम् ॥
सस्कृति शरणापत्तिर्ग्रहण मत्रयोर्हरे ॥ १३ ॥
आचारो भक्तिशास्त्रीयो धर्मशास्त्रानुसारत ॥
भावाद्वैत क्रियाद्वैत द्रव्याद्वैत तथा पुन ॥ १४ ॥

यमें लोकके शिक्षा करवेवारे वेसे कोई नहीं दीख पर्डे हें ॥ ७ ॥ अब सुनें हैं के विद्यानगरके विद्वाननके जीतवेवारे विष्णुस्वामीसम्प्रदायके आचार्य प्रगट भये हें ॥८॥ कहा आपही हे बहोत दिनासों सुनते हे सो आज भाग्यसु दर्शन भये ॥ ९ ॥ तब दामोदरनें कही जो आपही हे तब वे भक्त बडे स्वरसों जयध्वनि करके नाचवे लगे ॥ १० ॥ शख घंटा मृदग आदि बाजानसों गुरुनके यशको कीर्तन करते सम्प्रदायके प्रस्थाननकों ओर सदाचार विचारकों पूंछ्यो ॥ ११ ॥ तब आपके विद्यार्थी बोले जो वेद सूत्र गीता श्रीमद्भागवत ये चार प्रस्थान हमारे दर्शनमें मुख्य हैं ॥ १२ ॥ शरणागति ओर भगवान्‌के मन्त्रनको ग्रहण येही सस्कृति हे ॥१३॥ धर्मशास्त्रके अनुसार भक्तिशास्त्रीय आचार हे ओर भावाद्वैत

विचारणीयं नित्यं हि तद्वेदांतमनुत्तमम् ॥
कार्यकारणवस्त्वैक्यमर्शनं पटतन्तुवत् ॥ १५ ॥
अवस्तुत्वाद्विकल्पस्य भावाद्वैतं तदुच्यते ॥
भेदो विकल्पो निर्दिष्टो नास्ति सोऽवस्तुतः पृथक् ॥ १६ ॥
सर्वाकारं यतोब्रह्म साकारादि प्रकारतः ॥
यद्ब्रह्मणि परे साक्षात् सर्वकर्मसमर्पणम् ॥ १७ ॥
मनोवाक्क्रतुभिः पार्थ क्रियाद्वैतं तदुच्यते ॥
उद्देश्यफलभेदाभ्यां क्रियाभेदो निगद्यते ॥ १८ ॥
यत्रोद्देश्यफलं चैव क्रिया कर्ता तदात्मकः ॥
तत्र भेदस्य को गंधः क्रियाऽद्वैतं ततो मतम् ॥ १९ ॥
अन्यथा तु क्रियाद्वैतं नास्त्यादावपि हीयते ॥
आत्मजायासुतादीनामन्येषां सर्वदेहिनाम् ॥ २० ॥

क्रियाद्वैत, द्रव्याद्वैत, ॥ १४ ॥ या उत्तम वेदान्तको नित्य विचारे ओर कार्य कारणवस्तुको एक पटतन्तुके जेसो समझे ॥ १५ ॥ विकल्पके अवस्तु होयवेसों अर्थात् दूसरी वस्तुके न होयवेसों भावाद्वैत कहेंहें भेदको विकल्प कहेंहें सो तात अलग नहीं ॥ १६ ॥ साकारकी रीतिसों सर्वाकार ब्रह्म हे ओर मन वाणी यज्ञ आदिसों जो सब कर्मनको साक्षात परब्रह्ममें अर्पण हे ताकों क्रियाद्वैत कहें हें उद्देश्य ओर फल इनके भेदसों क्रियाको भेद कहें हें ॥ १७ ॥ ॥ १८ ॥ जहाँ उद्देश्य फल क्रिया कर्ता ब्रह्मात्मक हें वहाँ भेदको गंधवी नहीं यासों क्रियाद्वैत कहें हें ॥ १९ ॥ एसें नहीं मानोंगे तो नास्तिमेंवी क्रियाद्वैतकी हानि होयगी अपने स्त्री पुत्र आदिकनके ओर सब प्राणीनके विषयमें जो स्वार्थ तथा कामकी एकता ताकों द्रव्याद्वैत कहें हें या प्रकार-अनेकविचारसों उपदेश किये गये वे आचार्यनकों प्रणाम करकें कृतकृत्य होयकें अपनें घरनकों गये ओर श्रीमदाचार्यजीवी दक्षिणकाशीके दर्शन कर नव-

यत्स्वार्थकामयोरैक्य द्रव्याद्वैत तदुच्यते ॥
इत्येवमुपदिष्टास्ते विचार प्रति चित्रधा ॥ २१ ॥
आचार्यान् प्रणता सम्यक् कृतकृत्त्या गृहान् ययु ॥
नतस्तु दक्षिणां काशीं दृष्ट्वा याता नवग्रहान् ॥ २२ ॥
रामेश्वर तत प्राप्ता स्तत्र शैवा समागता ॥
तत्र लक्ष्मणसत्तीर्थे कर्तुं तीर्थविधिं तु ते ॥ २३ ॥
मलस्नान बहि कृत्वा तीर्थस्नान ततोऽप्यधु ॥
शिष्या पृथक् पृथक् तत्र वपन स्नपन तथा ॥ २४ ॥
विधाय श्राद्ध चेरुस्ते धृत्वा पुड्राणि मुद्रिका ॥
तद्दृष्ट्वा वीरशैवा ये विहस्योचुरमर्पिता ॥ २५ ॥
के यूयं कुत आयाता शिवक्षेत्रमनुत्तमम् ॥
भस्मरुद्राक्षविमुखा मृन्मुद्रापुड्रस्रग्धरा ॥ २६ ॥
न वैष्णवास्ततमचक्रशंखाद्यकविवर्जिता ॥
किं श्राद्धविधिनाचेहार्ऽल्गांकितशरीरिणाम् ॥ २७ ॥

ग्रहनकों पधारे ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥ वहाँसों रामेश्वर पधारे वहाँ शैव आये पीछे लक्ष्मणतीर्थमें तीर्थविधि करवेके लिय मलस्नान बाहेर करके तीर्थस्नान कियो और शिष्यननें अलग २ मुंडन करायक स्नान ऊर्द्ध्वपुड्र मुद्रा धारण कर श्राद्ध कियो ये देसकें न सहके वीर शैव हँसके बोले ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥ जो तुम सब कोन हो कहाँसों आये हो उत्तम शिवक्षेत्रमें भस्म रुद्राक्षको न धारण करके मृत्तिकाकी मुद्रा ऊर्द्ध्वतिलक तुलसीमाला धारण किये हो ॥ २६ ॥ और तम शख चक्र आदिके चिन्हनसों वर्जित होयवेसों तुम वैष्णवभी नहीहो जिनको शरीर अंकित नहीं

वैदिकैः पशुभिः श्राद्धादिभिर्वैदिककर्मभिः ॥
स्वर्गापवर्गौ लभ्येते तौ न लिंगार्चनं विना ॥ २८ ॥
अंतर्लिंगं बहिर्लिंगं येह्यर्चंति महेशितुः ॥
ते यांति मुक्तिं हित्त्वैव कथां विधिनिषेधयोः ॥ २९ ॥
शुष्कमार्द्रं दहत्येधो वृद्धः सन्पावको यथा ॥
शैवीभक्तिर्दहत्येवं पुण्यपातकयोर्गणम् ॥ ३० ॥
यानि कानि च पापानि निषिद्धानि श्रुतौ स्मृतौ ॥
तानि शंभोर्महापूजा यज्ञखंडे समीरिता ॥ ३१ ॥
न स्पृशेद्वैदिकं कर्म न पश्येद्वैष्णवं धिया ॥
लिंगधारी महेशस्य मुमुक्षुः शरणं व्रजेत् ॥ ३२ ॥
इत्युक्ते छात्रवर्योऽत्र भट्टार्यस्तु तदाऽब्रवीत् ॥
रे रे पाषंडिनो दूरं तिष्ठताहं ब्रवीमि वः ॥ ३३ ॥
वयं तु वैष्णवा विप्रा विष्णुस्वामिमतानुगाः ॥
एते चास्माकमाचार्यानाऽसभ्यान् विवदंत्यमी ॥ ३४ ॥

ऐसे तुम्हारे श्राद्ध विधानसों कहा हे ॥ २७ ॥ वैदिक पशुनसों श्राद्धादिक वैदिक कर्मनसों स्वर्ग मोक्षकी अभिलाषा करें हैं ओर स्वर्ग मोक्ष लिंगार्चनके विना नहीं मिलेहे ॥ २८ ॥ जो बाहेर भीतर शिवलिंगकी पूजा करें हैं वे शास्त्रके विधिनिषेधको एकआडी कर मुक्तिकों पावें हैं ॥ २९ ॥ बड़ो प्रचंड अग्नि सूखे गीले काष्टनकों भस्म कर डारे हे याहीप्रकार शैवी भक्ति पुण्यपापकों भस्म कर देय हे ॥ ३० ॥ श्रुतिस्मृतिमें जो कछू निषिद्ध पाप हैं उन सबनकों शिवकी पूजा दूरकरदेय हे ॥ ३१ ॥ महादेवको लिंगधारी पुरुष वैदिक वैष्णवधर्म्मनके विना स्पर्श कियेही मुक्ति पावे हे ॥ ३२ ॥ ऐसें उनके कहवे पे श्रीमहाप्रभुनके शिष्यवर भट्टार्य बोले जो रे रे पाखंडिगो [illegible] ॥ ३३ ॥ [illegible]

विनावैदिकमार्गेण श्रेयो नास्त्येव कुत्र चित् ॥
नारायणसमाज्ञैषा महेशस्यापि चोदना ॥ ३५ ॥
शैवतन्त्रेषु युष्माकमेव वेदे न भाषितम् ॥
इत्येवमुच्यते तत्र ज्ञाप्यते वेदमूलता ॥ ३६ ॥
प्रत्यक्षवेदत सा किं विरुद्धेऽनुमिता भवेत् ॥
विचित्रवेषा के यूय सर्वे वेदबहिष्कृता ॥ ३७ ॥
वेदनिन्दापरामूढास्तन्निन्दायां हरोऽक्षम ॥
तदाह तत्प्रधानो यो वीरमाहेश्वरो नर ॥ ३८ ॥
अहं पाशुपतोभस्माच्छन्नगात्रो जटाधर ॥
ललाटभुजहन्नाभिर्लिंगधारी शिवात्मक ॥ ३९ ॥
अह तु जगमो मूर्ध्नि धातुपाषाणलिंगभृत् ॥
त्रिशूल हृदये बिभ्रत् घटाकर्णश्शिवात्मक ॥ ४० ॥
फाले लिंगांकितो भट्टोस्म्यहं शिवपरायण ॥
भाले त्रिशूलधृग्रौद्रोस्म्यह रुद्रैकतत्पर ॥ ४१ ॥

मतानुयायी वैष्णव ब्राह्मण हैं ये हमारे गुरू हैं अमाभ्यनसा नहीं विचार करते ॥ ३४ ॥ कहींभी विना वैदिकमार्गके कल्याण नहीं भगवान्की एसी आज्ञा और महेशकीभी प्रेरणा है ॥ ३५ ॥ तुम्हारे शैवतन्त्रनमेंभी ये वेदमें लिख्यो है ये कह्यो है याहीसों वेदकी मूलता है ॥ ३६ ॥ अब प्रत्यक्ष वेदके विरुद्ध होयवेसों कहा तुम्हारो अनुमान होयसके है और वेद बहिष्कृत विचित्रवेषवारे वेदकी निंदा करवेवारे तुम कोन हो ॥ ३७ ॥ शिवभी उनकी निन्दा नहीं सहेंगे तब उनमें प्रधान वीर माहेश्वर बोले ॥ ३८ ॥ जो हम पाशुपत भस्मकों सबशरीरमें लगाये जटाधारी मस्तक भुजा हृदय नाभि इनमें लिंगधारी शिवरूप ॥ ३९ ॥ मस्तकपे धातुपाषाणके लिंग त्रिशूलकों हृदयमें धारण करवेवारे जंगम घटाकर्ण शिवके अनुचर ॥ ४० ॥ शिवभक्त भट्ट हैं त्रिशूल धारण किये रुद्रकी सेवाम तत्पर रौद्र

भुजद्वये डमरुभृदुग्रोहं चोग्रशासनः ॥
भुजद्वये तत्त्वलिंगांकाः शैवाःस्मो वयं द्विज ॥ ४२ ॥
माहेश्वरा दक्षयज्ञे देवेषु द्रावितेष्वलम् ॥
जितकापा वयं शिष्टा वीरभद्रेण निर्भयाः ॥ ४३ ॥
विष्णुब्रह्ममहेंद्राद्यायैर्दंडेन निराकृताः ॥
क्रियंते नित्यदा शंभोर्दर्शनार्थं समागताः ॥ ४४ ॥
माहेशानां च तेषां नः के प्रभावं न जानते ॥
दर्शयंति प्रभावान् ये ते किं वाक्यवशानुगाः ॥ ४५ ॥
वाक्येष्वेव च त्वच्छ्रद्धा तदा वाक्यशतं शृणु ॥
वेदः शिवः शिवो वेदो वेदोऽयं शिवभाषितः ॥ ४६ ॥
वेदे यथा शिवो गीतो न तथा देवतांतरः ॥
यो नाम्नैवेश्वरोब्रह्मेशानश्च शंकरः शिवः ॥ ४७ ॥
मूर्त्याष्टमूर्त्तिर्वीर्याच्चु निर्गीर्णाण्डकटाहकः ॥
ऋतं सत्यं परं ब्रह्म पुरुषं कृष्णपिंगलम् ॥ ४८ ॥

हम हैं ॥ ४१ ॥ दोनों भुजानमें डमरूनके चिह्न धारण किये उग्र शिक्षा देवेवारे उग्र शैव हम हैं ॥ ४२ ॥ दक्षके यज्ञमें देवतानके भागवेप जीतवेवारे वीरभद्रसों निर्भय ॥ ४३ ॥ जिनके दंडसों महेशके दर्शननकों आये ब्रह्मा विष्णु इन्द्र इनको तिरस्कार नित्य होय हे वे हम हैं ॥ ४४ ॥ हमारो ओर महेशको प्रभाव कोन नहीं जानें हे जो प्रभावके दिखायवेवारे हैं वे कहा वाक्यके वशहें ॥ ४५ ॥ ओर वाक्यनमेहीं जो तुम्हारी श्रद्धा हे तो सौ वाक्य सुनो वेद शिव हे शिव वेद हे ये वेद शिवको कह्यो भयो हे ॥ ४६ ॥ वेदमें जेसो शिवको वर्णन हे वेसो दूसरे देवतानको नहीं हैं जिनको नामही ईश्वर ब्रह्म ईशान शंकर शिव हे ॥ ४७ ॥ आठ मूर्ति हैं अपने पराक्रमसों ब्रह्मांडको लीलैं हें ऋत सत्य परब्रह्म कृष्ण पिंगल

ऊर्द्धरूप विरूपाक्षं विश्वरूपाय ते नम ॥
इत्येव श्रुतिवाक्यानि त श्रयेदिति चोच्यते ॥ ४९ ॥
द्यौर्मूर्द्धानमिति श्रुत्या मुमुक्षु शरण व्रजेत् ॥
आथर्वणोपनिषदामाथर्वणशिखादिषु ॥ ५० ॥
पश्य रुद्रस्य माहात्म्य स्पष्टमेव निरूप्यते ॥
दुर्वासस प्रति पुन शंभूक्तमपि श्राव्यते ॥ ५१ ॥
अहमेवाक्षर कर्त्ता परात्परतर शिव ॥
सदात्मा ब्रह्मविष्णुश्च लोकानामादिकारणम् ॥ ५२ ॥
पुराण पूर्वग पूर्वो ज्येष्ठ श्रेष्ठोऽहमद्वय ॥
मदिच्छारूपिणी शक्तिर्जगत्संहारकारिणी ॥ ५३ ॥
लुप्ता मय्येव सा सृष्टा पुन सृष्टौ मयाऽनघ ॥
सा महत्तत्त्वमुत्पाद्य त्रिगुणांकुरकारणम् ॥ ५४ ॥
अहंकार समुत्पाद्य त्रैगुण्य पूर्वतत्त्वत ॥
गुणत्रयात्मकान् कृत्वा रुद्रानेकादशाऽव्ययान् ॥ ५५ ॥

॥ ४८ ॥ ऊर्ध्वरूप विरूपनेत्र विश्वरूप एसे उनकों नमस्कार है एसे श्रुतिवाक्य उन्हींमें घटें है ॥ ४९ ॥ "द्यौ मूर्द्धानम्" या श्रुतिसों मोक्षकी इच्छा करवेवारो उनकी शरणमें जाय अथर्वणके उपनिषदनमें रुद्रको माहात्म्य स्पष्ट कह्यो है ओर दुर्वासाके प्रति जो शिवजीनें कह्यो है वो भी सुनावे हैं ॥ ५० ॥ ५१ ॥ मैं ही अक्षर कर्ता परसों पर शिव आत्मा ब्रह्मा विष्णु लोकनके आदि कारण पुराण पूर्व श्रेष्ठ द्वितीयरहित हूं जगत्के संहार करवेवारी मेरी इच्छारूप शक्ति मेरेहीमें लीनही ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ सृष्टिके प्रारम्भमें पीछे मोसों उत्पन्न भई यानें महत्वकों उत्पन्न करके त्रिगुणरूपी अंकुरके कारण अहंकारकों उत्पन्न करकें गुणत्रयात्मक नाशरहित ग्यारह रुद्रनकों उत्पन्न करके आदरसों राजस सृष्टिकर्त्ताकों उत्पन्न करती भई ओर पालन करवेवारे सात्विक प्रलय करवेवारे तामस ईश्वरनकों उत्पन्न

राजसं सृष्टिकर्तारं कारयामास सादरम् ॥
सात्विकान् पालनपरान् तामसान्प्रलयेश्वरान् ॥ ५६ ॥
क्रमादवर्णात्संजातानुवर्णाच्च मवर्णतः ॥
तेषु मुख्यतमाब्रह्मविष्णुरुद्रा इति त्रिधा ॥ ५७ ॥
अन्ये तदनुवृत्तिस्था एवमेकादशेश्वराः ॥
तेषां विभूतयः सर्वे देवा लोकाश्चराचराः ॥ ५८ ॥
पृथक् पृथक् नामयुतास्तत्तत्कर्मानुसारतः ॥
ते सर्वे प्रलये ब्रह्म तेजस्येव लयं गताः ॥ ५९ ॥
राजसे रक्तवर्णे च स तु ब्रह्मा समस्तभृत् ॥
कृष्णो नारायणस्यैव तेजस्यस्तोऽभवत्पुरा ॥ ६० ॥
रुद्रस्य शुक्लवर्णे तु ह्यस्तो नारायणः स्वयम् ॥
स तु रुद्रः प्रकृत्यंतर्गतशुक्लेन तेजसा ॥ ६१ ॥
मदिच्छा शुक्लवर्णा सा मय्येव विलयं गता ॥
अतोऽस्म्यनंतः सर्वार्थो वेदैरपि न गोचरः ॥ ६२ ॥

कियो ॥५४॥५५॥ ५६ ॥ क्रमसों (अ) वर्णसों ब्रह्मा (उ) वर्णसों विष्णु (म) वर्णसों रुद्र ये भये ॥ ५७ ॥ ओरबी एकादश रुद्र सब देवता चराचर मात्र सब लोग इन्हींकी विभूति हैं ॥ ५८ ॥ कर्मके भेदसों अलग २ नाम हैं वे सब ब्रह्मतेजहीमें लीन हैं ॥ ५९ ॥ समस्तसंसारके धारण करवेवारे ब्रह्मा उनके रक्तवर्णराजसमें अस्त होंय हैं कृष्ण नारायणके तेजमें लीन होंय हैं ॥ ६० ॥ रुद्रके शुक्लवर्णमें स्वयं नारायण अस्त होंय हैं वे रुद्र अपने शुक्लतेजकरकें प्रकृतिके अन्तर्गत होंय हैं ॥ ६१ ॥ मेरी शुक्लवर्ण इच्छा मेरेहीमें लीन होय हे यातें हम अनन्त पूर्णार्थ वेदसोंबी नहीं

वेत्ति कश्चिन्न मन्मायां जन्मस्थितिलयावहाम् ॥
अतो रुद्रार्चनपरा रुद्रसूक्तजपान्विता ॥ ६३ ॥
पचाक्षरीजपपरा रुद्राक्षाभरणैर्युता ॥
भूतिभूषितसर्वांगा सदा ध्यानपरायणा ॥ ६४ ॥
ईश्वर रुद्रमव्यक्त व्यक्तरूप जगल्लये ॥
येऽर्चंति नरश्रेष्ठास्तेषां मुक्तिः करे स्थिता ॥ ६५ ॥
अतस्त्व भूतिरुद्राक्षधारणं कुरु सर्वदा ॥
कुरु नित्यं महादेवपूजनं भक्तिसयुत ॥ ६६ ॥
दुर्वाससे मुनीन्द्राय ह्येवमुक्त्वासदाशिव ॥
अंतर्दधे तदाचारसक्तोऽभून्मुनिसत्तम ॥ ६७ ॥
इत्येष वाक्यसंचेषु महेशस्य महेशता ॥
प्रदृश्यते तदाचारस्तात्रिको न सदोत्तम ॥ ६८ ॥
एतदाचारविमुख शिवभक्तिपराङ्मुख ॥
शिवक्षेत्र कथ प्राप्तास्तत्र कारणमुच्यताम् ॥ ६९ ॥

जाने जाँय हैं ॥ ६२ ॥ जन्म स्थिति लय करबेवारी मेरी मायाकों कोई नहीं जाने है याते रुद्रकी पूजामें तत्पर रुद्रसूक्तके जप करबेवारो ॥६३॥ पचाक्षरी मन्त्रके जपमें तत्पर रुद्राक्षके आभूषणनसा भूषित सर्वाङ्गमें विभूति लगायें सदा ध्यान करबेवारे ॥६४॥ ईश्वर रुद्र अव्यक्त ओर व्यक्त रूपका जे भजे हैं उनपुरुषनके हाथहीमें मुक्ति मुक्ति है॥६५॥याते विभूति रुद्राक्षको तुम सर्वदा धारण करो ओर भक्तिसों नित्य महादेवजीके पूजन करो ॥ ६६ ॥ ऐसे दुर्वासा ऋषिसूँ सदाशिव कहके अन्तर्धान होयगये ओर दुर्वासा मुनि उनके आचार पूजनमें तत्पर भये ॥ ६७ ॥ इत्यादि वाक्य समूहनमें महेशकी महेशता दीखे पडे है यासों ये आचार तान्त्रिक नहीं किन्तु उत्तम है॥६८॥ आप या आचारसों विमुख शिवभक्तिसों पराङ्मुख शिवक्षेत्रमें कैसे आये

इत्युक्ते वीरशैवेन शिष्यभट्टस्तदाऽब्रवीत् ॥
शिवसंज्ञास्ति वेदस्य कल्याणस्य महेशितुः ॥ ७० ॥
न तावता तवार्थः स्याद्भवान् पाशुपतो यथा ॥
द्वे ब्रह्मणी वेदितव्ये इत्यादिश्रुतिदर्शनात् ॥ ७१ ॥
वेदोयमक्षरब्रह्म स्वयंभूर्न शिवोदितः ॥
वेदो नारायणः साक्षात् स्वयंभूरिति पठ्यते ॥ ७२ ॥
ये शैवगीरिति ब्रुयुर्नैगमास्तेऽधमास्त्रयीम् ॥
इत्येवं भट्टपादादेर्निर्णयः शिष्टसंमतः ॥ ७३ ॥
महेशमहिमा वेदे गीयते तावता तु किम् ॥
महेश्वरः परंब्रह्म शिवो वा नास्ति नः क्षतिः ॥ ७४ ॥
परमात्मा परब्रह्म मूर्त्तयस्तस्य ते मताः ॥
ब्रह्मविष्णुमहेशाद्या मूर्त्ताऽमूर्त्तात्परो हि सः ॥ ७५ ॥
नारायणशिवब्रह्मेशानविष्ण्वादिनामभिः ॥
कथ्यते परमं तत्त्वमिति वाराहभाषितम् ॥ ७६ ॥

हो वामें कारण कहो ॥ ६९ ॥ ऐसे वीरशैवके कहवे पे शिष्य भट्ट बोले जो शिव कल्याण संज्ञा वेदकी हे ओर महेशकी हे ॥ ७० ॥ यातें तुम्हारो अर्थ नहीं सिद्ध भयो कारणके आप पाशुपत हो "द्वेब्रह्मणी" इत्यादि श्रुतिसों ॥ ७१ ॥ वेद ये अक्षर ब्रह्म स्वयम्भू हे शिवको बनायो नहीं वेद साक्षात नारायण स्वयम्भू हे एसो लिख्यो हे ॥ ७२ ॥ जो त्रयीकों शिवकी वाणी कहें हें वे वैदिक नहीं अधम हें एसो शिष्टसम्मत भट्टपादादिकनको निर्णय हे ॥ ७३ ॥ महेशकी महिमा वेदमें गाई हे तासों कहा भयो महेश्वर परब्रह्म हें या शिव हें यामें हमारी हानि नहीं ॥ ७४ ॥ परमात्मा परब्रह्म हें उनकी मूर्ति ब्रह्मा विष्णु महेश हें वे मूर्तामूर्तसों पर हें ॥ ७५ ॥ नारायण शिव ब्रह्म ईशान विष्णु आदिनामनसों परम तत्त्व कह्यो जाय हे ये

यदि कोशादिमानेन शिवेशानादयोऽभिधा ॥
रूढ्या त्र्यम्बकमेवाहुस्तदापि श्रूयतामिदम् ॥ ७७ ॥
कोशे नानार्थशब्दानां तत्तदर्थेषु रोपता ॥
प्रामाणिकी प्रकरणादिषु सेशादिगा तथा ॥ ७८ ॥
ननु नारायणादीनां नाम्नामन्यत्र सभव ॥
इत्यादिवाक्यात् सूत्रेभ्य ईशाद्या विष्णुवाचका ॥ ७९ ॥
नतस्तु महिमा विष्णोर्यथा वेदे निरूप्यते ॥
तथा नान्यस्य कस्यापि देवास्तस्यांगमूर्तय ॥ ८० ॥
इत्युक्ते वीरशैवस्तु पुनराह रुषा ज्वलन् ॥
नारायणादिशब्दाये कुतो न शिववाचका ॥ ८१ ॥
विशप्रवेशने धातुश्शिवो विष्णुर्न सर्वग ॥
नारायणे तथा णत्वं रषाभ्यामिति किं न हि ॥ ८२ ॥
नारं जीवसमूह स्याच्छिवस्तस्यायन स्वयम् ॥
नारायणस्ततो नाम शकरस्य तथा परे ॥ ८३ ॥

वाराहपुराणमें कह्यो हे ॥ ७६ ॥ जो कोशादिमानसों शिव ईशान आदि नाम रूढीसों त्र्यम्बककों कहे हे तोभी ये सुनो ॥ ७७ ॥ कोशमें नानार्थ शब्दनको वा वा अर्थनमें प्रयोग प्रकरणसों होय हे वोही प्रामाणिक हे ॥ ७८ ॥ परन्तु नारायणआदिशब्दनको दूसरी जगह सभव नहीं होयसके सूत्रादिकनसों ईश आदि शब्द विष्णुवाचक हें॥ ७९॥ याहीसों विष्णुकी महिमा जेसी वेदमें हे वेसी ओरकी नहीं दूसरे देवता सब उनके अग हें ॥ ८० ॥ ये कहवे पे क्रोधसों जलते वीर शैव फिर बोले जो नारायण आदि शब्द क्यों नहीं शिववाचक हे ॥ ८१ ॥ विशप्रवेशने धातु हे विष्णु सर्वव्यापक नहीं किन्तु शिव हे ओर नारायण या शब्दमें "रषाभ्याम्" या सूत्रकरके णत्व क्यों नहीं होतो ॥ ८२ ॥ सब जीवनको नाम नार हे उनके आश्रय

नारायणोपनिषदि शंकराद्यभिधाश्च याः ॥
रुद्राणां शंकरश्चास्मीत्यादितोमूर्तयोऽस्य ताः ॥ ८४ ॥
नारायणोपनिषदा ततः प्रोक्तो महेश्वरः ॥
इत्थमन्यत्र द्रष्टव्यं त्र्यंबकान्नपरोऽपरः ॥ ८५ ॥
भट्टार्यः पुनराहैनं रे रे व्याकृतिविच्युत ॥
रषाभ्यामिति सूत्रस्य प्रवृत्तिस्त्वेकनामनि ॥ ८६ ॥
वरनाभिपदादौ तु णत्वाभावस्य दर्शनात् ॥
नारायणपदे पूर्वपदादिति प्रवर्तते ॥ ८७ ॥
संज्ञायामेव सूत्रेण णत्वं सम्यग् विधीयते ॥
गवादिषु तथा विन्देः संज्ञायामिति सूत्रतः ॥ ८८ ॥
गोविन्दपदमापादिपुरुषोत्तमपदन्तथा ॥
नारायणोपनिषदाऽनन्यसंज्ञाऽभिधायिनः ॥ ८९ ॥
सर्वोपनिषदां वाचस्तस्मिन्नेव समर्पिताः ॥
यत्तु मूर्त्त्यष्टमूर्तित्त्वं तस्यैव जगदात्मनः ॥ ९० ॥

स्वयं शिव हैं यातें नारायण ये नाम शंकरको हे औरबी याही प्रकार ॥ ८३ ॥ नारायणोपनिषदमें जो शंकरादिक संज्ञा हें वे रुद्रनके बीचमें शंकर हम हैं इत्यादि वचननसों इन्हींकी मूर्ति हैं ॥ ८४ ॥ तासों नारायणोपनिषद्सों महेश्वरही कहे गये याही प्रकार ओरबी जगह देखो त्र्यम्बकसों परें दूसरो देवता कोई नहीं हे ॥ ८५ ॥ तब भट्टार्य पीछें बोले जो अरे व्याकरणशून्य "रषाभ्याम्" ये सूत्र एकपदमें लगे हे ॥ ८६ ॥ याहीसों वरनाभि आदि पदमें णत्व नहीं देखते और नारायणपदमें तो "पूर्वपदात्" यासूत्रसों णत्व होय हे॥८७॥ सो संज्ञामें होय हे वरनाभि ये संज्ञा नहीं हे जेसे गोविन्द पद संज्ञाहीमें होय हे ॥ ८८ ॥ नारायणोपनिषद्करकें गोविन्द पुरुषोत्तम नारायण ये नाम दूसरेके वाचक नहीं ॥८९ ॥ सब उपनिषदनके वचन उन्हींमें समन्वय होंय हें ओर अष्टमूर्ति वाही जगदा-

विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत् ॥
इति गीताद्युक्तितस्तु वैशिष्ट्यं नाष्टमूर्त्तिगम् ॥ ९१ ॥
यस्य रोमसु ब्रह्मांडकोटीनां कोटयोऽणुवत् ॥
तस्यांडगलने किं भो वीर्यातिशयदर्शनम् ॥ ९२ ॥
ऋतं सत्यं परं ब्रह्मेति श्रुतिस्तु प्रजापते ॥
नृकेसरिपरत्वेन व्याचख्युस्तापिनीमते ॥ ९३ ॥
द्यौ मूर्द्धादिश्रुतीनां तु नास्त्येव दृढलिंगता ॥
अथर्वमूर्द्धाशिखयोर्नृहरेस्तापनी वरा ॥ ९४ ॥
यतस्तत्पाठिसाहस्र्याच्छ्रेष्ठउक्तोहितां पठन् ॥
तामसानां विमोहाय दुर्वासः शासनं न किम् ॥ ९५ ॥
श्रेयसे शिवभक्तानामथवास्तु शिवाप्तये ॥
तथैव विष्णुमहिमा किं न शास्त्रेषु गीयते ॥ ९६ ॥
सारं भागवतं सर्वपुराणानामिति स्थितिः ॥
तथैव सर्वशास्त्राणां भारतं सारमुच्यते ॥ ९७ ॥

स्मार्त्त हैं ॥ ९०॥ "विष्टभ्याह" इत्यादि गीताके वचननसों उनके एक अंशमें ये जगत स्थित है तासों विशेषपनो अष्टमूर्तिमें नहीं ॥९१॥ जिनके रोमरोमनमें कोटिब्रह्मांड अणुके समान हैं उनको ब्रह्मांड निगलवेमें कहा अतिशय पराक्रम है ॥ ९२ ॥ "ऋतसत्यम्" ये श्रुतितो नृसिंहपर है तापनीयमें व्याख्यान कियो गयो है ॥९३॥ "द्यौमूर्धा" इत्यादि श्रुतिनमें कछु दृढ प्रमाण नहीं है और अथर्व मूर्धा शिखा में नृसिंह तापनीय श्रेष्ठ है॥९४॥ और शतरुद्रीको पाठ करनेवारो श्रेष्ठ है ये जो कह्यो सो और दुर्वासाको शासन तामसनके मोहके लिये कहा नहीं ॥ ९५ ॥ अथवा शिवभक्तनके कल्याणकेही लिये या शिवकी मानिवे लिये है याभांति सगरे विष्णु महिमा सोऊ शास्त्रमें गायो गयो है ॥ ९६ ॥ जैसे सब पुराणनमें भागवत

भारतस्य तु गीतैव सारं वेदपुराणयोः ॥
तस्मिंस्तु भगवान् विष्णुः श्रीकृष्णः पुरुषोत्तमः ॥ ९८ ॥
ब्रह्मविष्णुमहेशादेः कारणं जगतस्तथा ॥
वाराहे पठ्यते रुद्रगीतायां निर्णयः श्रुतः ॥ ९९ ॥
विष्णुरेव परब्रह्म त्रिभेदमिहपठ्यते ॥
वेदसिद्धांतमार्गेषु तन्न जानंति मोहिताः ॥ १०० ॥
विशप्रवेशने धातुस्ततोनुप्रत्ययादनु ॥
विष्णुर्यः सर्वदेवेषु परमात्मा सनातनः ॥ १०१ ॥
तथैव तत्र वरदानाध्यायेऽपि निरूप्यते ॥
अन्यं देहि वरं देव प्रसिद्धं सर्वजंतुषु ॥ १०२ ॥
मूर्त्तौ भूत्वा भवानेव मामाराधय केशव ॥
मां वहस्व सदैवेश वरं मत्तो गृहाण च ॥ १०३ ॥
येनाहं सर्वदेवानां पूज्यात्पूज्यतरो भवे ॥
देवकार्यावतारेषु मानुषत्वमुपागतः ॥ १०४ ॥

सार है तेस सब शास्त्रनमें सार भारत है ॥ ९७ ॥ भारत और वेदको सार गीताहीहै तामें तो भगवान् विष्णु श्रीकृष्णही पुरुषोत्तम हैं ये कह्यो है ॥ ९८ ॥ ब्रह्मा विष्णु महेश आदिके और जगत्के कारण वाराहपुराणमें विष्णुही पढ़े हैं और रुद्रगीतामें येही निर्णय सुन्यो है ॥ ९९ ॥ विष्णुही पर ब्रह्म हैं इन्हींके वेदासिद्धान्तमार्गमें तीन भेद हैं ताकों अज्ञानी नहीं जानते ॥ १०० ॥ "विशप्रवेशने"धातुसों नु प्रत्यय होयवेसों विष्णु बने है जो सबमें परमात्मा सनातन हैं ॥ १०१ ॥ याही प्रकार वहाँ वरदानाध्यायमेंबी कह्यो है के हे केशव सब प्राणीनमें प्रसिद्ध दूसरो वरदान दीजिये स्वरूपधरके ॥ १०२॥आपही हमारी आराधना करो हमको सदा धारण करो ओर हमसोंबी वरदान लेवो ॥ १०३ ॥ जासों सबदेवनके

त्वामेवाराधयिष्यामि त्वं च मे वरदो भव ॥
यत्त्वयोक्तं वहस्वेति देवदेव शिवापते ॥ १०५ ॥
सोहं वहामि त्वां देव मेघो भूत्वा शतं समाः ॥
एवमेष हरिर्देवः सर्वगः सर्वभावनः ॥ १०६ ॥
वरदोऽभूत्परोमह्यं तेनाहं देवतेश्वरः ॥
नारायणात्परो देवो न भूतो न भविष्यति ॥ १०७ ॥
एतद्रहस्यं वेदानां पुराणानां च सत्तम ॥
मया वः कीर्तितं सर्वं यथाविष्णुरिहेज्यते ॥ १०८ ॥
गारुडेऽपि द्वितीयाध्याये महेशवचस्तथा ॥
अहं ध्यायामि तं विष्णुं परमात्मानमीश्वरम् ॥ १०९ ॥
सर्वदं सर्वगं सर्वं सर्वप्राणिहृदि स्थितम् ॥
भस्मोद्धूलितदेहस्तु जटामंडलमंडितः ॥ ११० ॥
विष्णोराराधनार्थं मे व्रतचर्या पितामह ॥
एवं पुराणवाक्येषु विष्णोरुत्कर्षदर्शनात् ॥ १११ ॥

मध्यमें हम बड़े पूज्य हुए तब विष्णुने कह्यो जो हे देवदेव उमापते देवनके कार्यके लिये मनुष्यस्वरूप धारण कर तुम्हारीही आराधना करेंगे तुम हमको वरदान देओ। और जो वहनको कह्यो सो हम मेघ होयकै सौ वर्ष तुमको धारण करेंगे या प्रकार हरि सर्वव्यापी है ॥ १०४ ॥ १०५ ॥ १०६ ॥ और हमको परदान दीनो यासों सर्वदेवनमें हम श्रेष्ठ हैं नारायणसों पर देव नहीं है ॥ १०७ ॥ ये रहस्य वेदपुराणनको है सो सब तुमसों कह्यो जैसे विष्णु पूजे जाय है ॥ १०८ ॥ याही प्रकार गरुडपुराणमेंभी दूसरे अध्यायमें महेशको वचन है जो हम उन परमात्मा ईश्वर विष्णुको ध्यान करें हैं ॥ १०९ ॥ जो सर्वव्यापी सर्वप्राणीनके हृदयमें स्थित हैं सब शरीरमें भस्म लगायके जटामंडल धारणा ये हमारी व्रतचर्या हे पितामह विष्णुके

शिवस्य श्रूयते तद्वच्छक्तेः सूर्यस्य किं ततः ॥
नारायणः परब्रह्म स एव पुरुषोत्तमः ॥ ११२ ॥
ब्रह्मविष्णुमहेशाद्याऽवतारा एवतस्य ते ॥
गुणत्रयविभागेन विष्णुः सत्त्वशरीरभृत् ॥ ११३ ॥
सत्वं संनिहितं तस्य निर्गुणस्य परात्मनः ॥
पार्थिवाद्दारुणो धूमस्तस्मादग्निस्त्रयीमयः ॥ ११४ ॥
तमसस्तु रजस्तस्मात्सत्वं यद्ब्रह्मदर्शनम् ॥
उत्कर्षो वर्ण्यते विष्णोस्तत एव त्रिमूर्तिषु ॥ ११५ ॥
ततस्तु वैष्णवाचार आदृतो द्वादशोक्तिभिः ॥
पंचरात्रस्य शास्त्रस्य महिमा भारते स्फुटा ॥ ११६ ॥
तत्र भागवताचारः स चास्माभिः समादृतः ॥
भस्मरुद्राक्षशूलादिर्वेदधर्मे न दृश्यते ॥ ११७ ॥
वैष्णवा विमुखास्तस्माद्धर्मात्पाशुपताद्धि वः ॥
पुरारिर्गुरुरस्माकं मुरारेरतिवल्लभः ॥ ११८ ॥

आराधनके लियें हे याही प्रकार पुराणनमें विष्णुकी श्रेष्ठता देखें हें ॥ ११० ॥ १११ ॥ ओर एसेही शिव शक्ति सूर्य कीबी सुने हें परन्तु तासों कहाभयो नारायण परब्रह्म हें वोही पुरुषोत्तमहें ॥ ११२ ॥ ब्रह्मा विष्णु महेशादिक उनके अवतार हें तीनों गुणनके विभागसों सत्वगुणशरीर विष्णु हें ॥ ११३ ॥ वा निर्गुणपरमात्माकी सत्ता सब जगह हे पार्थिवसों दारुण धूम तासों त्रयीमय अग्नि तासों तम तासों रजोगुण तासों सत्वगुण जो ब्रह्मदर्शन हे याहीलियें तीनोंमूर्तिके बीचमें विष्णुकी श्रेष्ठताको वर्णन हे ॥ ११४ ॥ ११५ ॥ ताहीसों बारहों तन्त्रनमें वैष्णवाचारको आदर हे ओर पंचरात्रशास्त्रकी महिमा भारतमें स्पष्ट हे ॥ ११६ ॥ तामें जो भागवताचार हे वाको हम आदर करें हें भस्म रुद्राक्ष शूलादिक वेदधर्ममें नहीं दीखते ॥ ११७ ॥ याहीसों तुम्हारें

त्वामेवाराधयिष्यामि त्वं च मे वरदो भव ॥
यत्त्वयोक्तं वहस्वेति देवदेव शिवापते ॥ १०५ ॥
सोहं वहामि त्वां देव मेघो भूत्वा शतं समाः ॥
एवमेष हरिर्देव सर्वग सर्वभावन ॥ १०६ ॥
वरदोऽभूत्परोमह्यं तेनाहं देवतैश्वर ॥
नारायणात्परो देवो न भूतो न भविष्यति ॥ १०७ ॥
एतद्रहस्यं वेदानां पुराणानां च सत्तम ॥
मया व कीर्तितं सर्वं यथाविष्णुरिहेज्यते ॥ १०८ ॥
गारुडेऽपि द्वितीयाध्याये महेशवचस्तथा ॥
अहं ध्यायामि तं विष्णुं परमात्मानमीश्वरम् ॥ १०९ ॥
सर्वदं सर्वगं सर्वं सर्वप्राणिहृदि स्थितम् ॥
भस्मोद्धूलितदेहस्तु जटामंडलमंडित ॥ ११० ॥
विष्णोराराधनार्थं मे व्रतचर्या पितामह ॥
एवं पुराणवाक्येषु विष्णोरुत्कर्षदर्शनात् ॥ १११ ॥

मध्यमें हम बडे पूज्य होय तब विष्णुनें कह्यो जो हे देवदेव उमापते देवनके कार्यके लिये मनुष्य स्वरूप धारण कर तुम्हारीही आराधना करेंगे तुम हमको वरदान देओ और जो वहनको कह्यो सो हम मेघ होयकें सौ वर्ष तुमको धारण करेंगे या प्रकार हरिदेव सर्वव्यापी हैं ॥ १०४ ॥ १०५ ॥ १०६ ॥ और हमको वरदान दीनो यासों सर्वदेवनमें हम श्रेष्ठ हैं नारायणसों पर देव नहीं है ॥ १०७ ॥ ये रहस्य वेदपुराणनको है सो सब तुमसों कह्यो जैसें विष्णु पूजे जाय है ॥ १०८ ॥ याही प्रकार गरुडपुराणमेंभी दूसरे अध्यायमें महेशको वचन है जो हम उनपरमात्मा ईश्वर विष्णुको ध्यान करें हैं ॥ १०९ ॥ जो सर्वव्यापी सबप्राणीनके हृदयमें स्थित हैं सब शरीरमें भस्म लगायके जटामंडल धारणो ये हमारो व्रतचर्या हे पितामह विष्णुके

विष्णोःप्रियो यत्प्रियएवविष्णुर्विष्ण्वंघ्रिजां विष्णुपदीं दधौयः ॥
तं वैष्णवत्त्वं भुवि दर्शयंतं रामेश्वरं नौमि रमेशरूपम् ॥ १२६ ॥
द्वन्द्वं जगुर्भेदधियो मनुष्या जगौ बहुव्रीहिरुमेश्वरोयम् ॥
हरिर्जगौ तत्पुरुषं पदेऽस्य रामेश्वरं नौमि रमेशरूपम् ॥ १२७ ॥
लब्ध्वा मनुं भागवतं ददौ यो देवर्षये श्रीपुरुषोत्तमास्यात् ॥
सत्संप्रदायः प्रचरत्यतस्तं रामेश्वरं नौमि रमेशरूपम् ॥ १२८ ॥
हिताय लोकस्य विषं पपौ यो हिताय तस्य त्रिपुरं ददाह ॥
तमीश्वराणां परमेशमाद्यं रामेश्वरं नौमि रमेशरूपम् ॥ १२९ ॥
इत्थं स्तुत्वा नमस्कृत्य संप्रदायगुरुं हरम् ॥
आचार्यो देवदेवस्य ततोऽकुर्वन् प्रदक्षिणाम् ॥ १३० ॥

रामेश्वरके प्यारे गंगाजलको अर्पण करवायो भेट द्रव्य वंदन पूजन शतरुद्री पाठ इनके भये पीछें आपनें रामेश्वरकी स्तुति पढी ॥ १२४ ॥ ॥ १२५ ॥ जो विष्णुके प्रिय ओर विष्णु जिनके प्रिय संसारमें वैष्णवताकों दिखावते विष्णुचरणसों उत्पन्न गंगाजीकों धारण करवेवारे एसे विष्णुरूप रामेश्वरकी में स्तुति करूँ हूँ ॥ १२६ ॥ रामेश्वर या नाममें शिवराममें भेद मानवेवारेननें राम ओर ईश्वर (महादेव) ये द्वन्द्व समास कह्यो इन रामेश्वरनें "राम हें ईश्वरजिनके" एसो बहुव्रीहि कह्यो ओर रामनें "रामके ईश्वर" एसो तत्पुरुष कह्यो एसें विष्णुरूप रामेश्वरकी में स्तुति करूँ हूँ ॥ १२७ ॥ श्रीपुरुषोत्तमके श्रीमुखसों वैष्णवमंत्रकों पायकें जिननें नारदकों दीनों एसें सम्प्रदायके प्रचार करवेवारे विष्णुरूप रामेश्वरकी में स्तुति करूँ हूँ ॥ १२८ ॥ जिननें लोकके हितके लियें विष पान ओर त्रिपुरकों भस्म कियो उन ईश्वरनके आद्य ईश विष्णुरूप रामेश्वरकी में स्तुति करूँ हूँ ॥ १२९ ॥ या प्रकार सम्प्रदायके गुरु हरकी स्तुति नमस्कार कर पीछें श्रीमदाचार्यजीनें प्रदक्षिण करी ॥ १३० ॥

तीर्थयात्राविधौ प्राप्त शैव क्षेत्र समागता ॥
वय तु वैष्णवा विष्णु सर्वमूर्तिषु सस्थितम् ॥ ११९ ॥
भावयामस्तथा तस्य भावुक पूजयाम्यत ॥
इत्युक्ते क्रोधताम्राक्षा वीरमाहेश्वरा जना ॥ १२० ॥
परस्परं जगु सर्वे हंतव्या दुर्धियोह्यमी ॥
तेषां तद्वचनं श्रुत्वा जगर्जुर्वीरवैष्णवा ॥ १२१ ॥
जीवन्मृता कथ यूय हंतारो न कुबुद्धय ॥
इत्युक्त्वा मुमुचुर्बाणान् पाषाणान् भिंदपालत ॥ १२२ ॥
ततस्तु दुद्रुवु सर्वे पड्विधा लिंगधारिण ॥
समाप्य च विधिं तत्र जग्मूरामेश्वरालयम् ॥ १२३ ॥
काशीविश्वेश्वर दृष्ट्वा रामेशं द्रष्टुमागता ॥
पार्वतीयै समानीत विष्णुपद्याजनैर्जलम् ॥ १२४ ॥
समर्पयति ह्यार्यास्तच्छ्रीरामेशस्यवल्लभम् ॥
निवेदिते बलेर्वित्ते विहिते वदनाहण ॥
पठिते शतरुद्रीये पेठूरामेश्वरस्तुतिम् ॥ १२५ ॥

पाशुपत धर्मसों वैष्णव विमुख हैं और मुरारिके अतिप्यारे पुरारि शिव हमारे गुरु हैं ॥ ११८ ॥ तीर्थ यात्राविधिमें प्राप्त शैवक्षेत्रका हम आये हे ओर हम वैष्णव सब मूर्तिनमे विष्णुही की भावना करते उन्हींकी पूजा करहैं एसें कहबेपे क्रोधसों लालनेत्रवारे वीर माहेश्वर जन परस्पर बोले जो सब इन दुर्बुद्धीनको मारो ये उनके वचन सुनके वीर वैष्णव गर्जवे लगे ॥ ११९ ॥ १२० ॥ १२१ ॥ ओर कुबुद्धि जीते भये मरे तुम कैसे मारोगे ये कहकर बाण ओर गोफनासो पथ्थरनको फेंके ॥ १२२ ॥ तब छहो प्रकारके लिंगधारी भगे पीछे वहाँ विधि समाप्त करके रामेश्वरके मंदिरकों गये ॥ १२३ ॥ वहाँ काशीविश्वेश्वरके दर्शन कर रामेश्वरके दर्शनकों आये ओर पर्वतीलोगनके लाय भये

दर्भशायिनमायाता गुरवोऽतःसहानुगाः ॥
नारायणं समीक्ष्यैव निष्किंचनजनादृतम् ॥ १ ॥
संपूज्योपायनं चक्रुः स्थिताश्चाथो निजार्चने ॥
शालग्रामं समर्चतः पौरुषं सूक्तमूचिरे ॥ २ ॥
निवर्त्य पूजनं विष्णोः पेठुर्भागवतागमम् ॥
सप्ताहं तत्र संप्राप्ता विपिने वीरवैष्णवाः ॥ ३ ॥
नमस्कृत्य गुरूनग्रे स्थिताः प्रोचुः परस्परम् ॥
लौकिका वैष्णवाश्चेमे नानन्यशरणाहरेः ॥ ४ ॥
ततः प्रोचे पुनर्वीरवैष्णवोज्ञानशेखरः ॥
शृणवन्तु मद्वचः सम्यग्यूयमाचार्यतां गताः ॥ ५ ॥
निर्जिता वीरशैवेशाः श्रुत्वा वयमुपागताः ॥
नारायणं समाश्रित्य येऽन्यधर्ममुपासते ॥ ६ ॥
ते लौकिका वैष्णवाः स्युर्न ते नारायणप्रियाः ॥
नान्यदेवं नमस्कुर्यात् नान्यदेवं विलोकयेत् ॥ ७ ॥

पीछें शिष्यसमेत आप दर्भशयनमें आयें वहां निष्किंचन भक्तजननसों आदर किये जांय एसे जो नारायण तिनके दर्शन पूजा भेट कर अपनी निज सेवामें विराजे ओर शालग्रामकी सेवा करते पुरुषसूक्त पढ्यो ॥ १ ॥ २ ॥ विष्णुके पूजनसों निवृत्त होयकें श्रीमद्भागवतको पाठ सप्ताह कियो तामें वीरवैष्णव आये ॥ ३ ॥ सो आपकों नमस्कार करकें ठाडे रहकें परस्पर आपसमें बात करवे लगे जो ये लौकिक वैष्णव हें भगवानूके अनन्य भक्त नहीं हें ॥ ४ ॥ फिर उनमेंसों वीरवैष्णव ज्ञानशेखर नामको बोल्यो जो हमारे वचन सुनों अच्छी तरहसों आप आचार्य हें ॥ ५ ॥ हमनें सुन्यों हे के वीरशैवनकों आपनें जीत्यो हे तासों आये हें नारायणको आश्रय लेकें जो ओर धर्मकी उपासना करें हें ॥ ६ ॥ वे लौकिक वैष्णव हें नारा-

श्रीगौर्यादर्शनं चक्रुर्ददृशुश्चापरान्सुरान् ॥
स्नातास्तत्रत्यतीर्थेषु वह्नितीर्थे सहानुगे ॥ १२१ ॥
दर्शागौर्कं ऋक्सुखान्वेदान् पेठुर्भागवतं तथा ॥
पारायणं समाप्यैव प्रसाद्यैव महेश्वरम् ॥ १२२ ॥
धनुस्तीर्थमनुप्राप्तादर्शनादेव मुक्तिदम् ॥
तत्र तीर्थविधिं चक्रुर्महाम्भोधिं समर्च्य ते ॥ १२३ ॥
रामायणकथां चक्रुर्ददृशुः श्वेतकौतुकीम् ॥
यत्र लीलां प्रकुर्वाते रत्नोदधिमहोदधी ॥ १२४ ॥
पुनस्तेनैव मार्गेण कोटितीर्थं समागताः ॥
तत्र जातापराधानां मोचकं स्नानमात्रत ॥ १२५ ॥
श्रीवेदव्यासविष्णुप्रभुचरणमिते सम्मिते ग्रन्थसार्थे ॥
श्रीगोविन्दाभिधानां समयनयविदां देशिकानां निदेशात् ॥
आचार्याणां चरित्रे हरिजनसुखदे शास्त्रिकृष्णैर्निबद्धे ॥
प्रस्थानेऽस्मिंस्तृतीयेसमजनि पटहो दिग्जयाख्ये चतुर्थ १२६

ओर श्रीगौरी तथा दूसरे देवनके दर्शन कर वहाँके तीर्थनमें तथा वह्नितीर्थमें स्नान कियो चारो वेद श्रीमद्भागवत इनकी पारायण समाप्त करके महेश्वरकों प्रसन्न करके ॥ १२१ ॥ १२२ ॥ दर्शनसोंही मुक्ति देवेवारे धनुषतीर्थमें गये वहाँ तीर्थविधि तथा महोदधिकी पूजा करके रामायणकी कथा करी ओर श्वेतकौतुकीकों देख्यो जहाँ रत्नाकर महोदधि दोनों लीला करें हैं ॥ १२३ ॥ १२४ ॥ फिर वाही मार्गसों कोटितीर्थ आये किये भये अपराध जहाँ स्नान मात्र सों छूट जाँय हैं ॥ १२५ ॥ समयनीतिके जानवेवारे जगद्गुरु श्रीमद्गोविन्दाचार्यजी महाराजकी आज्ञासों कृष्णशास्त्रीके बनाये भये श्रीमद्वेदव्यासविष्णुस्वामिसम्प्रदायके ग्रन्थनके अनुकूल हरिभक्तनके सुख देवेवारे या श्रीमदाचार्यचरित्रग्रन्थके तीसरे प्रस्थानमें चौथो पटह ये समाप्त भयो ॥ १२६ ॥

तप्तांकधारणं नेष्टं नेष्टस्त्यागः स्वकर्मणाम् ॥
भेदोपि ब्रह्मणो नेष्टो नेष्टो द्वेषः सुरेश्वरैः ॥ १४ ॥
अयं वर्णवतां धर्मो हरिणा रक्ष्यते सदा ॥
धर्मरक्षाकृते कृष्णो जायतेऽसौ युगे युगे ॥ १५ ॥
कथं त्यक्तो मूढजनैर्गच्छतेतो यथासुखम् ॥
एवं हि धिक्कृताः सर्वे केचिदुक्तमुपाददुः ॥ १६ ॥
केचिद्विनिन्द्य निर्याता दौर्भाग्यं तत्र कारणम् ॥
पारायणं समाप्यात्र ह्याचार्याश्चलितास्ततः ॥ १७ ॥
ताम्रपर्णीमुपायाताः करभाजनसंस्तुताम् ॥
स्नातस्तत्र विधानेन संतर्प्य पितृदेवताः ॥ १८ ॥
पारायणं समारब्धं श्रीमद्भागवतस्य च ॥
अनंतसेनं संपूज्य मुकुंदं भक्तवत्सलम् ॥ १९ ॥
सुमनोभिस्तुलसिकादलैरपि फलैरपि ॥
फलाहारं विधायैव चोपविष्टा यथासुखम् ॥ २० ॥

ाके ऊपर विष्णु प्रसन्न होंय हैं ॥ १३ ॥ तप्तमुद्राधारण अपने कर्मनको त्याग ब्रह्मसों भेद देवतानसों द्वेष ये ठीक नहीं हे ॥ १४ ॥ वर्णाश्रमधर्मकी हरि सदा रक्षा करें हैं ओर धर्मकी रक्षाहीके लियें युगयुगमें कृष्ण होंय हैं ॥ १५ ॥ ताकों मूढननें क्यों छोड्यो अस्तु अब यहाँसों सुखपूर्वक जावो या प्रकार सब धिक्कार किये गये सो उनमेंसों कोई २ नें कहे भयेको ग्रहण कियो ओर कोई अपने दौर्भाग्यवश निन्दा करकें चले गये श्रीमदाचार्यजी पारायण समाप्त करकें वहाँसों पधारे ॥ १६ ॥ १७ ॥ सो करभाजननामकेयोगीसों स्तुति करी गई ताम्रपर्णीकों पधारे वहाँ विधानसों स्नान तर्पण करकें श्रीमद्भागवतके पारायणको आरम्भ कियो ओर भक्तवत्सल अनन्तशयन भगवानूकी पुष्प तुलसीदल फल-नसों सेवा कर फलाहार करकें सुखपूर्वक विराजे ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥

तप्तचक्रांकितो भूत्वा जह्यादेव पराश्रय ॥
लोकवेदभयं त्यक्त्वा चरेदविधिगोचर ॥ ८ ॥
भुक्तिर्मुक्ति करे तस्य तस्य विष्णु प्रसीदति ॥
आचार्याश्च तदा प्रोचुर्भ्रष्टास्तिष्ठत दूरत ॥ ९ ॥
वर्णाश्रमविहीनानां कथ विष्णु प्रसीदति ॥
वर्णाश्रमाचारवता पुरुषेण पर पुमान् ॥ १० ॥
विष्णुराराध्यते यथा नान्यस्तत्तोषकारणम् ॥
इति विष्णुपुराणोक्त्या गीताद्युक्त्या प्रतीयते ॥ ११ ॥
वेदस्तु भगवानेव तस्याज्ञा वा नियामिका ॥
तां विहाय कथ मूढा भुक्तिमुक्तिमवाप्स्यथ ॥ १२ ॥
स्वधर्मं चाचरेच्छक्त्या भक्तिधर्मं यथोचितम् ॥
निवृत्तस्सर्वपापेभ्यस्तस्य विष्णु प्रसीदति ॥ १३ ॥

यणके प्रिय नहीं हें । न दूसरे देवताको नमस्कार करे न देखे ॥ ७ ॥ तप्त चक्रांकित होयकें पराश्रयकों छोड दे ओर लोकवेदको भय छोड स्वच्छन्दसे यकें जो रहे ॥ ८ ॥ वाके हाथमें भुक्ति मुक्ति हे विष्णु वाके ऊपर प्रसन्न होय हें तब श्रीमदाचार्य बोले जो दूर ठाडे रहो ॥ ९ ॥ वर्णाश्रमधर्मसों हीन मनुष्यनके ऊपर विष्णु केसें प्रसन्न होय हें वर्णाश्रमधर्ममें रहकें परपुरुष विष्णुकी आराधना करनी यासों दूसरो मार्ग उनके प्रसन्न करवेको नहीं हे ये विष्णुपुराणके ओर गीताकी उक्तिसों निश्चय हे ॥ १० ॥ ॥ ११ ॥ वेद सो भगवानहीं हें उनकीही आज्ञा प्रमाण हे उनकों छोड़कें केसें भुक्ति मुक्तिकों पावोगे ॥ १२ ॥ अपने धर्मकों अपनी शक्ति प्रमाण करे ओर यथोचित भक्ति करे सब पापनसों निवृत्त रहे

तेन दुःखेन संतप्ता राजपत्न्यास्तु धर्षणात् ॥
राज्ञश्चाभीलतः क्लिष्टाः कथं पात्रं लभामहे ॥ २८ ॥
श्रुत्वा दुःखमिदं तेषां गुरवोऽतिकृपालवः ॥
पात्रं निरूपयामासुर्ज्वलंतं ब्रह्मवर्चसा ॥ २९ ॥
इमं नयत ब्रह्मर्षिमयं वो दुःखनाशकः ॥
स प्रार्थितो द्विजैस्तत्र गुरूनाह करोमि किम् ॥ ३० ॥
गुरवस्तु तदा प्राहुर्गायत्रीसानलानना ॥
गृहाण दानं तां ध्यात्वा किं ते दानं करिष्यति ॥ ३१ ॥
जनकेन समुक्तस्तु बिंदलाख्यो महानृषिः ॥
हस्तिकायं जहौ सद्यस्तदज्ञाननिबंधनम् ॥ ३२ ॥
गायत्र्याः संमुखं ज्ञात्वा गुरुभ्योऽगात्तदाज्ञया ॥
जग्राह कालपुरुषं दर्शयँ श्चांगुलिद्वयम् ॥ ३३ ॥

राजपुरोहित हो तुमको लेनो पड़ेगो ॥ २७ ॥ सो या दुःखसों ओर रानीके क्रोधसों दुःखित हम हैं केसे पात्र पावें ॥ २८ ॥ ये दुःख उनको सुनकें बड़े दयालु श्रीमदाचार्यजी बडेब्रह्मतेजसों प्रकाशमान पात्रकों आज्ञा कियो॥ २९ ॥ जो या ब्रह्मर्षिकों ले जावो ये तुम्हारे दुःखको नाश करेववारे हैं तब उन ब्राह्मणनसों प्रार्थना किये गये वानें श्रीमदाचार्यजीसों प्रार्थना करी के कहा करूँ ॥ ३० ॥ तब आपनें आज्ञा करी जो गायत्री अग्निमुख हे वाको ध्यान करकें दान लेनो तुम्हारो दान कहा करेगो ॥ ३१ ॥ पहले राजा जनकसों कहे गये गायत्रीके स्वरूपकों जानकें बिन्दल महर्षिनें अपने अज्ञानसों बँधे हाथीके शरीरकों छोड दीनोहो ॥ ३२ ॥ तब वो गुरूनसों गायत्रीको संमुख जानकें आपकी आज्ञासों गयो ओर दो अंगुलीनकों दिखायकें कालपुरुषकों ले लियो

तत्र विप्रास्समायाता कृपणा धिक्कृता जनै ॥
विमनस्कान् समीक्ष्यैतान् पप्रच्छु शिष्यवक्रत ॥ २१ ॥
के यूयं केन दु खेन विच्छाया इव लक्षिता ॥
अनादरेण दु खेन निर्विण्णान् लक्षयामहे ॥ २२ ॥
सत्य सत्यगिरो यूयं नमस्कृत्याऽब्रुवन् कथाम् ॥
इतोऽविदूरे गव्यूत्या पालंकोटाभिध पुरम् ॥ २३ ॥
कालज्वरातंकक्लिष्टस्तत्र भूपालसत्तम ॥
तच्छांतयेऽस्य गुरुभि कारितं शास्त्रवर्त्मना ॥ २४ ॥
कुडमंडपमापाद्य ते कालपुरुषो महान् ॥
मंत्रै प्रतिष्ठापितोऽसौ कृत प्राणप्रतिष्ठया ॥ २५ ॥
सप्राण इव संव्यक्तो गृहीतॄन् भीपयत्ययम् ॥
एकांगुलिं समुत्थाप्य पात्रं पश्यति हुङ्कृते ॥ २६ ॥
सर्वेंपि वेदविद्वांसो विदेशीया पलायिता ॥
अस्मान् क्षिपंति सर्वेपि यूय राजपुरोहिता ॥ २७ ॥

यहाँ जननसों धिक्कार किये गये दीन ब्राह्मण आये उनको विमन देखके शिष्यनके द्वारा पूछ्यो ॥ २१ ॥ जो तुम कोन हो कोनसे दुःखसों सूखेसे दीख पड़ो हो अनादरके दु खसों निकसे जेसे लगो हो ॥ २२ ॥ मे सुन नमस्कार करके वे सब बोले भोसत्य हे सत्यवक्ता आप हें यहाँसों दो कोशपे (पालयकोट्ट) पुर हे वहाँको राजा कालज्वरसों दुःखित हे सो ताकी शान्तिके लिये राजाके गुरुनें शास्त्रके मार्गसों कुड मडप बनायके बडो कालपुरुष मन्त्रनसों प्राणप्रतिष्ठा करके स्थापित कियो हे ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥ सो वो कालपुरुष जीवतो असो लेवेवारे पुरुषनकों डरावे हे ओर एक अगुली उठायके लेवेवारे पात्रकों हुंकार करके देखे हे ॥ २६ ॥ सब विदेशी विद्वान् भग गये हमकों सब आक्षेप करे हें के तुम

तेन दुःखेन संतप्ता राजपत्न्यास्तु धर्षणात् ॥
राज्ञश्चाभीलतः क्लिष्टाः कथं पात्रं लभामहे ॥ २८ ॥
श्रुत्वा दुःखमिदं तेषां गुरवोऽतिकृपालवः ॥
पात्रं निरूपयामासुर्ज्वलंतं ब्रह्मवर्चसा ॥ २९ ॥
इमं नयत ब्रह्मर्षिमयं वो दुःखनाशकः ॥
स प्रार्थितो द्विजैस्तत्र गुरूनाह करोमि किम् ॥ ३० ॥
गुरवस्तु तदा प्राहुर्गायत्रीसानलानना ॥
गृहाण दानं तां ध्यात्वा किं ते दानं करिष्यति ॥ ३१ ॥
जनकेन समुक्तस्तु विंदलाख्यो महानृषिः ॥
हस्तिकायं जहौ सद्यस्तदज्ञाननिबंधनम् ॥ ३२ ॥
गायत्र्याः संमुखं ज्ञात्वा गुरुभ्योऽगात्तदाज्ञया ॥
जग्राह कालपुरुषं दर्शयँश्चांगुलिद्वयम् ॥ ३३ ॥

राजपुरोहित हो तुमको लेनो पड़ेगो ॥ २७ ॥ सो या दुःखसों ओर रानीके क्रोधसों दुःखित हम हैं केसे पात्र पावें ॥ २८ ॥ ये दुःख उनको सुनकें बड़े दयालु श्रीमदाचार्यजी बडेब्रह्मतेजसों प्रकाशमान पात्रकों आज्ञा कियो॥ २९ ॥ जो या ब्रह्मर्षिकों ले जावो ये तुम्हारे दुःखको नाश करेववारे हें तब उन ब्राह्मणनसों प्रार्थना किये गये वानें श्रीमदाचार्यजीसों प्रार्थना करी के कहा करूँ ॥ ३० ॥ तब आपनें आज्ञा करी जो गायत्री अग्निमुख हे वाको ध्यान करकें दान लेनो तुम्हारो दान कहा करेगो ॥ ३१ ॥ पहले राजा जनकसों कहे गये गायत्रीके स्वरूपकों जानकें बिन्दल महर्षिनें अपने अज्ञानसों बँधे हाथीके शरीरकों छोड दीनोहो ॥ ३२ ॥ तब वो गुरूनसों गायत्रीको संमुख जानकें आपकी आज्ञासों गयो ओर दो अंगुलीनकों दिखायकें कालपुरुषकों ले लियो

गृहीते कालपुरुषे निरातंके जनाधिपे ॥
जाते जातो महान् घोष कोऽयं कस्मादितो द्विज ॥ ३४ ॥
पुरोधसा तत प्रोक्तं वृत्तं यद्राजससदि ॥
श्रुत्वैतद्राजपत्नी सा राजा तन्मंत्रिणो जना ॥ ३५ ॥
पुरोधस पुरस्कृत्य ताम्रपर्णीमुपागता ॥
प्रणेमु श्रीमदाचार्यान् शिष्यवृंदैरुपासितान् ॥ ३६ ॥
विष्णुस्वामिजनैर्गुप्तान् विरक्तैः शस्त्रपाणिभिः ॥
राज्ञी तत्रावदद्वाक्यं शारदेन्दुसमानना ॥ ३७ ॥
व्यालं विव्यालयम्मिल्लामृगाक्षीप्रोज्ज्वलांबरा ॥
पतिव्रता हरेर्भक्ता कृतोपायनसत्क्रिया ॥ ३८ ॥
सौभाग्यं गुरुभिर्दत्तं जीवितेशश्च जीवित ॥
इतो महान्नोपकार स्त्रीणामन्योऽत्र दृश्यते ॥ ३९ ॥

॥ ३३ ॥ कालपुरुषके लेवपे राजा अच्छो होय गयो तब बडो उद्योत भयो जो ये कौन ब्राह्मण हे कहाँसों आयो हे ॥ ३४ ॥ तब पुरोहितनें राजाकी सभामें सब वृत्तान्त बतायो सो सुनके रानी राजा मन्त्रीजन ॥ ३५ ॥ पुरोहितकों आगें करकें ताम्रपर्णीनदीके तटपे गये वहाँ शिष्य नसों सेवित ॥ ३६ ॥ विरक्त हथियार लिये भये विष्णुस्वामीनसों रक्षा किये श्रीमदाचार्यकों प्रणाम कियो ओर शरत्कालके पूर्णचन्द्रके समान मुखवारी लम्बी कारी सर्पिणीनके समान केशनके उच्छेवारी स्वच्छ वस्त्र धारण किये मृगाक्षी पतिव्रता हरिकी भक्तिवारी रानी भेट सत्कार करकें बोली ॥ ३७ ॥ जो आपनें सौभाग्य दीनो हमारे प्राण नाथको जिवायो यातें बडो उपकार दूसरो स्त्रीनको नहीं हे ॥ ३८ ॥ ये हमारे पति रोगसों दुर्बल हें सो आपकी अमृतदृष्टिसों शीघ्र प्रबल

कांतो रुजा दुर्बलोयं श्रीमताममृतेक्षणात् ॥
प्रबलो भविता सद्यो नीतो वश्चरणाब्जयोः ॥ ४० ॥
इह लोके यथा त्रातस्त्राह्येवं परलोकतः ॥
पवित्रय पुरं गोत्रं भवच्चरणपांसुभिः ॥ ४१ ॥
उपधार्य पुरेऽस्माकं किंचित्कालं कृतार्थय ॥
इत्येवं महिला राज्ञी राजाऽमात्यपुरोधसः ॥ ४२ ॥
सर्वे विज्ञापयांचक्रुः शिबिकादीनुपानयन् ॥
दामोदरस्तदा प्राह ह्याचार्योः पादचारिणः ॥ ४३ ॥
वाहनं न स्पृशंत्येते तीर्थयात्राव्रते स्थिताः ॥
पारायणं समाप्यैव पूज्यार्योश्चलितास्ततः ॥ ४४ ॥
सर्वे पादचरा भूत्वैवासँस्तदनुचारिणः ॥
पुष्पाणां वृष्टिभिर्वाद्यगीतनृत्यपुरःसरैः ॥ ४५ ॥
नीता निजपुरे राज्ञा तत्र जातो महोत्सवः ॥
अध्यासितानूत्नसिंहासने राजविभूतिभिः ॥ ४६ ॥

होय जाँय ताकें लियें आपके चरणकमलनमें लाई हूँ ॥ ३९ ॥ ॥ ४० ॥ सो या लोकमें जेसे रक्षा करी हे तेसेंहीं परलोकसोंबी रक्षा करो ओर हमारे कुटुम्बकों पुरकों अपनी चरणधूलिसों पवित्र करो ॥ ४१ ॥ थोरे दिन हमारे नगरमें पधारकें कृतार्थ करो या प्रकार रानी राजा मन्त्री पुरोहित सब प्रार्थना करकें पालकीआदि लाये तब दामोदरनें कही के श्रीमदाचार्यजी चरणहीसों चलें हें ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ तीर्थयात्रा व्रतमें हें तासों सवारीको नहीं स्पर्श करें हें पीछें पारायणकों समाप्त करकें वहाँसों पधारे ॥ ४४ ॥ ओर वे सबबी पादचारी होयकें पीछें २ चले ओर गाजे बाजेसों पुष्पनकी वर्षा करते राजानें अपने पुरमें पधराये वहाँ बडो उत्सव भयो राज विभूतीनसों नवीन सिंहासनपें विराजमान किये बहोत द्रव्य भेट कियो राजा रानी परिकरसमेत शिष्य भये वहाँ दो दिन विराजे

द्रव्य समर्पित भूरि प्रपत्तिर्विहिता स्वयम् ॥
राज्ञा जनैश्च तद्दारैरूषुस्तत्र दिनद्वयम् ॥ ४७ ॥
पप्रच्छुस्ते गुरून् किंतदंगुल्योत्थानकारणम् ॥
गृहीत्वा स कुत कृत्स्नं भक्त्या कृष्णाजलि कृत ॥ ४८ ॥
एकां सन्ध्यां य करोति स मां गृह्णातु नित्यशः ॥
अन्यथा भस्मतां गच्छेदित्यगुलिनिदर्शनम् ॥ ४९ ॥
समयद्वितये सन्ध्याकर्ता पात्रतमोस्म्यहम् ॥
इत्यगुलिद्वयोत्थाने कारण यो निरूपितम् ॥ ५० ॥
ज्ञात्वा य कुरुते पाप निर्निमित्तं कुदानभृत् ॥
तेन सा कृष्णता जाता निवृत्ता तद्विभागतः ॥ ५१ ॥
विभज्य ब्राह्मणेभ्योऽप्यनग्निस्तीर्थप्रतिग्रहात् ॥
कृष्णपाणिस्ततो जातस्तद्विस्मृतिकृतागस ॥ ५२ ॥
प्रायश्चित्तैरपैत्येनो यदज्ञानकृत भवेत् ॥
कामतो व्यवहार्यस्तु वचनादिह जायते ॥ ५३ ॥

तब सबननें अंगुलीनके उठायवेको कारण पूँछ्यो और दान लेंके कारो हाथ क्यों होयगयो और सब क्यों बाँट दीनो ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ ॥ ४८ ॥ तब आपनें आज्ञा करी जो एक सन्ध्या नित्य करतो होय वो मोकों ग्रहण करे नहीं तो भस्म होयजायगो याके लियें अंगुली एक दिखावतो हो ॥ ४९ ॥ दोनों समयमें सन्ध्या करूं हूं में पात्र हूं ये दो अगुलीनके उठायवेको कारण तुमसों कह्यो ॥ ५० ॥ विना कारण जानके जो कुदान लीनों तासों कारो हाथ होय गयो और बाँटवेसों मिटगयो॥ ५१ ॥ ब्राह्मणनकों बाँटवेसोंभी अग्निहोत्री न होयवेसों जानके तीर्थके प्रतिग्रहसों कारो हाथ होयगयो ॥ ५२ ॥ अज्ञानसों कियो भयो पाप प्रायश्चित्तनसों

वृद्धौ च मातापितरौ साध्वी भार्या सुतः शिशुः ॥
अप्यन्यायशतं कृत्वा भर्तव्या मनुरब्रवीत् ॥ ५४ ॥
प्रतिग्रहः प्रकर्तव्य आपन्नेन द्विजन्मना ॥
पौराणिकी तथा वृत्तिरित्येवं न्यायलक्षणम् ॥ ५५ ॥
याजनाध्यापनं दानं वृत्तयोऽमी द्विजन्मनाम् ॥
संपन्नैस्ता न संसेव्या नाभिर्दुष्यंति दुर्बलाः ॥ ५६ ॥
वैश्वानरमुखां वेत्ति यः सावित्रीं द्विजर्षभः ॥
वैश्वानरेण तीर्थेन स दानाद्यैर्न लिप्यते ॥ ५७ ॥
यज्ञवाटस्य या हिंसा सापि दुःखस्य कारणम् ॥
स्वर्गिणां श्रयूते दुःखं दुर्दानमपि तादृशम् ॥ ५८ ॥
कैंकर्यजार्यचौर्येण कुसीदाद्यैः कुवृत्तिभिः ॥
जीवंति ब्राह्मणास्तेभ्यः श्रेष्ठाः किं नात्मवृत्तयः ॥ ५९ ॥
विदा दयालुना दात्रा पात्रमुद्दिश्य वैष्णवम् ॥
जले जलं प्रदातव्यं श्रीकृष्णः प्रीयतामिति ॥ ६० ॥

दूर होयजाय हे ओर वचननसों व्यवहारके योग्य होय हे ॥ ५३ ॥ वृद्ध माता पिता सती स्त्री बालक पुत्र इनकों सौ अन्याय करकेंबी पालन करनों एसो मनुनें कह्यो हे ॥ ५४ ॥ ओर विपत्तिमें ब्राह्मण प्रतिग्रह करे तथा पौराणिक वृत्ति करे ॥ ५५ ॥ यज्ञ करावनों पढावनों दान ये वृत्ति ब्राह्मण की हें सम्पन्न ब्राह्मण ये इनकूं करें ओर इनके करवेसों दुर्बल दूषितबी नहीं होते ॥ ५६ ॥ जो ब्राह्मण अग्निमुखगायत्रीकों जानें हें वो वैश्वानरतीर्थ करकें दानादिकनसों लिप्त नहीं होय हे ॥ ५७ ॥ यज्ञमार्गको जो हिंसा हे वोबी दुःखको कारण हे स्वर्गमेंबी रहवेवारेनकों दुःख होय हे एसें दुष्टदानबी हें ॥ ५८ ॥ दासपनो जारपनो चोरी व्याजवट्टो आदि कुवृत्तीनसों जो ब्राह्मण जीवें हें उनसों कहा आत्मवृत्ति श्रेष्ठ नहीं हे ॥ ५९ ॥ विद्वान् दयालु दाता वैष्णव पात्र देखकें श्रीकृष्ण प्रसन्न होंय

यत्र विष्णु प्रतिग्राही दाता द्रव्यं च तन्मयम् ॥
श्रद्धा विधिरशाठ्यं च तावुभौ स्वर्गगामिनौ ॥ ६१ ॥
राजा प्राह पुनर्दीनबन्धवो तदज्ञुमंतु न ॥
वैष्णवेन कथ आर्ह्य विधेय जनरक्षणम्॥ ६२ ॥
गुरुवस्तु तदा प्राहुर्वैष्णवो नाधिकारभाक् ॥
दंडाधीन भवेद्राज्य दयालुर्दंडद कथम् ॥ ६३ ॥
प्रल्हादश्चेंद्रसेनश्च जनक शिबिरेव च ॥
निर्ममानिरहंकारा समा ये हानिलाभयो ॥ ६४ ॥
तेषा राज्य न पापाय नियुक्तानां हरीच्छया ॥
अंबरीषादिवद्राजा वैष्णव पालयन्प्रजाम् ॥ ६५ ॥
प्रजानां किंकरतया सर्वेषां संछसन्सुखम् ॥
विप्रान् धर्मविदो युक्तानष्टौ वा चतुरोपि वा ॥ ६६ ॥

ये कहकें जलमें जल छोड दे ॥ ६० ॥ जहाँ विष्णु प्रतिग्रह लेवेवारे हैं ओर देवेवारो द्रव्य विष्णुमय हे श्रद्धापूर्वक विधानें हे शठता नहीं हे वे दोनों स्वर्गगामी होंयहें ॥ ६१ ॥ राजा फिर बोल्यो जो हे दीनबन्धो ! हमारे धर्मकी आज्ञा करो वैष्णव केसें ग्रहण करे ओर प्रजाकी रक्षा केसें करे ॥ ६२ ॥ तब श्रीमदाचार्यजीनें आज्ञा करी जो वैष्णव अधिकारी नहीं हे दंडाधीन राज्य होय हे दयालु दंडदाता केसें ॥ ६३ ॥ प्रल्हाद इन्द्रसेन जनक शिबि ये राजा ममता अहंकारहीन हे हानि लाभमें समान हे ॥ ६४ ॥ ओर हरिकी इच्छासों नियुक्त हे उनको राज्य पापके लिये नहीं हो ओर अम्बरीषके जेसें प्रजा पालन करतो भयो वैष्णव राजा ॥ ६५ ॥ प्रजाको किंकर होयकें सबकों सुख देतो न्यायाधीशके सहित धर्मके जानवेवारे सब दोषनसों रहित विद्वान् ब्राह्मण आठ

सम्प्राड्विवाकान् युञ्जीत सर्वदोषसमुज्झितान् ॥
धर्मशास्त्रानुसारेण देशकालानुसारतः ॥ ६७ ॥
साध्वसाधुविवेकेन न्यायः कार्यः सुखेन तैः ॥
निग्रहेऽनुग्रहे तेषां शास्त्राज्ञैव प्रमा भवेत् ॥ ६८ ॥
राजा प्रजोपकाराय नानारंभान्प्रवर्त्तयेत् ॥
येन स्युः सुखिनो लोकाः कृतोद्योगा हितेप्सवः ॥ ६९ ॥
गवां च ब्राह्मणानां च दीनानां रोगिणामपि ॥
स्त्रीणां शिशूनां जंतूनां गुरूणामच्युतात्मनाम् ॥ ७० ॥
उपकारः सदा कार्यो भक्तिः कार्या हरौ सदा ॥
सर्वेऽपि समयाः पाल्याः स्वस्वमर्यादया सह ॥ ७१ ॥
निरुंध्यान्नूतनपाषंडान्धूर्त्तान्कपटकारिणः ॥
चाटतस्करदुर्वृत्तचोरजारखलान्नरान् ॥ ७२ ॥
दुष्टाधिकारिणो दुष्टाचारान्रुंध्यान्नृपद्विषः ॥
यस्य राष्ट्रे पुरे स्तेना जारा दुर्दंडवाक्क्रमाः ॥ ७३ ॥

वा चार नियुक्त करे ॥ ६६ ॥ ओर धर्मशास्त्रके अनुसार देशकालके अनुसार सत्य झूँठको न्याय विवेकसों उनसों सुखसों करावे उनके छोडवे पकडवेमें शास्त्रकी आज्ञाही प्रमाण हे ॥ ६७ ॥ ॥ ६८ ॥ ओर राजा प्रजाके लाभके लिये अनेक चालके व्यवहार चलावें जाकरकें हितकी इच्छासों उद्योग करवेवारी प्रजा सुखी होय ॥ ६९ ॥ गो ब्राह्मण दीन रोगी स्त्री बालक गुरु ओर जीवमात्रको सदा उपकार करे भगवान्में भक्ति करे सब समय अपनी २ मर्यादासों पालन करे ॥ ७० ॥ ॥ ७१ ॥ नवीन पाषंड करवेवारे कपटी चोर खराब आचरणवारे जार दुष्ट एसें मनुष्यनकों रोके ॥ ७२ ॥ दुष्ट अधिकारी दुष्ट काम-करवेवारे राजद्वेषी इनकों रोके जाके राज्यमें पुरमें चोर जार उद्दंड

न वसति न दीनानां पतत्त्यश्रूण्यसौ नृप ॥
राजा भूपो नृप स्वामी कार्याध्यक्षश्च पञ्चधा ॥ ७४ ॥
शास्तार पापपुण्यानां भोक्तारोमीऽयथाक्रियम् ॥
धर्मशास्त्रानुसारेण प्राड्विवाकमतेन च ॥ ७५ ॥
सदस्य सञ्चरेद्राज्य स्वय चातिथिवद्भवेत् ॥
धर्मयुद्धेन यल्लब्ध धर्म्मायिर्यदुपस्थितम् ॥ ७६ ॥
तद्विष्णवे वैष्णवेभ्यो ब्राह्मणेभ्य समर्पयेत् ॥
इष्टापूर्त्तेन युजीत पर्वयात्रामहोत्सवे ॥ ७७ ॥
ब्रह्मण्यश्च शरण्यश्च सत्यसन्धो भवेत्सदा ॥
श्रवण कीर्त्तन विष्णो स्मरण पादसेवन ॥ ७८ ॥
अर्चन वदन दास्य चरेदात्मसमर्पणम् ॥
यामद्वय हरेः काय राज्यकार्य द्वियामत ॥ ७९ ॥

दुष्टशक्तिवारे नहीं वसते वहाँ दीननके आँसू नहीं गिरते वहाँ राजाहे ॥ ७३ ॥ सम्राट् मांडलिक नरेश स्वामी कार्याध्यक्ष ये पाँच प्रकारके शासन करयेवारे पुण्यपापके भागी होंय हैं ॥ ७४ ॥ धर्मशास्त्रके अनुसारसों न्यायाधिकारीनके मतसों सभ्यनके मतसों राज्य चलावे आप अतिथीके जेसो रहे ॥ ७५ ॥ धर्मयुद्धसों जो मिले धर्मके लियें जो आवे ताकों विष्णुके लिये वैष्णवब्राह्मणनके लियें अर्पण करे ॥ ७६ ॥ कूप तडाग मंदिर आदि धर्मकार्यमें लगावे पर्वयात्रा महोत्सव करे ब्राह्मण तथा शरणागतनकी रक्षा करे सत्य बोले ॥ ७७ ॥ श्रवण कीर्तन स्मरण पादसेवन अर्चन वंदन दास्य सख्य आत्मसमर्पण ये भगवान्‌की भक्ति करे दो प्रहर भगवत्सेवा करे दो प्रहर राज्यकार्य करे एक प्रहर भोग एक प्रहर बल सेना देखे दो प्रहर निद्रा कर दुःखितनकी रक्षा करा

भोगकार्यं चैकयामं यामैकं बलसाधनम् ॥
निद्रा यामद्वयं चैवमार्तरक्षा च सर्वदा ॥ ८० ॥
परद्रव्यपरस्त्रीषु परद्रोहे पराङ्मुखः ॥
प्रजैकपालनपरो वैष्णवो राज्यकृद्भवेत् ॥ ८१ ॥
इत्येवं धर्मशास्त्रेषु भक्तिशास्त्रेषु यद्दुतम् ॥
तत्कर्त्तव्यं नृपेणेत्थं वैष्णवोपि भवेन्नृपः ॥ ८२ ॥
इत्येवं राज्यधर्मान् स्वान् भक्तिधर्माननेकधा ॥
उपदिश्य पुरात्तस्मादाचार्याः प्रस्थिताः स्वकैः ॥ ८३ ॥
श्रीवैकुंठं ततः प्राप्ताः क्षेत्रं श्रीसंप्रदायिनाम् ॥
यत्र रामानुजमुनेः स्थानमाम्नायवृद्धये ॥ ८४ ॥
दर्शनं तत्र देवस्य कृतं नारायणप्रभोः ॥
तत्रत्याचार्यवर्येण संलापः सुमहानभूत् ॥ ८५ ॥
शेषाचार्योवभाषेऽत्र का वोभक्तिरनुत्तमा ॥
कः संप्रदायः किं मानं सदाचारस्तु कीदृशः ॥ ८६ ॥

करे ॥७८॥७९॥८०॥ परायो द्रव्य परस्त्री परद्रोह सें विमुख रहे प्रजाके एक पालनहींमें तत्पर रहे एसो वैष्णवराजा राज्य करवेवारो होय ॥ ८१ ॥ या प्रकार धर्मशास्त्र ओर भक्तिशास्त्रमें जो कह्यो हे वो राजा करे तो वैष्णव राजा होय ॥ ८२ ॥ या प्रकार राज्यधर्म्म ओर अनेक भक्तिधर्मनको उपदेश करकें वा पुरसों शिष्यनके सहित श्रीमदाचार्य पधारे ॥ ८३ ॥ सो रामानुजसम्प्रदायीनके श्रीवैकुंठक्षेत्रमें आये जहाँ रामानुजमुनिको स्थान हे सम्प्रदायके वृद्धिके लिये वहाँ नारायणप्रभुको दर्शन कियो ओर वहाँके आचार्यनसों बडो वार्तालाप भयो॥८४॥८५॥शेषाचार्य बोले जो आपकी कोन भक्ति हे कोन सम्प्रदाय हे कहा मान हे सदाचार केसो हे ॥८६॥

अस्माकं निर्गुणा भक्तिः श्रीमद्भागवतोदिता ॥
स्वयं भगवता प्रोक्तं मन्निष्ठ निर्गुणं हि तत् ॥ ८७ ॥

कपिल उवाच ।

देवानां गुणलिंगानामानुश्रविककर्मणाम् ॥
सत्वएवैकमनसोवृत्तिः स्वाभाविकी तु या ॥ ८८ ॥
अनिमित्ता भागवती भक्तिः सिद्धेर्गरीयसी ॥
जरयत्याशु या कोशं निगीर्णमनलो यथा ॥ ८९ ॥
भक्तियोगो बहुविधो मार्गैर्भामिनि भाव्यते ॥
अभिसंधाय यद्धिंसां दंभं मात्सर्यमेव च ॥ ९० ॥
संरभी भिन्नदृग्भावं मयि कुर्यात् स तामसः ॥
विषयानभिसंधाय यश ऐश्वर्य्यमेव च ॥ ९१ ॥

तब श्रीमदाचार्यजीनें कह्यो जो हमारी श्रीमद्भागवतमें कही निर्गुणभक्ति है और स्वयं भगवान्नें कह्यो है जो निर्गुण मेरेमें है ॥ ८७ ॥ कपिलजीने भी कह्यो है जो त्रिगुणलिङ्गवारे देवतानके बीचमें स्वाभाविकी मनकी जो एक वृत्ति ॥ ८८ ॥ बिनाकारणके भगवत्संबंधी सत्त्वमें जो भक्ति है सो सिद्धिसोंभी अधिक है शीघ्र सबपापनकों भस्म करदेय है जैसें आगिकों अग्नि ॥ ८९ ॥ बहुतमार्गनके लियें भक्तिमार्ग अनेक प्रकारको कह्यो है ताही प्रकार स्वभाव रूप सत्त्व रज तम इनकी भिन्न भिन्न वृत्तिनसों पुरुषनके अभिप्रायमेंभी भेद है अर्थात् पुरुषनको संकल्प गुण प्रमाण भिन्न २ होंय हैं ॥ ९० जैसें कोईके पीडा करवेके विचारसों कपट करवेके विचारसों अथवा परोत्कर्ष न सहकें क्रोध करकें तथा भेददृष्टि करकें हमारी प्रतिमादिकनमें पूजा करें हैं ये तीन जातके तामस भक्त हैं और जो विषयनकी इच्छासों यश अथवा ऐश्वर्यकी इच्छासों भेद करकें प्रतिमादिकनमें हमारो पूजन करें हैं ये तीन प्रकारके राजस भक्त हैं जो पापनके

अर्चादावर्चयेद्यो मां पृथग्भावः स राजसः ॥
कर्मनिर्हारमुद्दिश्य परस्मिन्वा तदर्पणम् ॥ ९२ ॥
यजेद्यष्टव्यमिति वा पृथग्भावः स सात्त्विकः ॥
मद्गुणश्रुतिमात्रेण मयि सर्वगुहाशये ॥ ९३ ॥
मनोगतिरविच्छिन्ना यथा गंगांभसोऽम्बुधौ ॥
लक्षणं भक्तियोगस्य निर्गुणं समुदाहृतम् ॥ ९४ ॥
अहैतुक्यव्यवहिता या भक्तिः पुरुषोत्तमे ॥
सालोक्यसार्ष्टिसामीप्यसारूप्यैकत्वमप्युत ॥ ९५ ॥
दीयमानं न गृह्णंति विना मत्सेवनं जनाः ॥
स एव भक्तियोगाख्य आत्यंतिक उदाहृतः ॥ ९६ ॥
येनातिव्रज्य त्रिगुणं मद्भावायोपपद्यते ॥
ब्रह्मवादेत्वियं भक्तिः शुद्धाद्वैतसमाश्रयात् ॥ ९७ ॥

नाश करवेकों वा परमात्मामें कर्मनकों अर्पण करें हें वा पूजन करनोही चहिये ये विचारके मूर्ति आदिमें वूजन करें वे तीन प्रकारके सात्त्विक भक्त कहावें हें ओर हमारे गुणनके सुनतेही जेसें गंगाजलकी समुद्रके आडी अविच्छिन्न गति होय हे ताहीप्रकार सबके अन्तर्यामी रूप जो पुरुषोत्तम में हूं तामें निरंतर मनोगति होय ये निर्गुण भक्तियोगको लक्षण हे ॥ ९१ ॥ ९२ ॥ ९३ ॥ ९४ ॥ हमारी निर्गुण भक्ति करवेवारे मनुष्यनकों सालोक्य (संगही एक लोकमें वास) सार्ष्टि (हमारो जेसो ऐश्वर्य) सामीप्य (हमारे पास रहनो) सारूप्य (हमारे जेसो रूप) एकत्व (हमारे रूपमें मिल जानों) ये सब हम देंय हें तोभी वे भक्त विना हमारी सेवाके कछू नहीं ग्रहण करें हें याहीको नाम निर्गुण भक्ति हे ॥ ९५ ॥ ॥ ९६ ॥ जासों त्रिगुणकों छोडकें मनुष्य परब्रह्मकों पावें हें शुद्धा

आत्मन्येवात्मनां प्रेम नान्यत्र निरुपाधिकं ॥
इत्युक्ते श्रीमदाचार्यैः प्राहासो प्रहसन्निव ॥ ९८ ॥
किमिदं प्रोच्यते स्वामिन् प्रतिवादिसमं वचः ॥
अभेदे तु कथं भक्तिर्भक्तिर्भेदावलंबिनी ॥ ९९ ॥
पुनः प्राहुर्निजाचार्यो उक्तवाक्यानुरोधतः ॥
तत्वमस्यादितः सा तु शुद्धाद्वैतावलंबिनी ॥ १०० ॥
आत्मावारे इति श्रुत्या दर्शनैकफलो विधिः ॥
श्रवणाद्यैः प्रतिज्ञात आत्मोपास्तिविधेरपि ॥ १०१ ॥
आत्मनोऽन्यत्र यो देवं पश्यत्यस्य विनिंदनात् ॥
श्रुतौ स्मृतौ ततस्त्वात्मभेदोपासनमर्थवत् ॥ १०२ ॥
आरब्धभक्तिरन्यमस्तत्त्वदृष्टिर्जनस्तु यः ॥
भेदोपासनमेवास्य स भक्तः प्राकृतः स्मृतः ॥ १०३ ॥

द्वैतके आश्रयसों ब्रह्मवादमें येही भक्ति हे ॥ ९७ ॥ आत्माहीमें आत्माको निरुपाधिक प्रेम रहे हे ओर ठिकानें नहीं होय हे एसें श्रीमदाचार्यजीके कहवेपे हँसके वादी बोल्यो ॥ ९८ ॥ जो हे स्वामिन्! ये प्रतिवादीके से वचन कहा कहो हो भेदके अवलम्ब करवेवारी भक्ति अभेदमें कैसें होयसके हे ॥ ९९ ॥ तब श्रीमदाचार्यजी बोले जो कहे भये वाक्यनके अनुरोधसों 'तत्त्वमसि'आदिवाक्यनसों वो शुद्धाद्वैतकी अवलम्बिनी हे "आत्मावारे" या श्रुतिसों विधिको दर्शन एक फल हे श्रवणादिकनसों आत्माकी उपासना करवेकी विधि हे ॥ १०० ॥ १०१ ॥ आत्मासों ओर जगह जो कोई देवताकों देखे हे वाकी श्रुतिस्मृतिमें निन्दा सुनें हें सों आत्माकी अभेद उपासना सार्थक हे ॥ १०२ ॥ ओर जो पदार्थदृष्टिजन सावधानतासों भक्तिको आरम्भ करे हे ओर भेदहीकी

सच्चिदात्मस्वरूपौ यौ जडजीवौ जगद्गतौ ॥
आनंदस्फूर्तये भक्तिरनुरक्तिस्तदात्मनि ॥ १०४ ॥
पुत्रादिषु यथा स्नेह आत्मार्थे श्रुतिसंमतः ॥
आत्मनो भगवानात्मा तज्ज्ञाने भक्तिरुत्तमा ॥ १०५ ॥
देहात्मवादिभिः पुंभिर्देहोदेहेन सेव्यते ॥
आत्मनां भगवानात्मा सेव्यते चात्मवादिभिः ॥ १०६ ॥
इत्येवं बहुधा भक्तिः श्रुतिस्मृतिपुराणतः ॥
साधिता ब्रह्मवादेऽथ यथा लीला निवासिनाम् ॥ १०७ ॥
क्व चायं कितवः पापः क्वचायं श्रीनिकेतनः ॥
जीवेश्वरभिदावादो भक्तिपक्षस्य संमतः ॥ १०८ ॥
भौमत्वेनाप्यभेदेहि भेदोऽत्र मणिकाचवत् ॥
वेदांततो वास्तवस्त्वभेद आत्मकृतेरणात् ॥
यावल्लीलं भवेद्भेदो लीलाऽनित्या तथा च तत् ॥ १०९ ॥

उपासना करे हे वो प्राकृत भक्त हे ॥ १०३ ॥ ओर जगतमें रहवेवारे जड जीवनकों सच्चिदानन्दस्वरूप समझकें आनन्दस्फूर्तिके लियें आत्मामें अनुराग ही भक्ति हे ॥ १०४ ॥ पुत्रादिकनमें जेसो स्नेह हे आत्मा-मेंवी वेसोही करनो ये श्रुतिसंमत हे आत्माकेवी आत्मा भगवान् हे एसो ज्ञान होय तव उत्तम भक्ति होय ॥ १०५ ॥ देहकों आत्मा मानवेवारे पुरुष देहकी देहसों सेवा करें हें वेसेही आत्मवादी आत्माकों भगवान् समझकें आत्माहीकी सेवा करें हें ॥ १०६ ॥ या प्रकार श्रुति स्मृति पुरा-णनसों वहोत प्रकारकी भक्ति लीलानिवासीनकी ब्रह्मवादमें सिद्ध हे ॥ १०७ ॥ कहाँ ये कपटी जीव कहाँ श्रीनिकेतन भगवान् एसो जीव ईश्वरको भेदवाद भक्ति पक्षको सम्मत हे ॥ १०८ ॥ भौमत्वसों अभेद रहतेवी भेद मणि काँचके जेसो हे वेदान्तसों वास्तविक अभेद हे "आत्मकृतेः" या सूत्रसों यावत् लीला भेद हे लीला अनित्य हे तो पीछें

इत्युक्त्वा पुनराहुस्ते संप्रदाय सनातन ॥
संकर्षणाय गदितो लीलास्थेन मुरारिणा॥ ११० ॥
पुरारिणा तत प्रोक्तो नारदाय सुरर्षये ॥
कृष्णद्वैपायनेनोक्तोविष्णुस्वामिमहर्षये ॥ १११ ॥
देवदर्शनत प्राप्त संप्रदायो ह्यनुत्तम ॥
श्रुतिसूत्रेषु भगवद्वचन च समाधिगी ॥ ११२ ॥
प्रमाणमेतन्मान नस्सर्वं तदनुसारि यत् ॥
आचारोभगवत्प्रोकस्तथा भक्तवरोदित ॥ ११३ ॥
अनुलाप विधायेव प्रशसन्त परस्परम् ॥
तेषां सपर्यांमुररीकृत्य याताम्तत परम् ॥ ११४ ॥
श्रीवेदव्यासविष्णुप्रभुचरणमिते सम्मिते ग्रन्थसार्थे
श्रीगोविन्दाभिधानांसमयनयविदां देशिकानां निदेशात् ॥
आचार्याणां चरित्रे हरिजनसुखदे शास्त्रिकृष्णैर्निबद्धे
प्रस्थानेऽस्मिँस्तृतीये समजनिपटह पञ्चमोदिग्जयाख्ये ११५

वोही है ॥ १०९ ॥ ये कहकें कह्यो जो सम्प्रदाय सनातन है लीला करते भगवान्नें शिवसों कह्यो ॥ ११० ॥ उननें देवर्षि नारदसों कह्यो उननें व्याससों व्यासजीनें विष्णुस्वामीसों ॥ १११ ॥ उननें देवदर्शनसों एसें ये सम्प्रदाय सबसों उत्तम परम्परा प्राप्त हे वेद सूत्र गीता श्रीमद्भागवतकी समाधिभाषा ये प्रमाण हें ॥ ११२ ॥ याके अनुकूल सब प्रमाण हे भगवान्को कह्यो तथा शांडिल्यऋषिको कह्यो आचार प्रमाण है ॥ ११३ ॥ या प्रकार परस्पर बातकरकें प्रशसा करते उनकी पूजाकों ग्रहण करकें आगे पधारे ॥ ११४ ॥ समयनीतिके जानवेवारे जगद्गुरु श्रीमद्गोविन्दाचार्यजी महाराजकी आज्ञासों कृष्णशास्त्रीके बनाये भये श्रीमद्वेदव्यास विष्णुस्वामिमतके अनुकूल हरिभक्तनके सुख देवेवारे या चारित्रग्रन्थके तीसरे प्रस्थानमें ये पाँचमो पटह समाप्त भयो ॥ ११५ ॥

आलवालपदं याता ददृशुस्ते श्रियःपतिम् ॥
प्रणेमुस्तं ततस्तत्र जीर्णस्वामिन आगताः ॥ १ ॥
तेऽदर्शयँस्तत्र प्रत्नां चिञ्चां रामानुजप्रभोः ॥
श्रीदामोदरलीलायाभक्तेनानुभवःकृतः ॥ २ ॥
वर्षाणां वेदशतकं यत्रेत्यादिन्यरूपयन् ॥
आलवालकथायां ते शठकोपकथां जगुः ॥ ३ ॥
अभूत् पूर्वपयोराशेः क्वापिपश्चिमरोधसि ॥
मंडले पांड्यभूपस्य नगरी कुहकावती ॥ ४ ॥
तत्रासीत्पादजातेषु पल्लीभागवताग्रणीः ॥
शठकोपो महायोगी तेन लब्धः शिशुर्वने ॥ ५ ॥
स भक्तियोगमास्थाय तदेकध्यानतत्परः ॥
तूष्णीं स्थितः स्थापितोसौ बकुलस्य तरोरधः ॥ ६ ॥
बकुलाभरणः ख्यातो विप्रायांतस्तदध्वना ॥
त्यक्त्वा पाठं तु वेदस्य जग्मुस्ते शूद्रशंकया ॥ ७ ॥

सो आलवालस्थानमें आये वहाँ श्रीभगवान्के दर्शन किये ओर प्रणाम कियो तव वहाँ जीरस्वामी आये ॥ १ ॥ ओर उननें रामानुजप्रभुकी पुरानी अमिलीको दर्शन करायो वहाँ कोई भक्तनें चारसौ वर्ष ताईं श्रीदामोदरलीलाको अनुभव कियो हो पीछें आल्वारनकी कथामें शठकोपकी कथा कही के पूर्वसमुद्रके पश्चिम तटपे पांड्य राजाके राज्यमें कुहकावती(कुरकी) नगरीमें शूद्रवैष्णवनमें अग्रणी शठकोप महायोगी भये ॥ २ ॥ ३ ॥ ॥ ४ ॥ ५ ॥ ओर वे बकुल वृक्षके तरें भक्तियोगसों ध्यानमें तत्पर होयकें चुप होय रहे ॥ ६ ॥ सो उनको नाम बकुलाभरण भयो सो वा मार्गसों ब्राह्मण वेदकों पढते जाते हे सो उनकों शूद्र समझकें वेदपाठ छोडकें गये॥ ७॥

विस्मृतास्ते ततो वेदं परावृत्त्यागता पुन ॥
महात्मनोऽपराधं तं क्षमाप्यैवाध्यगु श्रुती ॥ ८ ॥
परांकुश इति ख्यातस्सदा नारायणं भजन् ॥
वेदशास्त्रपुराणानां सारमुद्धृत्य सद्धिया ॥ ९ ॥
प्रबंधेषु निबद्ध मुग्धार्थे द्राविडभाषया ॥
स वैकुंठपद यातो दिव्यदेहो विमानत ॥ १० ॥
नारायणेन चोत्सगेऽध्यासितोतिसमादृत ॥
तत कतिपये कालेऽतीतेऽब्दे त्रिसहस्रके ॥ ११ ॥
समागत पुनर्योगी स्वाम्नायस्य प्रवृत्तये ॥
स श्रीमान् शठकोपार्यो वैकुंठेशसमाज्ञया ॥ १२ ॥
सम्प्रदायरहस्यार्थान् सनाथमुनये ददौ ॥
द्राविडद्विजमुख्योथ सनाथमुनिरभ्यधात् ॥ १३ ॥
स राममुनये प्राह स पूर्णमुनये पुन ॥
श्रीयामुनाय मुनये श्रीमद्रामानुजाय स ॥ १४ ॥

सो वेद भूलगये तब पीछें लोटकें महात्माके अपराधको क्षमा करायो ओर वेद पढकें पीछें गये ॥ ८ ॥ ओर सदा नारायणके भजवेवारे उनको नाम परांकुश पड्यो अपनी बुद्धिसों वेदशास्त्रपुराणनको सार लेकें सबके समझवेके लियें द्राविडभाषामें प्रबन्ध बनाये ओर दिव्यदेहधारणकरकें विमानमें चढकें वैकुंठ पदकों गये ॥ ९ ॥ १० ॥ उनको नारायणनें अपनी गोदीमें बैठायो, पीछें तीन हजार वर्ष बीतें अपने सम्प्रदायके प्रवृत्त करवेको नारायणकी आज्ञासों श्रीमान् शठकोपार्य आये ॥ ११ ॥ ॥ १२ ॥ सो सम्प्रदायको रहस्य नाथमुनिको दीनो जो द्राविडब्राह्मनमें श्रेष्ठ हे ॥ १३ ॥ उननें राममुनिको दीनो राममुनिने पूर्णमुनिको दीनो उननें यामुनमुनिको दीनो यामुनमुनिने श्रीमद्रामानुजको दीनो ॥ १४ ॥

श्रीलक्ष्मणमुनिः साक्षात्सहस्रवदनः स्वराट् ॥
श्रीभाष्यादिविनिर्माता बौधायनमतेन यः ॥ १५ ॥
शरण्यानां समुद्धर्ता शारदाशोकभंजनः ॥
मायावादाद्यहीन्द्राणां दर्पहाऽसौ खगेश्वरः ॥ १६ ॥
प्रादुर्भूतोभूतिपुरे द्राविडानां शिरोमणिः ॥
नूनाऽस्यतो यादवेंद्राद्यतेर्विद्यां समभ्यसत् ॥ १७ ॥
कप्यासपुंडरीकाक्षपदव्याख्यानदुःखितः ॥
तं त्यक्त्वा यामुनाचार्यं श्रितः श्रीसंप्रदायिनम् ॥ १८ ॥
स दिग्जयं विधायैव श्रीभाष्यादीन्निगद्य च ॥
वैष्णवान्निर्भयाँश्चक्रे जातो विष्णोरतिप्रियः ॥ १९ ॥
शिष्यं द्वारसमुद्रस्य राजानं विष्णुवर्द्धनम् ॥
चक्रे जैनान् विनिर्जित्य सोऽवाचीताप्यपाकरोत् ॥ २० ॥
वयं तत्संप्रदायस्य ह्याचार्याः स्मः प्रवृत्तये ॥
आवयाद्याधिकरणं भवच्छारीरकस्य नः ॥ २१ ॥

ये लक्ष्मणमुनि साक्षात् शेषजी जो श्रीभाष्य आदि ग्रंथनके कर्ता बडे तेजस्वी ॥ १५ ॥ भक्तनके उद्धार करवेवारे सरस्वतीके शोकको दूर करवेवारे मायावादीरूपीसर्पनके अहंकारको दूर करवेवारे गरुडजी जेसे हे ॥ १६ ॥ जो द्राविडब्राह्मणनके शिरोमणि भूतिपुरमें प्रगट भये ओर यादवेन्द्रसंन्यासीसों विद्याभ्यास कियो ॥ १७ ॥ पीछें "कप्यास" या पदके उनके किये भये अर्थसों दुःखित होयकें श्रीसम्प्रदायीयामुनाचार्यके आश्रित भये ॥ १८ ॥ वे दिग्विजय करकें श्रीभाष्य आदि ग्रंथ करकें वैष्णवनकों निर्भय करकें विष्णुके अत्यन्त प्यारे भये ॥ १९ ॥ ओर द्वारसमुद्रके राजा विष्णुवर्द्धनकों शिष्य करकें जैनीनकों जीतकें दाक्षिणसों निकासते भये ॥ २० ॥ उनके सम्प्रदायके हम आचार्य हैं

इत्युक्ते श्रीमदाचार्यास्तद्व्याख्यानं सविस्तरम् ॥
निरूप्य प्रस्थितास्तस्मात्तोताद्रिं प्रति सादरा ॥ २२ ॥
आचार्यानागतान् श्रुत्वा तनत्याचार्यपूरुषा ॥
आचार्यनयतोनिन्यूरमेशं तेऽन्वदर्शयन् ॥ २३ ॥
क्रोडीकृत्य श्रियं यत्र स्थितो नारायण प्रभु ॥
सिंहासने निरालंबचरण करुणालय ॥ २४ ॥
देवालये प्रविश्यैव तत्तीर्थं शिरसावहम् ॥
निषण्णादेवपुरतोजीर्णस्वामिसमादरात् ॥ २५ ॥
आचार्यास्ते प्रशस्यैव प्रोचु सूनृतया गिरा ॥
सम्यक् कृत भवद्भिस्तद्वैष्णवाध्वा सुरक्षित ॥ २६ ॥
तत कृष्णसभामध्ये सधर्मब्रह्मवादत ॥
श्रुत यद्यपि तत्सर्वमस्माभि स्वीयवक्त्रत ॥ २७ ॥

हमको अपने अभिमतशारीरकके आधेकरणकों सुनावो ॥ २१ ॥ ये कहवेपे श्रीमदाचार्य सविस्तर व्याख्यानको निरूपण करकें वहाँसों तोताद्रीकों आदरपूर्वक पधारे ॥ २२ ॥ श्रीमदाचार्यजीकों पधारवे सुनकें वहाँके आचार्यनके मनुष्यननें अपने आर्यनकी रीतिसों पधरायकें विष्णुके दर्शन कराये ॥ २३ ॥ जहाँ लक्ष्मीजीको गोदमें लेकें सिंहासनमें श्रीचरणलटकायकें करुणालय प्रभुनारायण विराजमान हैं ॥ २४ ॥ श्रीमदाचार्यजी देवालयमें प्रवेश करकें तीर्थको शिरमें धारण करते जीर्णस्वामीके आदरसों देवके सामनें विराजे ॥ २५ ॥ और वहाँके सब श्रीमदाचार्यजीकी प्रशंसा करकें अच्छी वाणीसों बोले जो आपने बहोत अच्छो कियो जो कृष्णदेवराजाकी सभामें सधर्मकब्रह्मवादसों वैष्णवनके मार्गकी रक्षा करी सो सब हमनें यद्यपि अपने मनुष्यनके मुखसों सुन्यो हैं तोभी यथावत् वृत्तान्त आपके मुखसों सुनवेकों उत्सुक हैं तब श्रीम

तथापि तद्यथावृत्तं श्रोतुमुत्काभवन्मुखात् ॥
न्यरूपयँस्तदाचार्या निश्शेषं वृत्तमात्मनः ॥ २८ ॥
विवादस्य यथा वृत्तं प्रस्फुरत्पटुयुक्तिमत् ॥
तत्कथाप्रेमपाथोधिहर्षोत्कर्षोर्मिसंप्लुताः ॥ २९ ॥
जीर्णस्वामिमुखाचार्यास्स्तुतिं प्रीत्यर्थमर्पयन् ॥
ब्रह्मचारिस्वरूपेण कृष्णवर्त्मा भवानिह ॥ ३० ॥
पूर्णानन्दः सदा भूयाद् बालोप्याचार्यपद्गतः ॥
ततश्च पुनराहुस्ते योंतस्तद्धर्मसूत्रगः ॥ ३१ ॥
विषयोवर्ण्यतां सम्यग् भवदाचार्यसंमतः ॥
तदाहुः श्रीमदाचार्याश्छान्दोग्याद्वैषयं वचः ॥ ३२ ॥
अत्रैव श्रूयते सूर्यमंडलस्थो हिरण्मयः ॥
प्राकृतोऽप्राकृतो वासौ संशयोविषये श्रुतेः ॥ ३३ ॥
पूर्वपक्षः प्राकृतो वै नखकेशादिमत्त्वतः ॥
न प्राकृतोपहतपाप्मत्वादिश्रवणादयद्ध ॥ ३४ ॥

ाचार्यजीनें अपनो सम्पूर्ण वृत्तान्त निरूपण कियो ॥ २६ ॥ २७ ॥ ॥ २८ ॥ ओर बडीयुक्तिवारे विवादके वृत्तान्तकों कह्यो तब वे जीर्णस्वामि आदि वा कथाके प्रेमरूपी समुद्रकी हर्षरूपी लहरीनमें डूबकें स्तुति करते बोले जो आप ब्रह्मचारीस्वरूपसों अग्नि हें बालकवी अचार्यपद्कों पायकें सदा पूर्णानन्द विराजमान होंय ओर पीछ बोले जो "अन्तस्तद्धर्म" या सूत्रको अपने आचार्यनको संमत विषय वर्णन करो तब श्रीमदाचार्यजीनें छान्दोग्यपनिषदसों याविषयकों कह्यो ॥ २९ ॥ ३० ॥ ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ जो सूर्यमंडलमें रहवेवारे हिरण्मयपुरुष सुनें हें सो वो प्राकृत हें के अप्राकृत हें नख केश आदिहोयवेसों प्राकृत हें ओर पाप छूटजाय हें इत्यादि सुनवेसों अप्राकृत हें यापूर्वपक्षमें ॥ ३३॥३४॥

उत्तर तत्र सिद्धांते व्यासाचार्योजगुस्तथा ॥
अतस्तद्धर्मसूत्रेण तथैवेतत्फलश्रुते ॥ ३५ ॥
अप्राकृतोऽयं पुरुप पुरुपोत्तमसज्ञित ॥
हिरण्यशब्दादानद प्रोच्यते छांदसोत्र लुक् ॥ ३६ ॥
विकारार्थे मयण् नेह द्व्यचश्छंदसि शासनात् ॥
कप्यास पुडरीकाक्षवाक्षिणीत्यत्र योपमा ॥ ३७ ॥
नाश्लीला प्राकृताचार्यैर्भवतां सा स्फुटीकृता ॥
ते प्राहुरस्मदाचार्या पुडरीकाक्षसज्ञया ॥ ३८ ॥
रूढ्या नारायण तत्र वाक्यशेपा समूचिरे ॥
तत्राहु पुनराचार्यो सत्य सत्य तथैव तत् ॥ ३९ ॥
नारायणादिशब्दा ये परतत्त्वस्य वाचका ॥
नारायणोपनिपदि ब्रह्मविष्णुमहेश्वरा ॥ ४० ॥
नारायणात्प्रवर्तत इत्याद्यन्यत्र च श्रुते ॥
परतत्त्वस्य गीतायां निर्णयो हरिणा कृत ॥ ४१ ॥

"अन्तस्तद्धर्म" यासूत्रसों व्यासाचार्य उत्तर कहें हें जो ये वो फलश्रुति हे ॥ ३५ ॥ ये अप्राकृत पुरुपोत्तमसज्ञ हें हिरण्य शब्दसों आनन्द अर्थलाभ होय हे यहाँ छान्दस लुक हे ॥ ३६ ॥ विकारअर्थमें मयट् प्रत्यय नहीं हे यो द्व्यचसों वेदहीमें होय हे नेत्रमें जो कप्यास पुडरीकाक्षकी उपमा हे सो प्राकृत नहीं हे आपके आचार्यननेंभी स्पष्ट वर्णन कियो हे तब उननें कह्यो जो हमारे आचाय पुडरीकाक्षसज्ञासो रूढिसां नारायणकोंही कहे हें ओर सब वाक्यनको यहाँही समन्वय हे सब आपने कह्यो जो ठीक हे २ यो वैसेही हे ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ नारायण आदि शब्द परतत्त्वके वाचक हे नारायणोपनिपदमें ब्रह्मा विष्णु महेश ये नारायणसों होय हें ॥ ४० ॥ इत्यादिक वाक्यनमें औरभी श्रुतिमें परतत्त्वको वार्ता

पुरुषोत्तमसंज्ञा च स्थापिता परमात्मनः ॥
जलशायीति यो विष्णुः सोपि नारायणाभिधाम् ॥ ४२ ॥
तच्छेषत्वात्तदवतारत्वाद्धत्तेऽत्र का क्षतिः ॥
ततवामिति ऋङ्मंत्रे व्यापिवैकुंठवर्णनम् ॥ ४३ ॥
यत्र गावो भूरिशृंगा आयास इति लिंगतः ॥
इत्यादिश्रुतिवाक्येषु व्यापिवैकुंठदर्शनात् ॥ ४४ ॥
गोपालस्तदधिष्ठाता स एव पुरुषोत्तमः ॥
इत्येवं वहुधा जल्पोनल्पस्तेषां मुदेऽभवत् ॥ ४५ ॥
सत्कृत्य तान् सत्कृतास्त आलयाद्बहिरागताः ॥
न्यग्रोधस्य तले तत्र चक्रुः पारायणं वने ॥ ४६ ॥
अंतेवासिजनः कश्चित्प्राह नेहांतिके जलम् ॥
आचार्यास्तु तदा प्राहुः शिलेयमपसार्यताम् ॥ ४७ ॥

नारायणशब्द हे ये निर्णय भगवान्नें गीतामें कियो हे ॥ ४१ ॥ परमात्माकी पुरुषोत्तमसंज्ञा स्थापित करी हे जलशायी जो विष्णु हें वो बी नारायण या संज्ञाकों उनके अवतार होयवेसों धारण करें हें यामें कछू हानि नहीं "ततवा"या ऋग्वेदकें मंत्रमें व्यापक विष्णुको वर्णन हे ॥ ४२ ॥ ॥ ४३ ॥ परन्तु ओर "यत्रगावो" इत्यादि श्रुतीनमें व्यापी वैकुंठके दर्शनसों ॥ ४४ ॥ उनके अधिष्ठाता गोपाल हें वोही पुरुषोत्तम हें एसो बहोतसो वाद उनके आनन्दके लियें भयो ॥ ४५ ॥ पीछें उनसों सत्कारकों पायकें ओर उनको सत्कार करकें देवालयसों बाहेर आये ओर वटवृक्षके तले वनमें पारायण कियो ॥ ४६ ॥ सो वहाँ संगके कोई विद्यार्थीनें कह्यो के यहाँ जल नहीं हे तब आपनें आज्ञा करी जो ये शिला दूर करो ॥ ४७ ॥

शिला दूरीकृता शिष्यैरुपलब्धो जलाशय ॥
श्रुत्वा समागता सर्वे निपानं प्रकटीकृतम् ॥ ४८ ॥
आचार्ये प्रणताचार्याश्चक्रुस्तत्र महोत्सवम् ॥
यामिनीत्रितय तत्र स्थिता सम्यक्क समादृता ॥ ४९ ॥
दीर्घनारायण तस्मात्प्राप्ता देव चतुर्भुजम् ॥
दर्शनं वंदन तत्र प्रापुराचार्यसगमम् ॥ ५० ॥
उवाच जीर्णस्वाम्यार्यान् कीर्तिर्वोन श्रुता पुरा ॥
ते भवतोद्य मन्नेत्रयुगयोर्विषयं गता ॥ ५१ ॥
येन कृष्णसभासिंधु शास्त्रशंबरपूरित ॥
प्रस्फुरद्युक्तिकल्लोल प्रतिविज्ञपसकुल ॥ ५२ ॥
वाक्यसदर्भसद्रत्नो नानाशास्त्रसरिच्छ्रित ॥
मतिमदरमंथानावुत्तीर्णोतिविलोडित ॥ ५३ ॥
कथयतु तदाचार्या स्रक् सदा धार्यते कथम् ॥
पूजादिकाले सा धार्या तत्तत्साद्गुण्यसपदे ॥ ५४ ॥

तब शिष्यननें शिला हटाई तो जलाशय निकस आयो ये सुनकें वहाँके सब मनुष्य आये ओर श्रीमदाचार्यजीकों नम्र होयकें प्रणाम करते भये बड़ो उत्सव कियो ओर उनके आदरसों तीन दिन विराजे ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ पछिं वहाँसों लम्बेनारायण आये वहाँ चतुर्भुजदेवके दर्शन करे ओर आचार्यनसों मिले ॥ ५० ॥ तब जीर्णस्वामी बोले जो आपकी कीर्ति पहले सुनी ही वे आप आज हमारे दृष्टिपथ भये ॥ ५१ ॥ जो आप शास्त्ररूपी जलसों पूरित चमकीली युक्तिरूपी लहरीवारो प्रतिवादीरूप मगरवारो वाक्यनके प्रबन्धरूप अच्छेरत्नवारो अनेकशास्त्ररूप नदीनको आश्रित कृष्णदेवराजाके सभारूपी समुद्रकों बुद्धिरूपी मथराचलसों मथके पारभये हें ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ अब आप कहिये जो माला नित्य केसें धारण

वर्ज्या सा मलमूत्रादौ सर्वत्राऽशुचिकर्मणि ॥
इत्युक्ते प्राहुराचार्या मैवं वदत विज्ञनाः ॥ ५५ ॥
तन्निर्णयमविज्ञाय निर्णयः कथ्यते मया ॥
प्रह्लादसंहितायां च स्कांदेथो विष्णुधर्मके ॥ ५६ ॥
अन्यत्र बहुवाक्येषु स्रग्धृतिः श्रुतिचोदिता ॥
द्वारकायाश्च माहात्म्ये विष्णुधर्मोत्तरे तथा ॥ ५७ ॥
निवेद्य केशवे मालां तुलसीकाष्ठसंभवाम् ॥
वहते यो नरो भक्त्या तस्य वै नास्ति पातकम् ॥ ५८ ॥
तुलसीकाष्ठसंभूते माले कृष्णजनप्रिये ॥
बिभर्मि त्वामहं कंठे कुरु मां कृष्णवल्लभम् ॥ ५९ ॥
एवं संप्रार्थ्य विधिवन्मालां कृष्णगलेर्पिताम् ॥
धारयेत्कार्तिके योवै स गच्छेद्वैष्णवं पदम् ॥ ६० ॥

करें हें वो तो पूजाके समयमें पूजाको अंग हे यासों धारण करी जाय हे ॥ ५४ ॥ मलमूत्रके त्यागके समय ओर अपवित्रकर्मनमें वो वर्जित हे ये कहवेपे आप बोले के हे विद्वानों विना निर्णयके जाने एसें मत कहो ॥ ५५ ॥ निर्णय हम कहें हें प्रल्हादसंहितामें स्कन्दमें विष्णुधर्ममें ओर बहोत ठिकानमें माला धारण लिख्यो हे द्वारकाके माहात्म्यमें विष्णुधर्मोत्तरमेंबी ताहीप्रकार लिख्यो हे ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ जो तुलसीकाष्ठकी माला भगवान्को अर्पण करकें जो मनुष्य भक्तिसों धारण करें हें उनके पातक नहीं रहेंहें ॥ ५८ ॥ "तुलसीमाला धारण करवेको मन्त्र" तुलसीकाष्ठसों उत्पन्न भगवज्जननकी प्यारी हे माले तोकूँ में कंठमें धारण करूँ हूँ मोकों कृष्णको प्यारो करो ॥ ५९ ॥ या प्रकार प्रार्थना करकें भगवान्के गरेमें अर्पण करी गई मालाकों जो धारण करें

मार्गशीर्षमाहात्म्यसप्तमाध्याये तदधारणे दोषदर्शनम् ॥
धारयंति न ये मालां हैतुकाः पापबुद्धयः ॥
नरकान्न निवर्त्तंते दग्धाः कोपाग्निना मम ॥ ६१ ॥
विष्णुधर्मोत्तरे त्वाशौचादौ मालाधारणं
मदोषावहमेिति भगवतोक्तम् ॥
तुलसीकाष्ठजा मालां कंठस्थां वहते तु यः ॥
अप्यशौचोप्यनाचारो मामेवैति न संशयः ॥ ६२ ॥
पाद्मे च
यज्ञोपवीतवद्धार्य्या तुलसीकाष्ठमालिका ॥
क्षणार्द्धं तद्विहीनोपि विष्णुद्रोही न संशयः ॥ ६३ ॥
तुलसीकाष्ठसंभूतां यो मालां वहते सदा ॥
प्रायश्चित्तं न तस्यास्ति नाऽशौचं तस्य विग्रहे ॥ ६४ ॥
यज्ञोपवीतवद्धार्यो कंठे तुलसिमालिका ॥
नाऽशौचं धारणे तस्या यतः सा ब्रह्मरूपिणी ॥ ६५ ॥

हैं वे वैकुंठकों जाँय हैं ॥ ६० ॥ मार्गशीर्ष माहात्म्यके सातवे अध्यायमें नहीं धारण करवेमें भगवान्नें दोष दिखाये हे के जो कुतर्कवारे पापबुद्धि मालाकों नहीं धारण करें हें वे मेरे कोपरूपी अग्निसों भस्म होयकें नरकसों निवृत्त नहीं होंय हैं ॥ ६१ ॥ ओर विष्णुधर्मोत्तरमें आशौचआदिमेंभी मालाधारण करवेमें दोष नहीं ये भगवान्नेंही कह्यो हे तुलसीकाष्ठकी माला जो कंठमें धारण करे हे सो चाहे आशौची होय वा अनाचारी होय मोकोंही पावे हे यामें संदेह नहीं ॥ ६२ ॥ पद्मपुराणमेंभी कह्यो हे के यज्ञोपवीतके जेसे तुलसीकाष्ठकी माला धारण करनी आधे क्षणभी जो तासों हीन रहेहे सो विष्णुद्रोही समझो जायगो यामें संदेह नहीं ॥ ६३ ॥ जो तुलसीकाष्ठकी माला सदा धारण करेहे ताके शरीरमें प्रायश्चित्त आशौच नहीं रहे हें ॥ ६४ ॥ यज्ञोपवीतके जेसे कंठमें तुलसीकी माला राखनी ताके

शांडिल्ये भक्तिकाण्डेतृतीयांशे

मुनीनां मञ्जरीमाला पत्रमाला दिवौकसाम् ॥
तुलसीकाष्ठमाला तु नृणां धार्या सदोदिता ॥ ६६ ॥
ध्यानेस्या मंजरीदाम पत्राणां पूजनोत्तरे ॥
काष्ठमाला सदा धार्या ह्याजन्ममरणावधि ॥ ६८ ॥
मृत्युकाले तु साऽवश्यं धार्या मृत्युः पदे पदे ॥
तस्मात्सदैवं संधार्या कंठे तुलसिमालिका ॥ ६८ ॥

यत्तु पाद्मे पातालखंडे

तुलसीकाष्ठघटितै रुद्राक्षाकारकारितैः ॥
निर्मितां मालिकां कंठे निधायार्चनमारभेत् ॥ ६९ ॥
तुलसीकाष्ठमालाया भूषितः कर्मचाचरेत् ॥
पितॄणां देवतानां च कृतं कोटिगुणं भवेत् ॥ ७० ॥
न धारयति यो मालां तस्य सत्कर्म निष्फलम् ॥
तस्माद्धार्या प्रयत्नेन ह्यन्यथा पतितो भवेत् ॥ ७१ ॥

धारणमें आशौच नहीं क्यों जो वो ब्रह्मरूपिणी हे ॥ ६५ ॥ शांडिल्य संहिताके भक्तिकांडमें तीसरे अंशमें मुनीनके लिये मंजरीकीमाला देवतानके लियें पत्रकी माला ओर मनुष्यनके लिये तुलसीकाष्ठकी माला सदा धारण करनी चाहिये॥६६॥ध्यानमें मंजरीकी माला पूजाके पीछें पत्तानकी माला जन्मसों लेके मरणपर्यन्त सदा तुलसीकाष्ठका मीला धारण करनी ॥ ६७ ॥ मृत्युके समय अवश्यही धारण करनी अवश्य धारण करनो ऐसे लेख हे तासों सदाही धारणकरनो क्यों के मृत्यु पदपदमें हे ॥ ६८ ॥ ओर पद्मपुराणमें पातालखंडमें लिख्यो हे के रुद्राक्षके आकारकी तुलसीकाष्ठकी मणिकानकी माला बनायकें ओर कंठमें धारण करकें पूजा करे ॥ ६९ ॥ तुलसीकाष्ठकी मालासों भूषित होयकें पितरनकों ओर देवतानको जो कर्म करे वो कोटिगुण होय हे ॥ ७० ॥ जो नहीं धारण करेहे वाको

श्रौते स्मार्ते च पौराणे मिश्रके तांत्रिकेऽपि च ॥
धार्या तुलसिकाष्ठस्य माला परमपावनी ॥ ७२ ॥
साद्गुण्यंविगुणो गच्छेत्सद्गुणोऽक्षयतामपि ॥
धर्मं सोपि हरे प्रीत्यै स्यात्तुलस्या इति श्रुतम् ॥ ७३ ॥
ऊर्द्ध्वपुंड्र विना चक्रशंखमुद्रा विना हरे ॥
विना श्रीतुलसीमाला कृतं पूजादिकं वृथा ॥ ७४ ॥
त्यक्त्वोर्द्ध्वपुंड्र मुद्राश्च मालां मंत्रागमे गुरुम् ॥
पूजितोपि हरिर्देवो न प्रसीदति भूरिशः ॥ ७५ ॥
विना मृदोर्द्ध्वपुंड्रेण वृन्दाकाष्ठस्रजां विना ॥
पंचमुद्रां विना विष्णोः पूजनं द्रोहमस्य वै ॥ ७६ ॥
इत्येवं विधिवाक्येषु शुभकर्मांगता तु या ॥
नानृतं क्रतुषु ब्रूयात् क्रत्वर्थेयं निरूप्यते ॥ ७७ ॥

सत्कर्म निष्फल होय हे तासों प्रयत्नसों धारण करनों नहीं तो पतित होय हे ॥ ७१ ॥ श्रौत स्मार्त पौराणिक मिश्रक तांत्रिक इन सब कर्मनमें परम पवित्र तुलसीकाष्ठकी माला धारण करनी ॥ ७२ ॥ तासों जो गुणहीन होय सो सगुण होय जाय हे सगुण नाशरहित होयजायहे तुलसीसों धर्म हरिके प्रसन्नताके लिये होय हे ॥ ७३ ॥ शीतलमुद्रानके विना ऊर्द्ध्वपुंड्र तुलसीमालाके विना करी भई पूजा वृथा हे ॥ ७४ ॥ ऊर्द्ध्वपुंड्र शीतलमुद्रा माला मंत्र इनके विना पूजा कियेभी हरि अच्छीतरहसों प्रसन्न नहीं होय हे ॥ ७५ ॥ ऊर्द्ध्वपुंड्र तुलसीकाष्ठकी माला शीतल मुद्रा इनके विना विष्णुको पूजन उनको द्रोह करनो हे ॥ ७६ ॥ इत्यादिक विधिवाक्यनमें जो शुभकर्मकी अंगता लिखी हे सो यज्ञमें झूंठ न बोलनों याके कहवेपेभी जेसी सत्य बोलवेकी नित्यता हे वेसी हे ॥ ७७ ॥

पुरुषार्थतया नित्यधारणं तस्य संमतम् ॥
भोजने मैथुने स्नाने मलमूत्रविसर्जने ॥ ७८ ॥
तुलसी धार्यते येन विष्णुद्रोही न संशयः ॥
इत्येवं विधिवाक्येषु श्रूयते तुलसीपदम् ॥ ७९ ॥
पत्रमालापरो ज्ञेयः सदा काष्ठस्रजो विधिः ॥
दौर्बल्यं विधिवाक्यानामनुसंदधतां सताम् ॥ ८० ॥
मालाविहीनकंठेन न स्थेयं लवमप्युत ॥
न संभाष्यं न चाचम्यं नात्तव्यं न च संस्वपेत् ॥ ८१ ॥
पापं कोटिगुणं तस्य पुण्यमेकगुणं भवेत् ॥
विपरीतं भवेत्सर्वं तुलसीकाष्ठवर्जने ॥ ८२ ॥
न स्पृशंति च पापानि तुलसीकाष्ठधारिणम् ॥
न स्पृशंति च पुण्यानि तुलसीकाष्ठवर्जितम् ॥ ८३ ॥
महापापानि पापानि ह्यतिपापानि यान्युत ॥
उपपापाऽनुपापानि प्रकीर्णाद्यानि यानि च ॥ ८४ ॥

भोजनमें मैथुनमें स्नानमें मलमूत्र करवेमें जो तुलसीधारण करे हे वो विष्णुद्रोही हे यामें संदेह नहीं इत्यादिक विधिवाक्यनमें जो तुलसीपद सुनेहैं ॥ ७८ ॥ ७९ ॥ वो तुलसीके पत्रमालापर हे क्यों जो तुलसीकाष्ठकी मालाको तो नित्य विधान हे ॥ ८० ॥ कंठमें मालाके विना क्षणमात्रबी न रहे न बोले न आचमन करे न भोजन करे न सोवै ॥ ८१ ॥ पाप कोटिगुण होय हें पुण्य एक गुण तुलसीकाष्ठकी माला न धारण करवेसों सब उलटो होय हे ॥ ८२ ॥ तुलसी काष्ठधारीकों पाप नहीं स्पर्श करे हे ओर तुलसीकाष्ठमालाविहीनको पुण्य नहीं स्पर्श करे हे ॥ ८३ ॥ महापाप पाप अतिपाप उपपाप अनुपाप प्रकीर्ण आदि मन वाणी शरीरसों उत्पन्न भये होयवेवारे होयरहे

मनोवाक्कायजातानि भूतभाविभवानि च ॥
तेषां मूलानि नश्यंति तुलसीकाष्ठधारणात् ॥ ८५ ॥
सर्वेषामेव वर्णानामाश्रमाणां मुनीश्वरा ॥
कार्यो वै वैष्णवी भक्ति तुलसीकाष्ठधारणम् ॥ ८६ ॥
ब्राह्मणस्य विशेषेण सन्यस्तस्य विशेषत ॥
यतो नारायणेत्येव तस्य वाक्यमुदाहृतम् ॥ ८७ ॥
यदा तु वैष्णवी सृष्टि सभूता सत्वतोहरे ॥
तस्यां जाता प्रिया वृंदा भक्तिस्तां तु समाश्रिता ॥ ८८ ॥
वस्वक्षरो महामंत्रस्तस्यै श्रीहरिणार्पित ॥
अतो भक्तजनैर्वंद्या पूज्या धार्या सदैव हि ॥ ८९ ॥
मुख्यं भागवत चिह्नं तुलसीकाष्ठधारणम् ॥
हरे प्रियतमं तद्धि तद्विहीनो न वैष्णव ॥ ९० ॥
सदा धार्या सदा धार्या तुलसीकाष्ठमालिका ॥
सदा वर्ज्या सदावर्ज्या मालाऽन्यद्रुमसभवा ॥ ९१ ॥

जितने पाप हैं उनके मूल जड तुलसीकाष्ठधारणकरवेसों नष्ट होय जा हे ॥ ८४ ॥ ८५ ॥ सब वर्णनकों ओर आश्रमनकों वैष्णवी भक्ति करनी चहिये ओर तुलसीकाष्ठकी माला धारण करनी चहिये ॥ ८६ ॥ ब्राह्मणनकों विशेष करके ओर सन्यासिनकों वासोंभी विशेष करके धारण करनी चहिये क्यों के उनको नारायण ये वाक्यही हे ॥ ८७ ॥ जब भगवान्के सत्त्वगुणसों वैष्णवी सृष्टि उत्पन्न भई तब भक्तिकी आश्रय वृन्दा उत्पन्न भई ॥ ८८ ॥ उनकों भगवान्नें अष्टाक्षरमंत्र उपदेश कियो यासों भक्तजननकी सदा पूज्य ओर धारणकरवेके योग्य हे ॥ ८९ ॥ वैष्णवनको मुख्य चिह्न तुलसीकाष्ठमाला हे यो भगवान्की अत्यन्तप्यारी है याके विना वैष्णव नहीं ॥ ९० ॥ तुलसीकी माला सदा धारण करनी सदा धारण करो ओर काठकी माला सदा वर्जित है सदा वर्जित

तुलसीदलजा माला धात्रीफलकृता पिवा ॥
शुचिकाले तु संधार्या वर्ज्याऽन्यत्र तथैव सा ॥ ९२ ॥
मूत्रोत्सर्गमलोत्सर्गे कुर्याद्दृग्विषयातिगाम् ॥
कर्णे वापि दधद्वामे रतौ पृष्ठावलंबिनी ॥ ९३ ॥
कदापि च कथंचिद्वै न संत्त्याज्या महात्मभिः ॥
तां त्यजन् हीयते धर्माद्गुरुद्रोही भवेद्ध्रुवम् ॥ ९४ ॥
इति शांडिल्यवाक्येषु समुक्तो निर्णयः स्फुटः ॥
संप्रदायानुरोधेन तस्मिन् वर्तामहे वयम् ॥ ९५ ॥
प्रशंसितास्ततस्तैस्त उषित्वा रजनीद्वयम् ॥
ततस्ते प्रस्थिता याताः कुमारीकन्यकां प्रति ॥ ९६ ॥
श्रीवेदव्यासविष्णुप्रभुचरणमिते सम्मिते ग्रन्थसार्थैः
श्रीगोविन्दाभिधानां समयनयविदां देशिकानां निदेशात् ॥
आचार्याणां चरित्रे हरिजनसुखदे शास्त्रिकृष्णैर्निबद्धे
प्रस्थानेऽस्मिंस्तृतीयेसमजनि पटहश्चैष षष्ठाजयाख्य ॥ ९७ ॥

तुलसीदलकी माला ओर आमराकी माला पवित्र समयमें धरनी ओर समयमें वर्जित हें ॥ ९१ ॥ ९२ ॥ मलमूत्रके त्यागके समय दीख न परे ऐसें कर लेंनी अथवा बाँये कानपे चढाय लेनी ओर रतिमें पीठके ओर लटकाय लेनी ॥ ९३ ॥ कोई समयमें केसेंबी नहीं त्याग करनी वाको त्याग करते धर्मसोंहि हीन होय जाय हे ओर निश्चय गुरुद्रोही होय हे ॥९४ ॥ ये शांडिल्यके वाक्यनमें स्पष्ट निर्णय कह्यो हे सम्प्रदायके अनुरोधसों तामें हम वर्तें हें ॥ ९५ ॥ तब उननें प्रशंसा करी ओर आप दो दिन रहकें वहाँसो कन्याकुमारीकों पधारे ॥ ९६ ॥ समयनीतिके जानवेवारे जगद्गुरु श्रीगोविन्दाचार्यजी महाराजकी आज्ञासों श्रीकृष्णशास्त्रीके बनाये श्रीमद्वेदव्यासविष्णुस्वामीके ग्रन्थनके अनुकूल हरिभक्तनकें सुखदेवेवारे या दिग्विजय ग्रन्थके तीसरे प्रस्थामें ये छठो पटह समाप्त भयो ॥ ९७ ॥

लक्ष्मीवर वरं लब्धु याऽब्धितीरे तपस्यती ॥
तपसा श्यामतां याता किं वा श्याम हृदा स्मरन् ॥ १ ॥
यशोदागर्भसबधाद्गाभीर्योत्कालदेवता ॥
अचितयद्विवाहाय तदुलाअश्मतां गता ॥ २ ॥
भ्राजतेऽद्यापि ते यत्र स्वयं च महदाशया ॥
यस्या प्रभावादुदधौ मज्जत स्यु समुद्धृता ॥ ३ ॥
चिबुकस्थस्य हीरस्य प्रदीप्त्यैव प्रकाशते ॥
तां देवता प्रणम्यैव ते वित्तार्पणतर्पणम् ॥ ४ ॥
चक्रु कृष्णभगिन्या वै गता श्रीसुदरेश्वरम् ॥
आदिकेशवमायातास्ततस्त जलशायिनम् ॥ ५ ॥
तस्माच्छ्रीपद्मनाभस्य दर्शनाय समागता ॥
पद्मतीर्थादितीर्थानि भांति पुण्यानि यत्र वै ॥ ६ ॥
यत्र चोलेश्वरो राजा मुद्गलश्च महर्ष्यऽभूत् ॥
विष्णुदासस्य चरितमत्रत्य पाद्मभापितम् ॥ ७ ॥

जो समुद्रके तीर लक्ष्मीकान्तकों वरपायवेकी इच्छासो तपस्या कर हैं ओर तपसोंही श्याम होयगई हैं अथवा हृदयसों श्यामकों स्मरण क श्याम होयगई हैं ॥ १ ॥ यशोदाके गर्भसम्बन्धसों गम्भीरतासों ज विवाहके विचार करतें चावल पापाण होयगये ॥ २ ॥ जो आज दीख पडें हैं ओर स्वयम् बडे आशयवारी हैं जिनके प्रभावसों समुद्रमा उने दीखपडे हैं ॥ ३ ॥ ओर ठोडीमें हीराके प्रकाशसों प्रकाश रह्यो है एसी उन देवता कृष्णकी बहिनकों प्रणाम करकें भेट आदिसों करकें सुदरेश्वर पधारे वहाँसों आदिकेशवका पधारे वहाँसों जलशायीजी ॥ ४ ॥ ५ ॥ वहाँसों श्रीपद्मनाभजीके दर्शनके लिये पधारे जहाँ पद्मतीर्थादिक शोभें हैं ॥ ६ ॥ जहाँ चोलदेशको राजा मुद्गल महर्षी

नरायन्तेत्रवनिता वन्यायंते प्रजा नराः ॥
भागिनेयाः सुतायंते सुतीयंति तथौरसाः ॥ ८ ॥
कुर्वन्ति जानकीशस्य वनवासविडंबनम् ॥
कटिवस्त्रा नरा नार्यो मुक्तकेशा विभूषणाः ॥ ९ ॥
पद्मनाभस्य प्रासादं प्रत्यागच्छन्समाहृताः ॥
मूर्तिं सुमहतीं भ्राजत्प्रभां नागेन्द्रशायिनीम् ॥ १० ॥
ददृशुस्ते त्रिभिर्द्वारैर्देववृंदैर्निषेविताम् ॥
प्रणेमुर्दंडवद्भूमौ चक्रुस्संस्तवनं हरेः ॥ ११ ॥
तत्तीर्थं शिरसागृह्णन् पर्यक्रामन् प्रदक्षिणम् ॥
उपायनं निधायैव नैवेद्यं चाप्यकारयन् ॥ १२ ॥
आज्ञया पद्मनाभस्यानंदाद्यास्तत्समर्चकाः ॥
कृपानिधीनां शिष्यत्वं कृपापात्रास्तु भेजिरे ॥ १३ ॥
शमीतरोरधः स्थित्त्वा वेदपारायणं व्यधुः ॥
आचार्याणां वचः श्रुत्वा समायातो महीपतिः ॥ १४ ॥

ओर पद्मपुराणमें विष्णुदासको चरित्रबी यहाँहीको है ॥ ७ ॥ जहाँकी स्त्री पुरुषके जेसे आचरण करें हें ओर प्रजा वनकेरहवेवारेनके जेसे भागनेय पुत्रके जेसें पुत्रकन्या पुत्रनके जेसे आचरण करे हें ॥ ८ ॥ जहाँके स्त्री पुरुष कटिमें वस्त्र लपेटें वाल छूटे मानों जानकीसमेत श्रीरामचन्द्रजीके वनवासकी विडम्बना करें हें ॥ ९ ॥ वहाँ बडेआदरसों श्रीपद्मनाभजीकेमंदिरमें पधारे जहाँ शेषनागके ऊपर शयन करती वडी भारी प्रभावारी देवतानसों सेवा करी गई एसी मूर्तिको तीन द्वारनसों दर्शनकियो जायहे वहां दंडवत् प्रणाम करकें स्तुति करी ॥ १० ॥ ॥ ११ ॥ उनके तीर्थको धारण करकें प्रदक्षिणा भेट धरकें नैवेद्य करावते भये ॥ १२ ॥ ओर श्रीपद्मनाभकी आज्ञासों उनके सेवा करवेवारे आनन्द आदिक श्रीमदाचार्यके शिष्य ओर कृपापात्र भये ॥ १३ ॥ पीछें वहाँ शमीवृक्षके तलें विराजकें वेदको पारायण कियोसो आपकों सुनकें वहाँको राजा

दण्डवत्प्रणतो भूत्वा चकारोपायनं महत् ॥
विज्ञापनं ततश्चक्रे पावनं क्रियतां गृहम् ॥ १५ ॥
श्रीमच्चरणपातेन दुःखमेवविनिवार्यताम् ॥
सशिष्या श्रीमदाचार्या प्रयाता राजमंदिरम् ॥ १६ ॥
महोत्सवः कृतो राज्ञा वेशितास्ते वरासने ॥
राजा राजपुरोधाश्च राजपत्न्यश्च सादरम् ॥ १७ ॥
इभ्या सभ्या जनाश्चक्रुः सर्व एवोपढौकितम् ॥
किं ते दुःखं महीपाल पप्रच्छुर्गुरवस्तदा ॥ १८ ॥
स चाह मद्भोगिनीयं धर्षिता निजभोगिना ॥
न शर्म लभते क्वापि बलिना ब्रह्मरक्षसा ॥ १९ ॥
दामोदरस्तदा प्राह पादतीर्थं प्रदीयताम् ॥
गुरोः पादोदकं तस्यै शिष्यणैवार्पितं नृप ॥ २० ॥
ददौ तेन विनिर्मुक्ता मुक्तः रक्षो जगावथ ॥
बिभ्रद्दिव्यतनुं भ्राजद्विमानोपरि संस्थितः ॥ २१ ॥

आयो ॥ १४ ॥ सो दण्डवत् करकें बडी भेट करी ओर प्रार्थना कीनी जो हमारा घर पवित्र करो ॥ १५ ॥ आपके चरणनके पधारवेसों हमारो दुःख दूर होयजायगो तब शिष्यनके संग श्रीमदाचार्य राजभवनकों पधारे ॥ १६ ॥ राजानें बडो उत्सव कियो ओर सिंहासनपें विराजमान किये राजा पुरोहित रानी सभ्य महाजन इन सबननें भेट करी तब आपने आज्ञा करी जो हे राजन् तुमको कहा दुःख है ॥ १७ ॥ १८ ॥ राजा बोल्योके ये मेरी स्त्री है याके ऊपर बली ब्रह्मराक्षस लग्यो है सो ये कभी सुख नहीं पावे है ॥ १९ ॥ तब दामोदर बोले के आपको चरणोदक देवो तब राजानें आपके शिष्यनें दीनो भयो चरणामृत वार्कों दीनों ॥ २० ॥ तब राक्षस वाकों छोडके दिव्य शरीर धारण करकें बोल्याके आपके चरणोदकके स्पर्शसों राक्षसी मेरो देह छूटगयो मेनें श्रीपद्मनाभके सुवर्णकी चोरीसें या दुःखको पायो हो सो आपकी कृपासों

श्रीमत्पादोदकस्पर्शान्मुक्ताहं राक्षसीं तनुम् ॥
पद्मनाभहिरण्यस्य स्तेयात्प्राप्तोस्मि दुःखिताम् ॥ २२ ॥
वैकुंठं प्रति याम्यद्य ह्यनुज्ञा दीयतां मम ॥
इत्युक्त्वा सोऽर्कवर्णेन किरीटेन प्रणम्य तान् ॥ २३ ॥
वैकुंठपार्षदैर्नीतः पुष्पवृष्ट्या जगाम सः ॥
तं समीक्ष्य महाश्चर्यं ज्ञात्वाचार्यं हरेस्तनुम् ॥ २४ ॥
सर्वे शरणमायाता आचार्यांश्च शिबिरेऽनयन् ॥
एतस्मात्प्रस्थिता याता देवदेवं जनार्दनम् ॥ २५ ॥
यत्र यज्ञः कृतः पूर्वं विधिनापि यथाविधि ॥
यद्यज्ञदग्धशाकल्यरक्षा रक्षाकृते नृणाम् ॥ २६ ॥
जनार्दनीया धूपेति ख्याता चामोदशालिनी ॥
यज्ञाज्यमग्निवेदीति रुजां तदपि भेषजम् ॥ २७ ॥
खनयोयत्र लोहानां भूरियं भूरिवैभवा ॥
विष्णुस्वामिप्रभोर्योऽसौ शिष्यः श्रौतानिधिर्द्विजः ॥ २८ ॥

आज वैकुंठकों जाऊँ हूँ आज्ञा दीजिये ये कहिकें सूर्यके वर्णके जेसो किरीट धारण कियें वो श्रीमदाचार्यजीकों प्रणाम कर पुष्पवृष्टि करते वैकुंठके पार्षदनके संग गयो या बडे आश्चर्यकों देखकें श्रीमदाचार्यजीकों भगवद्रूप समझकें सब शरण आये ओर अपने यहाँ पधराये ओर पीछें वहाँसों आप जनार्दनकों पधारे ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥ जहाँ ब्रह्माजीनें विधानपूर्वक यज्ञ कियो हो जाकी होमकी रक्षाबी लोगनके रक्षाके लियें हे ॥ २६ ॥ जाको नाम जनार्दनधूपहे जो बडी सुगन्धवारीहे जहाँकी यज्ञवेदीबी रोगीनके लिये औषध हे ॥ २७ ॥ जहाँ लोहकी खान हें बडी वैभववारी पृथिवी हे जामें विष्णुस्वामीके शिष्य श्रौतनिधिनें लिंगीनसों दुःखित होयकें वास कियो हो उन प्रसि-

तेनावास कृतस्तत्र दु खितेन च लिंगिभि ॥
पारंपर्यं तदेतेषां लिख्यते ख्यातकर्मणाम् ॥ २९ ॥
प्रणव प्रथमाचार्य स ज्ञेय पुरुषोत्तम ॥
महत्तत्त्व द्वितीय तु मायाशक्तितदक्षरम् ॥ ३० ॥
नारायणस्तृतीयो यो जलशायी स दृश्यताम् ॥
महादेवश्चतुर्थोऽसौ श्रीमान्सकर्षणो मत ॥ ३१ ॥
त्रिपुरारि पचमोऽसौ विष्णुस्वामिप्रभोर्गुरु ॥
तृतीय स्वामिनामेषोक्ता परेय परपरा ॥ ३२ ॥
विष्णुस्वामिप्रभु शिष्य काञ्च्यां श्रौतनिधि दधौ ॥
स कांचीधाम चोन्मुच्य सिषेवे श्रीजनार्दनम् ॥ ३३ ॥
तत्रत्यभूपैराचार्यैर्धाम तस्मै समर्पितम् ॥
शिष्यो हरिनिधिस्तस्य तस्य ज्ञाननिधि स्मृत ॥ ॥ ३४ ॥
तस्य ध्याननिधि ख्यातस्तस्य चात्मनिधिर्मत ॥
सहजादिनिधिस्तस्य चरणादिनिधिस्तत ॥ ३५ ॥

इन्नमेधारेनकी गुरुपरम्परा लिखें हैं ॥ २८ ॥ २९ ॥ पहलें प्रणव आचार्य जो पुरुषोत्तम हैं दूसरे महतत्व मायाशक्तिवारे अक्षर ब्रह्म ॥ ३० ॥ तीसरे नारायण जो जलशायी हैं चौथे महादेव जिनकों सकर्षण कहें हैं ॥ ३१ ॥ पाँचवे त्रिपुरारि जो विष्णुस्वामीप्रभुके तीसरे गुरु ये विष्णुस्वामिकी परम्परा कही ॥ ३२ ॥ विष्णुस्वामीनें अपने शिष्य श्रौतनिधिको कॉंचीमें बैठायो वो कॉंचीको छोडकें जनार्दनकी सेवा करतो भयो ॥ ३३ ॥ वहाँके आचा यनन आग राजानें वो धाम उनके भेट कर दीनो उनके हरिनिधि और इनके ज्ञाननिधि भये ॥ ३४ ॥ उनके ध्याननिधि उनके आत्मनिधि पीछे

एतेऽत्र निधयः सप्त निधिभूतस्य रक्षणात् ॥
श्रीमदनंतसेनस्य शालग्रामस्वरूपिणः ॥ ३६ ॥
आचार्यो वामदेवोऽस्य शिष्योऽभूच्चरणप्रभोः ॥
श्रीरौहिणेयाचार्योऽतः सेवाचार्यस्ततो मतः ॥ ३७ ॥
देवाचार्यस्तस्य शिष्यः स स्वयं देववैभवः ॥
हिरण्यगर्भाचार्योऽस्य गोविंदाचार्यकस्ततः ॥ ३८ ॥
रंगाचार्यस्ततो लोकाचार्यस्त्रैलोक्यविश्रुतः ॥
विष्णवाचार्यःसदानंदाचार्यो विद्वज्जनाग्रणीः ॥ ३९ ॥
आनंदसाराचार्योऽस्य च प्रेमाकरः प्रभुः ॥
श्रीमल्लक्ष्मणभट्टोऽस्य चेत्येवं गुर्वनुक्रमः ॥ ४० ॥
गतागतमभूत्कांच्यां निधीनामभिषेचनम् ॥
आचार्याः पाठकाश्चासन् सर्वत्रैषां गतागतम् ॥ ४१ ॥
दीक्षितानां स्वयं तेषामन्वयस्थमहात्मनाम् ॥
श्रीगोपालस्य भक्तानां रक्षकानां तदध्वनः ॥ ४२ ॥

सहजनिधि ओर चरणादिनिधि भये ॥ ३५ ॥ निधिभूत शालग्रामस्वरूपी अनन्तसेनकी रक्षा करवेवारे सात ये निधि भये ॥ ३६ ॥ चरणप्रभुके वामदेवाचार्य शिष्य भये उनके रौहिणेयाचार्य पीछें सेवाचार्य भये ॥ ३७ ॥ उनके देवतानके जेसे वैभववारे देवाचार्य शिष्य भये उनके हिरण्यगर्भाचार्य उनके गोविन्दाचार्य ॥ ३८ ॥ उनके रंगाचार्य उनके लोकाचार्य भये जो तीनों लोकनमें प्रसिद्ध हे उनके विष्णवाचार्य उनके विद्वाननमें अग्रणी ऐसे सदानन्दाचार्य भये ॥ ३९ ॥ इनके आनन्दसाराचार्य उनके प्रेमाकर प्रभु इनके श्रीलक्ष्मणभट्टजी भये एसी गुरुपरम्परा हे ॥ ४० ॥ ओर काञ्चीमें निधीनको जानो आवनो भयो अभिषेक भयो ओर उपदेश करवेवारे आचार्य भये उनको सब ठिकाने गमन आगमन होतो हो ॥ ४१ ॥ श्रीगोपालजीके भक्त ओर उनके मार्गके रक्षा करवेवारे कुलीन दीक्षित

विरक्तानां पृथक्सघा कीर्त्यंते तेप्यनुक्रमात् ॥
प्रेमाकरयतीन्द्रस्य शिष्या लोहार्गलस्थिता ॥ ४३ ॥
श्रीगोपीनाथशिष्यास्तु भक्ताहरियानपालका ॥
दीक्षिताच्छ्रीगिरिधरात्कामयीदीक्षितास्तत ॥ ४४ ॥
शिष्या श्रीरघुनाथानां भाति पाकसशासना ॥
यदुनाथमहाराजशिष्यास्ते व्रजवासिन ॥ ४५ ॥
अथैषां पद्धतिं वक्ष्ये ज्ञेया सा वीरवैष्णवै ॥
विष्णुस्वामिगुरूणां वै प्रणाम प्रथमोद्भव ॥ ४६ ॥
तुलस्यै भगवानाह तेपामष्टाक्षरोमनु ॥
धर्मशाला विष्णुकांची ते चात्रोषुर्वैहूदका ॥ ४७ ॥
गोत्र तेषामच्युताख्यं यतीनामच्युतात्मनाम् ॥
बृहदारण्यकाव्यासाद्यजुर्वेदस्तदाश्रमे ॥ ४८ ॥
आहारो हरिनामां यत्तेन जीवति नित्यश ॥
नेत्रद्वारेण ते याता सायुज्यं कमलापते ॥ ४९ ॥

विरक्त उन महात्मानके अलग अलग सघ भये उनको क्रमसों कहें हैं प्रेमा-
कर यतीन्द्रके शिष्य लोहागढमें रहे ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ और गोपीनाथके
शिष्य हरयानामें , रहे श्रीगिरिधर दीक्षितजीके शिष्य कामरियामें वसे श्रीरघु
जो पुरुषोत्तम हैं दूसरे महत्तत्व मायाशक्तिवारे श्रीयदुनाथ महाराजके शिष्य
नारायण जो जलशायी हैं चौथे महादेव जिनकों व वीर वैष्णवनके जानवेक
पाँचवे त्रिपुरारि जो विष्णुस्वामीप्रभुके तीसरे ... विष्णुस्वामी साधु विष्णुस्वा-
मीनन जो अष्टाक्षर मन्त्र कह्योहै
कहीं ॥ ३२ ॥ विष्णुस्वामीने अपने शिष्य विष्णुकांची है क्यों के यहाँही
वे काँचीका छोडके जनार्दनकी सेवा ॥ अच्युत गोत्र है और वा आश्रम
येनन और गजानने वो धाम उन्होंयाम वेद यजुर्वेद है ॥ ४८ ॥ और
इनके ज्ञाननिधि भये ॥ ३४ ॥ और वे कमलापतिके नेत्रद्वारसों सायुज्य

अपरेषामभूत् क्षेत्रं मार्कंडेयाख्यमुत्तमम् ॥
प्रभवोऽत्र तपः सिद्धा जाताः स्वाम्नायरक्षणे ॥ ५० ॥
इंद्रद्युम्नं ततः प्राप्ताः सुखवासस्ततो ह्यसौ ॥
वटशायिहरेमूर्त्तावासक्त्यै तत्परिक्रमम् ॥ ५१ ॥
शाखागोपालगायत्र्यास्त्रिपुरारेर्गुरुक्रमात् ॥
महर्षिर्जलविंबोसावाद्यो नारायणो हरिः ॥ ५२ ॥
नंदीश्वरश्चोपदेवस्त्रिपुरारेः प्रदर्शनात् ॥
उपासितो जगन्नाथो धाम चैतत्कृतं निजम् ॥ ५३ ॥
विल्वमंगलमुख्याश्च विरक्ताश्चात्र दीक्षिताः ॥
लक्ष्म्या कृपा कृता तत्र तेन लक्ष्मीष्टदेवता ॥ ५४ ॥
जातात्र विंवला देवी वीराणां शौर्यवृद्धये ॥
कपिलासीत् कामधेनुर्भिक्षा लब्धा च पूर्त्तये ॥
आचार्यो वामदेवोऽथ पुनर्धर्मप्रवृत्तये ॥ ५५ ॥

मुक्तिकों पावते भये ॥ ४९ ॥ ओर दूसरे प्रभु विष्णुस्वामीजीको मार्कंडेय क्षेत्र भयो यहाँही वे तपस्यासों अपने सम्प्रदायकी रक्षा करवेमें सिद्ध भये ॥ ५० ॥ पीछें इन्द्रधुम्न (जगदीशपुरी) में सुखपूर्वक बसे ओर वटशायी भगवान्की मूर्तिके आसक्तिके लियें परिक्रमा करी ॥ ५१ ॥ ओर गोपालगायत्रीसों इनकी शाखा हे महादेवसों गुरुक्रम हें आदिनारायण हें ॥ ५२ ॥ नंदीश्वर उपदेव हें त्रिपुरारिसों सम्प्रदाय हे उपास्य देव जगन्नाथजी हें ओर येही धाम हे ॥ ५३ ॥ विल्वमंगल आदि विरक्तनकों दीक्षा दीनी वहाँ लक्ष्मीजीनें कृपा करी यासों इष्टदेवता लक्ष्मीजी हें ॥ ५४ ॥ येही वीरवैष्णवनकी शूरता बढायवेके लिये विंबला देवी होयगईं कामधेनु भिक्षापूर्तिके लिये भई धर्मप्रवृत्तिके लिये

सिंहासन गोकुलेऽथ श्रीमदाचार्यसश्रयात् ॥
श्रीनाथास्तु ततस्सेव्यास्तनुवित्तमनोर्पणे ॥ ५६ ॥
श्रीमद्गोवर्द्धनगिरौ विश्रामोवीतरागिभि ॥
विधेयोऽत्र कलौ घोरे मार्गोऽय तावदेव हि ॥ ५७ ॥
विष्णुस्वामिगुरूणां य इमामाम्नायपद्धतिम् ॥
वेवेत्ति द्वारिकामुद्रांकितोऽसौ वैष्णवाश्रमी ॥ ५८ ॥
उत्सृज्य चोदनां लोकवेदयोर्ये हरिं श्रिता ॥
वैष्णवाश्रमिणस्ते वै विष्णुव्रतपरायणा ॥ ५९ ॥
आश्रमो वैष्णवो ब्रह्महराश्रम इति त्रय ॥
तल्लिंगधारी सतत भवेत्तद्भक्तवत्सल ॥ ६० ॥
आश्रमांतरमेवैतत्रितयं भक्तिशालिनाम् ॥
पृथक् पृथग् जगादेतान्कौर्मी या ब्रह्मसहिता ॥ ६१ ॥
जनार्दने समायातान् श्रुत्वाचार्यान् स्ववैष्णवा ॥
उपधारयितुं प्राप्ता कृत्वेव च महोत्सवम ॥ ६२ ॥

आचार्य वामदेव भये ॥ ५५ ॥ पीछें श्रीगोकुलमें श्रीमदाचार्य श्रीमहाप्रभुके आश्रयसों सिंहासन भयो याहीसों सर्वत्र समर्पण करकें श्रीनाथजीकी सेवा करनी ॥ ५६ ॥ विरक्त वैष्णवनकों श्रीगिरिराजमें वास करनों घोर कलियुगमें येही एक मार्ग हे ॥ ५७ ॥ विष्णुस्वामि गुरूनकी जो या आम्नायपद्धतिकों जानें हे ओर जाके द्वारकाकी छाप हे वो वैष्णवाश्रमवारो हे ॥ ५८ ॥ ओर जिनमें लौकिक वैदिक विधिकों छोडकें हरिको आश्रय लीनो हे ओर विष्णुके व्रतनमें परायण हें वे वैष्णवाश्रमी हें ॥ ५९ ॥ वैष्णव, ब्रह्म, हर, ये तीन आश्रम हें इनके चिह्न सदा धारण करे भक्तवत्सल होय भक्तिधारेनके ये तीन तथा दूसरे आश्रम अलग अलग कूर्म ब्रह्मसंहितामें कहे हें ॥ ६० ॥ ६१ ॥ सो या जनार्दनक्षेत्रमें

तैः समादरतो नीताः प्रविष्टा हरिमंदिरम् ॥
ददृशुस्ते प्रणम्यैव तिष्ठंतं श्रीजनार्दनम् ॥ ६३ ॥
कृत्वोपढौकितं तत्र विधाय च प्रदक्षिणम् ॥
प्रणम्य दंडवद्भूमौ आह्निकार्थं बहिर्गताः ॥ ६४ ॥
पारायणं समारब्धं क्षेमंकरतरोरधः ॥
अर्चका वैष्णवाः प्राप्ताः कर्तुं विज्ञापनं ततः ॥ ६५ ॥
स्थानं श्रौतनिधेरेतत् प्रेमाकरसनाथितम् ॥
अर्चनं क्रियतामत्र गृह्यतां च निवेदितम् ॥ ६६ ॥
द्वितीयेऽह्नि तदाचार्याः कृत्वोषसि निजाह्निकम् ॥
जनार्दनार्चनं चक्रुश्चक्रुः पाकं मनोहरम् ॥ ६७ ॥
अपूपा मोदकाः क्षीरौदनं सूपं तथौदनम् ॥
विधाय विविधं पाकं रहस्येव समर्पयन् ॥ ६८ ॥
तत्तीर्थं तत्प्रसादान्नं धृत्वा पाकगृहे निजे ॥
हरेर्नीराजनं चक्रुर्दत्त्वाचमनवीटके ॥ ६९ ॥

पधारे आपकों सुनकें अपने वैष्णव बडे उत्सवके संग पधरायवेकों आये ओर आदरसों पधराये आप हरिमंदिरमें पधारकें ठाडे भये श्रीजनार्दनके दर्शन कर भेट धर प्रदक्षिणा करी दंडवत् प्रणाम करकें आह्निकके लियें बाहेर आये ॥ ६२॥ ६३॥ ६४॥ सो क्षेमंकर वृक्षके तलें पारायणको प्रारम्भ कियो पीछें वहाँके सेवक प्रार्थना करवेकों आये ॥६५॥ ओर कह्यो के, ये श्रौत निधिको स्थान हे प्रेमाकरनें याको ऐश्वर्य बढायो हे आप सेवा करिये महाप्रसाद लीजिये तब दूसरे दिन श्रीमदाचार्यजी प्रातःकाल अपनो आह्निक करकें जनार्दनकी सेवा कीनी ओर बडो सुंदर पाक कियो॥ ६६ ॥ ६७॥ वामें पूवा लड्डुआ खीर दाल भात ओर अनेक प्रकारकी सामग्री करकें एकान्तमें अर्पण कियो ॥ ६८ ॥ ओर तीर्थ प्रसाद अपने पाका पें धरकें आर-

शेषाह्निकं तत कृत्वा कृत्वा होम यथाविधि ॥
किंचित्पारायण कृत्वा जक्षुस्तीर्थं निवेदितम् ॥ ७० ॥
तस्थुर्दिनाष्टक तत्र चक्रु शिष्यान्समर्चकान् ॥
अन्यांश्च शरणप्राप्तान् ददौ ज्ञानमनुत्तमम् ॥ ७१ ॥
तत प्रचलिता याता देवं नारायण प्रति ॥
देव नारायण दृष्ट्वा कृत्वार्चां चलितास्तत ॥ ७२ ॥
जगन्नारायण प्राप्ता स्थित्वा कृत्वा महोत्सवम् ॥
मलयाद्रिं चारुरुहुस्तापसै समुपासितम् ॥ ७३ ॥
अगस्त्यस्याश्रमो यत्र पष्ठस्कंधे समीरित ॥
स हरिर्हिमगोपाल पदर्चायां मुनि स्थित ॥ ७४ ॥
अजामिलाख्यानवर व्याचख्यौ वैष्णवप्रियम् ॥
ददृशुर्हिमगोपालमाचार्या सह वैष्णवै ॥ ७५ ॥
नत्वोपढौकित कृत्वा स्नात्वानर्चुर्यथाविधि ॥
व्रजेशस्याऽपरा मूर्ति पीतदासानल प्रभु ॥ ७६ ॥

मन करायकें बीडी देके आरती करी ॥ ६९ ॥ पीछें बाकीको आह्निक होम करकें पारायण करकें तीर्थ ओर महाप्रसाद लीनो ॥ ७० ॥ ओर आठ दिन विराजे वहाँके सेवकनको ओर शरणमें आये भयेनकों शिष्य करकें उत्तम ज्ञान दीनो ॥७१ ॥ पीछें देवनारायणकों पधारे सो वहाँ दर्शन सेवा करकें चले॥७२॥सो जगन्नारायणमे आये वहाँ बडो उत्सव करकें वास करकें तपस्वी जहाँ रहते हे एसे मलयाचलपे चढे जहाँ श्रीमद्भागतके षष्ठस्कं-धमें कह्यो भयो अगस्त्यऋषिको आश्रम हे ॥ ७३॥ ७४ ॥ वही हिमगो-पालहरि हें जिनकी चरणकमलकी सेवामें मुनि वहाँ ठाडे हें वहाँ वैष्णवनके प्रिय अजामिलके आख्यानको व्याख्यान कियो ओर श्रीमदाचार्यजी वैष्ण-वनके संग दर्शन भेट करकें आप स्नान करकें यथाविधि सेवा करते भये दावा

संप्राप्तोऽमुं गिरिवरं यं प्रावृट् सेवते सदा ॥
हिमर्तुर्यत्र वसति यत्र चंदनपादपाः ॥ ७७ ॥
नीलाद्रेर्मलयाद्रेश्च द्रोण्यां सा कौंडिनी सरित् ॥
कौंडिन्यस्याश्रमं तत्र नीवृत्तदतिदुर्गमम् ॥ ७८ ॥
श्रीविष्णुस्वामिगुरुभिर्विरहानुभवः कृतः ॥
कौंडिन्याल्लब्धविज्ञानैर्हरिर्दृष्टश्चराचरैः ॥ ७९ ॥
तया दृष्ट्या च ते याता व्यापिवैकुंठमुत्तमम् ॥
तत्र पारायणं चक्रुराचार्या हरिमर्चयन् ॥ ८० ॥
कौंडिन्याख्यो मुनिस्तत्र दर्शनं व्यतरत्स्वयम् ॥
प्रणम्य पृष्टश्चाचार्यैर्वृत्तमाह निजं मुनिः ॥ ८१ ॥
शांडिल्यो गुरुरस्माकं तेपे गोवर्द्धने गिरौ ॥
द्रष्टुकामो हरेर्लीलां भक्त्या परमयोज्वलः ॥ ८२ ॥

नलकों पान करवेवारी व्रजेश श्रीनाथजीकी दूसरी मूर्ति जहाँ पर्वतपे विराजमान हे जाकों वर्षाऋतु सदा सेवा करे हे जहाँ हिमऋतु रहे हे जहाँ चंदनके वृक्ष हें ॥ ७५ ॥ ७६ ॥ ७७ ॥ जहाँ नीलाद्रि ओर मलयाद्रि इन दोनोनके बीचमें कौंडिनी नदी हे कौडिन्यको आश्रम हे बडो कठिन मार्ग हे ॥ ७८ ॥ श्रीविष्णुस्वामी गुरुनें जहाँ विरहको अनुभव कियो हो ओर कौंडिन्यसों विज्ञान पायकें श्रीहरिके साक्षात् जहाँ दर्शन किये हे ॥ ७९ ॥ ओर उनकी दृष्टिसों उत्तम वैकुंठकों गये वहाँ हरिकी सेवा करते श्रीमदाचार्यजीनें पारायण कियो तब कौंडिन्य ऋषि आप आयकें दर्शन दीनें श्रीमदाचार्यनें दर्शन कियो ओर प्रणाम कियो तब मुनिनें अपनो वृत्तान्त कह्यो ॥ ८० ॥ ८१ ॥ के हमारे शांडिल्य गुरू हें उननें गोवर्धनपर्वतमें हरिकी लीलानके देखवेकी इच्छासों बडी भक्तिसों तपस्या करी तब

तस्मै श्रीललिता देवी मुनिकन्या तपोमयी ॥
अनुज्ञया हरेरेत्य भक्तिज्ञानं ददौ प्रभो ॥ ८३ ॥
ददौ पचाक्षर मत्रं मालां तुलसिसभवाम् ॥
पण्मुद्रातिलक चास्मै प्राह भूयो हरिप्रिया ॥ ८४ ॥
रसात्मक श्रीपुरुपोत्तम कश्चित्परात्पर ॥
यतो नास्ति पर कश्चिद्वेदा देवा न यं विदु ॥ ८५ ॥
तस्याश्रयो दृढ कार्यस्त्याज्यश्चान्याश्रयो ह्यत् ॥
लीलाया भावन कार्यं प्रतिक्षणमतद्रिणा ॥ ८६ ॥
दासोऽहं श्रीहरेरेव हरिरेव मम प्रभुः ॥
किं लौकिकैर्वैदिकैश्च साधनीय हि साधनै ॥ ८७ ॥
किं भुक्त्या भवदु खास्या किं मुक्त्या स्वप्नकल्पया ॥
किं देहेन च गेहेन यत्र लीला न दृश्यते ॥ ८८ ॥
कदा मिलिष्यति हरि कदाऽसौ कृपयिष्यति ॥
कोटिकदर्पदर्पघ्न कदाऽऽस्य दर्शयिष्यति ॥ ८९ ॥

उनकों तपोमूर्ति मुनिकन्या श्रीललितादेवी भगवान्‌की आज्ञासों भक्तिज्ञान देती भई ॥ ८२ ॥ ८३ ॥ पचाक्षर मन्त्र दीनो और तुलसीकी माला दीनी और पट् मुद्रा तिलककी विधि कही ॥ ८४ ॥ और रसात्मक श्रीपुरुषोत्तम हैं जिनसों पर दूसरो कोई नहीं हे जिनको वेद और देवताभी नहीं जाने हें ॥ ८५ ॥ उनको आश्रय दृढ करना अन्याश्रयकों छोडना प्रतिक्षण आलस्यको छोडके लीलाकी भावना करनी ॥ ८६ ॥ मे हरिहीको दास हूं हरिही मेरे प्रभु हें लौकिक और वैदिक साधननकरके कहा हे ॥ ८७ ॥ ससारके दु ख देवेवारे भोगनसों कहा हे और स्वप्नके समान मुक्तिसोंभी कहा हे देह और घर करके भी कहा हे जो लीला न दीस पडे ॥ ८८ ॥ कब हरि मिलेंगे कब कृपा करेंगे कोटिकंदर्पके अहकारका

इत्थं विरहभावेन जगत्पश्यँस्तदात्मकम् ॥
द्रष्टासि हरिलीलाया अत्रैव च महामुने ॥ ९० ॥
आचार्यो भक्तिशास्त्राणामस्याम्नायस्य देशिकः ॥
द्रष्टासि हरिलीलाया भावेऽस्मिन् भविता भवान् ॥ ९१ ॥
इत्युक्त्वांतर्हिता कन्या धन्या श्रीपतिवल्लभा ॥
केन पुण्येन लेभेऽसौ हरिर्यस्यावशंवदः ॥ ९२ ॥
उपदिष्टस्तदाम्नायो भवते तत्स्वरूपिणे ॥
नातः परतरो लाभो वैष्णवानां मते मतः ॥ ९३ ॥
ततस्तु श्रीमदाचार्याः फलपुष्पोपढौकितम् ॥
कृत्वैव संस्तवं चक्रुः प्रेमोद्धर्षप्रधर्षिताः ॥ ९४ ॥
धन्यौ शांडिल्यकौंडिन्यौ धन्या सा हरिवल्लभा ॥
धन्येयं श्रीपतेर्भक्तिः पुण्येभ्यो वो नमोनमः ॥ ९५ ॥
तत्राऽतः श्रीमदाचार्यस्नानांबुप्रसृतानिलः ॥
भुजंगादिमहाक्रूरजंतूनां मोक्षदोऽभवत् ॥ ९६ ॥

नाश करवेवारे अपने श्रीमुखके कब दर्शन देंगे ॥ ८९ ॥ या प्रकार विरह करकें जगतको हरिरूप देखते, हे महामुने! यहाँही हरिलीला देखोगे ॥ ९० ॥ या सम्प्रदायके ओर भक्तिशास्त्रके आचार्य होवोगे ओर हरिलीला देखोगे ॥ ९१ ॥ ये कहकें भगवान्की प्यारी धन्य वो कन्या अन्तर्धान होयगई जा पुण्यसों हरिको पायो ओर हरि जासों वश्य भये ॥ ९२ ॥ वो सम्प्रदाय आपकों उपदेश कियो वैष्णवनके मतमें यासों बढके दूसरो लाभ नहीं हे ॥ ९३ ॥ तब श्रीमदाचार्य फल पुष्प भेट धरकें प्रेमसों प्रसन्न होयकें स्तुति करवेलगे ॥ ९४ ॥ जो शांडिल्य कौंडिन्य धन्य हें वे हरिवल्लभा गोपी धन्य हें ये भगवान्की भक्ति धन्य हे ओर पुण्यात्मा आपसबनकों वारं वार नमस्कार हे ॥ ९५ ॥ ओर वहाँ श्रीमदाचार्यके स्नानके जलसों मिले भये पवननें महाक्रूर सर्पादिक जीवनको मोक्ष कियो ॥ ९६ ॥

तत्रायातास्तप सिद्धा वृद्धा वृद्धनिषेवका ॥
आचार्याणां दर्शनार्थं स्थिता योगप्रभावत ॥ ९७ ॥
कृत्वैव दर्शनं तेषां स्पृष्ट्वैव चरणांबुजम् ॥
गता वैकुंठभवन शंखघटाजयस्वनैः ॥ ९८ ॥
तत श्रीहिमगोपालं नत्वा कृत्वा प्रदक्षिणम् ॥
सशिष्या मलयात्तस्मादवतीर्णा महागिरे ॥
केरला पश्चिमे यस्य यस्य कर्णाटकं पुर ॥ ९९ ॥
श्रीवेदव्यासविष्णुप्रभुचरणमिते सम्मिते ग्रन्थसार्थे
श्रीगोविन्दाभिधानां समयनयविदां देशिकानां निदेशात् ॥
आचार्याणां चरित्रे हरिजनसुखदे शास्त्रिकृष्णैर्निबद्धे ॥
प्रस्थानेऽस्मिंस्तृतीये समजनि पटहस्सप्तमोऽय जयाख्ये १००

वहाँ तपस्वी वृद्ध सिद्ध योगके प्रभावसों श्रीमदाचार्यजीके दर्शन करवेक लिये आये हे सो दर्शन करकें चरणस्पर्श करकें शंखघटाके जयशब्दके सम वैकुंठकों गये ॥ ९७ ॥ ९८ ॥ पीछें श्रीमदाचार्यजी हिमगोपालकी दंडवत परिक्रमा कर्कें शिष्यनके सग या बडे पर्वत मलयाचलसों उतरे जाके पश्चिमदिशामें केरलदेश हे ओर पूर्व दिशामें कर्णाटक हे ॥ ९९ ॥ समयनीतिके जानवेवारे जगद्गुरु श्रीगोविन्दाचार्यजी महाराजकी आज्ञासों कृष्णशास्त्रीके बनाये श्रीमद्वेदव्यास विष्णुस्वामीके मतके ग्रन्थनके अनुकूल हरिभक्तनके सुखकों देवेवारे या दिग्विजयग्रन्थके तीसरे प्रस्थानमें ये सातवों पटह समाप्त भयो ॥ १०० ॥

आयाता मध्यश्रीरंगं कावेरीद्वीपमुत्तमम् ॥
दर्शनं वंदनं कृत्वांतरंगं प्रत्युपस्थिताः ॥ १ ॥
मार्गेऽत्र माहिषपुरं तत्र भूपो महेश्वरः ॥
यत्रासीद्भूपतिः पूर्वं शाकेन्द्रः शालिवाहनः ॥ २ ॥
तद्वंशेऽयं महीपालः कर्णाटकधरेश्वरः ॥
शुश्रावाचार्यगमनं पुरोधसमुखादयम् ॥ ३ ॥
श्रुतपूर्वयशोराशिराचार्याणां क्षमेश्वरः ॥
समागतः समानेतुं सर्वाभी राजभूतिभिः ॥ ४ ॥
पुत्रपौत्रकलत्रार्थसामंतामात्यसैन्यकैः ॥
साष्टांगं प्रणिपत्यासौ विज्ञापनमथाचरत् ॥ ५ ॥
पावनाय गृहेऽस्माकं श्रीमद्भिरुपधार्यताम् ॥
उन्नीयतां पुरं वंशं दुरितं दूर्यतां दृशः ॥ ६ ॥
तीर्थीकर्तुं हि तीर्थानां तीर्थानां वोऽटनं भुवि ॥
भवादृशा महात्मानो गुरवो दीनवत्सलाः ॥ ७ ॥

ओर कावेरीनदीके द्वीपमें स्थित मध्यश्रीरंगमें आये उनके दर्शन वंदन करकें आगे चले सो मार्गमें माहिषपुर (महसूर) आये जहाँको राजा महेश्वर हो ओर पहले जहाँ शाकेन्द्र शालिवाहन भये हे ॥ १ ॥ २ ॥ उनके वंशमें उत्पन्न कर्णाटकदेशको राजा ये महेश्वर पुरोहितके मुखसों श्रीमदाचार्यजीको आगमन सुनकें ओर प्रथमवी जिनको यश सुन्यो हो एसे श्रीमदाचार्यजीको लेवेकों सब राजविभूतीन करकें सहित ओर पुत्र पौत्र स्त्रीगण राजकीय पुरुष अत्मीय सेना इनके सहित गयो ओर साष्टांग प्रणाम करकें प्रार्थना करी ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ जो हमारे घरकों पवित्र करवेके लियें आप पधारे हमारे वंशको पुरको उद्धार कर पापनको दूर करें ॥ ६ ॥ आपको तीर्थाटन करनो तीर्थनके पवित्र करवेके लिये

देवानां चरितं लोके दुःखाय च सुखाय च ॥
महात्मनां सुखायैव चरितं प्रायशो नृणाम् ॥ ८ ॥
वृहद्व्रतधर साक्षात्कुमारो वामनोऽनल ॥
येन पुंभारतीमूर्त्यां विदां वर्गो बकीकृत ॥ ९ ॥
वयं नृपतयो मत्ता राजसा भोगलंपटा ॥
प्रायोविशां दु सदा हि रक्षणे वाप्युपेक्षणे ॥ १० ॥
एवंविधैर्निंद्यवृत्तै प्रायो नरकहेतुभि ॥
रजसोन्मत्तदृष्टीनां साधूनां दर्शनं क न ॥ ११ ॥
तस्मान्न पावनार्थाय सुरर्षिपितृतुष्टये ॥
कृत्वा प्रसादं प्रासादं गुरव प्रचलतु न ॥ १२ ॥
इत्थं प्रार्थनया राज्ञ आचार्या प्रस्थितास्तत ॥
निजशिष्यै सशिष्याणां सैन्येनापि विरागिणाम् ॥ १३ ॥
पद्भ्यां चेरुस्तदाचार्या राजाद्याश्च तथाऽभवन् ॥
पादुकाऽऽचार्यवर्याणां शिबिकायां निवेशिता ॥ १४ ॥

हे देवतानको चरित्र लोकमें सुखके लिये और दुःखके लियेभी होय हैं परन्तु महात्मानको तो सुखहीके लियें होय हे ॥ ७ ॥ ८ ॥ बडे व्रतके धारण करवेवारे साक्षात् वामनरूप अग्निके अवतार आप हैं जिन पुरुष रूप सरस्वतीनें विद्वाननकों बकके जेसे मौन कर दीने ॥ ९ ॥ हम राजा हें रजोगुणी हें मदांध हें भोगमें लपट हें प्राय प्रजाको दुःखही देवेवारे हें ॥ १० ॥ नरकके हेतु एसे निन्दित आचरण कर वेवारे रजसों उन्मत्त हमारे जसेनकों आपके दर्शन कहाँ ॥ ११ ॥ यासों मोकों पावन करवेके लियें ओर देव ऋषि पितर इनके प्रसन्न ताके लियें मेरे स्थानकों पवित्र करकें पीछें पधारें ॥ १२ ॥ एसी राजाकी विनतीसें आपने शिष्य ओर विरागीनकी सेनासहित वहाँसो पधारे ॥ १३ ॥ सो पाँवनसों चलत भये ओर राजा आदिभी वसेही पीछें २ चले

नीतास्ताश्चाग्रतो राज्ञां छत्रचामरभूतिभिः ॥
विचित्रवाद्यवृंदेन गजाश्वरथकुंजरैः ॥ १५ ॥
शुशुभे ध्वजिनी राज्ञः पताकाध्वजमंडिता ॥
पृतनायां विरक्तानां वीरा वेशैः कपीशताम् ॥ १६ ॥
कलयंतः शुशुभिरे खेलंतो वीरवर्त्मभिः ॥
चक्रैर्गदाभिः खड्गैश्च केचित्पट्टासिचर्मभिः ॥ १७ ॥
वह्निबाणैर्मल्लयुद्धैः कूर्दनैः शंखवादनैः ॥
महीपस्य वरूथिन्यां राजद्राजततोमरैः ॥ १८ ॥
वर्मचर्मास्त्रशस्त्राणां मंडनानां मरीचिभिः ॥
करीन्द्राणां कुथैर्हैमैर्भूषणैः शृंखलोच्चयैः ॥ १९ ॥
हयानां पाखरै रौक्मैरथानां च परिच्छदैः ॥
तुरंगैरपि मातंगैर्भटाःक्रीडंति तत्र ते ॥ २० ॥
गोमुखान् वादयंत्युच्चैः करवालैस्तु चर्मभिः ॥
नृत्यद्वारांगनं सैन्यं प्रविष्टं नगराजिरे ॥ २१ ॥

ओर श्रीमदाचार्यजीकी पादुकानकों पालकीमें पधरायकें ॥ १४ ॥ ओर राजविभूति छत्र चामर आदिसों विचित्र बाजे गाजेसों हाथी घोडा रथ आदिसों आगे ले चले ॥ १५ ॥ पताका ध्वजा आदिसों राजाकी सेना शोभती भई ओर विरक्तनकी सेनामें हनूमानके रूपकों धारण किये वीर मार्गमें चक्र गदा खड्ग ढालसों खेलते कूदते मल्लयुद्ध करते शंख आदि बजाते शोभते भये ॥ १६ ॥ १७ ॥ ओर राजाकी सेना चाँदीके तोमरनकरकें ढाल तलवार आदि शस्त्रनकी चमचमाहटसों हाथीनके झूलनकी तथा आभूषणनकी किरणनकरकें बडी जँजीरनकरकें सुवर्णके रथन करकें घोडा ओर हाँथीन करकें शोभ रही हे जामें योद्धालोग खेल रहें हें ॥ १८ ॥ ॥ १९ ॥ २० ॥ गोमुख आदि बाजानकों ऊँचेस्वरसों बजावे हें एसी उन

शुशुभाते च ते सेने तत्र राघवयोरिव ॥
समेतयोर्व्रतं कृत्वाऽलंकापुरुषविद्विषो ॥ २२ ॥
समागता नरानार्यो द्रष्टुं तदतिकौतुकम् ॥
गुरूणां दर्शनं कृत्वा ववृषु सुमनोभरैः ॥ २३ ॥
बलिं चोपबलिं चक्रुः प्रणेमुर्मंगलं जगुः ॥
आयाता राजसौधेऽथ वरास्तरणवर्त्मना ॥ २४ ॥
निवेशिता वरे पीठे सर्वे तत्र ववन्दिरे ॥
राजा राजपुरोधाश्च धर्मान् श्रोतुं मनो दधत् ॥ २५ ॥
तदाहुः श्रीमदाचार्यो ज्ञात्वा बुद्धिगतं तयोः ॥
कर्तव्यं यन्महीपाल महीपानां शृणुष्व तत् ॥ २६ ॥
दत्तं राज्यं भगवता प्रजानां पालनाय मे ॥
प्रजानां किंकरश्चास्मि सर्वेस्मो हरिकिंकराः ॥ २७ ॥
राज श्चिंतय चित्तेन मध्ये रात्रेर्दिनस्य वा ॥
कोऽहं कस्मात्समायातः किं कार्यं मे करोमि किम् ॥ २८ ॥

सेनाननें शहरमें प्रवेश कियो ॥ २१ ॥ नीचपुरुष अथवा लंकाकों जीवर्के लिये जिननें मानो व्रत लियो हे ऐसी वे दोनोंसेना श्रीरामचन्द्रजी और श्रीभरथजीकी जेसी मिलके शोभा देती भई ॥ २२ ॥ या आनन्दकों देखवेके लियें आये भये स्त्री पुरुष गुरुनके दर्शन करकें पुष्पनकी वृष्टि करते भये॥ २३ ॥ ओर भेट करकें प्रणाम करकें मंगल गान करते भये श्रीमदाचार्यजी अच्छे वस्त्रनसों बिछे भये मार्गमें राजमहलमें पधारे सो आपकों वहाँ सिंहासनपें विराजमान करायकें सबननें प्रणाम कियो ओर राजा तथा पुरोहितनें धर्म्मके सुनवेको मन कियो॥ २४ ॥ २५ ॥ तब श्रीमदाचार्यजीनें उनके मनकी पहिचानकें आज्ञा करी जो राजानको कर्तव्य सुनो॥ २६ ॥ प्रजाके रक्षा करवेके लिये भगवान्नें मोकों राज्य दियो हे सो में प्रजाको किंकर हूँ ओर हम सब भगवानके किंकर हैं ॥ २७ ॥ हे राजन् दिनरात चित्तसों ये विचारो के

दासोऽहं श्रीपतेरेव तदाज्ञातः समागतः ॥
तदाज्ञा मे प्रकर्तव्या करोमि विषये मतिम् ॥ २९ ॥
त्रिवर्गार्थीति यो राजा धर्मशास्त्रमतेन सः ॥
विद्भिः सद्भिर्वीतरागोऽद्वेषैस्तेन महात्मना ॥ ३० ॥
कृत्वा वशे निजात्मानं विद्यापौरुषशालिनम् ॥
वर्तितव्यं सदा लोकहितायाम्नायवर्त्मना ॥ ३१ ॥
सेनाऽमात्यपुरोधाश्च शुद्धांतःपुरचारिणः ॥
कुमारा भ्रातरः कुल्याः सामंताश्च प्रजा निजाः ॥ ३२ ॥
अपेतदुःखा वशगाः कर्तव्या न्यायचारिणा ॥
कर्म चाष्टविधं राज्ञां पंचवर्गं च तत्कृतम् ॥ ३३ ॥
द्वादश प्रकृतिः सर्वा अष्टादशपदं नयम्॥
अनुरागापरागौ च प्रचारं मंडलस्य च ॥ ३४ ॥
प्रचारं मध्यमानां च चेष्टितं विजिगीषिताम् ॥
शत्रूणां चेष्टितं चापि तथोदासीनभूभृताम् ॥ ३५ ॥

में कौन हूँ कहाँसो आयो कहा करनोहे कहा करूँ हूँ॥ २८॥ में भगवान्हीको दास हूँ उन्हीकी आज्ञासों आयो हूँ उनकीही आज्ञा करनी चहिये सो विषयमें बुद्धि करूं हूँ ॥ २९ ॥ त्रिवर्ग (धर्म अर्थ काम) इनकी इच्छा करवेवारो राजा धर्मशास्त्रके मतसों सज्जन विद्वाननकी सलाहसों राज्यकार्य करे ओर द्वेष राग छोंडकें अपने आत्माको वश करकें विद्वान् ओर पुरुषार्थी बने सदा प्रजाके हितके लिये चेष्टा करे ॥ ३० ॥ ३१ ॥ सेना मन्त्री पुरोहित रनवासमें जायवेवारे भाई बेटा अपने कुलके योद्धा प्रजा इनकों सुखी राखे ओर नीतिसों अपने वश करे ॥ ३२ ॥ राजानको आठ प्रकारको कर्म हे नीतिके पाँच वर्ग हें बारह प्रकृति हें अठारह स्थान हें अनुराग (प्रीति) अपराग (उदासीन) मंडलको प्रचार जीतवेवारे शत्रुनको व्यापार तथा उदासीन राजानको ये सब देखे पीछें कोई काममें प्रवृत्त होय

इत्यादि सर्व सपश्येदारभेत प्रवृत्तये ॥
वृद्धये यतमान स्यात्प्रजानां च समृद्धये ॥ ३६ ॥
तत्र लब्धेन वित्तेन कोश सपूरयेन्नृप ॥
आयात्पादोन एवाऽस्य व्यय कार्यो मनीषिणा ॥ ३७ ॥
चतुर्धा विभजेद्वित्त त्रिवर्गस्य प्रवृत्तये ॥
धर्माय चैकं कोशाय भोगाय स्वजनाय च ॥ ३८ ॥
राज्ञा त्रिवर्गो विहितो धर्मशास्त्रेषु यद्यपि ॥
तथापि चापवर्गार्थे यतितव्य महात्मभि ॥ ३९ ॥
जनकादेस्तथा वृत्त श्रूयते वेदलोकयो ॥
विज्ञातायुस्तथा तेषां वार्धक्येऽर्होपि सा गति ॥ ४० ॥
अनिश्चितायुषामद्य सद्योऽनुष्ठानमुत्तमम् ॥
धर्मार्थकाममोक्षाणां प्रजानां च महीभृताम् ॥ ४१ ॥
यो यस्मिन् वर्तते मार्गे स तस्मिन्नेव संस्थितः ॥
धर्मे धर्मोपवर्गों च साधयेद्दृढमात्मन ॥ ४२ ॥

प्रजाकी वृद्धिके लियें यत्न करे वाम मिले भये द्रव्यसों कोश बढावे और आमदनीमिसो चौथे हिस्साको छोडके खर्च करे ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ धनके चार विभाग करे एक धर्मके लियें एक खजानाके लियें एक भोगके लियें एक कुटुम्बिनके लिये ॥ ३८ ॥ धर्मशास्त्रमें राजानको त्रिवर्ग कह्यो हे तोवी मोक्षके लियें महात्मानके संग यत्न करनो चाहिये ॥ ३९ ॥ लोक और वेदमें जनकादिकनको वृत्तान्त सुनें हें जोवे अपने आयुष्यकों जानते हे वृद्धावस्थामें उनकी योग्य गति होती ही॥४०॥ ओर आजकलके मनुष्यनकी आयुष्यको निश्चय नहीं हे यासों जलदी अनुष्ठान करनो उत्तम हे अर्थात् राजा प्रजा सबनो अपने २ धर्म अर्थ काम मोक्षके उपाय करें ॥ ४१ ॥ जो आ मार्गमें होय वाहीमें रहके

अथवा सर्वधर्माणां कलौ श्रीहरिसेवनम् ॥
सुशक्यश्चापवर्ग्यश्च सेव्यः शिष्टैर्निषेवितः ॥ ४३ ॥
संस्कारान्विहितान्कृत्वा भृत्वाग्नीनाह्निकं चरन् ॥
वैराग्यसांख्ययोगैश्च सिद्धो भक्त्यार्चयेद्धरिम् ॥ ४४ ॥
मार्गोयं सुसमीचीनोयथाशक्ति समाचरेत् ॥
अशक्ता ये द्विजा ये वा शूद्रा व्यंगाः स्त्रियोर्भकाः ॥ ४५ ॥
कुर्वंतः सिद्धिमायांति कीर्तयंतो मधुद्विषं ॥
इत्थं श्रीगुरुवाक्यानि शृण्वंतस्ते सभासदः ॥ ४६ ॥
साधु साधु समूचुस्ते बहवः शिष्यतां गताः ॥
सुवर्णानां शतं राज्ञा कृतं तत्रोपढौकितम् ॥ ४७ ॥
हारमुक्ताफलानां च ह्यातपत्रं सितं महत् ॥
दामोदरस्तदा प्राह ह्याचार्यास्तीर्थयात्रकाः ॥ ४८ ॥
न धारयंति रत्नानि न चैते द्रविणार्थिनः ॥
शिष्यैः प्रदत्तमेकाहधान्यं वस्त्रं भजंति हि ॥ ४९ ॥

अपने धर्म मोक्षको साधन करे ॥ ४२ ॥ अथवा कलियुगमें सब धर्मनके बीच हरिकी सेवा उत्तम मोक्षकी देवेवारी होयसके एसी हे ओर शिष्ट याहीकों करें हें ॥४३॥ तासों विहित संस्कारनकों करकें अग्निहोत्र धारण कर आह्निककों करते वैराग्य सांख्ययोगसों सिद्ध होयकें भक्तिसों हरिकी सेवा करे ॥ ४४ ॥ ये मार्ग बडो उत्तम हे याकों यथाशक्ति आचरण करे जो ब्राह्मण आदि ओर स्त्री बालक अंगरहित होंय अशक्त होंय वेबी भगवानूको कीर्तन करते सिद्धिकों पावें हें या प्रकार श्रीमदाचार्यजीके वचननकों सुनते सभासदननें कही जो बहुत ठीक२ये कहकें शिष्य भये ओर राजानें बहोत सुवर्ण भेट कियो ओर मोतीको हार सुपेद बडो छत्र इत्यादि भेट किये तब दामोदरनें कही जो श्रीमदाचार्यजी तीर्थयात्रामें हें रतनकों धारण नहीं

विप्रेभ्यो दीयतां वित्त क्रियतां वेश्वरार्पणम् ॥
तत पुरोहितश्चाह शिष्योऽहं भवत प्रभो ॥ ५० ॥
जातो विद्यापुरे किं भो दीनो विस्मर्यते कथम् ॥
मया निवेदित चैतद्विप्रेभ्योऽन्यत्प्रदीयते ॥ ५१ ॥
शिष्यता भजते भूपो हारोऽय हरयेऽर्प्यताम् ॥
इत्युक्त्वा शिष्यतां यातो द्रविण च समर्पितम् ॥ ५२ ॥
शिष्येभ्यश्चापि विप्रेभ्योगुरुभ्योऽन्यत्समर्पित ॥
यापिता गुरवस्तस्माद्बहुमानपुर सरम् ॥ ५३ ॥
आनीतया सपदेव गता श्रीरंगपट्टनम् ॥
तृतीय रगनाथ त समीक्ष्य गुरवस्तत ॥ ५४ ॥
कावेरीं परितोऽपश्यन् स्नात्वा चक्रुस्तथाह्निकम् ॥
यादवाद्रिमुपायाता महिलाकोटसत्पुरम् ॥ ५५ ॥

करेहैं न द्रव्यार्थी हैं शिष्यनको दीनो भयो धान्य वस्त्र एक दिन ग्रहण करे हैं ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ ये द्रव्य ब्राह्मणनकों देवो अथवा ईश्वरके अर्पण करो तब राजपुरोहितने कही जो मैं आपको शिष्य हूँ ॥ ५० ॥ विद्यानगरमें भयो हो या दीनकों कैसें भूलो हो ये मैंने निवेदन कियो हे ब्राह्मणनकों ओर देऊं हूँ ॥ ५१ ॥ राजा शिष्य होय हे ये हार भगवानकों अर्पण करिये तब राजा शिष्य होयकें ओरभी बहोत द्रव्य भेट कियो ओर शिष्य ब्राह्मणनकोंभी द्रव्य दीनो ओर बडे मानसों श्रीमदाचार्यजीकों अपने यहाँसों विदा किये ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ सो आये भये मार्गहीसों श्रीरंगपट्टनकों पधारे वहाँ तीसरे रंगनाथकों देखकें चारों आडी कावेरीकों देखते स्नान करकें आन्हिक कियो ओर वहाँसों यादवाद्रिके ऊपर महिलाकोट नामक नगरमें आये ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ जहाँ

गरुडेन समानीता सिता मृत्स्ना विकुंठगा ॥
अवनौ यत्र विनिक्षिप्ता तिलकद्रव्यतां गता ॥ ५६ ॥
श्रीसंप्रदायिनो यत्र नृसिंहार्यत्रिदंडिनः ॥
रामानंदोप्यभूच्छिष्यो रामभक्तिपरायणः ॥ ५७ ॥
स द्राविडो द्विजेन्द्रोभूद्विरक्तो जन्मनैव हि ॥
पितृभ्यां कृतसंस्कारो वाराणस्यामितोऽवसत् ॥ ५८ ॥
हरिं सदा स्मरंश्चित्ते नृत्यं चक्रे ततोमहत् ॥
प्रभोरनुग्रहात्सिद्धो विरक्तः पूज्यतां गतः ॥ ५९ ॥
नृसिंहार्यप्रसादेन स नृसिंहं स्म पश्यति ॥
तस्य शिष्यास्सम अवन् पीपाद्या वैजगन्नुताः ॥ ६० ॥
येन धर्मस्य रक्षार्थं विरक्तानां बले बले ॥
विधाय सौहृदं रीति जैतुमन्या प्रवर्तिता ॥ ६१ ॥
लघवोपि पृथग्भूतजीयंते चारयः कथम् ॥
समेतैराशु जीयंते प्रबलाहि द्विषद्गणाः ॥ ६२ ॥

गरुडजीनें वैकुंठकी सुपेद अच्छी मृत्तिका लायकें खानमें पटकी ही सो तिलक करवेकी वस्तु होयगई ॥ ५६ ॥ जहाँ श्रीसम्प्रदायी नृसिंहाचार्य त्रिदंडीके रामभक्तिमें तत्पर रामानन्द शिष्य भये ॥ ५७ ॥ वे द्राविड ब्राह्मण हे जन्महीसों विरक्त भये ओर मातापिताके संस्कार किये पीछें यहाँसों काशीजीमें वास कियो ॥ ५८ ॥ सदा हरिकों चित्तमें स्मरण करते बडो नृत्य करते प्रभुकी कृपासों सिद्ध ओर पूज्य भये ॥ ५९ ॥ नृसिंहाचार्य अपने गुरुकी प्रसन्नतासों वे श्रीनृसिंहजीके दर्शन करते हे उनके शिष्य जगत् जिनकों नमस्कार करतो एसे पीपा आदि भये ॥ ६० ॥ जिननें धर्मकी रक्षाके लियें विरक्त वैष्णवनकी सेनामें मित्रता करकें जीतवेके लियें दूसरी सेना बनाई ॥ ६१ ॥ ओर कह्यो के ये तुच्छवी शत्रु अलग २

एवं विचार्य चित्तेऽसौ सगीकृत्य विरागिण ॥
आश्रावयत् पूर्ववृत्त धर्मरक्षाकृते कृतम् ॥ ६३ ॥
विष्णुस्वामिप्रभु पूर्वमाचार्योऽजनि दक्षिणे ॥
कर्णाटकद्विजेंद्रोऽसौ त्रिदडी वैष्णवाग्रणी ॥ ६४ ॥
पाषंडिना लिंगभृतां दडिनां पृतना पुरा ॥
विष्णुधर्मविनाशिन्यो बभ्रमुर्दु खदा सताम् ॥ ६५ ॥
तिलकस्रग्विभेदिन्यश्छेदिन्योऽर्चाविधेर्हरे ॥
दु खस्यातिशय दृष्ट्वाऽसौ निष्पन्नाकृतिं गत ॥ ६६ ॥
विष्णुस्वामिप्रभुश्चित्ते चिंतयेतदचिन्तयत ॥
तिष्याब्धिर्वृद्धकल्लोर्लिंगयादोगणाकुल ॥ ६७ ॥
अत्येति वेलां मर्यादां मज्जयन् सद्गिरो गिरीन् ॥
कथं निवार्यते सोऽय दुर्निवार्यो धियाप्ययम् ॥ ६८ ॥

रहवेसा केसे जीते जायेंगे मिलकरके प्रबलवी शत्रुगण जीत्यो जायगो ॥ ६२ ॥ ये चित्तमें विचारके वैरागीनकों जमाकर धर्मरक्षाके लियें कियो भयो पहेलो वृत्तान्त सुनायो ॥ ६३ ॥ के प्रभु विष्णुस्वामी आचार्य कर्णाटक ब्राह्मण त्रिदंडी वैष्णवनके आगे चलवेवारे दक्षिणमें उत्पन्न भये ॥ ६४ ॥ सो पहलें लिंगधारी पाषंडी दंडीनकी सेना विष्णुधर्मके विनाश करवेवारी सज्जननकों दुःख देवेवारी फिरती ही ॥ ६५ ॥ तिलकमालाको खडन करवेवारी विष्णुकी सेवाको उच्छेदन करवेवारी एसी सेनाकों देखके अत्यन्त दु खित भये॥ ६६ ॥ ओर चिन्ता कर बेठेगे जो बडी तरंगवारे लिंगी रूप जलजन्तूनसों व्याकुल सज्जननकी वाणीरूप पर्वतनकों डुबावतो मर्यादारूपी वेलाको उल्लघन करतो बुद्धिमार्गो नहीं रोकवेलायक कलिरूप समुद्रको केसें रोकें ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ अथवा

चुलुकी क्रियते किं वा तपसाऽगस्त्यमूर्तिना ॥
इत्थं विचार्य सुदृढं मार्कंडेयाश्रमं ययौ ॥ ६९ ॥
नंदीशाऽनुग्रहाद्देवं प्रसन्नं वरदायिनम् ॥
समीक्ष्य प्रणतो वव्रे सतां रक्षाकृते हरम् ॥ ७० ॥
तेन रक्षाकृते गोपालगायत्री समीरिता ॥
उक्तमस्याः प्रभावेण सतां दुःखं हरिष्यसि ॥ ७१ ॥
वीरान्समुपदिश्यैतं कृत्वैव च चमूश्च तैः ॥
सुहृद्भिः संविदं कृत्वा सन्मार्गं परिपालय ॥ ७२ ॥
एवं हराद्वरं लब्ध्वा चेन्द्रद्युम्नं समागताः ॥
रथयात्रोत्सवे तत्र समायाताश्च वैष्णवाः ॥ ७३ ॥
संगीकृत्य च तत्रैतान् निरूप्य समयं दृढम् ॥
मार्गरक्षाकृते सम्यग् दीक्षितावीरवैष्णवाः ॥ ७४ ॥
तैश्चरद्भिर्महीमेतां विरक्तैर्वीरवैष्णवैः ॥
मार्गरक्षा कृता साध्वी तीर्थं तीर्थेऽरयो जिताः ॥ ७५ ॥

अगस्त्यके जेसें तपस्यासों चुल्लुमें करलेंय ये अच्छी प्रकार विचारके मार्कंडेयजीके आश्रमकों गये॥ ६९ ॥वहाँ वरदायी प्रसन्न महादेवजीके दर्शन प्रणाम कर सज्जननकी रक्षाकरवेके लियें वरदान माँग्यो ॥ ७० ॥ तब उननें रक्षाके लियें गोपालगायत्री दीनी और कही के याके प्रभावसों सज्जननके दुःखकों हरोगे ॥ ७१ ॥ और वीरनको याकों उपदेश करकें उनकी सेना बनायकें सज्जननसों मित्रता कर सन्मार्गकी रक्षा करो॥ ७२॥ ऐसे महादेवजीसों वर पायकें इन्द्रद्युम्न (जगन्नाथ) पुरीकों गये वहाँ रथयात्राके उत्सवमें आये भये वैष्णवनकों जमाकर दृढ नियमनको निरूपण कर मार्गरक्षाके लियें वीरवैष्णवनकों दीक्षित किये ॥ ७३ ॥ ॥ ७४ ॥ उन वीर विरक्त वैष्णवनके संग या पृथिवीमें विचरते अच्छे-प्रकारसों मार्गकी रक्षा कीनी तीर्थ २ में शत्रुनकों जीत्यो ॥ ७५ ॥

विलोक्य रीतिं तां साध्वीं सर्वेऽन्ये सांप्रदायिका ॥
पृथक् पृथक् चमूश्चक्रुः समयं च पृथक् पृथक् ॥ ७६ ॥
धर्मध्वजांस्ततः स्वामिध्वेजिनीभिरमर्दयन् ॥
इदानीं कालदोषेण क्वचिद्वैरं मिथः पतेत् ॥ ७७ ॥
छद्मवेषधराः क्वापि विशंति बलिविद्विपः ॥
छद्मिनां सशयात्क्वापि विरोधाच्च परस्परम् ॥ ७८ ॥
अन्योन्यमसहायाच्च जायते च पराजयः ॥
इतः परमतः संविदस्माभिर्विनिरूप्यते ॥ ७९ ॥
सौहृदं येन सुदृढं संप्रदायचतुष्टये ॥
सम्प्रदायद्वये तप्तमुद्राश्रीविष्णुब्रह्मणो ॥ ८० ॥
संप्रदायद्वये माला कुमारत्रिपुरद्विपो ॥
तप्तमुद्रा च माला च सर्वे सधार्यतामितः ॥८१ ॥
परस्परं सौहृदाय पुण्ड्रं ह्रस्यै पृथक् पृथक् ॥
श्रुत्वैतद्वचनं सर्वे समूचुः सांप्रदायिकाः ॥ ८२ ॥

ये उनकी अच्छी रीत देखकें दूसरे सब सम्प्रदायवारेननें अलग २ सेना बनाई और जुदे २ नियम किये ॥ ७६ ॥ और अपनी सेनासों धर्मके वेषमों ठगवेषारेनकों मर्दन करते विचारबे लगे जो कालदोषसों कदाचित् परस्पर वैर न पडजाय कपटसों वेष धारण कर दूसरे द्वेषी मनुष्य न प्रविष्ट होय जाँय परस्पर विरोधसों परस्पर असहायतासों पराजय न होयजाय यासों ये विचार हे के जामें चारो सम्प्रदायमें मित्रता रहे दो सम्प्रदायमें श्री और ब्रह्माजीकीमें तप्तमुद्रा हैं समक और त्रिपुरारिके सम्प्रदायमें तुलसीमाला हे याके उपरान्त तप्तमुद्रा और माला सब लोग धारण करें ॥ ७७ ॥ ७८ ॥ ७९ ॥ ८० ॥ ८१ ॥ और अलग २ ऊर्द्ध्वपुण्ड्र धारण करें ये गुरुनके वचन सुनकें सब साम्प्रदायिक बोले जो गुरुनकी

गुरूणामाज्ञया चैतत्करिष्यामोयथोदितम् ॥
ततः संमंत्र्य गुरुभिस्तप्तमुद्राकृते कृतम् ॥ ८३ ॥
निकेतनं द्वारिकायाः संकेताय च मायिनाम् ॥
धारयंतु ततो मुद्रा मालाः सर्वे विरागिणः ॥ ८४ ॥
भुंजंति पंक्तावेकस्यां ताथ चकीभवंति च ॥
रामानंदप्रभावोऽयं धर्मसंरक्षणाय वै ॥ ८५ ॥
वज्रदासेन च पुनरंगास्तेषां निरूपिताः ॥
श्रीमच्चपलरायाख्यस्तत्र नारायणः स्थितः ॥ ८६ ॥
यो नीतो यवनेन्द्रेण तत्पुत्र्याऽसौ वशीकृतः ॥
रामानुजेन मुनिना स नीतोऽथ तया सह ॥ ८७ ॥
तां द्वारे संप्रतिष्ठाप्य स्थितोऽभून्निजमंदिरे ॥
तं श्रीनारायणं तत्र समीक्ष्य च प्रणम्य च ॥ ८८ ॥
आचार्यैः श्रीमदाचार्यो व्रतिनो यतिभिर्युताः ॥
जीर्णस्वामी स्वयं प्राह भवद्भिः सा सभा जिता ॥ ८९ ॥
कृष्णदेवस्य मार्गोऽपि कृष्णदेवस्य रक्षितः ॥
लब्धा च वैष्णवाचार्यपदवी वैष्णवाध्वनः ॥ ९० ॥

आज्ञासों ये सब करेंगे तब उननें विचारकें तप्तमुद्रा लेवेको स्थान श्रीद्वारका बतायो तबसों सब वैरागी मुद्रा माला धारण करें हें एक पंक्तिमें भोजन करें हें तीर्थमें मिलें हें एसो रामानन्दको प्रभाव हे धर्मरक्षाके लियें ओर वज्रदासनेंबी उनके अंग निरूपण कियें हें श्रीचपलरायनामक नारायण वहाँ विराजमान हें जिनकों कोई यवन राजा ले गयो हो सो वाकी पुत्रीनें वश किये हे सो रामानुजमुनिनें वाके संग उनकों पधराये सो द्वारमें वाको ठाडी कर अपने मंदिरमें विराजे उन श्रीनारायणकें दर्शन प्रणाम करते श्रीमदाचार्यसों जीर्णस्वामी बोले जो आपने कृष्णदेवराजाकी सभा जीती ओर श्रीकृष्णके मार्गकी रक्षा

दत्ता या वैष्णवाचार्यैर्विष्णुस्वामिमहात्मनाम् ॥
मुद्रा न धार्यते कस्मात्तप्ता विष्णुजनप्रिया ॥ ९१ ॥
वैष्णवैरपि युष्माभिर्विचित्रं किमु चेष्टितम् ॥
तदाहु श्रीमदाचार्या संप्रदायोऽयमीदृश ॥ ९२ ॥
भवद्भि स्रक् कथ नैव धार्यते विष्णुवल्लभा ॥
पूजाकाले धार्यते सा जपकाले विशेषत ॥ ९३ ॥
यद्येवमुच्यते भवद्भिस्तथाऽस्माभिस्तदुच्यते ॥
मलमूत्रादिकालेऽयस्रङ्निषेध समुच्यते ॥ ९४ ॥
समुच्यते तथास्माभि श्रौते स्मार्ते च कर्मणि ॥
यद्यावश्यकता तत्रापि वाक्य प्रतिपाद्यते ॥ ९५ ॥
एवं तुलसिका तस्या स्रक् कथ नावलोक्यते ॥
मुख्यो भागवताचारस्तप्तमुद्रादिधारणम् ॥ ९६ ॥
ब्रूथ ब्रूमस्तदा तद्वत्तुलसीकाष्ठसद्धृतिम् ॥
वर्णाश्रमाणां धर्मोय मुद्राधारणमुच्यते ॥ ९७ ॥

करी ओर वैष्णवाचार्यनसों दीनी भई विष्णुस्वामीसम्प्रदायकी आचार्यपदवीकों पायकें तप्तमुद्रा क्यों नहीं धारण करें हें ॥ ८२ ॥ ८३ ॥ ८४ ॥ ॥ ८५ ॥ ८६ ॥ ८७ ॥ ८८ ॥ ८९ ॥ ९० ॥ ९१ ॥ आप वैष्णव होयकें एसो विचित्र कहा करें हें तब श्रीमदाचार्यजी बोले जो ये सम्प्रदाय एसोही हे ॥ ९२ ॥ आप विष्णुकी प्यारी मालाकों सदा धारण क्यों नहीं करोहो जो कहो के पूजाके समय ओर जपके समय विशेषकरकें धारण करें हें ॥ ९३ ॥ तब हमभी योंही कहें हें जो कहो के मलमूत्रादिकालमें मालाकों निषेध हे तो हमभी कहें हें के श्रौतस्मार्तकर्ममें तप्तमुद्राको निषेधहे यदि आवश्यक वचन कहो ॥ ९४ ॥ ९५ ॥ तो तुलसीमालाके आवश्यक वचन क्यों नहीं देखो हो जो कहो तप्तमुद्राआदिको धारण मुख्य भागवताचार हे ॥ ९६ ॥ तो तुलसीमाला धारण क्यों नहीं जो कहो वर्णाश्रमधर्म है

मन्वादिषु न तद्दृष्टं निषेधो विधिवत्समः ॥
श्रूयते च महान् दोषः श्रूयते च महत्फलम् ॥ ९८ ॥
फलं तत्र परित्त्याज्यं दोषोपि बलवत्तरः ॥
देशभेदादिभिन्नास्ताः पुराणस्मृतयोयदि ॥ ९९ ॥
ग्राह्यताऽग्राह्यता तासां संप्रदायानुसारिणी ॥
षोडशीग्रहणे यद्वद्विकल्पः सूत्रसंमतः ॥ १०० ॥
सशाखासूत्रशिष्टानामाचारात्स व्यवस्थितः ॥
एवं स्वसंप्रदायस्य समाराचाव्यवस्थितः ॥ १०१ ॥
तुलसीकाष्ठमालायास्तत्पांकानां च धारणं ॥
ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्यैः शूद्रैश्च कृतलक्षणैः ॥ १०२ ॥
पूजनीयः सदा विष्णुर्नित्ययुक्तैः स्वकर्मभिः ॥
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या नानादेशसमुद्भवाः ॥ १०३ ॥
चक्रांकिताः प्रवेष्टव्या यावदागमनं मम ॥
इत्येवं भारतगिरो मिताश्चान्यत्र या गिरः ॥ १०४ ॥

॥ ९७ ॥ तो मनु आदि स्मृतिनमें क्यों नहीं देखते बड़ो दोष सुनें हें ओर बडो फल सुनें हें ॥ ९८ ॥ तो तामें फल छोडवे योग्य हे क्योंके बलवान् दोष हे जो देशभेद आदिसों पुराण स्मृति भिन्न हें ॥ ९९ ॥ तो काहू अंशको ग्रहण काहूको त्याग सम्प्रदायके अनुसार हे षोडशी ग्रहणमें विकल्प जेसो सूत्रकारको संमत हे ॥ १०० ॥ सूत्रशाखाके भेदसों भिन्न भिन्न व्यवस्था जेसी हे एसे अपने २ सम्प्रदायकी तुलसीकाष्ठमाला ओर तप्तमुद्राधारणमें हे ॥ १०१ ॥ अपने अपने कर्मनसों युक्त ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र इन करकें सदा विष्णु पूजने चहिये ओर नानादेशमें उत्पन्न ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य चक्रांकित हमारे आयवे ताईं प्रवेश करें एसी जो भारतकी वाणी हे

तासु चार्थांतरव्यक्ति प्रसक्तिर्नांकधारणे ॥
पचरात्रादिमानेन चरणादिश्रुतेरपि ॥ १०५ ॥
पचरात्रिकभक्ताना योग्या न श्रौतवर्त्मनाम् ॥
श्रौतभक्ते कथ नैता धार्या इत्युच्यते यदा ॥ १०६ ॥
ब्रूमो निषेधप्राबल्याच्छ्रौतधर्मानुरोधिनाम् ॥
यदि ध्रुवतु मालाया निषेध किं न दृश्यते ॥ १०७ ॥
काष्ठांतरपर सोपि लोहांतरपरस्तथा ॥
तस्मात्तु वैष्णवैर्विष्णो पूजायां चक्रधारणम् ॥ १०८ ॥
विधीयते मृदा तद्धि धार्यतेऽस्माभिरप्यथ ॥
ऊर्द्ध्वपुंड्रं विना चक्रशखमुद्रां विना हरे ॥ १०९ ॥
विना श्रीतुलसीमालां कृत पूजादिकं वृथा ॥
त्यक्त्वोर्द्ध्वपुंड्रमुद्राश्च मालां मंत्रागमौ गुरून् ॥ ११० ॥
पूजितोपि हरिर्देव न प्रसीदति भूरिश ॥
ऊर्द्ध्वपुंड्रेण तु विना वृंदाकाष्ठस्रज विना ॥ १११ ॥
पचमुद्रां विना विष्णो पूजन द्रोहउच्यते ॥
यज्ञोपवीतवद्धार्यो कंठे तुलसिमालिका ॥ ११२ ॥

श्रौतकी वचन हैं ॥ १०२ ॥ १०३ ॥ १०४ ॥ उनसों दूसरे अर्थनको बोध होय है तप्तमुद्राधारणको नहीं होय है पचरात्रआदिके मानसों चरणादि श्रुतिसों ॥ १०५ ॥ श्रौतमार्गी पचरात्रके भक्तनको अंक धारण योग्य नहीं जो कहो उनको क्यों नहीं योग्य ॥ १०६ ॥ तो कहें हैं के निषेधकी प्राबल्यतासों जो कहो के मालाके निषेध कहा नहीं देखते ॥ १०७ ॥ तो वे दूसरेकाष्ठको निषेध करें हैं तासों वैष्णव नकों पूजाके समयमें मृत्तिकाके शीतल चक्र आदि धारण करने चहिये सोही हम धारण करें हैं ऊर्द्ध्वपुंड्र चक्र शख आदि मुद्रा तुलसीकाष्ठमाला इनके विना हरिको पूजन वृथा है ऊर्द्ध्वपुंड्र मुद्रा माला मत्र आगम गुरु

क्षणार्द्धं तद्विहीनोपि विष्णुद्रोही न संशयः ॥
सदा धार्या सदा धार्या कंठे तुलसिमालिका ॥ ११३ ॥
सदा वर्ज्या सदा वर्ज्या मालाऽन्यद्रुमसंभवा ॥
इत्येवं विधिवाक्यैस्तु शांडिल्याद्यैः समीरितैः ॥ ११४ ॥
स्रग्धृतिः सर्वदा कार्या मुद्राणामर्चने हरेः ॥
लोकवेदविमुक्तैस्तु केवलं हरिमाश्रितैः ॥ ११५ ॥
वैष्णवैर्धार्यते नित्यं तेषां तदुचितं भवेत् ॥
इत्युक्ते श्रीमदाचार्यै स्तूष्णीमासीद्यतीश्वरः ॥ ११६ ॥
इत्युक्त्वा कृष्णवर्त्मानः कृत्वा सौहृदसंविदम् ॥
संमानितास्तैः संमान्य तान् छात्रैः प्रास्थितास्ततः ॥ ११७ ॥
श्रीवेदव्यासविष्णुप्रभुचरणमिते सम्मिते ग्रन्थसार्थैः
श्रीगोविन्दाभिधानां समयनयविदां देशिकानां निदेशात् ॥
आचार्याणां चरित्रे हरिजनसुखदे शास्त्रिकृष्णैर्निबद्धे
प्रस्थानेऽस्मिँस्तृतीये समजनि पटहश्चाष्टमोयं जयाख्ये॥११८

इनकें विना पूजेबी हरि प्रसन्न नहीं होय हें ऊर्द्ध्वपुंड्र तुलसमाला पंचमुद्रा इनके विना पूजन करनो हरिको द्रोह करनो हे यज्ञोपवीतके जेसी कंठमें तुलसीकी माला धारण करनी आधे क्षणबी इनके विना विष्णुको द्रोही होय हे यामें संदेह नहीं कंठमें तुलसीकी माला सदाधारण करनो २ ओरको सदा त्याग करनो इत्यादिक शांडिल्यके विधिवचननसों वैष्णवनको सदा माला मुद्रा धारण करनो चहिये एसें श्रीमदाचार्यजीके कहवे पे वे सन्यासी चुप होयगये पीछें शिष्टाचार करकें उनसों मान पायकें उनको मान कर विद्यार्थीनके संग वहाँसों पधारे ॥ १०८ ॥ १०९॥११०॥१११॥११२॥ ॥११३॥११४॥११५॥११६॥११७॥ समयनीतिके जानवेवारे जगद्गुरु श्रीगोविन्दाचार्यजी महाराजकी आज्ञासों कृष्णशास्त्रीके बनाये श्रीमद्वेदव्यास विष्णुस्वामिमतके ग्रन्थनके अनुकूल हरिभक्तनके सुखदेवेवारे या चरित्रग्रन्थमें तीसरे प्रस्थानमें ये आठवों पटह समाप्त भयो ॥ ११८ ॥

सुब्रह्मण्यं महातीर्थं कुमारस्योद्भवस्थलम् ॥
यत्र शेष स्वरूपेण स्थितो नागैः समर्च्यते ॥ १ ॥
कृतानुरागा ये तस्मिन्निरोगा यांति यात्रिण ॥
नागेश श्वेतनागात्मा नार्यं नागेशमर्चति ॥ २ ॥
सर्पार्चकानां यत्राशु क्षीरं वै क्ष्वेडतां भजेत ॥
यात्रिकाणां नृणामेतदमृत चाऽमृतायते ॥ ३ ॥
चकार वदन तस्मै कुमाराय महात्मने ॥
जिष्णवेऽसुरसैन्यानां विष्णवे प्रभविष्णवे ॥ ४ ॥
कर्मनिष्ठाद्विजास्तत्र तौतातिकमतानुगा ॥
समेता समनुप्राप्ता सपवित्रा सविष्टरा ॥ ५ ॥
केचिदग्निचित केचिद्दीक्षिता वाजपेयिन ॥
पचाग्नयस्त्र्यग्नयश्च ह्यौपासनपरायणा ॥ ६ ॥
केचित्षण्णवतिश्राद्धकारिणोव्रतधारिण ॥
सदाचारपरा केचित्सदाह्निकपरा परे ॥ ७ ॥

सो कुमारस्वामीके प्रागट्यस्थल महातीर्थ जहाँ शेपजी अपनरूपसो स्थितहै सब नाग पूजन करें हैं वा सुब्रह्मण्यतीर्थमें पधारे ॥ १ ॥ जहाँ जो यात्री भक्ति करें हैं वे रोगरहित होय जाय हैं ओर यहाँ श्वेतनाग हैं सो सब नागनके ईश हैं ॥ २ ॥ उनकी पूजाके लिये दूध जो आवे है सो सर्पकी पूजा करवेवारेनको विष होयजाय है ओर यात्रीनके लियें वो अमृत होयजाय है यहाँ महात्मा दैत्यसेनाके जीतवे वारे समर्थ कुमारकों प्रणाम कियो ॥ ३ ॥ ४ ॥ ओर यहाँ रामानुजमतके अनुयायी ओर पवित्री पहरे कर्मनिष्ठ ब्राह्मण सब मिलके आये ॥ ५ ॥ कोई अग्निहोत्री, कोई दीक्षित, कोई पंचाग्निक, कोई तीन अग्निके उपासना करवेवारे ॥ ६ ॥ कोई छानवे श्राद्ध करवेवार, कोई व्रत धारण करवेवारे, कोई सदाचारपर, कोई ऋग्वेदी, कोई यजुर्वेदी, कोई

बह्वृचा याजुषाः केचित्सामगाऽथर्वणाः परे ॥
त्रिसुपर्णास्त्रिमधवस्त्रिजन्मानस्त्रयीजुषः ॥ ८ ॥
पंचविद्या दशग्रंथाः षडंगाध्यायिनः परे ॥
षट्शास्त्रनिपुणाः केचित्केचित्पौराणिका द्विजाः ॥ ९ ॥
कृतश्मश्रुनखाः सर्वे शुचिवस्त्रशरीरिणः ॥
शुक्लयज्ञोपवीताश्च शुक्लदंताः सितांबराः ॥ १० ॥
पंचकच्छा बद्धशिखास्तर्ज्जन्यां रूप्यधारिणः ॥
सपादुकाः सोत्तरीयाः कर्णरन्ध्रे क्षितार्चयः ॥ ११ ॥
मृदोर्द्ध्वपुंड्रा भस्मांकाः सत्यवाचो मितोक्तयः ॥
षट्कर्माणस्त्रिषवणस्नायिनः समुपागताः ॥ १२ ॥
विप्राणां निकुरम्बं तं पूष्णो बिम्बमिवोद्गतम् ॥
निभाल्यैतान् प्रसन्नास्ते कर्ममार्गप्रवर्तकाः ॥ १३ ॥
ववंदिरे तदाचार्या वंदितास्तैर्यथाविधि ॥
आसनेषूपविष्टांस्तांश्चक्रुर्दामोदरादयः ॥ १४ ॥
तेषां प्रधाना ये प्रोचुर्ब्रह्मविष्णुगिरीश्वराः ॥
के यूयं कुत आयाता आचार्या राजपूजिताः ॥ १५ ॥

अथर्वणवेदी, कोई त्रिसुपर्ण त्रिमधु त्रिजन्मा वेदत्रयी पढवेवारे षट्शास्त्रमें निपुण पौराणिक मुंडन कराये पवित्र वस्त्र धारण किये सुपेद जनेऊवारे सुपेद दांतवारे ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥ १० ॥ पाँच कच्छवारे शिखा बाँधे तर्जनीमें रूपेकी पवित्री पहरे पादुका पहरे उत्तरीय वस्त्र लिये कुंडल पहरे ॥ ११ ॥ मृत्तिकाके ऊर्द्ध्वपुंड्र लगाये, कोई भस्म लगाये सत्य तथा मित बोलवेवारे षट्कर्म ओर तीन स्नानके करवेवारे एसे ब्राह्मण आये ॥ १२ ॥ सो सूर्यके बिम्ब जेसे उन ब्राह्मणनके झुंडको देखके आप प्रसन्न भये ओर उनसों प्रणाम किये गये कर्ममार्गके प्रवर्तक श्रीमदाचार्यजीनेंबी नमस्कार कियो ओर उनको दामोदर आदिनें यथाविधि आसननमें बेठाये ॥ १३ ॥ १४ ॥ पीछें उनमें प्रधान

वटुव्रता भागवता विचित्र चरित हि व ॥
भट्टार्यस्तु तदा प्राह काकरग्रामवासिन ॥ १६ ॥
भारद्वाजास्तैत्तिरीयाश्चरणाध्यायिनो बुधा ॥
यज्ञनारायणाभस्य वंशजा सोमयाजिन ॥ १७ ॥
विख्यातयशस श्रीमल्लक्ष्मणार्यस्य सूनव ॥
यैर्वित्सजयने राज्ञ कृष्णस्याचार्यता भृता ॥ १८ ॥
तेऽमी श्रीवल्लभाचार्या ये च यात्रां समागता ॥
तदा बृहस्पति प्राह यल्लमाया सुतोऽस्ति किम् ॥ १९ ॥
साऽस्माक कुलदौहित्री तेऽमीत्युक्ते जहर्ष स ॥
सर्वे ते हर्षमायातास्तेऽपृच्छन् वृत्तमीप्सितम् ॥ २० ॥
वृत्त राजसभायाश्च यात्रायाश्च यथायथम् ॥
भट्टार्योऽकथयत्सर्वमिदमूचुस्तत पुन ॥ २१ ॥
ब्राह्मणै स्रक् कथं धार्या मृण्मुद्रा वटुभि कथम् ॥
सूत्रे पुष्ट न चैवास्ति शिष्टाचारात्तु तद्धृति ॥ २२ ॥

पुरुष बोले जो आप राजानसों पूजित आचार्य कौन हे कहाँसों आये ॥ १५ ॥ भागवतव्रह्मचारिन आपको विचित्र चरित्र हे तब भट्टार्य बोले के कॉकरग्रामके वासी भारद्वाज तैत्तिरीयशाखाध्यायी सोमयाजी यज्ञनारायणके वंशज प्रसिद्ध श्रीलक्ष्मणभट्टजी के आप पुत्र हैं जिनने कृष्णदेवराजाकी सभाकों जीतकें आचार्यताकों धारण कियो हे ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥ वे ये श्रीवल्लभाचार्यजी हें जो यात्राम पधारे हें तब बृहस्पति बोले कें, कहा यल्लमाजीके पुत्र हें ॥ १९ ॥ वे तो हमारे कुलकी दोहिती हें तब भट्टार्यने कह्यो के हाँ वेही हें ये कहवेपे वे प्रसन्न भये ओर यथेष्ट सब वृत्तान्त पूछते भये ॥ २० ॥ भट्टार्यने राजसभाको ओर यात्राको सब वृत्तान्त कह्यो तब वे बोले ॥ २१ ॥ ब्राह्मणके बटु बालक माला मुद्रा धारण

न तीर्थयात्रा विहिता वटोराचार्यसेविनः ॥
हरिसेवा कुतस्तस्य वेदाध्ययनशालिनः ॥ २३ ॥
वर्णाश्रमेण धर्मेण गतिः स्वर्ग्या स्मृतोत्तमा ॥
वेदेषु विहिता तेन सकार्यो वै द्विजन्मना ॥ २४ ॥
इत्युक्ते प्राहुराचार्याः सम्यङ्मातामहोक्तयः ॥
वर्णाश्रमेण धर्मेण गतिः स्वर्ग्यैव नापरा ॥ २५ ॥
मुंडकोपनिषत्स्वेतत् क्षयिष्णु समुदाहृतम् ॥
यथा कर्मचितश्चेह तथाऽमुत्र विनाशि तत् ॥ २६ ॥
कथं कृतेनाकृतं स्यात् कृतं तद्धि विनश्यति ॥
पराऽपरागतिर्द्वेधा छांदोग्ये समुदीरिता ॥ २७ ॥
अर्चिरादिश्च धूमादिः शुक्ला कृष्णा च ते मते ॥
परायाः प्राप्तये न्यासः कर्मणां मुंडकेरितः ॥ २८ ॥

कैसे करें सूत्रमेंतो पुंड्र नहीं है शिष्टाचारसों कियो जाय है ॥ २२ ॥ आचार्यसेवी वेद पढवेवारे बालकको तीर्थयात्रा विहित नहीं है ओर हरिसेवातो काहेकी ॥ २३ ॥ वर्णाश्रमधर्ममों स्वर्गके देवेवारी गति होय है वेदमें जो लिख्यो है वोही द्विजातीनको करनो चाहिये ॥ २४ ॥ ये कहवेपे श्रीमदाचार्यजी बोले जो मातामहको कहनो ठीक है वर्णाश्रमधर्मसों स्वर्गके देवेवारी ही गति होय है दूसरी नहीं ॥ २५ ॥ मुंडकोपनिषदमें ये नाशवारी कही गई है जेसे कर्मसों बनी है याहीसों विनाशवरी है ॥ २६ ॥ कृतसों अकृत (मोक्ष) केसे होयसके है कृतको तो नाश होयजायहे छान्दोग्यमें पर अपर दो गति कही हें एक आर्चिरादि दूसरी धूमादि वेही शुक्ल कृष्ण हें पराके लिये कर्मनको त्याग मुंडकमें कह्यो है ॥ २७ ॥

हित्त्वा त्रैवर्गिक कर्म मुमुक्षुर्गुरुमाश्रयेत् ॥
यथा बृहद्रथ प्राह मैत्रायण्यां श्रुतौ स्फुटम् ॥ २९ ॥
असार' खलु ससार स च लोकद्वयात्मक ॥
दु खोदर्कास्तत्र भोगा ईर्षोऽसूयादिदूषिता ॥ ३० ॥
जुगुप्सिता सशोकाश्च सभया सातिशायिन ॥
तस्माद्विशोकमभयमपवर्गमनामयम् ॥ ३१ ॥
निर्विद्य सर्वकामेभ्यो लिप्सितव्य सदैव हि ॥
न कर्मणा न प्रजया दानाद्यैस्तत्र लभ्यते ॥ ३२ ॥
यज्ञदानतपोमुख्यैः कर्मभि शोधितात्मनाम् ॥
भवेदधिकृतिस्तत्र श्रुत्यैवं समुदीरणात् ॥ ३३ ॥
कर्मणां तत्परित्यागाज्ज्ञानात्तत्पदमाप्यते ॥
श्रुतौ स्मृतौ पुराणे च सर्वत्रैतद्विनिर्णय' ॥ ३४ ॥
श्रुत्यर्थ एव कृष्णेन गीतायां स स्फुटीकृत ॥
त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन ॥ ३५ ॥

॥ २८ ॥ मुमुक्षु पुरुष त्रैवर्गिक कर्मनकों छोडकें गुरुके शरण जाय जेसें बृहद्रथने मैत्रायणीश्रुतिमें स्पष्ट कह्यो हे ॥ २९ ॥ के दोनों लोकरूप ससार असार हे ईर्षा असूया आदि दोषनसों दूषित भोग दु खनके दाता हैं ॥ ३० ॥ निन्दित शोकवारे भयवारे नाशवारे हें यासों शोकरहित भयरहित रोगरहित मोक्षकी इच्छा कामनानकों छोड करकें सदा करे कर्मसों प्रजासों दानादिकमसों यो नहीं मिले हे ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ यज्ञ दान तप आदि मुख्य कर्मनसों जिनने आत्माको शुद्ध कियो हे, उनको यामें अधिकार हे एसो श्रुतिको कथन हे ॥ ३३ ॥ तासों कामनाकों छोडकें भक्ति करवेसों यो पद मिले हे श्रुति स्मृति पुराणनमें सब ठिकाने ये निर्णय हे ॥ ३४ ॥ वेदहीको अर्थ गीताजीमें श्रीकृष्ण भग

वेदशब्देन पूर्वोत्र वेदकांडः समीरितः ॥
कर्मणां त्यागतस्तस्य त्यागः सम्यङ्निरूप्यते ॥ ३६ ॥
स त्यागो द्विविधः प्रोक्तः फलासक्तिविभेदतः ॥
फलत्यागोपि द्विविधः स्वरूपाद्धेतुतस्तथा ॥ ३७ ॥
आसक्तिस्तु तथा द्वेधा स्वरूपे च फले तथा ॥
अनुद्दिश्य फलं कर्म विधिप्राप्तं विधीयते ॥ ३८ ॥
स्वरूपेण फलत्यागः सांख्येन हरिणेरितः ॥
ऋषिश्छंदश्च दैवत्यं विज्ञाय ब्राह्मणं तथा ॥ ३९ ॥
जपं करोमि चेत्येवं फलत्यागः स्वरूपतः ॥
विधिप्राप्तं तु यत्कर्म क्रियते योगवर्त्मना ॥ ४० ॥
कृतं समर्प्यते विष्णौ त्यागोऽयं तस्य हेतुतः ॥
मंत्रर्षिछंदोदेवांश्च समुच्चार्य स्वतुष्टये ॥ ४१ ॥
जपं करोमि चेत्येवं हेतुतस्त्याग इष्यते ॥
कर्मासक्तिपरित्यागः कर्मत्यागः स्वरूपतः ॥ ४२ ॥

वाननें स्पष्ट कियो हे के वेद त्रिगुण हें तुम त्रिगुणरहित होवो ॥ ३५ ॥ वेद-शब्दसों पूर्व वेदकांड कह्यो गयो हे कर्मके फलनके त्यागसों ताको त्याग अच्छे प्रकारसों होयजाय हे ॥ ३६ ॥ वो त्याग फलआसक्तिके भेदसों दो प्रकारको हे स्वरूप ओर हेतुके भेदसों फलत्यागबी दो चालको हे ॥ ३७ ॥ आसक्तिबी उन्हीसों दो चालकी हे फलकी इच्छा न करके विधिसों कर्मको विधान हे ॥ ३९ ॥ स्वरूपसों फलत्याग सांख्यकरकें भगवाननें कह्यो हे ऋषि छन्द देवता ब्राह्मण इनकों जानकें जप करूँ हूँ याको स्वरूप फलत्याग कहें हें विधिप्राप्त कर्मकों योगमार्गसों करे किये भयेको विष्णुके अर्पण करे ये हेतुपूर्वक त्याग हे मंत्र ऋषि छन्द देवता इनकों उच्चारण करकें जप करूँ हूँ ये हेतुत्याग हे कर्मा सक्तिको छोडनो स्वरूपसों कर्मत्याग हे ॥ ३९ ॥ ४० ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

स सन्यासो नान्यथा स्यादन्यथा पापकर्म तत् ॥
फलासक्तिपरित्यागे कुरुते दारुयत्रवत ॥ ४३ ॥
सिध्यसिध्यो' समो भूत्वा निर्ममो निरहकृति ॥
तत्रेशार्पणबुद्ध्यैव योगमार्गेण यत्कृत ॥ ४४ ॥
स त्याग सर्वत श्रेष्ठो गीतायां हरिणोदित ॥
कृत्वैव च फलत्यागात्कर्मत्याग हरेर्मतात् ॥ ४५ ॥
कृत्वा वेदातमार्गेण भक्तिमार्गेण वा पुन ॥
हरिं समर्च्य प्राप्नोति परागतिमितीर्यते ॥ ४६ ॥
श्रुत्वैव ब्रह्मभट्टस्तु पुन प्राह हसन्निव ॥
इय भागवती वार्ता स्त्रीशूद्राणां मुदे भवेत् ॥ ४७ ॥
ब्राह्मणानां न चेत्त्थं हि ते तु श्रौतानुयायिन ॥
श्रुतौ यत्कथ्यते कर्म तत्कर्तव्य न चेतरत् ॥ ४८ ॥
ईशार्पणधिया कर्म श्रुतौ न विहितं क्वचित् ॥
स्वर्गकामो यजेदेव कामस्तु श्रुतिचोदित ॥ ४९ ॥

त्याग करवेसों सन्यास अन्यथा नहीं होय हे नहीं तो पापकारी होय है फला सक्तिओरपरित्याग काठके यत्रके जेसे करे हे ॥ ४३ ॥ सिद्धि असि द्धिमें सम होयकें ममता अहकारकों छोडकें भगवानके अर्पणबुद्धिसों योग मार्गमों जो कियो जाय हे ॥ ४४ ॥ ताकों सबसों उत्तम त्याग भगवानूनें गीताजीमें कह्यो हे एसे फलत्यागरूपकर्मत्यागकों करकें वेदान्तमार्ग वा भक्तिमार्गसों हरिको पूजन करकें परागतिकों पावे हे ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ श्रीमदाचार्यजीके या कथनकों सुनकें ब्रह्मभट्ट हँसके बोले के ये भागवती वार्ता स्त्रीशूद्रनके आनन्दके लिये हे ॥ ४७ ॥ वेदानुयायीब्राह्मणनके लिये नहीं हे श्रुतिमें जो कह्यो हे वो कर्तव्य हे दूसरो नहीं ॥ ४८ ॥ भगवदर्पण बुद्धिसों कर्म कहीं वेदमें नहीं विहित हे "स्वर्गकामोयजेत"या श्रुतिसों स

निष्कामस्य क्रिया नेति शास्त्यनिष्कामतां मनुः ॥
वेद एव परं श्रेयस्कर्म विप्रस्य चोदितम् ॥ ५० ॥
वेदे तु कर्मैव रुतं न ज्ञानं न च भक्तयः ॥
तस्माद्वेदोक्तमार्गेण भवद्भक्तिरुदीर्यताम् ॥ ५१ ॥
तदर्थं सूत्रतोब्रूहि गीतादिः सूत्रतोवरः ॥
मन्वादिस्मृतयो मान्याः श्रुतिसूत्रानुगा यदि ॥ ५२ ॥
प्रामाण्यं नान्यथा चैषां क्व पुराणादिजल्पितम् ॥
पौरुषेयगिरां मानं जैमिनिर्न प्रपद्यते ॥ ५३ ॥
कल्पे कल्पेऽभिसृष्टानामधुनापि तथा परैः ॥
पारंपर्यादपेतानां न मानानां स्वतः प्रमा ॥ ५४ ॥
सभा जिता राजकीया राजकीयाः प्रमादिनः ॥
आचार्याणां सभाप्येवं स्वाचार्याणां सभैव सा ॥ ५५ ॥

काम कर्म विहित हे ॥४९॥ निष्कामकी कोई क्रिया नहीं होती एसो मनुको वचन हे वेदमें जो कह्यो हे वोही ब्राह्मणके लिये कल्याणदायी हे ॥ ५० ॥ वेदमें तो कर्महीं कह्यो हे भक्ति ज्ञान नहीं कहें हें तासों वेदके वचननसों अपनी भक्तिको उपपादन करो ॥ ५१ ॥ वेदको अर्थ सूत्रनसों कहो गीता आदि तो सूत्रनकी अपेक्षा छोटे हैं ओर श्रुतिसूत्रके अनुसार मन्वादिक स्मृतिबी प्रमाण हें ॥ ५२ ॥ अन्यथा नहीं पुराणादिकनके कहेभयेको तो कहा मनुष्यवाणीको प्रमाण जैमिनी नहीं मानें हें ॥ ५३ ॥ कल्पकल्पमें बनाये जाँय हें परम्परासों च्युत हें इनको स्वतः प्रमाण नहीं होयसके हे ॥ ५४ ॥ आपने राजानकी सभा जीती तो कहा भयो राजकीय पुरुष तो प्रमादी होय हें ओर अपने आचार्यनकी सभा जीती तोबी कहाभयो ये ब्राह्मणनकी सभा हे यामें वेद विद्यमान हें यहाँ जो अर्थ निर्णीत

इय तु परिपद्बाह्मी वेदा यस्यां प्रतिष्ठिता ॥
निर्णीतोर्थोऽत्र य कश्चित्त न कश्चित्प्रहास्यति ॥ ५६ ॥
आद्यो य शंकराचार्यो विष्णवाचार्यस्तथापर ॥
अन्येपि वैष्णवाचार्यो भिन्नधर्मप्रवर्तका ॥ ५७ ॥
आचार्यवान् भवेत्यादौ श्रुतौ नैते समीरिता ॥
अध्यापको यो वेदानां निपेकादिकरश्च य ॥ ५८ ॥
सांगानां सरहस्यानां तमाचार्यं जगुर्बुधा ॥
तादृशश्च पिताचार्यो गुरुर्वा वेदपाठक ॥ ५९ ॥
स सावित्रीमुपदिशेत्कर्तव्य नेतरत्क्वचित् ॥
ज्ञानाय या या वार्ता सा सापि भट्टैर्विनिन्दिता ॥ ६० ॥
तत्रैवं शक्यते वक्तुमित्याद्यैस्तत्रवार्तिके ॥
भवन्मता भागवती भक्तिर्नैव श्रुतौ स्मृतौ ॥ ६१ ॥
सुहृद्भावेन पृच्छामो न मात्सर्यादिदुर्धिया ॥
अस्मज्जातो भवान् जात श्रुत साक्षाद्धुताशन ॥ ६२ ॥

होयगो वोही माननीय होयगो ताको कोई त्याग नहीं करेगो ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ पहले जो शंकराचार्य विष्णवाचार्य और वैष्णवाचार्य भिन्न धर्मके प्रवृत्त करवेवारे भये ॥ ५७ ॥ उनको "आचार्यवान्भव" य श्रुतिमें नहीं कह्यो जो रहस्य और अंगनके सहित वेदनके पढायवेवारे और निषेकादि कर्म करवेवारे हैं उनको विद्वान् आचार्य कहें हैं तासों पिता आचार्य है अथवा वेदपढायवेवारे गुरु आचार्य होय हैं ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ वे गायत्रीको उपदेश करें और कछू न करें ज्ञानके लिये जो जो वार्ता है ताको भट्टनें निन्दा करी है ॥ ६० ॥ तासों ये बात कहसके हैं के तन्त्रवार्तिकमें और श्रुतिस्मृतिमें आपके अभिमत भागवती भक्ति कहीं नहीं दीखपडे है ॥ ६१ ॥ तासों ये बात मित्रतासों पूछें हैं दुष्टबुद्धि वा मात्सर्यसों नहीं पूछें हैं हमारे मा

तेन प्रवर्तितः पंथास्तं निर्णीषति नो मतिः ॥
इत्थं ब्रह्मादिभिः पृष्टे प्रादुर्वैश्वानरास्तदा ॥ ६३ ॥
अश्रद्धेया कर्मजडैः सत्यं भागवती कथा ॥
सा कर्मजडता वेदे मुंडकेन प्रदुष्यते ॥ ६४ ॥

यथा प्रथममुंडके

प्लवाह्येते अदृढा यज्ञरूपा अष्टादशोक्तमवरं येषु कर्म एतच्छ्रेयो येऽभिनंदंति मूढा जरामृत्युं ते पुनरेवापयंति अविद्यायामंतरे वर्तमानाः स्वयं धीराः पंडितं मन्यमानाः जङ्घन्यमानाः परियंति मूढाः अंधेनैव नीयमानाः यथांधाः अविद्यायां बहुधा वर्तमाना वयं कृतार्थां इत्यभिमन्यंति बालाः यत्कर्मिणांतत् प्रवेदयंति रागान् येनातुराः क्षीणकालाश्च्यवंते इष्टापूर्तं मन्यमानावरिष्टं नान्यच्छ्रेयो वेदयंते प्रमूढाः नाकस्य पृष्ठे ते सुकृतेनानुभूत्त्वेमं लोकं हीनतरं विशंति ॥

अर्थः श्रुतीनां बोधाय किंचिदत्र प्रदर्श्यते
प्लवानावोदृढायज्ञाअनित्यायेषु वर्तते ॥ ६५ ॥
अष्टादशोक्तमृत्त्वग्निः षोडशैर्येद्वितन्यते ॥
पत्न्या च यजमानेन कर्माष्टादशचोच्यते ॥ ६६ ॥

निमें आप साक्षात् हुताशन प्रगट भये हैं॥ ६२ ॥ आपने जो मार्ग चलायो है ताके निर्णयकरवेकी इच्छा हमारी बुद्धि चाहे है या प्रकार ब्रह्मादिकनके पूँछेवेपे वैश्वानर बोले ॥ ६३ ॥ जो ठीक कही हो कर्मजडनकरकें भागवती वार्ता श्रद्धा करवे लायक नहीं है परन्तु वा कर्मजडताकों वेदमें मुंडकने दूषित कियो है॥ ६४ ॥ "प्लवा" इत्यादि श्रुतीनके अर्थ दिखावे हैं के यज्ञरूपी नौका है उनके जो आश्रित हैं वे अनित्य हैं ओर वे यज्ञकर्म अठारह हैं ॥ ६५ ॥ ॥ ६६ ॥

अवर ज्ञानरहितं ये श्रेय श्रेयसे हितम् ॥
मन्यते तेऽनुधावाला जरामृत्यु विशति ते ॥ ६७ ॥
अविद्यावरणे तेऽस्मी वर्तमाना गुरुं विना ॥
स्वयधीरास्तत प्रोक्ता स्वय बुद्धिप्रवर्तका ॥ ६८ ॥
जङ्घन्यमानाद्दु खौघैरीषणात्रयपीडिता ॥
परियति ते भ्रमतीह तिर्यङ्नृसुरयोनिषु ॥ ६९ ॥
बहुधा विद्यया प्रोक्ता सिद्धा स्मोऽभिमतिर्मृषा ॥
न कर्मिणोविजानति तत्त्व कर्मातिरागत ॥ ७० ॥
तेन भूत्वाऽऽतुराभोगे भुक्तस्वर्गा पतत्यध ॥
इष्ट यागादिक श्रौत पूर्त स्मार्त तुलादिकम् ॥ ७१ ॥
ज्ञानतस्तेवरिष्ठतन्नान्यच्छ्रेयोविजानते ॥
सुकृतेन सुपण्येन नाके लब्ध्वा तनु शुभां ॥ ७२ ॥
भुक्त्वा भोगान् पततीह हीन निरयमेववा ॥
एवं कर्मजडानां हि निंदाप्यत्रापि दृश्यताम् ॥ ७३ ॥

जो भक्तिज्ञानके विना कल्याणकी इच्छा करें हैं वे अज्ञानी हैं मृत्यु
प्रवेश करें हैं ॥ ६७ ॥ गुरुके विना अविद्यारूपी अंधकारमें वर्तमा
होयकें अपनी बुद्धिसों प्रवृत्त होयकें दु खनसों पीडित होय हैं और ती
ईषणा लगी रहें हैं पशु पक्षि मनुष्य असुरयोनीनमें फिरा करें
॥ ६८ ॥ ६९ ॥ अविद्यासों अपनेको सिद्ध मानकें वृथा अभिमान कर
कर्म करवेवारे तत्त्वको नहीं जानें हैं भोगमें आतुर होयकें स्वर्गसों नीचे गि
पडें हैं यज्ञादिक करनो कूपतडागआदि बनवानो तुलादानादिक ये भक्तिज्ञानसे
अधम हैं इनसों अच्छो शरीर पायकें स्वर्गमें भोग करकें पीछें नरकमें गिरें
॥ ७० ॥ ७१ ॥ यासीप्रकार औरभी दिखावे कर्मजडनकी निंदा

यच्चोक्तं वेदएवस्यात्परं मानं नचेतरत् ॥
तत्कथं केवलाद्वेदाद्धर्मसिद्धिर्विचार्यताम् ॥ ७४ ॥
अंगहीनोयथा चांगी कर्तुं किंचिन्न वै क्षमः ॥
तथांगोपांगरहितोवेदः प्रोक्तोनिरर्थकः ॥ ७५ ॥
शिक्षा कल्पोव्याकरणं छंदोज्योतिर्निरुक्तकम् ॥
अंगैरेतैः क्षमा किंचिदर्थं वेदयितुं श्रुतिः ॥ ७६ ॥
पुराणन्यायमीमांसाधर्मशास्त्राणि च श्रुतेः ॥
उपाङ्गानि च चत्वारि याज्ञिकस्य स्रुगादिवत् ॥ ७७ ॥
प्रामाण्यं च पुराणादेर्वेदएव समीरितम् ॥
मुंडके पठ्यते सम्यग्बृहदारण्यके तथा ॥ ७८ ॥

तत्र प्रथममुंडके

द्वे विद्ये वेदितव्येइति ह स्म यद्ब्रह्मविदोवदंति
परा चैवाऽपरा च तत्रापरा ऋग्वेदोयजुर्वेदः सा
मवेदोब्रह्मवेदः शिक्षा कल्पोव्याकरणं निरुक्तं छंदोज्योतिष
मितिहासः पुराणं न्यायो मीमांसाधर्मशास्त्राणीति ॥ ७९ ॥

देखो ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ ओर जो कहो के वेदही प्रमाण हे दूसरो नहीं तो केवल वेदसों धर्मसिद्धि केसे होयगी ॥ ७४ ॥ जेसो अंगहीन मनुष्य कछू कार्य नहीं करसके हे एसेही अंगहीन वेदबी निरर्थक हे ॥ ७५ ॥ शिक्षा कल्प व्याकरण छन्द ज्योतिष निरुक्त इन अंगनकरकें श्रुति अर्थ बोध कर सके हे ॥ ७६ ॥ पुराण न्याय मीमांसा धर्मशास्त्र ये चार उपांग हें जेसे याज्ञिक मनुष्यके स्रुवा स्रुचि ॥ ७७ ॥ पुराणनको प्रामाण्य वेदहीमें कह्यो हे मुंडकमें बृहदारण्यमें अच्छीप्रकार कह्यो हे ॥ ७८ ॥ वहाँ प्रथम मुंडकमें जिनको ब्रह्मवेत्ता जानें हें वे दो विद्या जानवे योग्य हें एक परा दूसरी अपरा तामें ऋग्वेद,यजुर्वेद, सामवेद, अथवर्णवेद,शिक्षा,कल्प, व्याकरण,

याज्ञवल्क्य पुन प्राह सांगोपांगैस्त्रयीमिमाम् ॥
कारण धर्मजातस्य पुराणाद्यैश्च दिङ्मिते ॥ ८० ॥
पुराणन्यायमीमांसाधर्मशास्त्रांगमिश्रिता ॥
वेदा स्थानानि विद्यानां धर्मस्य च चतुर्दश ॥ ८१ ॥
ततश्चतुर्दशानां योपिंडितार्थे स वै प्रमा ॥
तेन संसाध्यते धर्मः केवलेन न छंदसा ॥ ८२ ॥
सध्याग्निहोत्रयज्ञादेर्विधय संति छंदसि ॥
इतिकर्तव्यता नैषां सांगा क्रमगता क्वचित् ॥ ८३ ॥
सांगवेदस्याध्ययने विज्ञाने च विधिस्तत ॥
पुराणादिभ्यएवास्य ज्ञान वेदस्य नान्यथा ॥ ८४ ॥
कायाधवस्तु प्रह्लादोपुराणाज्ज्ञायते यथा ॥
पुराणमंतरा त्वंगैर्न वेदार्थ प्रसिध्यति ॥ ८५ ॥
तत सांगश्च सोपांगोवेद सर्वार्थसाधक ॥
न वेदात्केवलात्कश्चिद्धर्म कुत्रापि दृश्यते ॥ ८६ ॥

निरुक्त, छंद ज्योतिष इतिहास, पुराण, न्याय, मीमांसा धर्मशास्त्र, ये अठारा विद्या हैं ॥ ७९ ॥ और याज्ञवल्क्यनेभी कह्यो है के अंग उपांगकरके सहित ये त्रयी विद्या सब धर्मनका कारण है ॥ ८० ॥ पुराण, न्याय, मीमांसा, धर्मशास्त्र, छहो अंग चारों वेद, ये विद्या हैं और धर्मके स्थान हैं ॥ ८१ ॥ यासों इन चौदहा विद्यानको पिंडीभूत जो अर्थ है या प्रमाण है याहीसों धर्म सिद्ध होय है केवल वेदसों नहीं ॥ ८२ ॥ सन्ध्या अग्निहोत्र यज्ञ आदिकी विधि वेदमें है परन्तु इनको क्रमसे करना यह इति कर्तव्यता नहीं कही है ॥ ८३ ॥ सांगवेदको पढना और वेदको ज्ञान पुराणादिकसों ही होय है दूसरे प्रकारसों नहीं ॥ ८४ ॥ कायाधव नाम प्रल्हादको है ये बात पुराणहीसों जेसे जानी जाय है याही प्रकार पुराण और अंगनके विना वेदको अर्थ नहीं जान्यो जाय है ॥ ८५ ॥ तासों अंग उपांगसहित

शौचाचमनविध्यादेर्धर्मशास्त्रं विनाऽगतिः ॥
यथा निरंगः पुरुषः कंचिदर्थं न साधयेत् ॥ ८७ ॥
तथा निरंगोवेदोप्यंगान्युपांगैर्विना तथा ॥
किं तु जैमिनिना तंत्रे विधिवादस्य मानतः ॥ ८८ ॥
उपयोगान्नार्थवादः प्रामाण्यमिति शंकितम् ॥
ततः प्रामाण्यमूलस्य संप्रदायस्य दर्शनात् ॥ ८९ ॥
सूत्रितं चार्थवादार्थं तुल्यं तु सांप्रदायिकम् ॥
एवमंगेष्युपांगे च पारंपर्यस्य दर्शनात् ॥ ९० ॥
वेदेन तुल्यं प्रामाण्यमनादृत्य च तद्गतम् ॥
पुराणं प्रथमोवेदः प्रथमं ब्रह्मणोदितम् ॥ ९१ ॥
चतुर्भिरपिवक्त्रैः स्वैस्ततोवेदाः प्रवर्त्तिताः ॥
इति मत्स्यपुराणोक्ताः कल्पे कल्पेऽस्य सृष्टयः ॥ ९२ ॥
व्यासादिकर्तृता चैषां वेदानां च कथादिवत् ॥
न हि वेदेऽखिलोधर्मः दृश्यमाने तु दृश्यते ॥ ९३ ॥

वेद सर्वार्थसाधक हे केवल वेदसों कोई बी धर्म कहीं नहीं दीखपडे हे ॥ ८६ ॥ शौच आचमन आदि विधिकी धर्मशास्त्रके विना कोई गति नहीं जेसें अंगहीनपुरुष कछू नहीं करसके हे एसेही निरंग वेद, ओर जैमिनिनेंबी तंत्रमें विधि वाद मान्यो हे ॥ ८७ ॥ ८८ ॥ ओर अर्थवादमें प्रामाण्यकी शंका करी हे ओर प्रामाण्यके मूलभूत सम्प्रदायके देखवेसों अर्थवादके लिये सूत्र किये तासों दोनों तुल्य हें याही प्रकार अंगउपांगमें परम्पराके देखवेसों वेदके तुल्य प्रामाण्य हे ब्रह्मासों कह्यो गयो पहलो वेद पुराण हे ॥ ८९ ॥ ९० ॥ ९१ ॥ पीछे चारों मुखसों वेद भये या मत्स्यपुराणके कथनसों कल्पकल्पमें याकी सृष्टि हे इनकों कर्तापनो तो व्यासादिकनको वेदकी कथाके जेसो हे वेदमें कहीं सम्पूर्ण धर्म नहीं दीख

गंगास्नानं तुलादानं गयाश्राद्धादि कुत्रचित् ॥
सितासितइति मंत्रो त्तीर्थराट्स्नपने विधिः ॥ ९४ ॥
इममइति मंत्रात्तु गंगापूताभिसूच्यते ॥
हिरण्यदाइति मंत्रो स्वर्णदाने विधिः श्रुतः ॥ ९५ ॥
दद्देति शतपथात्पुण्यं दानांतरं तथा ॥
आयांतुनः पितरइत्यादिभिः पितृतर्पणम् ॥ ९६ ॥
तृतीयं गयशीर्ष्णीति लक्ष्यते सापि पुण्यदा ॥
एवं धर्मांतरस्यापि मूलं वेदे प्रदृश्यते ॥ ९७ ॥
तन्मूलस्य पुराणादौ विस्तारोवृक्षवन्मतः ॥
वेदेप्युपासनाकांडं सूत्रं जैमिनिना कृतम् ॥ ९८ ॥
तन्मूलं भक्तिशास्त्रं तु प्राह गोपालतापिनी ॥
शांडिल्यसूत्रे विवृता पुराणादावुदाहृता ॥ ९९ ॥
किंच बौधायनः सूत्रे शिवकेशवयोः स्फुटम् ॥
प्राहार्चनविधिं सम्यक् तथैवोपनिषत्स्वपि ॥ १०० ॥

पडे हे ॥ ९२ ॥ ९३ ॥ गंगास्नान,, तुलादान गयाश्राद्ध आदिको मूल मात्र दीखे पडे हे जेसे "सितासिते" या मंत्रसों तीर्थराज प्रयागके स्नानकी विधि "इमंमे" या मंत्रसे गंगास्नान "हिरण्यदा" या मंत्रसों स्वर्णदानविधि देखे हे ॥ ९४ ॥९५॥ "ददत" या शतपथश्रुतिसों दान करनो बडो पुण्य कर्म हे "आयान्तुन पितर" यामों पितृतर्पण "गयशीर्ष्णी" यासों गयाको माहात्म्य सूचित होय हे याहीप्रकार दूसरे धर्मनकोभी मूलवेदमें देखें हे ॥ ९६ ॥ ९७ ॥ या मूलको वृक्षके जेसो पुराणादिकनमें विस्तार है वेदके उपासनाकांडके सूत्र जैमिनिने किये हे ॥ ९८ ॥ ताको मूल भक्ति शास्त्र गोपालतापिनी हे ताको विस्तार शांडिल्यसूत्रमें हे उदाहरण पुराणमें हे ॥ ९९ ॥ और बौधायनने सूत्रमें शिव विष्णुकी सेवाविधि स्पष्ट कही

यस्य देवे पराभक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ ॥
तस्यैते कथिताह्यर्थाः प्रकाशंते महात्मनः ॥ १०१
विष्णुसूक्ते पौरुषे च रुद्राध्याये तथापरे ॥
भक्त्यंगपूजनादीनां विधीनां च प्रशंसनात् ॥ १०२ ॥
अर्चतप्रार्चतइतिमंत्रेऽस्ति प्रतिमार्चनम् ॥
न तस्य प्रतिमा लोकइति मूर्त्योनिषेधनम् ॥ १०३ ॥
योब्रह्माणं विदधाति पूर्वं योवै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै ॥
तं ह देवमात्मबुद्धिप्रकाशं मुमुक्षुर्वैशरणमहं प्रपद्ये ॥ १०४ ॥
श्वेताश्वतारण्यकेऽस्ति प्रपत्तिविधिरीशितुः ॥
सैव गीतास्मृतौ व्यक्तिः कृता श्रुत्यनुगा स्मृतिः ॥ १०५ ॥
ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति ॥
भ्रामयन्सर्वभूतानि यंत्रारूढानि मायया ॥ १०६ ॥
तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत ॥
मत्प्रसादात्परां शांतिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम् ॥ १०७ ॥

हे ओर उपनिषदमेंबी कहीहे ॥ १०० ॥ के जाकी देवतामें परा भक्ति हे ओर जेसे देवतामें वेसी गुरुमें हे वा महात्माको कहे भये ये अर्थ प्रकाशित होय हें ॥ १०१ ॥ विष्णुसूक्त, पुरुषसूक्त, रुद्राध्याय इत्यादिकनमें भक्तिके अंग पूजनादिकनकी प्रशंसा देखें हें ॥ १०२ ॥ अर्चत, प्रार्चत इत्यादि मंत्रनमें प्रतिमापूजन हे "नतस्यप्रतिमा" या मंत्रमें ताके सादृश्यको निषेध हे ॥ १०३ ॥ जो ब्रह्माको धारण करे हे पहले जो ब्रह्माके लियें वेदनको कहतो भयो एसे अपने आप प्रकाशमान देवको मुमुक्षु में शरण प्राप्त होऊँ हूँ ॥१०४ ॥ एसे श्वेतारण्यकमें भगवान्के शरण होयवेकी विधि हे वोही विस्तारपूर्वक गीता ओर स्मृतिनमें हे श्रुतिके अर्थको कहवेवारी स्मृति होय हे ॥१०५॥ सबप्राणीनके हृदयदेशमें ईश्वर रहे हे हे अर्जुन ओर मायासों सब प्राणीनको भ्रमणकरावतो जेसो दीख पडे हे॥ १०६ ॥ ताके सब प्रकारसों शरण

गगास्नान तुलादान गयाश्राद्धादि कुत्रचित् ॥
सितासितइति मनोस्तीर्थराट्स्नपने विधि ॥ ९४ ॥
इमंमइति मंत्रा त्व गगापूताभिसूच्यते ॥ ,
हिरण्यदाइति मनो स्वर्णदाने विधि श्रुत ॥ ९५ ॥
ददेति शतपथात्पुण्यं दानांतर तथा ॥
आयांतुन पितरइत्यादिभि पितृतर्पणम् ॥ ९६ ॥
तृतीय गयशीर्षेति लक्ष्यते सापि पुण्यदा ॥
एव धर्मांतरस्यापि मूल वेदे प्रदृश्यते ॥ ९७ ॥
तन्मूलस्य पुराणादौ विस्तारोवृक्षवन्मत ॥
वेदेष्युपासनाकांड सूत्र जैमिनिना कृतम् ॥ ९८ ॥
तन्मूल भक्तिशास्त्र त प्राह गोपालतापिनी ॥
शांडिल्यसूत्रे विवृता पुराणादावुदाहृता ॥ ९९ ॥
किंच बोधायन सूत्रे शिवकेशवयो स्फुटम् ॥
प्राहार्चनविधि सम्यक् तथैवोपनिषत्स्वपि ॥ १०० ॥

पडे हे ॥ ९२ ॥ ९३ ॥ गगास्नान,, तुलादान गयाश्राद्ध आदिको मूल मात्र दीख पडे हे जैसे "सितासिते" या मंत्रसों तीर्थराज प्रयागके स्नानकी विधि "इमंमे" या मत्रसों गंगास्नान "हिरण्यदा" या मत्रसो स्वर्णदानविधि देखे हें ॥ ९४ ॥९५॥ "ददद" या शतपथश्रुतिसों दान करनो बडो पुण्य कर्म हे "आयान्तुन पितर" यासों पितृतर्पण "गयशीर्ष्णी" यासा गयाको माहात्म्य सूचित होय हे याहीप्रकार दूसरे धर्मनकोभी मूलवेदमें देखे हे ॥ ९६ ॥ ९७ ॥ या मूलको वृक्षके जैसो पुराणादिकनमें विस्तार हे वेदके उपासनाकांडके सूत्र जैमिनिने किये हें ॥ ९८ ॥ ताको मूल भक्ति शास्त्र गोपालतापिनी हे ताको विस्तार शांडिल्यसूत्रमें हे उदाहरण पुराणनमें हें ॥ ९९ ॥ ओर बोधायनने सूत्रनमें शिव विष्णुकी सेवाविधि स्पष्ट कही

प्रसादेन विशुद्धांतर्मनःसत्त्वो जनः स्वयम् ॥
ध्यानं च स्मरणं विष्णोस्तेन पश्यति चैति तम् ॥ ११५ ॥
कठे प्रवचनाद्वेदानां पाठान्मेधयार्थतः ॥
श्रुतेन बहुना ज्ञानाद्वेदांताभ्यासजादपि ॥ ११६ ॥
न गृह्यते परात्माऽसौ वेददृष्ट्याभिलक्षितः ॥
किं त्विमं साधकं सोयं वृणुते कृपयत्यलम् ॥ ११७ ॥
तेने लभ्यः कृपयति कमित्यत्र पुनर्वचः ॥
यं साधकं स वृणुते ह्यनुगृह्णाति चेश्वरः ॥ ११८ ॥
तस्य तस्मै निजात्मानं प्रकाशयति साकृतिम् ॥
यच्छन्देनाथवात्मायं वृणुते सेवते जनः ॥ ११९ ॥
धातुस्तु वृङ्संभक्तौ संभक्तिः सेवने मता ॥
तस्य तं चैष आत्माहि वृणुते कृपयत्यलम् ॥ १२० ॥
स्वां तनुं च चिदात्मानं लीलास्थं दर्शयत्यपि ॥
एवं च विहिता भक्तिर्गंगास्नानादिवच्छ्रुतौ ॥ १२१ ॥

उनकी प्रसन्नता भक्तिसों होय हे भक्तिहीसों मिलें हैं ॥ ११४ ॥ प्रसादसों अन्तःकरण शुद्ध होय हे तासों ध्यान स्मरण श्रीविष्णुको होय हे ताहीसों दीखें हे ॥ ११५ ॥ वेदनके यथार्थपढवेसों बहुश्रुतहोयवेसों वेदान्तके ज्ञानसों वेददृष्टिसों दिखायो गयो बी परात्मा नहीं मिले हे किन्तु कृपाकरकें भजवेवारेकों भक्तिसों मिले हे॥ ११६ ॥ ११७॥ अपने साधकके ऊपर ईश्वर कृपा करकें अपने स्वरूपकों दर्शन देय हें ॥ ११८ ॥ अपने साकार आत्माके दर्शन देय हैं जो जन उनकी सेवा करे हे ॥ ११९॥ "वृङ्संभक्तौ" धातु हे संभक्ति माने सेवा सेवासों आत्मा कृपा करे हे ओर अपने लीलास्थ स्वरूपके दर्शन देवे हे तासों गंगास्नानके जेसी श्रुतिमें भक्ति

तथा नारायणीयेपि मुंडकेपि कठेऽपि सा ॥
श्रूयते भक्तिरंगैः स्वैस्तदर्थं किंचिदुच्यते ॥ १०८ ॥
दहं विपाप परवेश्मभूतं यत्पुंडरीकं पुरमध्यसस्थम् ॥
तत्रापि दहं गगनं विशोकं तस्मिन्पदं तत्तदुपासितव्यम् १०९
न चक्षुपा गृह्यते नापि वाचा नान्यैर्देवैस्तपसा कर्मणा वा ॥
ज्ञानप्रसादेन विशुद्धसत्वस्ततस्तु पश्यति निष्कलं ध्यायमानं ११०
नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन ॥
यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा वृणुते तनुं स्वाम् १११
दहं तु हृदयाकाशं परमव्योमसंज्ञितम् ॥
वेश्मैतद्ब्रह्मणोऽव्यक्तेः पुरे देशे हृदम्बुजे ॥ ११२ ॥
अम्बुजे दहरं व्योम सत्यलोकं सदाऽभयम् ॥
यत्पदं तद्धरेरूपं भजनं तदुपासनम् ॥ ११३ ॥
अथ मुंडकमन्त्रे तदग्राह्यं चक्षुरादिभिः ॥
ज्ञानं ब्रह्म तत्प्रसादो भक्तिजस्तेन गृह्यते ॥ ११४ ॥

जावो हमारी प्रसन्नतासों पर शांति ओर अचल स्थानको पावोगे॥१०७॥ याहीप्रकार नारायणीय मुंडक कठ इत्यादि उपनिषदनमें अंगसहित भक्ति सुनें हें सो अर्थ कछु कहें हें ॥ १०८ ॥ पापरहित उत्तमकमलमें पुरके बीचमें शोकरहित परमात्माको स्थान हे तामें उपासना करनी ॥ १०९ ॥ न नेत्रसों, न वाणीसों, न तपस्यासों, न कर्मसों जान्यो जाय हे किन्तु भक्तिभावनसों विशुद्धचित्तवारे वाकों ध्यान करते देखें हें ॥ ११० ॥ ये आत्मा पढवेसों, बुद्धिसों, बहुत श्रवणकरवेसों नहीं मिले हे जो याकों भजे हे वाकों ये अपनो स्वरूप दिखावे हे ॥ १११ ॥ दहरनाम हृदयाकाशको हे वाहीको नाम परमव्योम हे हृदयकमलमें हे ब्रह्मको ये स्थान हे ॥ ११२ ॥ वाहीमें सदा अभय सत्यलोक हे सो हरिको पद हे सो उनको भजन उनकी उपासना हे ॥ ११३ ॥ याहीप्रकार मुंडकमें नेत्रआदिसों वो नहीं मिले हे ये कह्यो हे

श्रुत्वा संतोषमापन्ना ब्राह्मणा वेदपारगाः ॥
सर्वे प्रणेमुराचार्यान् तदुक्ताचारमादधुः ॥ १२९ ॥
ऊर्द्धपुंड्रं हरेः पूजां वैष्णव्यैकादशीव्रतम् ॥
जगद्ब्रह्मैक्यसिद्धांतेप्यासन् सत्कार्यवादिनः ॥ १३० ॥
केचिच्छरणमायाता मृन्मुद्रास्रग्भृतोऽभवन् ॥
पादार्चनादिविधिना संपूज्य भवनं गताः ॥ १३१॥
वेदपारायणं चक्रुस्तत्र ब्राह्मणसंसदि ॥
ततस्ते ववहुर्वायव्याशां प्रति तदर्चिताः ॥ १३२ ॥
श्रीवेदव्यासविष्णुप्रभुचरणमिते सम्मिते ग्रन्थसार्थैः
श्रीगोविन्दाभिधानां समयनयविदां देशिकानां निदेशात् ॥
आचार्याणां चरित्रे हरिजनसुखदे शास्त्रिकृष्णैर्निबद्धे
प्रस्थानेऽस्मिँस्तृतीये समजनि पटह श्चाङ्कसंख्यो जयाख्ये १३३

शेषभट्टआदिनें सब निरूपण कियो ॥ १२८ ॥ सो सुनके वैदिक ब्राह्मण सब सन्तुष्ट भये ओर आपको प्रणाम करकें आपके कहे आचारको ग्रहण कियो ॥ १२९ ॥ ओर ऊर्द्धपुंड्र हरिसेवा वैष्णवी एकादशीव्रत जगद्ब्रह्मकी एकतारूप सिद्धान्त सत्कार्यवाद इनमें दृढभये ॥ १३० ॥ कोई शरणागतवी भये ऊर्द्धपुंड्र मृत्तिकाकी मुद्रा तुलसीकाठकी मालाकों धारण कियो ओर आपको विधानसों पूजन करकें अपने २ घरनकों गये ॥ १३१ ॥ ओर श्रीमदाचार्यजीनें ब्राह्मणनकी सभामें वेदको पारायण करकें उनसों पूजित होयकें वहाँसो वायव्य दिशाकों पधारे ॥ १३२ ॥ समय नीतिके जानवेवारे जगद्गुरु श्रीमद्गोविन्दाचार्यजीकी आज्ञासों कृष्णशास्त्रीके बनाये श्रीवेदव्यास विष्णुस्वामिमतके ग्रन्थनके अनुकूल हरिभक्तनके सुख देवेवारे या चरित्र ग्रन्थके तीसरे प्रस्थानमें ये नवम पटह समाप्त भयो १३३॥

धर्म साधारणोऽसौ वै सर्वेषां समुदाहृत ॥
सत्यशौचादिसन्नात संस्काराधिकृतो रुत ॥ १२२ ॥
अनेन प्राप्यते ब्रह्मानंदादपि फलं महत् ॥
न ज्ञानिभिस्तत्सुलभ दुर्दुरूढे क्व कर्मभिः ॥ १२३ ॥
एतद्धर्माधिकारे तु विष्णुधर्मोत्तरादिषु ॥
स्वपुंड्रमुद्रा विहिता गृहिणां चोर्ध्वरेतसाम् ॥ १२४ ॥
तस्माद्विधीयतेऽस्माभिर्वद्धुभिर्हरिपूजनम् ॥
इमं धर्म प्रशसति ह्याचार्या शंकरादय ॥ १२५ ॥
विष्णुस्वाम्यस्मदाचार्य कृष्णद्वैपायनाद्गुरो ॥
अधिगम्यैतमाम्नायं श्रौताचारस्चारयत् ॥ १२६ ॥
अत्र गीता स्मृतिर्मान स्मार्तसूत्रान्न किं परा ॥
या स्वय पद्मनाभस्य मुखपद्माद्विनि सृता ॥ १२७ ॥
इत्युक्त्वा श्रीमदाचार्यास्तूष्णीमासुर्मितोक्तय ॥
विशेष शेषभट्टाद्यैस्तत्र सर्वं निरूपितम् ॥ १२८ ॥

विहित हे ॥ १२० ॥ १२१ ॥ सबको सत्य शौचके जेसो ये साधारण धर्म हे केवल संस्कारवारेहीको नहीं ॥ १२२ ॥ यासो ब्रह्मानन्दसोंबी अधिक फल मिले हे जो ज्ञानीनकोबी दुर्लभ हे दुराग्रही कर्मठ इनको तो कहाँ ॥ १२३ ॥ या धर्माधिकारमें विष्णुधर्मोत्तर आदिग्रन्थनामें ऊर्द्धरेता गृहस्थनके लिये तुलसीमाला ऊर्द्धपुंड्र शीतलमुद्रा धारण विहित हे ॥ १२४ ॥ तासों बालक हम हरिसेवा करें हे ओर या धर्मकी शंकरादिक आचार्यननभी प्रशंसा करी हे ॥ १२५ ॥ विष्णुस्वामी हमारे आचार्य कृष्णद्वैपायन व्यास गुरुसों या सम्प्रदायको पायके श्रौत वेदविहित आचारसों प्रचार करते भये ॥ १२६ ॥ यामें गीता स्मृति प्रमाण हे वो स्मार्तसूत्र नसों श्रेष्ठ क्या नहीं जो श्रीभगवानके मुखकमलसों निकसी भई हे ॥ १२७ ॥ ये कहक मितभाषी श्रीमदाचार्यजी चुप होयगये ओर विशेष

तेन ग्रंथसहस्राणि कृतानि बाललीलया ॥
पाषंडिनो जिताः सर्वे हरिभक्तिः प्रवर्तिता ॥ ८ ॥
तस्य षोडशशिष्याणां यतयोष्टाविह स्थिताः ॥
ते सर्वे स्वस्ववारेण रामकृष्णादिमूर्तिगम् ॥ ९ ॥
नारायणं पूजयंति सूर्याष्टसुरसद्मसु ॥
वल्लभानागतान् श्रुत्वाऽऽचार्यानाचार्यपूरुषाः ॥ १० ॥
अभिनिन्युर्हरेः स्थाने बहुमानपुरःसराः ॥
मिलितास्तत्र यतयो मुंडाः काषायवाससः ॥ ११ ॥
त्रिदंडधारिणश्चोर्द्धपुंड्रतप्तांकधारिणः ॥
तत्र देवं नमस्कृत्य कृतोपायनसत्क्रियाः ॥ १२ ॥
उपविष्टा हरेरग्रे यतीशेन समाहृताः ॥
सम्यक्सम्यगिहायातमाचार्यैर्हरितुष्टये ॥ १३ ॥
रक्षितोध्वा हरेरेव कृष्णदेवसभाजये ॥
जिताशेषा दंडभृतो यात्रायाः कांडतांडवे ॥ १४ ॥

भये ॥ ७ ॥ जिननें बाललीला करकें हजारन ग्रन्थ निर्माण किये ओर पाखंडीनकों जीत्यो हरिभक्ति चलाई ॥ ८ ॥ उनके सोरह शिष्यनमेंसो आठ यति यहाँ हें वे सब अपनी २ पारीसों रामकृष्णादि मूर्तिगत नारायणकों सूर्य आदि आठ देवमंदिरनमें पूजन करें हें सो उनके मनुष्य श्रीमदाचार्यकों पधारे सुनकें बडेमानसों भगवान्के मंदिरमें आपकों पधरायो ओर काषायवस्त्र धारण किये त्रिदडंधारी ऊर्द्धपुंड्र तप्तमुद्रा धारण किये यति मिले ॥ ९ ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥ वहाँ देवकों नमस्कार भेट करकें उनके आदरसों भगवान्के समक्ष आप विराजमान भये तब वे बोले जो हरिकें प्रसन्नताके लिये आप यहाँ पधारे सो ठीक भयो ओर कृष्णदे[illegible]ाकी सभामें भगवान्के मार्गकी [illegible]

उडुप वायवीयानां पदं विश्वार्णवोडुपम् ॥
मलयाद्रिं समुत्तीर्य प्राप्तास्तत्रोडुपस्थले ॥ १ ॥
यत्र प्रादुर्बभौ पूर्व पूर्णप्रज्ञो महामुनि ॥
पुरे रजतपीठाख्ये मधुभट्टो द्विजाग्रणी ॥ २ ॥
वेदवेदांतसंपन्नो हरिभक्तो महामति ॥
तस्य गेहेऽवतीर्णोऽसौ मरुत्प्रतियुगोदित ॥ ३ ॥
वायु कपीश्वरो भीमो मध्वाचार्यो हरे प्रिय ॥
मन्त्रेषु श्रूयते यस्य महिमाऽव्याहतौजस ॥ ४ ॥
स संस्कृतश्चोपनीत सम्यग्धृतवटुव्रत ॥
सहस्रशाखाध्याय्यास पूर्णप्रज्ञो मुनिस्तत ॥ ५ ॥
सर्वशास्त्रेषु निपुण कृष्णद्वैपायनादिवत् ॥
विश्वोद्धाराय संभूतो द्वैतसिद्धांतभास्कर ॥ ६ ॥
अक्षोभ्यतीर्थादक्षोभ्यतीर्थात्प्राप्तो महामनु ॥
प्रभंजनो द्विषां विष्णोर्मध्वाचार्य प्रभंजन ॥ ७ ॥

सो मल्याचलसे उतरके संसाररूपीसमुद्रके लिये नौकारूप एसे वायवीय नके उडुप स्थानमें पधारे ॥ १ ॥ जहाँ पहले पूर्णप्रज्ञ महामुनि प्रगट भये हे रजतपीठपुरमें ब्राह्मणनमें श्रेष्ठ वेदवेदान्तसम्पन्न महामति हरिभक्त मधुभट्टके घरमें पवनके अवतार भये ॥ २ ॥ ३ ॥ वायु कपीश्वर भीम हरिके प्रिय मध्वाचार्य इन नामनसो जिनकी महिमा मन्त्रनमें सुन हैं ॥ ४ ५ वे संस्कार पायके उपनीत होयके ब्रह्मचर्यव्रत धारण करके हजारशाखाके पढ़ ेवारे पूर्णप्रज्ञमुनि भये ॥५॥ सब शास्त्रनमें निपुण वेदव्यासके जेसे संसारके उद्धारके लिये द्वैतसिद्धान्तके सूर्यरूप प्रगट भये ॥६॥ जिनने अक्षोभ्यतीर्थसों महामन्त्र पायो हो ओर विष्णुके द्वेषीनके तोडवेवार प्रभंजन मध्वाचार्य

वाक्यार्थश्चापि शास्त्रार्थः प्रमा प्रकरणादिभिः ॥
त्याज्यं दोषवदित्येके कर्म प्राहुर्मनीषिणः ॥ २२ ॥
यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यमिति चापरे ॥
कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन ॥ २३ ॥
मा कर्मफलहेतुर्भूर्माते संगोस्त्वकर्मणि ॥
इत्यादिभगवद्वाक्यात्कर्मत्यागोन शस्यते ॥ २४ ॥
वर्णाश्रमाचारवता समाराध्योहरिर्मतः ॥
यदा तु वैदिकं कर्म द्विजानां श्रुतिचोदितं ॥ २५ ॥
आवश्यकं तदा तस्य शास्त्रं किं न हि संमतं ॥
आसमुद्रात्तु यत्पूर्वादासमुद्रात्तु पश्चिमात् ॥ २६ ॥
हिमवद्विंध्ययोर्मध्ये शास्त्रं प्रचरितं प्रमा ॥
तत्र वर्णाश्रमाचारे तप्तांकाना च धारणं ॥ २७ ॥
विधीयते न कुत्रापि बहुधा तन्निषिध्यते ॥
स्वदेहे चान्यदेहे च भवेदत्रिकणोद्विजः ॥ २८ ॥

प्रकरणादिकनसों जो अर्थ कियो जाय हे वो प्रमाण होय हे कहीं दोषवारे कर्मनकों बुद्धिमाननें त्यागवो कह्यो हे ॥ २१ ॥ २२ ॥ यज्ञ, दान, तप, ये कर्म नहीं छोडनें ये दूसरे कहें हें कर्म करनेहीमें अधिकार हे फलमें कदापि नहीं ॥ २३ ॥ कर्मके फलके अभिलाषी न होवे। ओर विना कर्मकेवी न रहो इत्यादि भगवान्के वचननसों कर्मत्याग प्रशंसाके योग्य नहीं हे ॥ २४ ॥ वर्णाश्रमधर्ममें रहके हरिकी आराधना करनी जो कर्म ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्यके लिये वेदमें कहें हें वे उनके लिये आवश्यक हें कहा शास्त्र नहीं प्रमाण हे पूर्वसमुद्रसों लेकें पश्चिम समुद्रताईं हिमवान् विन्ध्याचलके बीचमें शास्त्र प्रमाण हे तामें वर्णाश्रमाचारमें तप्त मुद्रा धारण कहीं नहीं देखेंहें ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥ बहोत करकें निषेध हे अपने देह या परदेहमें अंकन द्विजातिको न करनो चहिये श्रौत-

वैतण्डिकैः पण्डितैश्च मण्डितार्थंडयुक्तिभिः ॥
श्रूयते दर्भशयने धिक्कृतावीरवैष्णवाः ॥ १५ ॥
कर्मत्यागाद्भेदवादाद्दोषात्तप्तांकजादपि ॥
किमिदं वैष्णवाचार्यैर्भवद्भिः समनुष्ठितम् ॥ १६ ॥
भेदवादस्तप्तांकभृतिर्वैष्णवानां सदोचितः ॥
कथयंतश्चाकर्णैर्हस्तत्र गुरवो गूढयुक्तयः ॥ १७ ॥
बाढं बाढं यतिवरैर्जल्पितं जल्पशालि तत् ॥
तप्तांकधारणं भेदवादो विष्णुजनोचितम् ॥ १८ ॥
कर्मत्यागः कथं नैव तर्त्कि तंत्रेण तात्रित ॥
सर्वधर्मान्परित्यज्येत्यादौ तस्यापि दर्शनात् ॥ १९ ॥
तथाज्ञानामृताख्येषु कचित्तंत्रे तथोच्यते ॥
न चैव वचनाभासादर्थे सिद्धांततो भवेत् ॥ २० ॥
सिद्धांतात्तु परिज्ञानं गौतमेन प्रदर्शितम् ॥
हेत्वाभासान् छलान् ज्ञात्वा ज्ञात्वा जातिविनिग्रहान् ॥ २१ ॥

॥ १४ ॥ ओर बडीयुक्तिवारे वितंडावाद करवेवारे पंडितनके सहित दर्भशयनमें वीरवैष्णव धिक्कारे गये ये भी सुन्यो ॥ १५ ॥ परन्तु कर्मत्याग, भेदवाद, तप्तमुद्रा धारण, इनसो दोष होय हे या पक्षकों वैष्णवाचार्य होयके आपने केसे स्वीकार कियो ॥ १६ ॥ भेदवाद तप्तमुद्रा धारण ये वैष्णवनको सदा उचित हे ये कहके हँसवेलगे तब श्रीमदाचार्यजी बोले ॥ १७ ॥ जो यतिश्रेष्ठनन ठीक कह्यो तप्तांकधारण भेदवाद वैष्णवनको उचित हे ॥ १८ ॥ कर्मत्यागभी क्यों नहीं योग्य कोई तन्त्रसों तन्त्रित हे "सर्वे धर्मान् परित्यज्य" इत्यादिमें ताकों देखें हैं ॥ १९ ॥ वेसे अज्ञानभी सत्यपनामों कोई तन्त्रमें कह्यो गयो हे परन्तु एसे वचननके आभासमात्रसों सिद्धान्त अर्थ नहीं होय हे ॥ २० ॥ सिद्धान्तसों अर्थज्ञान गौतमने दिखायो हे जातिविनिग्रह हेत्वाभासनकों जानके

अथवा देशकालादिभेदाच्छास्त्रं विभिद्यते ॥
तत्र स्वाम्नायतो मानमुदितानुदितादिवत् ॥ ३६ ॥
यच्छास्त्रं येन शिष्टेन गृहीतं स्वगुरोः क्रमात् ॥
तच्छास्त्रं तस्य संग्राह्यं को विवादस्ततो भवेत् ॥ ३७ ॥
भवतां संप्रदाये तु तप्तमुद्राभृतिर्यथा ॥
तथाऽस्मत्संप्रदायेपि मृन्मुद्राधारणं मतम् ॥ ३८ ॥
पुराणे स्मृतिवाक्ये च तथा भागवतागमे ॥
मृन्मुद्रया हरिस्तुष्येदिति किं न निरूपितम् ॥ ३९ ॥
तप्तांकधारणं कृत्वा द्रोहमुत्पाद्य वैदिकैः ॥
प्रत्यहं कलहं कार्यं गृहिणां न तथोचितम् ॥ ४० ॥
वैष्णवाश्रमसंस्थानामभीतानां तयोरपि ॥
वैष्णवानां तदुचितं तप्तांकानां च धारणम् ॥ ४१ ॥
भेदवादे चोपनिषद्बहुधैव विरुध्यते ॥
तथा भागवते शास्त्रे भारतादौ न तन्मतम् ॥ ४२ ॥

हे ॥ ३५ ॥ अथवा देशकालभेदसों शास्त्रबी भिन्न हैं तासों अपने २ सम्प्रदायके अनुसार चलनो उदयमें होम करनो अनुदयमें होम करनो ये दोनों शाखाभेदसों प्रमाण हैं ॥ ३६ ॥ जा शास्त्रको जा शिष्टनें अपने गुरुक्रमसों ग्रहण कियो हे वाको वोही प्रमाण हे विवाद क्यों होयगो ॥ ३७ ॥ जेसे आपके सम्प्रदायमें तप्तमुद्रा धारण हे वेसेही हमारेमें मृत्तिकाकी मुद्रा हैं ॥ ३८ ॥ पुराण स्मृति भागवतागम इनमें मृत्तिकाकी मुद्रासों हरि प्रसन्न होय हैं ये कहा नहीं लिख्यो ॥ ३९ ॥ तप्तमुद्राधारण करकें वैदिकनकें संग द्रोह उत्पन्न करकें प्रतिदिन लडाई करनो ये गृहस्थनकों उचित नहीं ॥ ४० ॥ वैष्णवाश्रममें जो अभयवारे हें अर्थात् वीर हैं उनको वोवी उचित हे ॥ ४१ ॥ ओर भेदवादमें तो उपनिषद् प्रायः बहोत विरुद्ध हैं

नाधिकुर्वैति दग्धांगा श्रौतस्मार्त्तेषु कर्मसु ॥
एकजातेरयंधर्मो न जातु स्याद्द्विजन्मन ॥ २९ ॥
इत्यादिस्मार्त्तवचनैर्धर्मशास्त्रे निषेधनात् ॥
श्रौतस्मार्तविधौ धर्मकर्तुस्तन्नैव शस्यते ॥ ३० ॥
उक्त भागवताचारे यद्यप्यंकावधारणम् ॥
तथापि त द्विरुद्धं नोचित धर्मार्थिनां नृणाम् ॥ ३१ ॥
यत्तु वैष्णवधर्मेषु पंचमुद्रां विना हरे ॥
पूजन नेति तस्यार्थे मृन्मुद्रा नो विधीयताम् ॥ ३२ ॥
तप्तमुद्रा यथा विष्णोर्मृन्मुद्रा वल्लभा तथा ॥
पूजाकाले धृतिस्तस्या कार्या को वा निषेधति ॥ ३३ ॥
यत्तु य शखचक्रादि मृदा तप्तायसेन वा ॥
स शूद्रवद्बहिष्कार्य इत्यादौ यन्निषिध्यते ॥ ३४ ॥
तन्न पूजादिसमये निषेधो हरिसेविनाम् ॥
कर्मठानां तु यज्ञादौ तन्निषेधस्य दर्शनात् ॥ ३५ ॥

स्मार्तकर्मम दग्धाग मनुष्यको अधिकार नहीं हे ॥ २८ ॥ शूद्रको ये धम हे द्विजन्माको नहीं हे ॥ २९ ॥ इत्यादिक स्मृतिवचननसों धर्मशास्त्रमें निषेध हे श्रौतस्मार्तधर्म करवेवारेनको यो प्रशसनीय नहीं हे ॥ ३० ॥ भागवताचारमें कह्योयी हे तोपी धर्मार्थी मनुष्यनको यो विरुद्ध हे ॥ ३१ ॥ जो वैष्णवधर्ममें पचमुद्राके विना हरिको पुजन नहीं होयहे ये लिख्यो हे सो शीतल मुद्रापर हे ॥ ३२ ॥ जेसी तप्त मुद्राहे वेसेही शीतल मुद्रा हे ताके पूजासमयमें धारण करवेमें कोन निषेध करे हे ॥ ३३ ॥ ओर जो लिख्यो हे के मृत्तिकासों या तप्त लोहसों जो शखचक्रादि धारण करे हे ताको शूद्रके जेसे सब कामनमें बाहेर करनो ॥ ३४ ॥ सो सो भक्तनके लिये पूजाके समयमें निषेध नहीं हे कर्मठनको यज्ञादिकमें निषेध

अथवा देशकालादिभेदाच्छास्त्रं विभिद्यते ॥
तत्र स्वाम्नायतो मानमुदितानुदितादिवत् ॥ ३६ ॥
यच्छास्त्रं येन शिष्टेन गृहीतं स्वगुरोः क्रमात् ॥
तच्छास्त्रं तस्य संग्राह्यं को विवादस्ततो भवेत् ॥ ३७ ॥
भवतां संप्रदाये तु तप्तमुद्राभृतिर्यथा ॥
तथाऽस्मत्संप्रदायेपि मृन्मुद्राधारणं मतम् ॥ ३८ ॥
पुराणे स्मृतिवाक्ये च तथा भागवतागमे ॥
मृन्मुद्रया हरिस्तुष्येदिति किं न निरूपितम् ॥ ३९ ॥
तप्तांकधारणं कृत्वा द्रोहमुत्पाद्य वैदिकैः ॥
प्रत्यहं कलहं कार्यं गृहिणां न तथोचितम् ॥ ४० ॥
वैष्णवाश्रमसंस्थानामभीतानां तयोरपि ॥
वैष्णवानां तदुचितं तप्तांकानां च धारणम् ॥ ४१ ॥
भेदवादे चोपनिषद्बहुधैव विरुध्यते ॥
तथा भागवते शास्त्रे भारतादौ न तन्मतम् ॥ ४२ ॥

है ॥ ३५ ॥ अथवा देशकालभेदसों शास्त्रबी भिन्न हैं तासों अपने २ सम्प्रदायके अनुसार चलनो उदयमें होम करनो अनुदयमें होम करनो ये दोनों शाखाभेदसों प्रमाण हैं ॥ ३६ ॥ जा शास्त्रको जा शिष्टनें अपने गुरुक्रमसों ग्रहण कियो है वाको वोही प्रमाण है विवाद क्यों होयगो ॥ ३७ ॥ जैसे आपके सम्प्रदायमें तप्तमुद्रा धारण है वैसेही हमारेमें मृत्तिकाकी मुद्रा है ॥ ३८ ॥ पुराण स्मृति भागवतागम इनमें मृत्तिकाकी मुद्रासों हरि प्रसन्न होय हैं ये कहा नहीं लिख्यो ॥ ३९ ॥ तप्तमुद्राधारण करकें वैदिकनकें संग द्रोह उत्पन्न करकें प्रतिदिन लडाई करनो ये गृहस्थनकों उचित नहीं ॥ ४० ॥ वैष्णवाश्रममें जो अभयवारे हैं अर्थात् वीर हैं उनको वोबी उचित है ॥ ४१ ॥ और भेदवादमें तो उपनिषद् प्रायः बहोत विरुद्ध हैं

नाधिकुर्वीति दग्धांगा श्रौतस्मार्त्तेषु कर्मसु ॥
एकजातेरयं धर्मो न जातु स्याद्द्विजन्मनः ॥ २९ ॥
इत्यादिस्मार्त्तवचनैर्धर्मशास्त्रे निषेधनात् ॥
श्रौतस्मार्तविधौ धर्मकर्तुस्तत्रैव शस्यते ॥ ३० ॥
उक्त भागवताचारे यद्यप्यैकावधारणम् ॥
तथापि त 'द्विरुद्ध नोचित धर्मार्थिनां नृणाम् ॥ ३१ ॥
यत्तु वैष्णवधर्मेषु पचमुद्रां विना हरे ॥
पूजन नेति तस्यार्थे मृन्मुद्रा नो विधीयताम् ॥ ३२ ॥
तप्तमुद्रा यथा विष्णोर्मृन्मुद्रा वल्लभा तथा ॥
पूजाकाले धृतिस्तस्या कार्या को वा निषेधति ॥ ३३ ॥
यत्तु य शखचक्रादि मृदा तप्तायसेन वा ॥
स शूद्रवद्बहिष्कार्य इत्यादौ यन्निषिध्यते ॥ ३४ ॥
तन्न पूजादिसमये निषेधो हरिसेविनाम् ॥
कर्मठानां तु यज्ञादौ तन्निषेधस्य दर्शनात् ॥ ३५ ॥

स्मार्तकर्मम दग्धांग मनुष्यको अधिकार नहीं हे ॥ २८ ॥ शूद्रको ये धर्म हे द्विजन्माको नहीं हे ॥ २९ ॥ इत्यादिक स्मृतिवचननसों धर्मशास्त्रम निषेध हे श्रौतस्मार्तधर्म करवेवारेनको यो प्रशंसनीय नहीं हे ॥ ३० ॥ भागवताचारमें कह्योपी हे तोभी धर्मार्थी मनुष्यनको यो विरुद्ध हे ॥ ३१ ॥ जो वैष्णवधर्ममें पंचमुद्राके विना हरिको पूजन नहीं होयहे ये लिख्यो हे सो शीतल मुद्रापर हे ॥ ३२ ॥ जेसी तप्त मुद्राहे वेसेही शीतल मुद्रा हे ताके पूजासमयमें धारण करवेमें कोन निषेध करे हे ॥ ३३ ॥ ओर जो लिख्यो हे के मृत्तिकासों या तप्त लोहसों जो शंखचक्रादि धारण करे हे ताको शूद्रके जेसे सब कामनमें बाहेर करनो ॥ ३४ ॥ सो यो भक्तनके लिये पूजाके समयमें निषेध नहीं हे कर्मठनको यज्ञादिकमें निषेध

अथवा देशकालादिभेदाच्छास्त्रं विभिद्यते ॥
तत्र स्वाम्नायतो मानमुदितानुदितादिवत् ॥ ३६ ॥
यच्छास्त्रं येन शिष्टेन गृहीतं स्वगुरोः क्रमात् ॥
तच्छास्त्रं तस्य संग्राह्यं को विवादस्ततो भवेत् ॥ ३७ ॥
भवतां संप्रदाये तु तप्तमुद्राभृतिर्यथा ॥
तथाऽस्मत्संप्रदायेपि मृन्मुद्राधारणं मतम् ॥ ३८ ॥
पुराणे स्मृतिवाक्ये च तथा भागवतागमे ॥
मृन्मुद्रया हरिस्तुष्येदिति किं न निरूपितम् ॥ ३९ ॥
तप्तांकधारणं कृत्वा द्रोहमुत्पाद्य वैदिकैः ॥
प्रत्यहं कलहं कार्यं गृहिणां न तथोचितम् ॥ ४० ॥
वैष्णवाश्रमसंस्थानामभीतानां तयोरपि ॥
वैष्णवानां तदुचितं तप्तांकानां च धारणम् ॥ ४१ ॥
भेदवादे चोपनिषद्बहुधैव विरुध्यते ॥
तथा भागवते शास्त्रे भारतादौ न तन्मतम् ॥ ४२ ॥

है ॥ ३५ ॥ अथवा देशकालभेदसों शास्त्रबी भिन्न हैं तासों अपने २ सम्प्रदायके अनुसार चलनो उदयमें होम करनो अनुदयमें होम करनो ये दोनों शाखाभेदसों प्रमाण हैं ॥ ३६ ॥ जा शास्त्रको जा शिष्टनें अपने गुरुक्रमसों ग्रहण कियो है वाको वोही प्रमाण है विवाद क्यों होयगो ॥ ३७ ॥ जैसे आपके सम्प्रदायमें तप्तमुद्रा धारण है वैसेही हमारेमें मृत्तिकाकी मुद्रा हैं ॥ ३८ ॥ पुराण स्मृति भागवतागम इनमें मृत्तिकाकी मुद्रासों हरि प्रसन्न होय हैं ये कहा नहीं लिख्यो ॥ ३९ ॥ तप्तमुद्राधारण करकें वैदिकनकें संग द्रोह उत्पन्न करकें प्रतिदिन लडाई करनो ये गृहस्थनकों उचित नहीं ॥ ४० ॥ वैष्णवाश्रममें जो अभयवारे हैं अर्थात् वीर हैं उनको वोबी उचित है ॥ ४१ ॥ और भेदवादमें तो उपनिषद् प्रायः बहोत विरुद्ध हैं

आरब्धं कारणज्ञानात्कार्यज्ञानमभेदगम् ॥
सदेवसौम्येदमग्र आसीदिति निरूप्य च ॥ ५० ॥
तत्सत्यं च स आत्मा च ततस्तत्त्वमसीति च ॥
उपसंहारवाक्येपि नात्र भेदः प्रतीयते ॥ ५१ ॥
अतच्छेदो ङसोर्लोपो न प्रपाठकसंमतः ॥
भेदे नत्वमसीत्येवं कुतो वेदे न भाषितम् ॥ ५२ ॥
व्याप्यव्यापकभावेन पुत्रपत्न्यादिवच्च वा ॥
यो भेदः सोपचारेण केन बाधेन सिद्ध्यति ॥
श्रुतौ तु भेदवादस्य निषेधो बहुधोच्यते ॥ ५३ ॥

तैत्तिरीये नारायणीये–

यदा ह्येवैष एतस्मिन्नदृश्येऽनात्म्येऽनिरुक्तेऽनिलयने
अभयं प्रतिष्ठां विंदति अथ सोऽभयं गतो भवति
यदा ह्येवैष एतस्मिन्नुदरमंतरं कुरुते अथ तस्य भयं भवति ५४॥

होयगी ॥ ४९॥ कारणके ज्ञानसों कार्यज्ञान अभेदसों पहले भयो एक सत्-हीको निरूपण करकें "तन्सत्यम्" "सआत्मा" "तत्वमसि" इत्यादिक उपसं-हार वाक्यनमें भेदकी प्रतीति नहीं होयहे ॥ ५० ॥ ५१ ॥ "सआ-त्मा" के आगे "अतत्त्वमसि" ये पदच्छेद अथवा ङसूको लोप प्रपा-ठकसंमत नहीं हे भेदमें "नत्वमसि" एसो वेदमें क्यों नहीं कह्यो ॥ ५२ ॥ ओर व्याप्यव्यापकभावसों अथवा पुत्रपत्नीनिके जेसो भेद कोन उपचारसों सिद्ध होयगो ॥ ५३ ॥ श्रुतिमें तो भेदवादको वहोत करकें निषेध कह्यो हे तैत्तिरीय नारायणीमें जव ये आत्मामें अभय देखे हे तो आपवी अभय होय हे ओर जो कोई अन्तर करे हे वाको भय

ईशकेनकठप्रश्नमुंडमांडूक्यतित्तिरि ॥
ऐतरेयं च छांदोग्यं बृहदारण्यकं तथा ॥ ४३ ॥
कौशीतकी तथा नारायणी मैत्रायणी तथा ॥
नृसिंहतापिनीत्त्येवं शंकरार्येण बिभ्रता ॥ ४४ ॥
या वादिप्रतिवादिभ्यां गृह्यते सा प्रमा स्वयम् ॥
सख्यावतां विवादेषु स्वाचारेऽन्या प्रमा पुन ॥ ४५ ॥
रामकृष्णादितापिन्यस्तद्भक्तानां यथायथम् ॥
छांदोग्योपनिषत्स्वत्र भेदवादो न दृश्यते ॥ ४६ ॥
उपक्रमोपसंहाराभ्यामुद्दालकभाषणे ॥
उपक्रमे चोपक्रांत दृष्टांतेन स्फुटीकृतम् ॥ ४७ ॥
एकविज्ञानतः सर्वविज्ञानं मृद्घटादिवत् ॥
कारणे मृदि विज्ञाते मार्तिकं ज्ञायतेऽखिलम् ॥ ४८ ॥
एवमात्मनि विज्ञाते कार्यं विज्ञायते जगत् ॥
जगदात्मविभेदेन प्रतिज्ञाहानिरिष्यते ॥ ४९ ॥

वैसेही भागवत तथा भारतमें भी भेद नहीं देखते ॥ ४२ ॥ ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुंड, मांडूक्य, तित्तिरि, ऐतरेय, छान्दोग्य, बृहदारण्य, कौशीतकी नारायणी, मैत्रायणी, नृसिंहतापिनी, इत्यादिकनमें कहीं नहीं दीखे है जो वादी प्रतिवादीसों ग्रहण कियो जाय सो प्रमाण है विद्वाननके विवादमें दूसरो प्रमाण चहिये ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ जैसे भक्तनकी रामकृष्णादि तापिनी हैं और छान्दोग्यपनिषद है उनमें भेदवाद नहीं देखते ॥ ४६ ॥ उद्दालकके भाषणमें उपक्रम उपसंहारसों भेद नहीं दीखेहै उपक्रममें प्रारम्भ करके दृष्टान्तसों स्पष्ट दिखायो है ॥ ४७ ॥ के एकके जानवेसों सबको ज्ञान होय जाय है मृत्तिकासों घट आदिकनके जैसो कारणभूत मृत्तिकाके जान वेसों मृत्तिकाके सब पदार्थ जाने जाय हैं ॥ ४८ ॥ याही प्रकार आत्माके जानवेसों कार्यरूप जगत् जानो जाय है आत्मा जगत्के भेदमें प्रतिज्ञाहानि

आरब्धं कारणज्ञानात्कार्यज्ञानमभेदगम् ॥
सदेवसौम्येदमग्र आसीदिति निरूप्य च ॥ ५० ॥
तत्सत्यं च स आत्मा च ततस्तत्त्वमसीति च ॥
उपसंहारवाक्येपि नात्र भेदः प्रतीयते ॥ ५१ ॥
अतच्छेदो ङसोलोपो न प्रपाठकसंमतः ॥
भेदे नत्वमसीत्येवं कुतो वेदे न भाषितम् ॥ ५२ ॥
व्याप्यव्यापकभावेन पुत्रपत्न्यादिवच्च वा ॥
यो भेदः सोपचारेण केन बाधेन सिद्ध्यति ॥
श्रुतौ तु भेदवादस्य निषेधो बहुधोच्यते ॥ ५३ ॥

तैत्तिरीये नारायणीये—

यदा ह्येवैष एतस्मिन्नदृश्येऽनात्म्येऽनिरुक्तेऽनिलयने
अभयं प्रतिष्ठां विंदति अथ सोऽभयं गतो भवति
यदा ह्येवैष एतस्मिन्नुदरमंतरं कुरुते अथ तस्य भयं भवति ५४॥

होयगी ॥ ४९॥ कारणके ज्ञानसों कार्यज्ञान अभेदसों पहले भयो एक सत्-हीको निरूपण करकें "तत्सत्यम्" "सआत्मा" "तत्वमसि" इत्यादिक उपसंहार वाक्यनमें भेदकी प्रतीति नहीं होयहे ॥ ५० ॥ ५१ ॥ "सआत्मा" के आगे "अतत्त्वमसि" ये पदच्छेद अथवा ङस्को लोप प्रपाठकसंमत नहीं हे भेदमें "नत्वमासि" एसो वेदमें क्यों नहीं कह्यो ॥ ५२ ॥ ओर व्याप्यव्यापकभावसों अथवा पुत्रपत्नीनके जेसो भेद कोन उपचारसों सिद्ध होयगो ॥ ५३ ॥ श्रुतिमें तो भेदवादको बहोत करकें निषेध कह्यो हे तैत्तिरीय नारायणीमें जब ये आत्मामें अभय देखे हे तो आपबी अभय होय हे ओर जो कोई अन्तर करे हे वाको भय

सिद्धांततो ह्यभेदेपि पूर्वाचार्यैर्निरूपणात् ॥
भेद संरुच्यतेऽस्माक भजनानंदसिद्धये ॥ ५५ ॥
इत्युक्ते श्रीमदाचार्यैर्यतीशा बहुधा जगु ॥
शिष्या भट्टार्यमुख्याश्च ह्याचार्यांश्च परस्परम् ॥ ५६ ॥
तूर्ष्णीभूतेऽथ यमिनि ह्यासन् वाचयमा परे ॥
तत सौहृदसंलापस्तेषामासीत्परस्परम् ॥
स्थित्वा कियद्दिनान्यत्र सप्तर्षीन्प्रति संस्थिता ॥ ५७ ॥
श्रीवेदव्यासविष्णुप्रभुचरणमिते सम्मिते ग्रन्थसार्थे ,
श्रीगोविन्दाभिधाना समयनयविदां देशिकानां निदेशात् ॥
आचार्याणां चरित्रे हरिजनसुखदे शास्त्रिकृष्णैर्निबद्धे
प्रस्थानेऽस्मिंस्तृतीये समजनिपटहो दिग्मितोऽयं जयाख्ये ५८

होय हे ॥ ५४ ॥ पूर्वाचार्यनके निरूपणसों सिद्धान्तसों अभेदवी हे तोभी भजनानन्दसिद्धिके लिये भेदही हमको रुचे हे ॥ ५५ ॥ श्रीमदाचार्य जीके एसे कहवेपे यतीशननें ओर भट्टार्य प्रभृति शिष्यननें बहोत सवाद कियो पीछें उनके मौन होयवेपे परस्पर प्रेमपूर्वक भाषण भयो वहाँ थोरे दिन आप विराजकें सप्तर्षिनकों पधारे॥ ५६ ॥ ५७ ॥ समयनीतिके जानवेवारे जगद्गुरु श्रीमद्गोविन्दाचार्यजी महाराजकी आज्ञासों कृष्णशास्त्रीके बनाये श्रीमद्वेदव्यासविष्णुस्वामीके ग्रन्थनके अनुकूल हरिभक्तनके सुख देवेवारे या चरित्रग्रन्थके तीसरे प्रस्थानमें ये दशवों पटह समाप्त भयो ॥ ५८ ॥

यत्रर्षीणामग्निकुंडं पदानि च महात्मनाम् ॥
तत्र तीर्थविधिं कृत्वा गोकर्णाय ततोऽव्रजन् ॥ १ ॥
गवां कर्णनिभं लिंगमंगुष्ठप्रतिमं प्रभोः ॥
पूजितं सुरसंघैर्यत्सांनिध्यं यत्र धूर्जटेः ॥ २ ॥
गत्वा तीर्थविधिं चक्रुः कृत्वाऽभ्यर्हितमीश्वरम् ॥
निजासनेषूपविश्य वेदपारायणं व्यधुः ॥ ३ ॥
तत्र शैवा द्विजाः प्राप्ता भ्राजद्भूतित्रिपुंड्रकाः ॥
व्याहरंतः शिवशिवशिवेति मनु मंगलम् ॥ ४ ॥
उपविश्याब्रुवन्विप्रा यूयं वैष्णवविद्वराः ॥
आगतास्तीर्थयात्रार्थं विजयार्थं विदामतः ॥ ५ ॥
रामेश्वरे वीरशैवा यैर्बलेन निराकृताः ॥
ते यूयं पृच्छतास्माकं चोद्यं निन्द्यं च यन्मते ॥ ६ ॥
निर्भया सर्वलोकेभ्यः शरणीकृतशंकराः ॥
तेषां निन्द्यं च चोद्यं च यो ब्रूयात्स तु पामरः ॥ ७ ॥

जहाँ ऋषीनके अग्निकुंड हें महात्मानके चिह्न हें वहाँ तीर्थविधिकरकें गोकर्णकों पधारे ॥ १ ॥ जहाँ गौके कर्णके समान अंगुष्ठप्रमाण लिंग हे जाको सब देवता पूजन करें हें जहाँ शिवको सांनिध्य हे ॥ २ ॥ वहाँ जायकें तीर्थविधिकरकें ईश्वरकी प्रार्थना करकें अपने आसनमें विराजके वेदको पारायण कियो ॥ ३ ॥ वहाँ विभूति त्रिपुण्ड्र लगाये शिव ३ ये मंगल मन्त्र बोलते शैव ब्राह्मण आये ॥ ४ ॥ और बैठकें बोले जो आप वैष्णव विद्वान् ब्राह्मण हें तीर्थयात्राके लिये रामेश्वरमें और विद्वाननके जीतवेके लियें आये हें ॥ ५ ॥ रामेश्वरमें वीरशैवनको बलसों निराकरण कियो हे सो आप पूछिये जो पूछनो होय शंकरके शरणवारे सब हम निर्भय हें उनकी विधिको जो कोई निन्दा करे वो पामर हे

अष्टादशपुराणेषु दिङ्मितैस्तै प्रपठ्यते ॥
महेशस्यैव महिमा वेदैश्चोपनिषद्गणे ॥ ८ ॥
तदा श्रीगुरुच प्रोचु सत्य सत्य महेश्वर ॥
ईश्वर सर्वदेवानां महत्वे तस्य को भ्रम ॥ ९ ॥
विवादो भवदाचारे किं विध स कथ प्रमा ॥
सत्यावच्छिवशर्माद्यास्तदा वाक्यं समूचिरे ॥ १० ॥
माहेश्वरास्तु द्विविधा वैदिकास्तान्त्रिका परे ॥
वैदिकाद्विविधास्तत्र तंत्रमिश्रास्तु केवला ॥ ११ ॥
चतुर्विधा तांत्रिकास्तु शैवा पाशुपतास्तथा ॥
महाशैवास्तथा शाक्तास्तेषा भेदास्त्वनेकश ॥ १२ ॥
तत्र वैदिकशैवास्तु वेदमार्गेन शूलिनम् ॥
पूजयति स्वधर्मस्था प्रासावन्यसुरानपि ॥ १३ ॥
कुर्वत्येकादशीं पूर्वी तथा जन्माष्टमीव्रतं ॥
तीर्थयात्रासु विष्णवर्चामन्यत्रेशधिया क्वचित् ॥ १४ ॥

॥ ७ ॥ अठारहपुराणनमेंसों दशपुराणनमें वेदउपनिषदनमें महेशकी महिमा पढी गई है ॥ ८ ॥ तब श्रीमदाचार्यजी बोले के सत्य है सत्य है सब देवतानके ईश्वर हैं उनके महत्वम कहा संदेह है ॥ ९ ॥ किन्तु तुम्हारे आचारमें विवाद है वो केसो है केसे प्रमाण है तब शिवशर्मा आदि विद्वान बोले ॥ १० ॥ जो माहेश्वर दो प्रकारके हैं वैदिक तांत्रिक तामें वैदिक पीछे दो चालके तन्त्रमिश्र, केवल ॥ ११ ॥ तांत्रिक चार प्रकारके है शैव, पाशुपत, महाशैव, शाक्त, ओर इनके अनेक भेद हैं ॥ १२ ॥ तामें वैदिक शैव तो वेदके मार्गसों महादेवजीको पूजन करें हैं ओर धर्ममें रहके प्रसंगम दूसरे देवतानकोभी पूजन करें हैं ॥ १३ ॥ पूर्व एकादशी जन्माष्टमीव्रत करें हैं तीर्थयात्रामें विष्णुकीभी पूजा करें हैं ओर

भस्मत्रिपुंड्रं सर्वत्र रुद्राक्षजपमालिकाम् ॥
धारयंत्याह्निके नित्यं पार्थिवार्चनतत्पराः ॥ १५ ॥
पंचपूजैकपूजासु नार्मदं लिंगमुत्तमम् ॥
पूजयंति महेशस्य निर्माल्यं तस्य बिभ्रति ॥ १६ ॥
पंचाक्षरीजपपरा रुद्राध्यायादिपाठकाः ॥
कुर्वंति बहुधोत्साहाः शिवयात्रामहोत्सवान् ॥ १७ ॥
शिवरात्रिं मासि मासि प्रदोषं शनिसोमयोः ॥
द्वादश्यां चानुतिष्ठंति यजंतः शांभवान् द्विजान् ॥ १८ ॥
मिश्रास्तु भस्मरुद्राक्षमंडिता शिवपूजकाः ॥
शैवं धर्मं प्रशंसंति गौणीकृत्यैव वैदिकम् ॥ १९ ॥
पंचाक्षर्यादिमंत्रेषु दीक्षिता तद्व्रतास्थिताः ॥
यजंति वेदतंत्राभ्यामीशं निर्माल्यभक्षकाः ॥ २०
भुजयोर्नार्मदं लिंगं शुचिकाले वहंति ते ॥
प्रदोषं शिवरात्रिं च शिवयात्रामहोत्सवान् ॥ २१ ॥

देवतानमेंबी महादेवकीबुद्धिसों करें पूजा हें ॥ १४ ॥ भस्मको त्रिपुंड्र रुद्राक्षकी माला आह्निकमें नित्य धारण करें हें ओर पार्थिवपूजनमें तत्पर रहें हें ॥ १५ ॥ पंचपूजा अथवा एकपूजामें उत्तम नर्मदाजीके लिंगकी पूजा करें हें महेशको निर्माल्य धारण करें हें ॥ १६ ॥ पंचाक्षरीमन्त्रको जप करें हें रुद्राध्यायको पाठ करें हें शिवजीकी यात्रा तथा बडो उतसव करें हें ॥ १७ ॥ महीनामहीनामें शिवरात्रि करें हें शनिसोमको प्रदोष करें हें द्वादशीमें शैवब्राह्मणनको पूजन करें हें ॥ १८ ॥ ओर मिश्र तो भस्मरुद्राक्षसों मंडित होयकें शिवकी पूजा करें हें ओर वैदिकधर्मकों गौण करकें शैवधर्मकी प्रशंसा करें हें ॥ १९ ॥ पंचाक्षरी आदिमन्त्रनसों दीक्षित होयकें उनके व्रतमें रहके वेदतन्त्रसों शिवको पूजन करें हें ओर निर्माल्यको भक्षण करें हें ॥ २० ॥ पवित्रकालमें भुजानमें नर्मदाको लिंग धारण करें

कुर्वंति नर्मदां गगां मानयति न चेतरान् ॥
शिवक्षेत्राभिगमन ज्योतिर्लिंगाभिदर्शनम् ॥ २२ ॥
शिवप्रसादकरण शिवनिर्माल्यभक्षणम् ॥
नित्यं शिवार्चन भस्मजटारुद्राक्षधारणम् ॥ २३ ॥
धारण शिवदीक्षायास्त्रिधा लिंगस्य धारणम् ॥
जपश्च शिवमन्त्राणां पाणौ पार्थिवपूजनम् ॥ २४ ॥
भुक्त्या त्रिषवणस्नानमित्थ प्रोक्त भवव्रतम् ॥
भवव्रत धारयति ते शैवा परिकीर्तिता ॥ २५ ॥
एवं पाशुपता द्वेधा वैदिकास्तांत्रिकास्तथा ॥
वैदिका निजधर्मस्था गृहस्था शिवतत्परा ॥ २६ ॥
पचपाद पाशुपत योग सम्यक्समाश्रिता ॥
अतश्शैवा बहिश्शाक्ता लोकाचारे तु वैदिका ॥ २७ ॥
सारमादाय तिष्ठति नारिकेलफलं यथा ॥
तांत्रिका नग्नकापायाम्बरा पितृवनेचरा ॥ २८ ॥

हू प्रदोष शिवरात्रि शिवयात्रा शिवके महोत्सव करैं हैं गगा नर्मदाकों मानें हैं दूसरेनको नहीं शिवक्षेत्रमें जानो ज्योतिर्लिंगके दर्शन शिवको प्रसन्न करनो उनको निर्माल्य भक्षण नित्य शिवपूजन भस्मरुद्राक्षधारण शिवदीक्षाको ग्रहण तीनप्रकारसों लिंग धारण शिवमन्त्रनको जप हाथमें पार्थिवपूजन त्रिकालतिसों तीनों समय स्नान या प्रकार शिवको व्रत कह्यो है या कहे भये भवव्रतको जो धारण करैं हैं ये शैव कहावे हैं ॥ २१ ॥ २२ ॥ ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥ याही प्रकार पाशुपतभी दो प्रकारके होय हैं वैदिक और तान्त्रिक अपने धर्मम रहवेवारे गृहस्थ शिवपूजनमें तत्पर ॥ २६ ॥ पचपाद पाशुपतयोगको आश्रय करवेवारे भीतर शैव बाहेर शाक्त लोकाचारमें वैदिक ॥ २७ ॥ नारिकेलके फलके जैसे सारकों लेकें

महासिधारिणो मुंडा जटिला भस्मधारिणः ॥
संदंशहस्ता योगस्थावेदकर्मबहिष्कृताः ॥ २९ ॥
कापालिकाः श्मशानाग्निपाकाः शिवपरास्तथा ॥
इत्थं पाशुपताः प्रोक्ता मद्यमांसादिसेविनः ॥ ३० ॥
निग्रहानुग्रहे शक्ताः शैवा नैव विदोऽपरे ॥
तथा कापालिकाश्चान्ये कर्णमुद्राभिधारिणः ॥ ३१ ॥
शृंगीवाद्यं चोर्णसूत्रसल्लीं यष्टिकाश्रयीम् ॥
धारयंति तथा कंथां काषायांबरकंचुकम् ॥ ३२ ॥
सीधौ सप्त मकाराणि केचिद्योगस्य बिभ्रति ॥
महाशैवाः स्मृता ह्येते तथा चान्ये त्वनेकधा ॥ ३३ ॥
मंत्रौषधितपस्सिद्धाः सिद्धयष्टकवशंवदाः ॥
भूचराः खेचरास्तेस्युस्तथा कामविहारिणः ॥ ३४ ॥
शाक्ताश्च द्विविधाः प्रोक्ता वैदिकास्तांत्रिकास्तथा ॥
शुद्धामिश्रावैदिकास्तु निषिद्धाचारवर्जिताः ॥ ३५ ॥

रहें हें एसे वैदिक होय हें ओर तान्त्रिक तो नग्न काषायवस्त्र धारण करवेवारे श्मशानमें विचरवेवारे तलवार धारण करवेवारे मूँड मुँडाये जटा रखाये भस्म धारण किये चिमटा लिये योगमें स्थित वेदकर्मसों बाहर ॥ २८ ॥ २९ ॥ कपाल लिये श्मशानकी अग्निमें पाक करवेवारे शिवभक्तिमें तत्पर मधुमांसके सेवी एसे पाशुपत होय हें ॥ ३० ॥ निग्रह अनुग्रहमें समर्थ जेसे ये होय हें एसे दूसरे शैव नहीं याही प्रकार काननमें मुद्रा धारण किये कापालिक होय हें ॥ ३१ ॥ सींगको बाजो ऊनको सूत लकडीमें स्याहीको काँटो कंथा (गुदडी)गेरुहेवस्त्र इनको धारण करें हें सीधु(मद्य)सातप्रकारके मकार सेवन करवेवारे योगधारणकरवेवारे महाशैव होय हें ओरबी अनेकप्रकारके हें ॥ ३२ ॥ ॥ ३३ ॥ मंत्र औषधि तपसों सिद्ध अष्टसिद्धिसों वश करवेवारे पृथिवी तथा आकाशमें यथेष्ट विचरवेवारे होय हें ॥ ३४ ॥ शाक्तबी दो चालके हें

शुद्धास्तु वेदधर्मस्थावेदमंत्रै शिवार्चका ॥
रक्तत्रिपुंड्ररुद्राक्षविद्रुमस्रग्विधारिण ॥ ३६ ॥
शैवाचारे समासक्ता शक्तिदीक्षाविधारिण ॥
मिश्रास्तु शक्तिमंत्रेण दीक्षिता शक्तितत्परा ॥ ३७ ॥
तांत्रिक न्यासजाल च पूजनं च चरंति ते ॥
पौराणिकैस्स्तोत्रसंघैर्वैदिकैस्तांत्रिकैरपि ॥ ३८ ॥
तोषयति महेशानीं जगतां जननीं शिवाम् ॥
पराख्यां ब्रह्मण शक्तिं धर्मरूपां च संविदम् ॥ ३९ ॥
नवरात्रिव्रतपरा देव्युत्सवव्रतास्थिता ॥
पीठयात्रापरास्तस्यास्तद्यात्रोत्सवकारिण ॥ ४० ॥
तांत्रिकास्त्रिविधास्तत्र दक्षा वामाश्च कौलिका ॥
दक्षिणा पार्श्वकल्यमध्यमांसानुकल्पका ॥ ४१ ॥
गृहीत्वा तांत्रिकीं दीक्षां महालक्ष्मीं शिवां गिराम् ॥
पूजयत्यनुकल्पेन ताम्रे गव्यादिहतुना ॥ ४२ ॥

वैदिक तथा तान्त्रिक निषिद्ध आचारसों रहित शुद्ध मिश्र वैदिक होय हैं ॥ ३५ ॥ शुद्ध तो वेदधर्ममें रहनेवारे वेदमन्त्रनसों शिवके पूजन करनेवारे लाल त्रिपुंड्र रुद्राक्ष और मूँगाकी माला धारणकरनेवारे शैवाचारमें आसक्त शक्तिदीक्षामें दीक्षित ऐसे होय हैं और मिश्र तो शक्तिमंत्रसों दीक्षित शक्तिके उपासनामें तत्पर होय हैं ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ तांत्रिक न्यासपूजन करें हैं पौराणिक वैदिक तांत्रिक स्तोत्रनसों जगज्जननी ब्रह्मकी शक्तिको प्रसन्न करें हैं ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ नवरात्रव्रत देवीके उत्सव तथा व्रत पीठयात्रा और उनके उत्सव करनेवारे होय हैं ॥ ४० ॥ उनमें तांत्रिक तीन भांतके दक्ष वाम कौल उनमें दक्षिण पशुके मांस मद्यग्रहण करनेवारे तांत्रिकी

धारयंति सितं वासो विद्रुमस्रक्त्रिपुंड्रकम् ॥
वामास्तु वीरकल्पेन श्यामां संपूजयंति ते ॥ ४३ ॥
कृत्वैव तांत्रिकीं दीक्षां तंत्रमार्गैकतत्पराः ॥
विहाय वैदिकं दूरात्तद्विरुद्धार्थतत्पराः ॥ ४४ ॥
स्वेच्छाविहाराः सुखिनो लोकभीतिविवर्जिताः ॥
मद्यं मांसं च मत्स्यं च मुद्रा मैथुनमेव च ॥ ४५ ॥
मकारान् पंच सेवंते पूजाकाले विशेषतः ॥
तेषामभावे नीरादौ तस्य भावनमिष्यते ॥ ४६ ॥
अमृतं कारणं द्रव्यं हेतुस्तीर्थं तथादिमम् ॥
मद्यमेवंविधैः प्रोक्तं संकेतैस्तांत्रिकोत्तमैः ॥ ४७ ॥
मांसं शुद्धमिति ख्यातं द्वितीयेति च पठ्यते ॥
मत्स्यादः सर्वमांसादइति मांसात्पृथक्छ्रुतः ॥ ४८ ॥
जलपुष्पं चांबुफलं तृतीयेति च पठ्यते ॥
मुद्रा च वटिका प्रोक्ता भक्ष्यजातं तथा पुनः ॥ ४९ ॥

दीक्षाकों लेकें महालक्ष्मीकी उपासना करवेवारे ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ सुफेद वस्त्र मूँगनकी माला त्रिपुंड्र धारण करवेवारे होय हें ओर वाम तो वीरकल्पसों श्यामाकी पूजा करें हें ॥ ४३ ॥ तान्त्रिकी दीक्षा लेकें तंत्रमार्गमें तत्पर होयकें वैदिक मार्गकों दूरसों छोंडकें तातें विरुद्धमें तत्पर स्वेच्छाविहारी सुखी लोक भीतिसों न डरकें मद्य मांस मत्स्य मुद्रा मैथुन ये पांच मकारके सेवन करवेवारे ओर पूजाकालमें विशेष करकें ओर उनके अभावमें जलआदिमें उनकी भावना करें हें ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ ओर उत्तम तान्त्रिक लोगतो मद्यको अमृत कारणद्रव्य हेतु तीर्थ आदिम इन संकेतनसों बोलें हें ॥ ४७ ॥ माँसको शुद्ध द्वितीया कहें हें ओर मत्स्यको मांससों अलग कहें हें ॥ ४८ ॥ जलपुष्प अम्बुफल तृतीया इन नामनसों बोलें हें ओ

चतुर्थी सा समाख्याता जीवनीजीवनौषधम् ॥
व्यास पलांडुर्लशुन शुक प्रोक्तस्तु शौंडक ॥ ५० ॥
दीक्षित स समाख्यात प्रयाग सभलीगृहम् ॥
रजकयाः पुष्करं प्रोक्त सर्वतीर्थं रजस्वला ॥ ५१ ॥
मैथुन पचम योगो सध्या विष्णो परं पदम् ॥
नग्ना सपूज्यते नारी शक्तिदूती च सा मता ॥ ५२ ॥
दूत्यस्तु भगिनीपुत्रीनम्रगोत्रभवास्तथा ॥
अत्यजा यवनी रंडा कन्यका च रजस्वला ॥ ५३ ॥
वज्रपुष्प च तत्पुष्प स्वयभू कुसुम तथा ॥
ःडारेतोगोलद्रव्यं कुंड तु सधवाभवम् ॥ ५४ ॥
मुखमिन्दु खंजनं हक् वेण्यहि पर्वतो कुचौ ॥
प्रेतासन पवित्रं तत्कोमल तु भगासनं ॥ ५५ ॥
विप्रमुंडेर्मुंडमाला मौलीनाड्या सिता शुभा ॥
मुखे हाला करे माला बाला चांकगता पुन ॥ ५६ ॥

कुछ मत्स्य हे ओर मुद्रा इनको नटिका कहें हें ॥ ४९ ॥ ओर चतुर्थी जीवनी जीवनौषध येभी कहे हें प्याजकों व्यास लशुनकों शुक कलवार (मद्यबेचनेवारेको) दीक्षित कहें हें कुट्टिनीके घरकों प्रयाग कहें हें धोबिनिको पुष्कर रजस्वलाको सर्वतीर्थ मैथुनकों पचमयोग नग्नस्त्रीकों शक्तिदूती भगिनी पुत्री इनको दूती अंत्यजा यवनी रंडा रजस्वला इनको शक्ति कहें हें उनके पुष्पको वज्रपुष्प स्वयम्भु कुसुम ये कहें हें रंडाके शोणितको गोलद्रव्य सधवाकेको कुंड कहें हें ॥ ५० ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ मुखकों चन्द्रमा नेत्रकों खंजन वेणीकों सर्प कुन्चनकों पर्वत प्रेतासनकों पवित्र भगासनको कोमल ब्राह्मणके मुंडनकी मुंडमाला मुखमें मद्य हाथमें माला गोदमें सुंदरी स्त्री ओर परममन्त्रकों जपें हें जातें

जप्यते परमं मंत्रं येन तस्य वशेऽखिलम् ॥
भोगमोक्षौ विरुद्धौ तौ करस्थौ वामयोगिनः ॥ ५७ ॥
कथा विधिनिषेधानां पिशाची दूरतोव्रजेत् ॥
शक्त्युच्छिष्टं वीरमात्रैः नृमात्रैः सह भुज्यते ॥ ५८ ॥
पीतं पीतं च वमितं पीत्वा जन्म न विद्यते ॥
वामहस्तेन कर्तव्यं पूजनं वामशासने ॥ ५९ ॥
यादृशी देवता यस्य वेषभूषादिकं तथा ॥
आनंदं ब्रह्मणोरूपं तस्याभिव्यंजकं त्विदम् ॥ ६० ॥
मकारपंचकं ज्ञेयं विजयाद्यासवं तथा ॥
तस्मात्सदैव संसेव्यं पूजाकाले विशेषतः ॥ ६१ ॥
स्त्रीसंगतिः सदा भाव्या स्त्रीभिर्नर्म सदा चरेत् ॥
स्त्रीषु केलिं सदा कुर्यात् स्त्रियस्तु परदेवताः ॥ ६२ ॥
कौलाः सप्तविधाः प्रोक्ता बहुधाम्नायभेदतः ॥
दिवा तु पाशवः कल्पो वीरकल्पस्तथा निशि ॥ ६३ ॥

सब उनके वश्य होय हैं ओर भोग मोक्ष विरुद्धबी हैं तो बी वामयोगीके हाथमें हैं ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ विधिनिषेधकी कथासों पिशाची दूर रहे हे शक्तिको उच्छिष्ट मनुष्यमात्र वीरनके संग भोजन करें हैं ॥ ५८ ॥ पी पीके बमन करनो ताको पीछें पीकें जन्म नहीं होय हे ओर बाँये हाथसों पूजन करनो यें वाम शासनमें लिख्यो हे ॥ ५९ ॥ जेसी जाकी देवता हे वाको वेसोही वेश भूषण हे ब्रह्मको आनन्दरूप हे ताहीको ये विलास मात्र हे ॥ ६० ॥ पंच मकारसों पूजाकालमें विशेषकरकें सेवा करें हैं ॥ ६१ ॥ स्त्रीनके संग सदा रहनो उनके संग हँसी करनी क्रीडा करनी परदेवता स्त्री हैं ॥ ६२ ॥ कौल सातप्रकारके हैं ओरबी मार्ग भेदसों बहोत भेद हैं दिनमें पाशव कल्प रात्रिमें वीर कल्प कह्यो हे ॥ ६३ ॥

आचरेद्वा निजेच्छात स कौल परिकीर्तित ॥
रक्ताम्बरधरो रक्तपुष्पपुष्पस्रजा धर ॥ ६४ ॥
सुगधो निर्मल शांतो भूपितस्याप्यऽहिंसक ॥
समयाचारतत्वज्ञ पादुकाचारतत्पर ॥ ६५ ॥
कादिहादिमतासक्त श्रीविद्याललिताचर्क ॥
उभाभ्यामपि पाणिभ्यां पूजातर्पणतत्पर ॥ ६६ ॥
गुरुदेवतमंत्राणामैक्येनोपासक सदा ॥
रहस्य सर्वकार्येषु कार्य कौलकयोगिभि ॥ ६७ ॥
वर पूजा न कर्त्तव्या न च व्यक्ति कथचन ॥
निंदक कटक प्रोक्तो दीक्षाहीनो नर पशु ॥ ६८ ॥
दर्शयेद्वैष्णवीं मुद्रां पूजाकाले तदागमे ॥
अंतश्शाक्ता बहिश्शैवास्सभामध्ये च वैष्णवा ॥ ६९ ॥
नानारूपधरे कौले स्यातव्यं स्वार्थसिद्धये ॥
वैदिका वैष्णवा सौरा गाणेशावाममार्गिण ॥ ७० ॥

अपनी इच्छासों विचरे ताको नाम कौल है लाल वस्त्र लाल पुष्प लालपुष्पनकी माला पहरें हैं निर्मल सुगधवारे शान्त समयाचारतत्वके जानवेवारे पादुकाचारसों विचरवेवारे होय हैं ॥ ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ श्रीविद्याललिताके पूजन करवेवारे दोनों हाथनसों पूजामें तत्पर गुरुदेवतामके मन्त्रनको एकता करके सदा उपासना करवेवारे सब कार्यनमें रहस्य करवेवारे कौल योगी होय हैं ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ पूजा न करनो ये स्वीकार है परन्तु कभी प्रसिद्ध न होनो निन्दकको कटक कहें हैं विना मन्त्रवारे मनुष्यको पशु कहें हैं ॥ ६८ ॥ पूजाके समय वैष्णवीमुद्राकों दिखावें हैं भीतर शाक्त बाहेर शैव सभामें वैष्णव ॥ ६९ ॥ ऐसे नानारूप स्वार्थसिद्धिके लिये कौल धारण करें हैं वैदिक, वैष्णव, सौर, गाणेश, वाममार्गी, सिद्धान्त, कौल, एसे सात प्रकारके शाक्त होय हैं दक्षिण वैदिक गायत्रीकी उपासना करें हैं वैष्णव, नृसिंहसुंदरी

सिद्धांताश्च तथा कौलाःशाक्ताः सप्तविधा मताः ॥
गायत्रीं समुपासंते दक्षिणा वैदिकास्तु ते ॥ ७१ ॥
नृसिंहसुंदर्यादीनां पूजकावैष्णवामताः ॥
एवं शैवाश्च सौराश्च गाणेशाः शक्तिपूजकाः ॥ ७२ ॥
वामाचाराः स्मृता वामाः सिद्धांतास्तत्वतत्पराः ॥
सर्वं मिथ्येतिवचनात्सांख्यज्ञानैकतत्पराः ॥ ७३ ॥
मिश्रो योगस्तथा सांख्यः कौलः शैवागमे मतः ॥
सिद्धांतात्तु परं कौलः कौलात्परतरं न हि ॥ ७४ ॥
इत्थं वै तंत्रमार्गाणं शिवेन परमात्मना ॥
अनुगृहीताचाराणां प्रामाण्ये कः पुनर्भ्रमः ॥ ७५ ॥
तदाहुः श्रीमदाचार्याः सत्यं नेह भ्रमो मनाक् ॥
तंत्रमार्गो वेदमार्गात्पृथक् भ्रष्टस्ततो मतः ॥ ७६ ॥
चातुर्वर्ण्यं वेदसिद्धं वैदिकाचारजं मतम् ॥
चातुर्वर्ण्याद्बहिर्भ्रष्टानां तांत्रिकाचार इष्यते ॥ ७७ ॥

आदिकी उपासना करें हैं याही प्रकार शैव, सार, गाणेश वी शक्तिकी पूजा करवेवारे होय हैं ॥ ७० ॥ ७१॥ ७२ ॥ वामआचारवारे वाम कहावें हैं तत्त्वमें तत्पर सिद्धान्त होय हैं "सर्वं मिथ्या" या वचनसों सांख्य ज्ञानमें तत्पर मिश्रयोग सांख्य कौल ये शैवागम हैं इन सब सिद्धान्तनसों पर कौल होय हे कौलसों पर दूसरो नहीं होय हे ॥ ७३ ॥ ७४ ॥ परमात्माशिवसों कहे गये आचारवारे एसे तन्त्रमार्गनके प्रामाण्यमें पीछें कहा संदेह हे ॥ ७५ ॥ तब श्रीमदाचार्यजी बोले सत्य हे यामें कछूवी संदेह नहीं परन्तु वेदसों जुदो तंत्रमार्ग हे याहीसों भ्रष्ट हे ॥ ७६ ॥ वैदिक आचार हे जामें वेदसों सिद्ध एसो चारोवर्णनको धर्म हे चारोवर्णनसों भ्रष्ट मनुष्यनको

ब्राह्मण क्षत्रियो वैश्य शूद्रो वेदेन साध्यते ॥
तत्र तंत्राधिकारस्य प्रशक्तिर्नैव सभवेत् ॥ ७८ ॥
यथैव यवनाश्चीना जैना म्लेच्छा पृथक् पृथक् ॥
तथैव तांत्रिका वेदान्मद्यमांसादिसेविन ॥ ७९ ॥
वेदाऽविरुद्धतत्राणां प्रामाण्यवैदिके कृतम् ॥
तत्र वैदिकवर्त्मान कामिनश्चाधिकारिण ॥ ८० ॥
येषु वेदविरोधस्य गंधोपि न हि दृश्यते ॥
तेषां प्रामाण्यमेव स्यात् शिवकेशवपूजने ॥ ८१ ॥
निषिद्धाचारतत्रेषु विप्राद्याअधिकारिण ॥
श्रूयंते येतु ते भ्रष्टाज्ञेयाबीजसमुद्भवा ॥ ८२ ॥
ये प्रोक्तावैदिकाः शैवा शाक्ता पाशुपता परे ॥
ते तु सर्वे हरेरेव पूजका नामभेदत ॥ ८३ ॥
त्वामेवान्ये शिवोक्तेन मार्गेण शिवरूपिणं ॥
बह्वाचार्यविभेदेन भगवन्समुपासते ॥ ८४ ॥

तान्त्रिक आचार है ॥ ७७ ॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र ये, चारो वेदसों सिद्ध हैं इनमें तन्त्रको अधिकार नहीं ॥ ७८ ॥ जेसे यवन, चीन, जैन, म्लेच्छ, ये अलग २ हैं ऐसेही मद्यमांससेवी तांत्रिक अलग हैं ॥ ७९ ॥ वेदसों अविरुद्ध तन्त्रनको वैदिक प्रमाण गिनें हैं उनमें कामनावारे वैदिक अधिकारी है ॥ ८० ॥ जिनमें वेदविरोधको गधभी नहीं दीसेहै उनको शिवकेशवके पूजनमें प्रामाण्य है ॥ ८१ ॥ जो निषिद्धाचारतन्त्रमें विप्रा दिक हैं उनको भ्रष्ट समझनो ॥ ८२ ॥ जो वैदिक शैव शाक्त पाशुपत कहे गये वे सब नामभेदसों हरिहीके पूजक हैं ॥ ८३ ॥ शिवके कहे मार्गसों शिव रूपी आपहीको हे भगवन् बहोत आचारनके भेदसों उपासना करें हैं ॥ ८४ ॥

इत्थं भागवते प्रोक्तं भगवान् सुरपादपः ॥
तदर्चनं तु सर्वार्चा शाखाभूताःशिवादयः ॥ ८५ ॥
शक्तिस्तु ब्रह्मणोधर्मः परा शक्तिरितीरितं ॥
तत्तथैव तथाप्यत्र निषिद्धार्चा न शस्यते ॥ ८६ ॥
सात्विकाराजसाश्चैव तामसास्त्रिविधाजनाः ॥
तथैव त्रिविधाजीवादेवदानवमानवाः ॥ ८७ ॥
यथा यथा प्रकृतयोदेवास्तेषां तथा तथा ॥
अर्चतस्तत्तदाचारैस्तं तं देवं व्रजंति ते ॥ ८८ ॥
देवान् देवयजो यांति पितॄन् यांति पितृव्रताः ॥
भूतानि यांति भूतेज्या इतिगीतावचःप्रमा ॥ ८९ ॥
यो यो यां यां तनुं भक्तः श्रद्धयार्चितुमिच्छति ॥
तस्य तस्याचलां श्रद्धां तामेव विदधाम्यहम् ॥ ९० ॥
स तया श्रद्धया युक्तस्तस्याराधनमीहते ॥
लभते च ततः कामान् मयैव विहितान् हितान् ॥ ९१ ॥

एसे श्रीमद्भागवतमें भगवान् कल्पवृक्ष कहेगये हें उन्हींको अर्चन सबको अर्चन हे शिव आदिक शाखाके जेसे हें ॥८५॥ शक्तितो ब्रह्मको धर्म हे ये कह्यो सो सत्य हे परन्तु निषिद्ध पूजन श्रेष्ठ नहीं ॥ ८६ ॥ सात्त्विक राजस तामस एसे तीन प्रकारके जन हें याहीप्रकार देव दानव मनुष्य ये तीन प्रकारके जीव हें ॥ ८७ ॥ जेसी २ प्रकृतिवारे जेसे २ देवतानको उनके आचारसों पूजन करें हें वे वाहीवाही २ देवकों पावें हें ॥ ८८ ॥ देवतानके पूजन करवेवारे देवतानकों पितरपूजक पितरनकों भूतपूजक भूतनकों पावें हें मेरे पूजन करवेवारे मोंकों पावें हें ॥ ८९ ॥ जो जो भक्त जा २ रूपकों श्रद्धासों पूजे हे ताकी ताकी अचल श्रद्धा में करूं हूँ ॥ ९० ॥ वो ताही श्रद्धामों ताकी पूजा करवेकी चेष्टा करे

अतवत्तु फल तेषा तद्भवत्यल्पमेधसाम् ॥
इत्येव तत्र तत्रोक्ता मूलार्चैव गरीयसी ॥ ९२ ॥
महात्मानस्तु मां पार्थ दैवीं प्रकृतिमाश्रिता ॥
भजन्त्यनन्यमनसोज्ञात्वा भूतादिमव्ययम् ॥ ९३ ॥
इति गीतामते मानाद्धरिसेवा विशिष्यते ॥
शुद्धवैदिकमार्गेण शिवशक्त्यादिपूजका ॥ ९४ ॥
विष्णुभक्तिं लभते त उक्त ब्रह्मपुराणके ॥
अन्यदेवेषु या भक्ति पुरुषस्येह जायते ॥ ९५ ॥
कर्मणा मनसा वाचा तद्गतेनांतरात्मना ॥
तेन तस्य भवेद्भक्तिर्यजने मुनिसत्तमा ॥ ९६ ॥
स करोति ततोविप्रो भक्तिं चाग्ने समाहित ॥
तुष्टे हुताशने तस्य भक्तिर्भवति भास्करे ॥ ९७ ॥
पूजां करोति सततमादित्यस्य ततोद्विज ॥
प्रसन्ने भास्करे तस्य भक्तिर्भवति तत्वत ॥ ९८
सेवा करोति विधिवत्सतु शम्भो प्रयत्नत ॥
तुष्टे त्रिलोचने तस्य भक्तिर्भवति केशवे ॥ ९९ ॥

हे ओर हमारेही दीनी भई कामनाकों पावे हे ॥ ९१ ॥ परन्तु उन स्वल्प बुद्धिवारेनको फल नाशवारो होय हे एसे बहोत ठिकाने कह्यो हे तासों मूलरूप की पूजाही श्रेष्ठ हे ॥ ९२ ॥ हे अर्जुन महात्मा दैवीप्रकृतिका आश्रय करकें मोकोंही भजें हें ओर अनन्यचित्त होयके सब भूतनके आदि नाशर हित मोंको जान हे ॥ ९३ ॥ या गीताके मानसों हरिसेवा विशेष है शुद्ध वैदिकमार्गसों शिवशक्तिके पूजा करवेवारे विष्णुभक्तिकों पावें हें ये ब्रह्मपुराणमें कह्यो हे कर्म मन वाणीसों पुरुषकी जो अन्यदेवमें भक्ति उत्पन्न होय हे तासों वाकी भक्ति पीछे पूजनमें होय हे तब वो अग्निकी भक्ति करे हे अग्निके प्रसन्न होयवेसे सूर्यमें भक्ति होय हे निरन्तर सूर्यकी पूजासों

संपूज्य तं जगन्नाथं वासुदेवाख्यमव्ययम् ॥
ततो भुक्तिं च मुक्तिं च स प्राप्नोति द्विजोत्तमः ॥ १०० ॥
शिवेशानमहेशादिपदास्ते ब्रह्मवाचकाः ॥
ब्रह्ममूर्तिविभेदेन ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥ १०१ ॥
चतुर्थं तच्च यद्रूपं तन्नारायणसंज्ञितम् ॥
नारायणोपनिषदा तथा मानांतरैरपि ॥ १०२ ॥
यौगिकास्तु महेशादिशब्दारूढा न ते क्वचित् ॥
नारायणश्च गोविंदो रूढो विष्णोः पदं यतः ॥ १०३ ॥
पूजयध्वं हृषीकेशं वेदमार्गेण भूसुराः ॥
निषिद्धाचारगंधस्य संस्पर्शो नेह संभवेत् ॥ १०४ ॥
केशवं वा शिवं वापि शक्तिं सूर्यं गणाधिपम् ॥
स्कंदं महेन्द्रमर्चंतु वारयामो न तान्वयम् ॥ १०५ ॥

शिवकी भक्ति उतपन्न होयहे वासों शिवकी बडे यत्नसों पूजा करे हे शिवके प्रसन्न होयवेपे भगवानमें भक्ति होय हे ॥ ९४ ॥ ९५ ॥ ॥ ९६ ॥ ९७ ॥ ९८ ॥ ९९ ॥ तासों अविनाशी जगन्नाथ वासुदेवकी पूजा करके वो भुक्ति मुक्तिको पावे हे ॥ १०० ॥ शिव ईशान महेश आदि पद ब्रह्मवाचक हें ब्रह्मकी मूर्तिभेदसों ब्रह्मा, विष्णु, महेश होय हें ॥ १०१ ॥ नारायणोपनिषद्सों तथा दूसरे प्रमाणनसोंवी चौथो जो रूप हे वो नारायणसंज्ञक हे ॥ १०२॥ महेश आदिशब्द यौगिक हें रूढ नहीं हें ओर नारायण गोविन्द ये पद तो विष्णुमें रूढहें ॥ १०३ ॥ तासों हेब्राह्मणो वेदमार्गसों भगवान्की सेवा करो जामें निषिद्धाचारके गन्धमात्रकोबी स्पर्श नहीं हे ॥ १०४ ॥ ओर केशव, शिव, शक्ति, सूर्य, गणपति, स्कन्द, महेन्द्र, काहूकी पूजा करो हम निषेध नहीं करें हें॥ १०५॥

वारयामो निषिद्धार्चां निषिद्धाचरणं तथा ॥
ये पृच्छंति जनास्तेभ्यो ब्रूमोहि हरिपूजनम् ॥ १०६ ॥
निर्गुणा मुक्तिरस्माद्धि सगुणा सान्यसेवया ॥
पूर्वाचार्यगिरेत्येवमस्माभिः प्रतिपादितम् ॥ १०७ ॥
इत्थंव वाग्यमा जाता गुरवोऽतिकृपालवः ॥
दृष्टश्रुतप्रभावास्ते प्रणम्योचुः परस्परम् ॥ १०८ ॥
आचार्यैरुच्यते सम्यग्रागद्वेषविवर्जितैः ॥
निषिद्धाचरणं तेषां समतं खलु तांत्रिकम् १०९ ॥
शैवास्तु प्रायशस्तन्त्रमार्गं सिद्धांतयंति भोः ॥
तान्त्रिकाः प्रायशः सर्वे निषिद्धाचारतत्पराः ११० ॥
महेश्वरे केशवे वा यदि तुल्यैव ब्रह्मता ॥
केशवः किं न संपूज्यः दोषसंसर्गभीरुभिः ॥ १११ ॥
एषनिष्कंटकः पथा यत्र संपूज्यते हरिः ॥
कुपथं तं विजानीयाद्गोविंदरहितागमम् ॥ ११२ ॥

निन्दित पूजनको निन्दित आचारको हम निषेध करेहैं परन्तु और जो कोई पूंछहै उनको हरिका पूजन बतावे हैं क्योंकि विष्णुकी सेवासे निर्गुणमुक्ति होय है दूसरेनकी सेवासे सगुणमुक्ति होय है ये पूर्वाचार्यनकी वाणीसे हमने प्रतिपादन कियो है ऐसो कहकर अत्यन्त कृपालु गुरु श्रीमध्वाचार्यजी मौन होयगये और ये सब आपके प्रभाव देख सुनकर प्रणाम करके परस्पर बोले ॥ १०६ ॥ ॥ १०७ ॥ १०८ ॥ जो रागद्वेषसों रहित आचार्य सत्य आज्ञा करें हैं निषिद्धाचार तांत्रिक है, शैव तो प्राय तांत्रिकमार्गको सिद्धान्त करे हैं और तांत्रिक सब प्राय निषिद्धाचारतत्पर होय हैं ॥ १०९ ॥ ॥ ११० ॥ महेश और केशवमें जो समान ही ब्रह्मता है तो दोषसंसर्गसों डरपवारेनने क्यों नहीं सर्वो न पूजने चहिये ॥ १११ ॥ ये निष्कंटक

२८

न भेदबुद्धिरस्तीह केशवे वा शिवेऽपि वा ॥
तथापि केशवे भक्तिराचार्याणां गरीयसी ॥ ११३ ॥
तस्मात्तथा करिष्यामो वयं केशवपूजनम् ॥
इत्युक्त्वा शरणं यातास्तत्र केचित्सुबुद्धयः ॥ ११४ ॥
आचार्यपूजने तत्राऽभवज्जयजयध्वनिः ॥
ततः प्रचलनं यावत्प्रभुभिः प्रचिकीर्षितम् ॥ ११५ ॥
विद्यानगरतः प्राप्तः पुरोधा भूभृतेरितः ॥
ततोऽश्वतः समुत्तीर्य चाश्ववारान्विसृज्य सः ॥ ११६ ॥
आचार्याणां निपतितश्चरणांभोजयोर्द्रुतम् ॥
तत्राह प्रांजलिः प्रीतो नमो जयजय प्रभो ॥ ११७ ॥
कृष्णदेवैर्भवच्छिष्यैः प्रेषितोऽहं नृपोत्तमैः ॥
दात्यूहाः संप्रतीक्षंति सारद्धाराधरागमम् ॥ ११८ ॥

मार्ग हे जामें हरि पूजे जाँय हें ओर गोविन्दरहित आगमकों कुपथ समझनो चहिये ॥ ११२ ॥ केशव ओर शिवमें आपकी भेदबुद्धि नहीं हे तोबी आचार्यनकी श्रेष्ठ भक्ति केशवमें हे ॥ ११३ ॥ तासों हमबी याहीप्रकार केशवको पूजन करेंगें ये कहकें बहोतसे अच्छे बुद्धिमान् आपके शरण आये ॥११४॥ श्रीमदाचार्यजीके पूजनमें जयजय शब्दकी ध्वनि भई ओर वहाँसों पधारवेको जबताईं विचार करें ॥ ११५ ॥ तबताईं विद्यानगरसों राजाको भेज्यो भयो पुरोहित आयो सो दूसरे सवारनकों अलग छोंडके घोडासों उतरकें श्रीमदाचार्यजीके चरणकमलनमें वेगीसों गिर पड्यो ओर हाथ जोडकें प्रसन्न होयकें बोल्यो जयजय प्रभो॥ ११६ ॥ ११७ ॥राजानमें श्रेष्ठ आपके शिष्य कृष्णदेवराजानें मोंकों भेज्यो हे जेसे चातक स्वातीके बिन्दुकी बाट देखे हे वेसेही राजा आपके चरणकमलनकी बाट देखरह्यो हे॥ ११८॥

धराधरस्तथा श्रीमत्तत्तामरसपद्धतिम् ॥
ब्राह्मणैरागम प्रोक्त सुब्रह्मण्यस्थविज्ञय ॥ ११९ ॥
यत संप्रेपितश्चाह महाराजेन चादरम् ॥
हस्त्यश्वरथपत्त्यादि सुब्रह्मण्य समेष्यति ॥ १२० ॥
भवद्वेपणायाहं चाग्रत समुपागत ॥
राज्ञो विज्ञप्तिरेतावद्दर्शनं दीयतां प्रभो ॥ १२१ ॥
क्रियतां वचनं सत्यं प्रतिज्ञात विधीयताम् ॥
खगपोतो यथा नीडे यथा गोष्ठे सकृत्करि ॥ १२२ ॥
प्रतीक्षामि तथा नित्य बर्ही कादंबरीमिव ॥
अथाह श्रीमदाचार्यो कुशल नृपतेरलम् ॥ १२३ ॥
अंगोपांगेषु तस्याथ युष्माक च पुरोधसाम् ॥
मातामहगृहेऽस्माकं भूतान्येषां च शोभनम् ॥ १२४ ॥
इत्युक्ते श्रीमदाचार्ये स चाह प्रेमगद्गद ॥
अनुगृहीता गुरुभि सर्वे कुशलिनो जना ॥ १२५ ॥

ब्राह्मणननें आपको सुब्रह्मण्यतीर्थवासी विद्वाननके विजयको समाचार कह्यो हे ॥ ११९ ॥ ताहीसों महाराजने मोंकों आदरसों भेज्यो हे ओर हाथी, रथ, घोडा, पदाति, आदि सुब्रह्मण्यमें आवेंगे ॥ १२० ॥ आपके ढूंढवेके लिये में आगे आयो हूं राजाकी इतनीही विनती हे जो हे प्रभो दर्शन देवो ॥ १२१ ॥ अपनी प्रतिज्ञाकों सत्य करो जेसे पक्षीके बच्चा अपने रहवेकी जगहमें प्रतीक्षा करे हे वेसी में नित्य प्रतीक्षा करू हूं ॥ १२२ ॥ तब श्रीमदाचार्यजीनें आज्ञा करी जो राजाको सब कुशल हे उनके अंग उपांग ओर पुरोहित तुमसबनको ओर हमारे मातामहके घरमें तथा ओर सबकी कुशल कहो ॥ १२३ ॥ १२४ ॥ श्रीमदाचार्यजीके ये आज्ञा करवेपे प्रेमसों गद्गद होयकें वो बोल्यो जो गुरूनकी अनुग्रहसों सब कुशल हे एक दिन रात आपके चरणकमलनके दर्शनकी इच्छा हे तब

अहर्निशं दिदृक्षेषां श्रीमच्चरणचुंबिनी ॥
भट्टार्यस्तु तदा तस्मै निजसंबंधिने मुदा ॥ १२६ ॥
ज्ञात्वा सत्कृत्य संस्नाप्याभ्यवहाराण्यकारयत् ॥
समागतानश्ववरानश्वान् भृत्यान् यथायथम् ॥ १२७ ॥
कृष्णदासश्चोपकरोदातिथ्यं सार्ववर्णिकं ॥
ऊषुस्तत्रैव तां रात्रिं प्रभाते चलितास्ततः ॥ १२८ ॥
श्रीवेदव्यासविष्णुप्रभुचरणमिते सम्मिते ग्रन्थसार्थैः
श्रीगोविन्दाभिधानां समयनयविदां देशिकानां निदेशात् ॥
आचार्याणां चरित्रे हरिजनसुखदे शास्त्रिकृष्णैर्निबद्धे ॥
प्रस्थानेऽस्मिंस्तृतीये समजनि पटहश्चैवमेकादशोऽयम् ॥१२९॥

ततश्चन्द्रगिरौ प्राप्ताः शृंग्यर्षिपदमुत्तमम् ॥
सुब्रह्मण्यात्समाहूतं तत्राऽगान्नृपतेर्बलम् ॥ १ ॥
तुंगभद्रासरित्तीरे नीरे तीर्थविधिं व्यधुः ॥
अपराह्णे ततः प्राप्ताश्चंद्रमौलेर्दिदृक्षया ॥ २ ॥

भट्टार्यनें अपने वा सम्बन्धीको सत्कार करकें स्नान आदि करवायकें भोजन कराये ओर आये भये सवारनको भृत्यनको यथायोग्य भोजन करवायो ॥ १२५ ॥ १२६ ॥ १२७ ॥ कृष्णदासने सबनको आतिथ्य कियो ओर वहाँ वा रातमें निवास करकें प्रातःकाल वहाँसों आप पधारे ॥ १२८ ॥ समयनीतिके जानवेवारे श्रीमद्गोविन्दाचार्यजी महाराजकी आज्ञासों कृष्णशास्त्रीके बनाये श्रीमद्वेदव्यास विष्णुस्वामीके मतके ग्रन्थनके अनुकूल हरिभक्तनके सुखदेवेवारे या चारित्रग्रन्थके तीसरे प्रस्थानमें ये गेरहवों पटह समाप्त भयो ॥ १२९ ॥

सो चन्द्रगिरीमें आये जहाँ शृंगीऋषिको उत्तम स्थान हे वहाँही सुब्रह्मण्य-क्षेत्रसों राजाकी सेना [illegible] आईही वोवी गई ॥ १ [illegible] ंगभद्रान

धराधरस्तया श्रीमत्तत्तामरसपद्धतिम् ॥
ब्राह्मणैरागम प्रोक्त सुब्रह्मण्यस्थविज्जय ॥ ११९ ॥
यत संप्रेपितश्चाह महाराजेन चादरम् ॥
हस्त्यश्वरथपत्त्यादि सुब्रह्मण्य समेष्यति ॥ १२० ॥
भवद्गवेषणायाहं चागत समुपागत ॥
राज्ञो विज्ञप्तिरेतावद्दर्शनं दीयतां प्रभो ॥ १२१ ॥
क्रियतां वचनं सत्य प्रतिज्ञात विधीयताम् ॥
खगपोतो यथा नीडे यथा गोष्ठे सकृत्करि ॥ १२२ ॥
प्रतीक्षामि तथा नित्य मही कादंबरीमिव ॥
अथाहु श्रीमदाचार्या कुशल नृपतेरलम् ॥ १२३ ॥
अंगोपांगेषु तस्याथ युष्माक च पुरोधसाम् ॥
मातामहगृहेऽस्माकं ब्रूतान्येषां च शोभनम् ॥ १२४ ॥
इत्युक्ते श्रीमदाचार्ये स चाह प्रेमगद्गद ॥
अनुगृहीता गुरुभि सर्वे कुशलिनो जना ॥ १२५ ॥

ब्राह्मणनने आपको सुब्रह्मण्यतीर्थवासी विद्वाननके विजयको समाचार कह्यो हे ॥ ११९ ॥ ताहीसों महाराजने मोंकों आदरसों भेज्यो हे ओर हाथी, रथ, घोडा, पदाति, आदि सुब्रह्मण्यमें आवेंगे ॥ १२० ॥ आपके ढूढवेके लिये में आगे आयो हूं राजाकी इतनीही विनती हे जो हे प्रभो दर्शन देवो ॥ १२१ ॥ अपनी प्रतिज्ञाकों सत्य करो जेसे पक्षीको बच्चा अपने रहवेकी जगहमें प्रतीक्षा करे हे वेसी में नित्य प्रतीक्षा करू हूं ॥ १२२ ॥ तब श्रीमदाचार्यजीनें आज्ञा करी जो राजाको सब कुशल हे उनके अंग उपांग ओर पुरोहित तुमसबनको ओर हमारे मातामहके घरम तथा ओर सबकी कुशल कहो ॥ १२३ ॥ १२४ ॥ श्रीमदाचार्यजीके ये आज्ञा करवेपे प्रेमसों गद्गद होयके वो बोल्यो जो गुरुनकी अनुग्रहसों सब कुशल हे एक दिन राज आपके चरणकमलनके दर्शनकी इच्छा हे सब

मानपेक्षामनादृत्य दर्शनार्थं समागताः ॥
चंद्रमौलेः शंकरस्य तद्युष्मासु सुशोभनम् ॥ १० ॥
यूयमाद्याश्रमचराश्चरमाश्रमिणो वयम् ॥
यूयं तु बटवो वृद्धा यूयं मान्यास्ततोऽपि किम् ॥ ११ ॥
यो विद्यया भवेद्वृद्धः स तु वृद्धः प्रकीर्तितः ॥
पुत्रैस्तु पितरो बाला देवैः प्रोक्तं मनौ स्मृतम् ॥ १२ ॥
विद्यावृद्धस्तपोवृद्धोयश्च वृद्धः प्रभावतः ॥
भवान् हुताशनाचार्यस्तस्मात्पूज्योजगत्सु वै ॥ १३ ॥
अथापि सत्संप्रदायमनुसृत्य भवादृशैः ॥
तीर्थानां मानने मान्या देवा विप्रास्तपोधनाः ॥ १४ ॥
विष्णुस्वामी शुकस्वामी वेदव्याससमावुभौ ॥
अद्वैताचार्यवर्यौ तौ भ्रातृभावं ततो गतौ ॥ १५ ॥
विष्णुस्वामिमते चाद्य भवानाचार्यतां गतः ॥
माननीयो न कस्यास्ति बालोपि महदासने ॥ १६ ॥

ओर मानकी अपेक्षा न करकें चन्द्रमौलिके दर्शनके लिये आप पधारे ये आपकी शोभा हे ॥ १० ॥ आप गृहस्थाश्रमी हें हम चतुर्थाश्रमी हें आप बालक हें हम वृद्ध हें तोबी आप मान्य हें जो वियासों वृद्ध होय वोही वृद्ध कह्यो गयो हे देवता पुत्रनने पितरनको बालकें कह्यो हे ये मनुमें कह्यो हे ॥ ११ ॥ १२ ॥ आप वियावृद्ध हें तपोवृद्ध हें प्रभावसों वृद्ध हें आप हुताशनाचार्य हें यासों जगत्में पूज्य हें ॥ १३ ॥ तोबी आप सत्सम्प्रदायकों आश्रित करकें तीर्थनकों ओर देवता ब्राह्मण तपस्वीनको मान देवें हें ॥ १४ ॥ विष्णुस्वामि शुकस्वामि ये दोनो वेदव्यासके समान हे ओर अद्वैतमतके आचार्य हे परस्पर भ्रातृभाव रखते हे॥ १५॥ विष्णुस्वामीजीके मतमें आपनें आचार्यताकों पायो हे बालक

यत्र श्रीशंकरार्याणां पट्टसिंहासनं स्थितम् ॥
श्रुत्वा श्रीवल्लभार्यस्य यतिराज समागमम् ॥ ३ ॥
सम्प्रेष्य विदुषस्तेषां कृतवांश्च समादरम् ॥
ततस्ते देवसदने सम्प्राप्तास्ते समादृता ॥ ४ ॥
चंद्रमौलेर्दर्शनं च कृत्वा चान्यद्दिवौकसम् ॥
देवालये समायातान् ददृशुस्ते यतीश्वरान् ॥ ५ ॥
एकदण्डधरान्मुण्डान् शुद्धान् काषायवासस ॥
नमोनारायणायेति नतिस्तत्र समीरिता ॥ ६ ॥
नारायणेति तत्रार्यै प्रत्याशीश्च निरूपिता ॥
समादृत्य यतीशेन देवस्याग्रे धरातले ॥ ७ ॥
उपविष्ट स्वय तत्र आचार्याश्चोपवेशिता ॥
जगद्गुरुर्नृसिंहार्यो वाक्यमेतत्तदाऽब्रवीत् ॥ ८ ॥
यूयं समागता भ्रातरस्माभिस्तन्नयच्छुतम् ॥
ततो नाऽकारिता नैवातिथ्यादिभ्य समर्चिता ॥ ९ ॥

वीके तीरमें तीर्थविधि करकें चन्द्रमौलिके देखवे की इच्छासों अपरान्हमें पधारे ॥२॥ जहाँ श्रीशंकराचार्यजीको सिंहासन हे वहाँ यतिराज श्रीमदाचार्यजीकों आगमन सुनकें विद्वाननको भेजकें आदर कियो ओर आप सुन्दर आदर पायकें देवालयमें पधारे वहाँ चन्द्रमौलिके दर्शन करकें देवालयमें आये भये सन्यासीनकों देखते भये ॥ ३॥४॥५ ॥ जो एक दण्ड धारण किये मुंडित शुद्ध गेरूसों रंगे वस्त्रधारे हे "नमोनारायणाय" ये कहकें उनको नमस्कार कियो ॥ ६ ॥ उननें "नारायण" ये कहकें आशीर्वाद देके देवके सामनें आदरसों विराजमान किये ओर आपभी जमीनपे बेठके जगद्गुरु नृसिंहाचार्य ये वाक्य बोले ॥७॥८॥के आप प्रात काल पधारे सो मेनें नहीं सुन्यो तासों आपकों आमन्त्रण नहीं भेज्यो न कछू आतिथ्य कियो ॥९ ॥

कामात्मता तु मनुना विहितापि निषिध्यते ॥
नारायणादिश्रुतिभिर्गीतादिस्मृतिभिस्तथा ॥ २४ ॥
अथवा कामतैवास्तु कामिनोपि विधीयते ॥
अकामः सर्वकामोवा मोक्षकामउदारधीः ॥ २५ ॥
तीव्रेण भक्तियोगेन यजेत पुरुषं परम् ॥
एकमेवेश्वरं मध्ये कृत्वा ते पंचपूजकाः ॥ २६ ॥
पूजयंति तु यं कंचित् पंचपूजाफलं नु किम् ॥
पंचानामीशता नैव कथ्यते चेश्वरांगता ॥ २७ ॥
अंगिनः पूजने चांगपूजा किं नाम नो भवेत् ॥
परस्परमभेदाय यद्यद्वेषाय पूजनम् ॥ २८ ॥
नाभेदो भेदतः सिध्येन्नाद्वेषो द्वेषकारणात् ॥
एकः श्रयति राजानं मंत्रिणं किंकरं परे ॥ २९ ॥

ओर निष्काम परतिथिकों करें एसे बहोत शास्त्रनमें निष्काम गृही सुनें हें ॥ २३ ॥ मनुनें कामात्मताको विधान करकें पीछें निषेध कियो हे नारायणश्रुति तथा गीता आदिस्मृतीननेबी निषेध कियो हे ॥ २४ ॥ अथवा कामात्मताही रहे तोबी वो कामीनकों विहित हे अकाम हो वा सर्वकाम हो या मोक्षकाम हो उदारबुद्धिवारो बडे भक्तियोगसों परपुरुषकी सेवा करे ओर पंचपूजकबी एकही जा काई ईश्वरकों बीचमें करकें पूजा करें हें तो पंचपूजाको कहा फल हे पाँचनकों तो ईश्वर नहीं कहें हें किन्तु एकके सिवाय दूसरेनको अंग कहें हें ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥ अंगीके पूजा करवेमें अंगनकी पूजा कहा नहीं होयहे जो परस्परके अभेदके लिये या मित्रताके लिये हे ॥ २८ ॥ तो भेदसों अभेद द्वेष कारणसों अद्वेष नहीं सिद्ध होयसके एक राजाकी सेवा करे हे दूसरे मन्त्री आदिकी तो उनके उनके भक्तनको विद्वेषको कारण यामें कहा हे ओर

अस्माभिः श्रूयते चैकदेवार्चावादसंभृते ॥
ब्राह्मणानां सदा योग्या सुब्रह्मण्ये निरूपिता ॥ १७ ॥
सा कथं पंचदेवार्चा धर्मशास्त्रे प्रदृश्यते ॥
तत एवास्मदाचार्यैः शिष्टैरन्यैः समादृता ॥ १८ ॥
शिवं भास्करमग्निं च केशवं कौशिकीमपि ॥
मनसा नार्चयन्याति स्वर्गलोकादधोगतिम् ॥ १९ ॥
इत्येवं बहुधा शास्त्रे नित्यताऽस्या विधीयते ॥
अद्वेषाय च सर्वेषां तथा कार्या मनीषिभिः ॥ २० ॥
इत्युक्ता यतिभिस्तत्र निजाचार्यास्तदाऽब्रुवन् ॥
पक्षोऽयं गृहिणां क्वापि परिशिष्टस्तु कामिनाम् ॥ २१ ॥
निष्कामानां हरेरेव पूजनं सर्वसंमतम् ॥
गृहिणः कामिनः सर्वे इति वक्तुमशक्यते ॥ २२ ॥
कामी तूपवसेत्पूर्वां निष्कामस्तु परां तिथिम् ॥
इत्येवं बहुधा शास्त्रे निष्कामा गृहिणः श्रुताः ॥ २३ ॥

थी मठे आसनको प्राप्त कोनकों माननीय नहीं होय हे ॥ १६ ॥ हमने सुन्यो हे के आपनें सुब्रह्मण्यक्षेत्रमें एकदेवार्चावाद स्थापन कियो हे के येही सदा ब्राह्मणनको योग्य हे ॥ १७ ॥ तो पंचदेवकी पूजा धर्मशास्त्रमें केसे दीसे हे ताहीसों हमारे आचार्यननें ओर शिष्यननें ताको आदर कियो हे ॥ १८ ॥ शिव, सूर्य, अग्नि, केशव, कौशिकी, (देवी) इनको जो मनसों पूजा नहीं करेहे वो स्वर्गसों अधोगतिकों पावे हे ॥ १९ ॥ एसे बहोत शास्त्रनमें पंचपूजाकी नित्यता हे ओर सबकी प्रसन्नताके लियें बुद्धिमाननको एसेंही करनो चाहिये ॥ २० ॥ एसे यतीनके कहवेपे भीम दाचार्यजी बोले जो ये पक्ष कामनावारे गृहस्थनको कहीं दीसे हे ॥ २१ ॥ ओर निष्काम मनुष्यनको तो हरिको पूजन सर्वसम्मत हे सब गृहस्थ सकाम हें ये नहीं कहसके हे ॥ २२ ॥ कामीतो पूर्वतिथिको उपवास कर

कामात्मता तु मनुना विहितापि निषिध्यते ॥
नारायणादिश्रुतिभिर्गीतादिस्मृतिभिस्तथा ॥ २४ ॥
अथवा कामतैवास्तु कामिनोपि विधीयते ॥
अकामः सर्वकामोवा मोक्षकामउदारधीः ॥ २५ ॥
तीव्रेण भक्तियोगेन यजेत पुरुषं परम् ॥
एकमेवेश्वरं मध्ये कृत्वा ते पंचपूजकाः ॥ २६ ॥
पूजयंति तु यं कंचित् पंचपूजाफलं नु किम् ॥
पंचानामीशता नैव कथ्यते चेश्वरांगता ॥ २७ ॥
अंगिनः पूजने चांगपूजा किं नाम नो भवेत् ॥
परस्परमभेदाय यद्यद्वेषाय पूजनम् ॥ २८ ॥
नाभेदो भेदतः सिध्येन्नाद्वेषो द्वेषकारणात् ॥
एकः श्रयति राजानं मंत्रिणं किंकरं परे ॥ २९ ॥

ओर निष्काम परतिथिकों करें एसे बहोत शास्त्रनमें निष्काम गृही सुनें हें ॥ २३ ॥ मनुनें कामात्मताको विधान करकें पीछें निषेध कियो हे नारायणश्रुति तथा गीता आदिस्मृतीननेबी निषेध कियो हे ॥ २४ ॥ अथवा कामात्मताही रहे तोबी वो कामीनकों विहित हे अकाम हो वा सर्वकाम हो या मोक्षकाम हो उदारबुद्धिवारो बडे भक्तियोगसों परपुरुषकी सेवा करे ओर पंचपूजकबी एकही जा काई ईश्वरकों बीचमें करकें पूजा करें हें तो पंचपूजाको कहा फल हे पाँचनकों तो ईश्वर नहीं कहें हें किन्तु एकके सिवाय दूसरेनको अंग कहें हें ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥ अंगीके पूजा करवेमें अंगनकी पूजा कहा नहीं होयहे जो परस्परके अभेदके लिये या मित्रताके लिये हे ॥ २८ ॥ तो भेदसों अभेद द्वेष कारणसों अद्वेष नहीं सिद्ध होयसके एक राजाकी सेवा करे हे दूसरे मन्त्री आदिकी तो उनके उनके भक्तनको विद्वेषको कारण यामें कहा हे ओर

तत्तद्भक्तजनानां हि किं तु विद्वेषकारणम् ॥
अभेदे तु सुराणां वा एकस्मिन्नपि चार्चिते ॥ ३० ॥
सर्वे समर्चितास्ते स्युर्यथैवैक्यात्प्रचेतसाम् ॥
व्यासोक्तेर्लाघवात्सूत्रादेक एवेश्वरो मत ॥ ३१ ॥
पृथक्पूजा नास्ति शास्त्रे दर्शनाना विभेदत ॥
शैव च वैष्णव शाक्त सौरं गाणपतं तथा ॥ ३२ ॥
स्कांद च भक्तिमार्गस्य दर्शनानि पृथक् पृथक् ॥
इत्थं पुराणसारोक्त्या पुष्पदंतोक्तितस्तथा ॥ ३३ ॥
पृथक्पृथक्दर्शनानि चान्यत्राप्येवमेव हि ॥
यथा शिवरहस्येऽथ शैवे लैङ्गे पराशरे ॥ ३४ ॥
निषिध्यैव परेशार्चां महेशार्चा विधीयते ॥
एव विष्णुरहस्यादौ विष्णुधर्मोत्तरे तथा ॥ ३५ ॥
पचरात्रे भागवते विष्णोरर्चाऽभिधीयते ॥
सौरे गाणपते शाक्त एकार्चा बहुशोरुता ॥ ३६ ॥

अभेदमें तो एकहीके पूजनमें सबको पूजन होयजाय है जैसे प्रचेतानकी एकतासों सबको होय भाय है व्यासजीके वचननसों सूत्रनसों लाघवसों एकही ईश्वर मान्य है ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ओर पृथक पूजा शास्त्रमें नहीं है किन्तु दर्शननके भेदसों शैव, वैष्णव, शाक्त, सौर, गाणपत, स्कान्द, ये भक्तिमार्गके भेद हैं एसे पुराणसारकी उक्तिसों तथा पु[illegible]न्तकी उक्तिसों अलग २ दर्शन हैं ओरभी ठिकानें कह्यो है जैसे शिवरहस्यमें ओर शिव, लिङ्ग, आदि पुराणनमें दूसरेनको पूजन निषेध करके शिवकी अर्चाको विधान है याहीप्रकार विष्णुरहस्य आदिमें विष्णुधर्मोत्तरमें पचरात्र श्रीमद्भागवतमें विष्णुकी अर्चाको विधान है सौर गाणपत, शाक्त, इनमें भी भाय एकही देवकी पूजाको विधान है ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ३५ ॥

नियमः पंचपूजायाः भारतादौ न दृश्यते ॥
दृश्यते बहुतीर्थेषु यज्ञेषु च व्रतेषुच ॥ ३७ ॥
पूजनं चैकदेवस्य पंचानां नियमः कुतः ॥
क्वचित्तु बहवो मान्या एकद्वित्रिचतुर्मुखाः ॥ ३८ ॥
पंचानां नियमो नास्ति धर्मशास्त्रसमीक्षणे ॥
एको विष्णुः शिवो द्वौ तौ त्रयो ब्रह्मेशाविष्णवः ॥ ३९ ॥
चतुर्थो मिहरः शक्तिर्गणेशश्चेत्त्यनेकधा ॥
ब्रह्माणं पूजयेन्नित्यं तापिनं नित्यमर्चयेत् ॥ ४० ॥
इत्येवं विधिवाक्यानि स्मृतिग्रंथेषु किं नहि ॥
कूर्मे ब्रह्मा महादेवो विष्णुर्विश्वेश्वरः परः ॥ ४१ ॥
एकस्य मूर्तयस्तिस्रः स्मृताः कार्यवशात्प्रभोः ॥
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन त्रयः पूज्यास्सदा नृभिः ॥ ४२ ॥
पूजयेद्भावयुक्तेन यावज्जीवं प्रतिज्ञया ॥
तथा भविष्ये पूजैका विरंचेरभिधीयते ॥ ४३ ॥

॥ ३६ ॥ पंचपूजा भारतआदिमेंबी नहीं दीखे हे तीर्थ यज्ञ व्रत इन सबमें एकही देवको पूजन देखें हें कहीं बहुतनकी एकमुख,द्विमुख,त्रिमुख, चतुर्मुख, इनकी मान्यता लिखी हे ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ धर्मशास्त्रके देखवेमें पाँचनको कछू नियम नहीं हे एकविष्णु, दो विष्णुशिव, तीन विष्णु शिव ब्रह्मा, सूर्य चौथे पाँचवी शक्ति छठे गणेश एसे अनेक हें ब्रह्माको पूजन नित्य करे सूर्यको पूजन करे ॥ ३९ ॥ ४० ॥ एसे स्मृतिवाक्यनमें वचन हें तासों पाँचनको नियम नहीं ये सिद्ध भयो कूर्ममें एक प्रभुकी कार्यवशसों तीन मर्ति कहीं हें तासों सब प्रयत्ननसों ये तीनों सदा मनुष्यनके पूजन करवे योग्य हें ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ जबताईं जीवे तबताईं प्रतिज्ञा करकें भावसों पूजा करे याहीप्रकार भविष्यमें एक ब्रह्माहीको पूजन लिख्यो हे

पितामहः स देवानां भूतानां च पितामहः ॥
तस्मादयं सदा पूज्यो यतो लोकगुरुः परः ॥ ४४ ॥
यो न पूजयते भक्त्या सुरश्रेष्ठं चतुर्मुखम् ॥
न स नाकस्य राज्यस्य न स मोक्षस्य भाजनम् ॥ ४५ ॥
यस्तु पूजयते भक्त्या विरंचिं कमलासनम् ॥
स नाकराज्यमोक्षाणां क्षिप्रं भवति भाजनम् ॥ ४६ ॥
वरं देहपरित्यागो वरं नरकसंभवः ॥
न चासंपूज्य भुंजीत देवं वै पद्मसंभवम् ॥ ४७ ॥
ब्रह्माणं द्वेष्टि यो मोहात्सर्वदेवनमस्कृतम् ॥
नरो नरकगामी स्यात्तस्य संभाषणादपि ॥ ४८ ॥
सा भवद्भिः कुतस्त्यक्ता पंचपूजा विधीयते ॥
का पूजा कश्च संपूज्यः के च पूजाधिकारिणः ॥ ४९ ॥
कथं सा क्रियते पूजा पूजनस्य फलं नु किम् ॥
अत्रार्थे बहवो वादास्तत्र किंचित्प्रदृश्यते ॥ ५० ॥
त्यागो हि देवतोद्देशात्पूजाद्रव्यस्य कथ्यते ॥
पशुसोमादिसंघाते राजसूयप्रयोगवत् ॥ ५१ ॥

ब्रह्मा देव और सब प्राणीनके पितामह हैं तासों ये सदा पूज्य हैं ॥ ४३ ॥ ॥ ४४ ॥ जो भक्तिसों चतुर्मुखको पूजन नहीं करे हे वो स्वर्ग राज्य और मोक्षको पात्र नहीं जो भक्तिसों पूजे हे वोही स्वर्ग राज्य मोक्षको पात्र होय हे ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ देह छोडदेनो वा नरकमें पात होनो श्रेष्ठ हे परन्तु ब्रह्माजीकी विना पूजा किये भोजन करनो उचित नहीं ॥ ४७ ॥ जो ब्रह्माजीको मोहसों द्वेष करे हे वाके संग भाषणमात्रसों मनुष्य नरकगामी होय हे ॥ ४८ ॥ तो ब्रह्माजीकी पूजाको आपने क्यों त्याग कियो हे और पंचपूजाको विधान करो हो पूजा कहा हे पूज्य कोन हे और कोन पूजाके अधिकारी हैं ॥ ४९ ॥ केसें करी जाय हे कहा फल हे यामें बहोत वाद हैं तामें कछू कहे हैं ॥ ५० ॥ देवताके उद्देश्यसों

देवता पूज्यते सा तु मंत्ररूपेति तांत्रिकाः ॥
ईशात्मिका चेतनैव सेति चोत्तरतांत्रिकाः ॥ ५२ ॥
स्ववर्णाश्रमधर्मस्था निष्पापाश्चाधिकारिणः ॥
गुणभेदेन भिन्नास्ते कामिनो वाप्यकामिनः ॥ ५३ ॥
विधिना क्रियते पूजा वेदतंत्रप्रयोगतः ॥
कायेन मनसा वाचाचोपचारैस्तु तादृशैः ॥ ५४ ॥
भुक्तिर्मुक्तिः फलं तत्र श्रद्धा भक्तिश्च साधनम् ॥
शास्त्राज्ञास्वेव विश्वासः श्रद्धा सा परिकीर्तिता ॥ ५५ ॥
माहात्म्यज्ञानजा प्रीतिर्भक्तिः सा समुदाहृता ॥
श्रद्धापूर्वास्तु वै धर्मा मनोरथफलप्रदाः ॥ ५६ ॥
श्रद्धया साध्यते सर्वं श्रद्धया तुष्यते हरिः ॥
यत्किंचित्क्रियते कर्म श्रद्धयाप्यणुमात्रकम् ॥ ५७ ॥
तन्महज्जायते पुंसां शाश्वतं प्रीतिदायकम् ॥
यथा समस्तलोकानां जीवनं सलिलं स्मृतम् ॥ ५८ ॥

द्रव्यके त्यागको पूजा कहें हें पशुसोमके समुदायमें राजसूयके जेसो ॥ ५१ ॥ तान्त्रिक मंत्ररूप देवता कहें हें ओर वो ईशरूप चेतन हे ये उत्तरतांत्रिक कहें हें॥ ५२ ॥ अपने वर्णाश्रमधर्ममें रहवेवारे पापरहित अधिकारी हें गुणभेदसों कामी अकामी वे भिन्न २ हें ॥ ५३ ॥ वेद-तंत्र प्रयोगसा विधिसों देह मन वाणीकरकें ओर उपचारनसों जो पूजा करी जाय हे ताको भोग मोक्ष फल हे ओर भक्ति श्रद्धा साधन हें शास्त्रके वचन ओर गुरुकी आज्ञामें विश्वास करनो याको नाम श्रद्धा हे ॥ ५४ ॥ ॥ ५५ ॥ माहात्म्यज्ञान जानकें जो प्रीति करनी ताको नाम भक्ति हे श्रद्धापूर्वकधर्मही फलके देवेवारे होय हें ॥ ५६ ॥ श्रद्धाहीसों सब सिद्ध होय हे श्रद्धाहीसों हरि प्रसन्न होय हें श्रद्धासों जो कछू थोरो कर्म करे वोबी बहोत ओर बडे फलको देवेवारो हे जेसे सब प्राणीनको

तथा समस्तसिद्धीनां जीवन भक्तिरिष्यते ॥
आराधन तु यद्वत्तस्या कायेन वचसा धिया ॥ ५९॥
तदन्यत्पूजनं नैतत्पूजा तस्यांगमिष्यते ॥
पूजांगमपि या भक्ति कर्मांगमपि सा स्मृता ॥ ६० ॥
भक्तिस्तुसापरा प्रोक्ता परा प्रेमैकलक्षणा ॥
तत्र पूज्यस्वरूप तु नारदीये निरूपितम् ॥ ६१ ॥
नारायणोऽक्षरोनंत सर्वव्यापी निरंजन
तेनेदमखिलं व्याप्त जगत्स्थावरजंगमम् ॥ ६२ ॥
आदिसर्गे महाविष्णुः स्वप्रकाशो जगन्मय ॥
गुणभेदमधिष्ठाय मूर्तित्रित्वमवाप्तवान् ॥ ६३ ॥
सृष्ट्यर्थमसृजद्देवो दक्षिणांगात्प्रजापति ॥
मध्ये रुद्राक्षमीशान जगदंतकरं मुने ॥ ६४ ॥
पालनायास्य जगतोवामांगाद्विष्णुमव्ययम् ॥
आदिसर्गे महाविष्णुरेवं त्रित्वमवाप्तवान् ॥ ६५ ॥

जीवन जल हे एसेही सब सिद्धीनको जीवन भक्ति हे भक्तिसों देह मन वाणीसों जो सेवा हे वो मुख्य हे पूजा वाको अंग हे ये पूजांग जो भक्ति हे वो कर्मांग हे ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ ६०॥ वो अपरा भक्ति हे प्रेमैकलक्षणा भक्ति परा हे तामें पूज्य स्वरूप नारदीयपुराणमें कह्यो हे ॥ ६१ ॥ अक्षर अनन्त सर्वव्यापी निरंजन नारायणसों ये चराचर सब व्याप्त हे ॥ ६२ ॥ सो सृष्टिके आदिमें स्वप्रकाश जगद्रूप महाविष्णु गुण भेदको आश्रय करके तीन मूर्ति धारण करते भये ॥ ६३ ॥ सृष्टिकी रक्षाके लिये दक्षिणांगसों प्रजापतिको मध्यसों जगतके प्रलयकारी ईशान रुद्रको ॥ ६४ ॥ ओर जगतके पालनके लिये वामांगसों विष्णुको एसे सृष्टिके आदिमें महाविष्णुही तीनरूपनको धारण कियो॥ ६५॥

तमादिदेवमजरं केचिद्रुद्रं वदंति वै ॥
केचिच्च विष्णुमपरे धातारं ब्रह्म चापरे ॥ ६६ ॥
तस्य शक्तिः परा विष्णोर्जगत्कार्यपरिक्षमा ॥
भावाभावस्वरूपा सा विद्याविद्येति गीयते ॥ ६७ ॥
प्रकृतिश्चापरा चेति वदंति परमर्षयः ॥
एष देवः सदा पूज्यः सर्वदेवमयो ह्ययम् ॥ ६८ ॥
किं तु कामविशेषेण मात्स्यादौ पूजनं रुतम् ॥

मात्स्ये ।

आरोग्यं भास्करादिच्छेद्धनमिच्छेद्धुताशनात् ॥ ६९ ॥
ज्ञानं च शंकरादिच्छेन्मोक्षमिच्छेज्जनार्दनात् ॥

देवीपुराणे ।

योगोज्ञानं यशः सिद्धिर्महादेवादवाप्यते ॥ ७० ॥
आरोग्यं सांप्रतं पुत्रं भास्करात्प्राप्यते ध्रुवम् ॥
गतिमिष्टां तथा कामं प्रददाति त्रिविक्रमः ॥ ७१ ॥
धर्मार्थकाममोक्षाणां भाजनं विष्णुपूजकः ॥
सर्वान्कामानवाप्नोति संपूज्य विष्णुवल्लभाम् ॥ ७२ ॥

उन्हीं आदिदेवकों कोई रुद्र कहें हें दूसरे विष्णु कहें हें तीसरे ब्रह्मा कहें हें ॥ ६६ ॥ उन्हीं विष्णुकी जगत्कार्यकरवेमें समर्थ भावाभावस्वरूपशक्तिकों विद्या अविद्या कहें हें ॥ ६७ ॥ कोई परमर्षि प्रकृति कहें हें एसे ये देव सदा पूज्य सर्व देवमय हें ॥ ६८ ॥ ओर कामनाविशेषसों दूसरे देवतानकोबी पूजन मत्स्यपुराणमें कह्यो हे आरोग्य सूर्यसों धन अग्निसों ज्ञान शंकरसों मोक्ष जनार्दनसों योग ज्ञान यश सिद्धि महादेवसों मिलें हें ॥ ६९ ॥ ७० ॥ सूर्यकी उपासनासों निश्चय आरोग्य ओर पुत्र मिले हे त्रिविक्रम इष्टगति देवे हें ॥ ७१ ॥ विष्णुको पूजन करवेवारो धर्म अर्थ काम मोक्ष इनको पात्र होय हे ओर

विघ्नो न जायते तस्य यजेद्यस्तु विनायकम् ॥
मातृगणान्महासिद्धिं सर्वेषामेव जायते ॥ ७३ ॥
लभते धनधान्यानि मर्त्यं सपूज्य चानलम् ॥
स्वर्गापवर्गसंसिद्धिर्दुर्गायागात्प्रजायते ॥ ७४ ॥
तत्र विष्णुपूजोत्कृष्टेत्युक्तं कूर्मपुराणे ।
न विष्ण्वाराधनात्पुण्यं विद्यते कर्म वैदिकम् ॥
तस्मादनादिमध्यांतं नित्यमाराधयेद्धरिम् ॥ ७५ ॥

गारुडे ।

विष्णुर्ब्रह्मा च रुद्रश्च विष्णुर्देवो दिवाकर ॥
तस्मात्पूज्यतमं नान्यमहं मन्ये जनार्दनात् ॥ ७६ ॥

श्रीभागवते ।

यथा तरोर्मूलनिषेचनेन तृप्यति तत्स्कंधभुजोपि शाखाः ॥
प्राणोपहाराच्च यथेन्द्रियाणां तथैव सर्वार्हणमच्युतेज्या॥ ७७॥

लक्ष्मीको पूजन करवेवारो सबकामनकों पावे हे ॥७२॥ गणेशके पूजन करवेवारेको विघ्न नहीं होय हे मातृगणनसों महासिद्धि सबको मिले हे ॥७३॥ धन धान्य अग्निके पूजनसों स्वर्गमोक्षकी सिद्धि दुर्गाके पूजनसों होय हे ॥ ७४ ॥ कूर्मपुराणमें विष्णुकी पूजाकी श्रेष्ठता लिखी हे विष्णुके आराधनसों पुण्य कोईभी वैदिक कर्म नहीं हे तासों उन आदिमध्यअन्तरहित हरिको नित्य आराधन करे ॥ ७५ ॥ "गरुडपुराणमें" ब्रह्मा रुद्र दिवाकर ये विष्णुही हें तासों जनार्दनकों छोडके कोईको अतिपूज्य में नहीं मानूं हूं ॥ ७६ ॥ श्रीभागवतमें, जेसे वृक्षके मूलके सींचवेसों वाकी शाखा डाली सब तृप्त होयजांय हें ओर प्राणके तृप्तीसों सब इन्द्रिय वेसेही सम्प्र-

अन्यपूजानिषेधोपि श्रीगीतासु ।

कामैस्तैस्तैर्हृतज्ञानाः प्रपद्यंतेऽन्यदेवताः ॥
तं तं नियममास्थाय प्रकृत्या नियताः स्वया ॥ ७८ ॥
अंतवत्तु फलं तेषां तद्भवत्यल्पमेधसाम् ॥
देवान् देवयजो यांति मद्भक्ता यांति मामपि ॥ ७९ ॥
आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन ॥
मामुपेत्य तु कौंतेय पुनर्जन्म न विद्यते ॥ ८० ॥
सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ॥
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि माशुचः ॥ ८१ ॥

श्रीभागवते ।

मुमुक्षवोघोररूपान् हित्वा भूतपतीनथ ॥
नारायणकलाः शांता भजंति ह्यनसूयवः ॥ ८२ ॥
रजस्तमःप्रकृतयः समशीला भजंति वै ॥
पितृभूतप्रजेशादीन् श्रियैश्वर्यप्रजेप्सवः ॥ ८३ ॥

तसेवासों सबको पूजन होयजाय हे एसो लिख्यो हे ॥ ७७ ॥ दूसरेनकी पूजाको निषेध "श्रीगीताजीमें" कामनानसों जिनको ज्ञान हरजाय हे वे दूसरे देवतानकों प्राप्त होय हें ओर उनके २ नियमनकों करें हें ॥ ७८ ॥ परन्तु उन अल्पबुद्धीनको वो फल नाशवारो होय हे ओर उन्हीं देवतानको प्राप्त होंय हें ओर मेरे भक्त मोकों पावें हें ॥ ७९ ॥ ब्रह्मलोकपर्यन्त सब विनाशी हें ओर हे अर्जुन मोंकों पायकें पीछें जन्म नहीं पावे हे ॥ ८० ॥ सबधर्मनको छोडके मेरी शरण आवो में तुमको सबपापनसों छुटाऊँगो ॥ ८१ ॥ "श्रीभागवतमें" मोक्षकी इच्छा करवेवारे घोररूपभूतपतिनकों छोडकें शान्त होयकें मोकों भजें हें॥ ८२॥ रजोगुणी ओर तमोगुणी लक्ष्मी ऐश्वर्य पुत्रकी इच्छासों पितर भूत प्रजेशादिकनको भजन करें हें ॥ ८३ ॥

एवमेकार्चनं विष्णो' शास्त्रेषु बहुधोच्यते ॥
विद्वेषे तत्र किं मूलं निर्मूलमिव भाति न ॥ ८४ ॥
यत्तु श्रीशंकराचार्यैः पंचपूजा प्रचारिता ॥
तत्र मूलमिदं भाति श्रूयते च महन्मुखात् ॥ ८५ ॥
यदा बौद्धमते राजाह्यशोकश्चक्रवर्त्यभूत् ॥
प्रवृत्तं शासनं तस्याप्यतिम मनुशासने ॥ ८६ ॥
तथागतमतेचागामहं राजा तथा प्रजा ॥
मदीया संप्रवर्तेतां त्यक्त्वा धर्मांतरं निजम् ॥ ८७ ॥
ततस्तु दु खिता लोका' श्रुत्वा तच्चोग्रशासनम् ॥
निर्वाह्यो गृहिभिर्धर्म' कथं राजनि दु:खदे ॥ ८८ ॥
बहवस्त्वत्यजन् धर्मं केचिद्धर्मपरा जना' ॥
त्यक्त्वा गृहान् वनचरा जाता धर्मरिरक्षया ॥ ८९ ॥
स्वं स्व देवं समाश्रित्य तत्तल्लिंगं दधव्रता ॥
आशासाना' स्वधर्मस्य प्रचारं वैदिकस्य च ॥ ९० ॥

ऐसेही शास्त्रनमें प्रायः विष्णुही एक देवताको पूजन कह्यो है और द्वेष करवेमें कछू मूल नहीं है ॥ ८४ ॥ और जो श्रीशंकराचार्यजीने पंचदेवताको पूजन प्रचार कियो है तामें ये मूल जानपडे है और बडेनके मुखसों सुन्योभी है ॥ ८५ ॥ के जब बौद्धमतको अशोक राजा चक्रवर्ति भयो तब वाकी आज्ञा प्रचलित भई ॥ ८६ ॥ वाने कह्यो के हम बौद्धमतके हैं प्रजाकोभी दूसरे धर्मनकों छोडकें वोही पालनो चहिये जैसे राजा वैसी प्रजा ॥ ८७ ॥ तब ऐसो ताको कठोर शासन सुनकें प्रजा बडी दुःखी भई और कहवेलगी के दु खदायी राजाके होयवेपे गृहस्थ कैसे अपने धर्मनको निर्वाह करे ॥ ८८ ॥ बहुतननें तो धर्मकों छोड दीनो कोई धर्मकी रक्षाके लियें घरनकों छोडकें वनमकों चलेगये ॥ ८९ ॥ अपनें२ देवनके चिन्हनको आश्रय करकें वैदिकधर्मके प्रचारकी आशामें पुभ

आशायामेव पंचत्वं पुत्रपौत्रैः समन्विताः ॥
तत्संतानप्रसूतैस्तु चिराद्धर्मोऽपि विस्मृतः ॥ ९१ ॥
पुस्तकानामलाभेन पंडितानामभावतः ॥
ते लिंगवृत्तयो जाता विरुद्धाश्च परस्परम् ॥ ९२ ॥
ततस्तु शंकरः साक्षादवतीर्णः स शंकरः ॥
भयंकरस्तु बौद्धानां स्वानां क्षेमंकरो यमी ॥ ९३ ॥
बौद्धान्निर्जेतुकामोऽसौ विरुद्धान्वीक्ष्य वैदिकान् ॥
अन्योन्यसंधये तत्र पंचपूजा प्रवर्तिता ॥ ९४ ॥
न तु सिद्धांततस्तस्य दृश्यतेभिमता क्वचित् ॥
स तु नारायणासक्तो गीतादिग्रंथवर्णनात् ॥ ९५ ॥
मंगलाचरणादस्य स्तोत्रग्रंथैः स्वधर्मतः ॥
न्यासिनो वैष्णवाः प्रायो विष्णुलिंगं च तत्स्मृतम् ॥ ९६ ॥
व्रजामि शरणं विष्णोरित्त्येवं तत्कृतौ स्मृतम् ॥
मुरारिं वा पुरारिं वा धातारं वा यथारुचि ॥ ९७ ॥
पूजयंतु जनास्तेभ्यो वारयामो न वै वयम् ॥
सत्वात्संजायते ज्ञानं सत्वमूर्तिर्हरिः स्वयम् ॥ ९८ ॥

पौत्रनके सहित मरगये ओर उनकी संतान बहोत काल होयवेसों धर्मकोवी भूलगई ॥ ९० ॥ ९१ ॥ पुस्तक ओर पंडितनके न रहवेसों परस्पर विरुद्ध लिंगी होयगये ॥ ९२ ॥ तब साक्षात् शंकरनें अवतार लीनो जो बौद्धनके भय करवेवारे ओर अपनेनके सुखकारी भये ॥ ९३ ॥ बौद्धनके जीत-वेकी इच्छासों विरुद्ध वैदिकनकों देख उनके आपसमें मेलके लिये पंचपूजा चलाई ॥ ९४ ॥ ओर आप तो नारायणके भक्त हे इनके गीतादिकग्रन्थ-नके व्याख्यानसों मंगलाचरणसों स्तोत्रनसों ग्रन्थनसों ये बात स्पष्ट हे ओर संन्यासी प्रायः वैष्णव होय हें उनको विष्णुचिह्न हे ॥ ९५ ॥ ९६ ॥ में विष्णुके शरण जाऊँ हूँ एसो उनकी पद्धतिमें लिख्यो हे विष्णु शिव ब्रह्मा आदिमेंसों

तस्मात्संपूजयेद्विष्णु यदीच्छेत्परमां गतिम् ॥
ईश्वरार्चनत श्रेय सर्वैक कोपि संमत ॥ ९९ ॥
यूय भजध्व बहुभि किमित्येतद्वदाम्यहम् ॥
श्रुत्वैतद्वचन तेषा रागद्वेषविवर्जितम् ॥ १०० ॥
यतिराट् सप्रसन्नात्मा जगाद वचन पुन ॥
एकदेवार्चनं वास्तुचास्तु वानेकपूजनम् ॥ १०१ ॥
आनन्दमयसूत्रस्य व्याख्यान श्राव्यता मम ॥
ततस्तु श्रीमदाचार्यो प्रथम तन्मतानुगम् ॥ १०२ ॥
ऊचुर्वरणकैर्भिन्न पद्मपादादिसंमतम् ॥
विष्णुस्वामिमतेनाह पुनरेतत्सविस्तरम् ॥ १०३ ॥
ब्रह्मवित्परमाप्नोति तैत्तिरीयश्रुतौ रुतम् ॥
कोब्रह्मवित्पर कश्च कोवर किं फल पुन ॥ १०४ ॥
तत परमुखेनाह चेयाभ्युक्तेति गीः श्रुते ॥
सत्यं ज्ञानमनतं यत्तद्ब्रह्मेति निरूप्यते ॥ १०५ ॥

यथारुचि कोईकोंबी पूजा करो हम रोके नहीं हे परन्तु सतोगुणसे ज्ञान उत्पन्न होय हे सत्वमूर्ति स्वय हरि हे ॥ ९७ ॥ ९८ ॥ यातें जो परगति चाहे तो विष्णुकी पूजा करे ईश्वरकी सेवासों कल्याण होय हे ये एक हैं कोई वी रहें ॥ ९९ ॥ ओरजो आप बहुतनकों भजो हो सो कहा हे एसे रागद्वेषसों रहित श्रीमदाचार्यजीके वचननको सुनके यतिराज प्रसन्न होयके पीछें बोले के एकदेवको पूजन हो वा अनेकको हो ॥ १०० ॥ १०१ ॥ अब " आनन्दमयो ऽभ्यासात " या सूत्रको व्याख्यान सुनाइये तब श्रीमदाचार्यजीनें पहले उनके मतके पद्मपादाचार्यादिकनके सम्मत अर्थको सुनायो पीछें अपने विष्णुस्वामिमतसें सविस्तर सुनायो ॥ १०२ ॥ १०३ ॥ तैत्तिरीयश्रुतिमें लिख्या हे जो ब्रह्मको जानवेवारो परमात्माको पावे हे तो कौन ब्रह्मवित् हे कौन पर हे कौन अवर हे कहा फल हे ॥ १०४ ॥ " सत्यज्ञान

तज्ज्ञानात्सर्वकामाप्तिः परब्रह्मात्मना भवेत् ॥
परावरत्वमेकस्य रमणेच्छा निरूपिता ॥ १०६ ॥
परस्तु परमानन्दो गणितानंदकोऽवरः ॥
ब्रह्मात्मा द्विविधः सोऽयं भक्त्या ज्ञानेन लभ्यते ॥ १०७ ॥
ज्ञानप्राप्त्यै भृगोराख्या तपोब्रह्मैव साधनम् ॥
तपसावगतानां स्यादन्नप्राणमनोधियाम् ॥ १०८ ॥
कथमब्रह्मता तेषां जगद् ब्रह्मात्मकं खिलम् ॥
देहाद्यन्नादिमूर्त्तिश्च तत्तत्कामोपबृंहिता ॥ १०९ ॥
गणितानन्दब्रह्मस्था परानन्दमयाऽऽप्यते ॥
सा पूर्णानन्दरूपातः फलरूपा निगद्यते ॥ ११० ॥
नातः परं श्रूयतेऽत्र फलप्राप्तिः स्फुटा श्रुतौ ॥
स्तुतौ मयस्ततोऽभ्यास आनंदस्य प्रपाठके ॥ १११ ॥
द्व्यचोमयड्विकारेस्यात् त्र्यचो नेति नियम्यते ॥
इत्थं व्याकुर्वतामग्रे नेत्थं प्राह यतीश्वरः ॥ ११२ ॥

मनन्तं ब्रह्म" यासों कह्यो भयो ब्रह्म हे ताके ज्ञानसों सर्वकी प्राप्ति होय हे ताहीकी रमणकी इच्छा निरूपण करी हे परमानन्द पर हे गणितानन्द अवर हे वो ब्रह्मात्मा ज्ञान ओर भक्तिसों मिले हे ॥ १०५ ॥ १०६ ॥ ॥ १०७ ॥ ज्ञान प्राप्तिके लिये भृगुकी आख्या हे तपही ब्रह्मको साधन हे तपसों जाने गये जो अन्नमयादिक हें उनको अब्रह्मता केसे हे जगतही ब्रह्मात्मक हे देहादिक जो अन्नादि मूर्ति हें वे कामके लियें हें गणितानन्दमें रहकेवी ताकी पर ब्रह्मता हे ओर वो पूर्णानन्द रूप हें तासों फल रूप हें ॥ १०८ ॥ १०९ ॥ ११० ॥ यातें पर श्रुतिमें फलप्राप्ति दूसरी नहीं हे येही प्रपाठकमें हे द्व्यच्सों विकारार्थक मयट् होय हे त्र्यच्सों नहीं एसो नियम होय हे एसे [illegible]

व्यचश्छन्दसि सूत्र तु विध्यर्थं न नियामकम् ॥
मृद्विकारघटादौ य आकाशो मरितो भवेत् ॥ ११३ ॥
स तद्विकारएवैवमानंद कोशसभृत ॥
तथा नियमपक्षेपि सिध्यत्येव विकारता ॥ ११४ ॥
यथाहेतुमनुष्येभ्यः सूत्राद्धेत्वनुवर्तने ॥
हेत्वर्थानदशब्दाच्चावगतार्थे विधौ मयट् ॥ ११५ ॥
आनन्दमयशब्दोऽय ज्ञेयो ह्यन्नमयादिवत् ॥
इत्युक्त यतिराजेनास्मदाचार्यास्तदा जगु ॥ ११६ ॥
नियमार्थं हि तत्सूत्र हेत्वर्थोऽत्र न सभवेत् ॥
उपादाननिमित्ताभ्यां स द्विधा प्रकृते तु क ॥ ११७ ॥
अनुवृत्तिर्भाष्यकारादिभि कुत्र निरूपिता ॥
न वृत्तिकारे सा प्रोक्ता भवद्भि प्रोच्यते कथम् ॥ ११८ ॥
प्राचुर्यार्थे मयट् सूत्रकारेणैव निरूपित ॥
प्राचुर्यस्य तु यद्भाष्येऽपरसत्तावबोधनम् ॥ ११९ ॥

बोले के एसो नहीं "द्वयचश्छन्दसि" ये सूत्र तो विध्यर्थक है नियामक नहीं है मृद्विकारघटादिकनमें जो आकाश है वो वाको विकारही है याही-प्रकारको संभृत आनन्द है तो नियमपक्षमेंभी विकारता सिद्ध होय है ॥ १११ ॥ ११२ ॥ ११३ ॥ ११४ ॥ "यथाहेतु" या सूत्रसों हेतुकी अनुवृत्ति है हेत्वर्थक आनन्दशब्दसों विधिमें मयट् है ॥ ११५ ॥ आनन्दमय शब्दभी अन्नमयशब्दके जेसो है एसे यतिराजके कहवेपे भीम-राचार्यजी बोले ॥ ११६ ॥ जो वो सूत्र नियमार्थकही है हेतुअर्थकी सम्भावना नहीं है उपादाननिमित्तसों दो भांतकोहे तो प्रकृतमें यहाँ कहा है ॥ ११७ ॥ भाष्यकारादिकननें अनुवृत्ति कहाँ कही है न वृत्तिकारनें कही ॥ ११८ ॥ ओर सूत्रकारहीनें प्राचुर्यअर्थमें मयट् कह्यो है प्राचुर्यको

अभिप्रेतं न तद्युक्तं प्रकाशप्रचुरो रविः ॥
निदाघो ग्रीष्मबहुलः कुबेरो बहुवित्तवान् ॥ १२० ॥
स्वसत्ता भासते चात्र नान्यसत्ता प्रतीयते ॥
प्रमाणांतरतश्चान्यसत्ता क्वापि प्रतीयताम् ॥ १२१ ॥
प्रकृते श्रुतिवाक्येभ्यः स्वसत्ता दृढतां गता ॥
सूत्रकारो विकारार्थनिषेधाय तदुत्तरम् ॥ १२२ ॥
सूत्राणि पेठे बहुशश्चानन्दमयता यतः ॥
पंचकोशाः विशुध्यंतां श्रुतिरेषान्यगा पुनः ॥ १२३ ॥
कोशाजीवगतास्ते स्युरिमा ब्रह्मविभूतयः ॥
श्रुतावन्नमयादीनां फलरूपत्वकीर्तनात् ॥ १२४ ॥
मैत्रायणिश्रुतौ चापि ह्यन्नं विष्णुरितीरितम् ॥
आनंदमयमात्मानमुपसंक्रामतीत्यतः ॥ १२५ ॥
परोपसंक्रामो नोक्तः फलतास्यावसीयते ॥
श्रीमद्भागवते चांते ह्यानन्दमयता श्रुता ॥ १२६ ॥

तो भाष्यमें अपर सत्ता कही हे ॥ ११९ ॥ तासों आपको अभिप्रेत नहीं सिद्ध होय हे गरमी बहुत हे जामें एसो ग्रीष्म बहोत धनवारो कुबेर यहाँ अपनीही सत्ता भासे हे परसत्ता नहीं प्रतीत होय हे दूसरे प्रमाणनसों अन्य-सत्ता कहीं भासे यहाँ तो श्रुतीनसों स्वसत्ताही दृढ हे सूत्रकार विकारार्थके निषेधके लिये आगे बहुतसे सूत्र पढे हें पंचकोशनको शुद्ध करो कोश जीव-गतब्रह्मके विभूति हें श्रुतिमें अन्नमयादिकनकों फलरूप वर्णन कियो हे ॥ १२० ॥ १२१ ॥ १२२ ॥ १२३ ॥ १२४ ॥ मैत्रा-यणीश्रुतिमेंबी अन्नकों विष्णु कह्यो हे आत्माको आनन्दमय कहके उपसंहार कियो हे ॥१२५ ॥ परोपसंक्रम नहीं कह्यो याहीसों याकी फलरूपता हे श्रीमद्भागवतमेंबी अन्तमें आनन्दमयता देखें हें ओर श्रुतिमेंबी याकी ब्रह्म-

श्रुतिस्तुतौ तथाचास्य कथिता ब्रह्मरूपता ॥
ब्रह्मण पुच्छरूपत्वं तत्पुच्छांगं तु पक्षिण ॥ १२७ ॥
ततस्तत्पुच्छमेव स्यादथर्वांगिरसादिवत् ॥
तेनानन्दमयो ब्रह्म तत स्वार्थे मयण्मत ॥ १२८ ॥
आनन्दस्तेन चाभ्यस्त सूत्रकारेण बोध्यते ॥
इत्थं विवादे संवृत्ते सायकालेप्युपस्थिते ॥ १२९ ॥
अल यतीश्वर प्राह शिष्या प्राहुरलं ह्यलम् ॥
तत सौहृदसलाप कृत्वोत्तस्थौ यतीश्वर ॥ १३० ॥
अस्मदार्योपि चोत्तस्थौ चन्द्रमौलिनमस्कृत ॥
राज्ञोपढौकित दत्तमर्पयत्तत्पुरोधसा ॥ १३१ ॥
सत्कृता बहुमानेन प्रस्थितास्ते यथायथम् ॥
अथ स्वशिविर गता गुरवरा व्यधुः स्वाह्निक
प्रभातसमये ततोऽभिससरु सुविद्यापुरम् ॥
इतो नृपतिवादिनी समनुगात्ततां वादिनीं
पवित्रसलिलां शिवां जगति तुंगभद्रेव सा ॥ १३२ ॥

रूपता कही हे तामों आनन्दमय ब्रह्म हे ओर स्वार्थमें मयट् प्रत्ययहे याहीसों व्यासजी अभ्याससों आनन्दकों बोध करें हें एसे विवाद होते सन्ध्या समय होयगयो ॥ १२६ ॥ १२७ ॥ १२८ ॥ १२९ ॥ तब यतीश्वर बोले के बस ओर उनके शिष्यभी बोले बस २ पीछें शिष्टाचार करके यतीश्वर उठे ओर अस्मदाचार्यजीभी उठे ओर चन्द्रमौलिमहादेवको नमस्कार करके राजाकी दीनी भई भेटकों उनके पुरोहितसा अर्पण करायो ओर बहाँसों सत्कारकों पायकें पधारे ॥ १३० ॥ १३१ ॥ पीछें अपने डेरामें आयकें आह्निक करकें वहाँसा प्रात काल विद्यानगरकों पधार या आडी

तन्मार्गेण शनैः शनैः प्रचलिता विज्ञैस्समाराधिता
मार्गेऽस्मिन्समुपागतैर्मुनिजनैः पुष्पोपहारादिभिः ॥
ते विद्यानगरोपकंठविपिने कुंजेऽवतीर्णाः शुभे
आरूढे मिहिरे महातपभरे कर्तुं च माध्याह्निकम् ॥ १३३ ॥
आचार्यान् प्रणिपत्य तत्र नृपतेर्दूतो गतः सत्वरं
हर्षोत्त्कर्षवशान्नृपस्य सदने नीतः प्रतीहारकैः ॥
श्रुत्वा दूतसमागमं नृपवरः कार्यं विहायाखिलं
सिद्धार्थं मुखतोऽनुमाय ससुखं पूर्णार्थतामागतः ॥ १३४ ॥
श्रीवेदव्यासविष्णुप्रभुचरणमिते सम्मिते ग्रन्थसार्थैः
श्रीगोविन्दाभिधानां समयनयविदां देशिकानां निदेशात् ॥
आचार्याणां चरित्रे हरिजनसुखदे शास्त्रिकृष्णैर्निबद्धे
प्रस्थानेऽस्मिँस्तृतीये समजनिपटहोद्वादशोयंजयाख्ये॥१३५॥

तुंगभद्राके तटपे राजाकी सेना आई ही ॥ १३२ ॥ सो वाही मार्गसों धीरे धीरे चलते ओर मार्गमें आये भये विद्वाननसों मुनिजननसों पुष्पनसों आराधना किये गये श्रीमदाचार्यजी विद्यानगरके उपवनमें मध्यान्ह करवेकूँ लिये उतरे ॥ १३३ ॥ वहाँ आचार्यनकों प्रणाम करकें राजाको दूत आगे बेगीसों बडे हर्षसों गयो सो ताको द्वारपाल ले गये राजावी दूतको आवनो सुनकें ओर सबकामनकों छोडकें वाके मुखपेसों वाको सिद्धार्थ समझकें ओर आप पूर्ण मनोरथ भयो ॥ १३४ ॥ समयनीतिके जानवेवारे जगद्गुरु श्रीमद्गोविन्दाचार्यजी महाराजकी आज्ञासों कृष्णशास्त्रीके बनाये श्रीमद्वेद-व्यास विष्णुस्वामिमतके ग्रन्थनके अनुकूल हरिभक्तनके सुख देवेवारे या चारित्रग्रन्थके तीसरे प्रस्थानमें ये बारहवों पटह समाप्त भयो ॥ १३५ ॥

अथ व्रज्यां कृष्णदेव कृष्णदेवप्रियात्मनाम् ॥
निशम्य दूतात्प्रीतोऽस्मै धनं प्रादान्महामना ॥ १ ॥
तेषामभिमुख गंतु समभूत्समहीपति ॥
सामंतान्मंत्रिण स्वीयान् सर्वानेव समादिशत् ॥ २ ॥
विशापतेर्निदेशेन सज्जितास्ते समागता ॥
निस्सानादिमहावाद्यैस्सामता पृतनागणे ॥ ३ ॥
कुंजराणां तुरगाणां रथानां पादचारिणाम् ॥
समागतानामकरोत्काहल प्रतिहारताम् ॥ ४ ॥
ध्वजैर्ध्वजिन्य शोभंते पताका निहतातपा ॥
भटानामायुधैर्दंशैर्भ्राजत्पुरटमंडिते ॥ ५ ॥
सन्नद्ध वीक्ष्य तत्सर्व भूप प्राह पुरोधस ॥
पुरोभिगम्यतां ब्रह्मन् शिविकाछत्रचामरै ॥ ६ ॥
मातंगैरश्ववारैश्च कुंजरै स्यदनैर्बलै ॥
पादुकानां प्रतिष्ठार्थमाचार्याणां महात्मनाम् ॥ ७ ॥
अहं ते पृष्ठत किंचिद्दूरादायामि सत्वरम् ॥
मगल कलश वामे कृत्वा वारवधूजन ॥ ८ ॥

पीछें कृष्णदेव राजा कृष्णदेवके आत्मा श्रीमदाचार्यजीके पधारवेकी दूतके मुखसों सुनके बडे प्रसन्न होयकें वाकों बहोत धन दीनो ॥ १ ॥ ओर आपके सामने आयवेके लिये तैयार भयो अपनी सेना ओर मंत्रीनको सबकों आज्ञा दीनी ॥ २ ॥ सो राजाकी आज्ञामें निसान नगारा आदि सब तैयार भये ओर हाथी घोडा रथ सिपाहीनको बडो कोलाहल भयो ॥ ३ ॥ ४ ॥ ध्वजा (पताका) सों घामका दूर करवेवारी सेना शोभती भई एसी सब तैयारीकों देखके राजा पुरोहितसों बोले के हे ब्रह्मन पालकी छत्र चमर हाथी सवार रथ सेना आदिकों लेके महात्मा श्रीमदाचार्यजीके पादुकानकी प्रतिष्ठाके लिये आगे चलो ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥ मैं तुमसों थोरी दूर पीछे येगी

विद्वद्भिर्ब्राह्मणैः सार्द्धमाचार्यैश्च महात्मभिः ॥
पौरैर्जानपदैरिभ्यैरिष्टैः शिष्टैः कुटुंबिभिः ॥ ९ ॥
चतुरंगवरूथिन्यां मंत्रैर्गीतैश्च मंगलैः ॥
तथेत्युक्त्वा गुरुः प्रागात्पुरः सीम्नः परेऽजिरे ॥ १० ॥
सशिष्यान्सगणान् तत्राचार्यान् दीक्षार्चने स्थितान् ॥
अवतीर्य समागत्य पुरो गत्वावनींगतः ॥ ११ ॥
सोपायनकरश्चेडे राज्ञो वृत्तं व्यजिज्ञपत् ॥
यावत्कृताह्निकाचार्याजातास्तावन्महीपतिः ॥ १२ ॥
समागतः समाजन मघवांगिरसं यथा ॥
समुत्तीर्य गजेन्द्रात्स धरेन्द्रो ब्राह्मणोत्तमैः ॥ १२ ॥
आचार्यैश्च निजाचार्यैरिभ्यैः सभ्यैश्च मंत्रिभिः ॥
प्रणतश्चरणोपांते दंडवत्प्रेमविह्वलः ॥ १४ ॥
अथोपढौकितं चक्रे सुवर्णानां शतं मुदा ॥
स्वीयेभ्योऽकारयच्चैवं विश्राम्योपबलिं पुनः ॥ १५ ॥

आऊ हूँ तब मंगलकलश विद्वान् ब्राह्मण महात्मानकों आगे करकें पुरीके बसवेवारे सेठ साहूकारनके संग पुरोहितजी पुरकी सीमाके आगे गये ॥ ८ ॥ ॥९॥१०॥सो शिष्यनके सहित आपकों देखकें दंडवत् कर भेट धरके राजाको वृत्तान्त कह्यो ओर पीछें जबताईं श्रीमदाचार्यजी आह्निक करें इतने-हीमें जेसे इन्द्र बृहस्पतिके पास गये हे वेसेही राजा आयो सो हाथीसा उत-रकें विद्वान् ब्राह्मण अपने आचार्य प्रजा मन्त्री इनके संग बडी नम्रतासों प्रेमसों विह्वल होयकें श्रीचरणके समीप दंडवत् करतो भयो ॥ ११ ॥ ॥ १२ ॥ १३ ॥१४ ॥ ओर भेट करकें अपने दूसरे मनुष्यनसोंवी भेट करावतो भयो पीछे श्रीमदाचार्यजीकी आज्ञासों बेठके बोल्यो के आप दक्षिण-दिशाकों पवित्र करते जितने दिन बिताये वे हमको कल्पके समान बीते हैं

आशीर्मन्त्रैर्ब्रह्मघोषैर्मंगलान्यपचारयत् ॥
आचार्याणां निदेशेन सोपविष्टोऽब्रवीद्वच ॥ १६ ॥
श्रीमद्भिर्दक्षिणामाशां चरद्भिः पावनेच्छया ॥
यावद्वर्षाणि नीतानि तानि कल्पायनानि न ॥ १७ ॥
केनापि भाग्ययोगेन सुवर्णार्कोऽधुनोदित ॥
यद्धरेर्वदनस्यागाद्वदन विषय दृशाम् ॥ १८ ॥
लौकिकार्थैस्त्रिलोकीय वियुक्ते शोकमृच्छति ॥
कथ न संभवेदेषोऽलौकिकार्थे वियोजिते ॥ १९ ॥
न संपत्सुकृतस्येय न सपत्पौरुषस्य न ॥
सपत्कृपाकटाक्षाणां सेय समुदिताऽधुना ॥ २० ॥
यदद्य दर्शनं जात तत्र हेतुर्ममेक्ष्यते ॥
गच्छद्भिर्जीवनकृते यद्युक्तं चरणार्चनम् ॥ २१ ॥
चिर सिंहासनस्याग्रे कृत य पादुकार्चनम् ॥
भावेन राजभूत्यैव तदद्य फलितं मम ॥ २२ ॥
सत्यवचासत्यवाग्भोजाता पूर्णार्थता च न ॥
नगरं मदिर स्वीय कुरुताङ्घ्रिपवित्रितम् ॥ २३ ॥

अब कोई भाग्ययोगसों सूर्यको उदय भयो ह जो भगवद्वदनावतार आपके दर्शन भये लौकिकके वियोगमें मनुष्य शोक करे हैं ओर आपको तो अलौकिक वियोग हे सो ये आपको दर्शन मेरे सुकृतको वा पुरुषार्थको फल नहीं हे किन्तु सुवर्णाभिषेकके समय जो श्रीचरणनको पूजन कियो हो सो आज फलित भयो हे ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥ आपकी सत्य वाणी भई ओर मेरो मनोर्थ पूरो भयो अब या अपने नगर ओर मन्दिरको पवित्र करिये एसी राजाके विज्ञप्ति करवे-

इत्थं विज्ञाप्यमानेऽस्मिन्नाचार्याः पंडिताः परे ॥
सर्वे विज्ञापनं चक्रुः प्रसशंसुर्यथोचितम् ॥ २४ ॥
पप्रच्छुः कुशलं राज्ञो दत्वाशिषमनुत्तमाम् ॥
वार्तां विधाय चलितमाचार्यैः प्रोत्थितैस्ततः ॥ २५ ॥
गुरूणां पादुके राज्ञा शिबिकायां निवेशिते ॥
छत्रेण चामराभ्यां च राजाऽऽचार्यानुगोऽभवत् ॥ २६ ॥
पद्भिश्चेरुर्यदाचार्याः सर्वे पादचरास्तदा ॥
निन्युस्ते नगरं स्वीयं महोत्सवपुरस्सरम् ॥ २७ ॥
नगरे नरनारीणां व्यूहा बालपुरःसराः ॥
आपणे चत्वरे प्राप्ता हर्म्याद्युपरि कौतुकात् ॥ २८ ॥
तत्र तत्र जनाश्चक्रुः कुसुमैरभिवर्षणं ॥
राजकीयाः सुवर्णस्य पुष्पाचारं समाचरन् ॥ २९ ॥
इभ्याः सभ्यास्तत्र तत्र व्यदधुश्चोपढौकितं ॥
महोत्सवेन तैर्नीता राजद्वारे महीभृता ॥ ३० ॥

पे ओर संगके आचार्य पंडितजन सबननें प्रार्थना करी ओर प्रशंसाकरी ॥२३॥२४॥ तब राजाको कुशल पूँछकें ओर आशीर्वाद देकें वार्ता करकें श्रीमदाचार्यजी पधारे ओर राजानें श्रीमदाचार्यजीकी पादुकानको पालकीमें पधरायकें छत्र चमरनके सहित पाँवनसों पीछे २ चल्यो ओर बडे उत्सवसों नगरमें पधराये गलीनमें चौकनमें छतनपें बालक स्त्रीपुरुषनके झुंडके झुंड जमा होय गये ओर पुष्पनकी वृष्टि करवेलगे ओर राजकीयमनुष्यननें सुवर्णके फूलनकी वृष्टि करी ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥ ओर शहरके सभ्य धनाढ्यननें भेट करी एसे बडे उत्सवसों राजद्वारमें पधराये ओर पादुकानसों उत्तमवस्त्र बिछे मार्गमें चलते मन्त्रनसों अभिषेक किये गये एसे श्रीमदाचार्यजीकों सिंहासनमें पधरायकें राजा राजाकी स्त्री भ्राता बहेन ओर बन्धूननें वैदिकरीतसों बडे उत्तम उपचारनसों पूजन करकें बडी भेट करते

क्षत पादुकाभ्यां ते वरांशुकवृतेऽध्वनि ॥
नीत्वा राजसभाद्वारेऽभिषक्तामतुमूर्द्धनि ॥ ३१ ॥
सिंहासने चोपवेश्य कृतमाचार्यपूजन ॥
राज्ञा राजांगनाभिश्च मात्रा भ्रमात्य बंधुभि ॥ ३२
वैदिकेन विधानेन चोपचारैर्महोत्तमै ॥
कृत्वोपढौकित भूरि चक्रुरारार्तिकं महत् ॥ ३३ ॥
सौवर्णेनेव पात्रेण तौर्यत्रिकपुर सर ॥
चरणामृततोय तद्राजतामत्रसभृत ॥ ३४ ॥
जगृहु शिरसा सर्वे पपुश्चैव च सर्वश ॥
उपढौकितसद्द्रव्य ब्राह्मणेभ्य समर्पित ॥ ३५ ॥
स्वकीयेभ्य परेभ्यश्च देवेभ्योऽपि विभागश ॥
ततस्तु तीर्थयात्राया आचार्योश्च महीपति ॥ ३६ ॥
पप्रच्छु सकल वृत्त भट्टार्याद्याश्च त जगु ॥
आचार्ये प्रस्थितं चेत पपायां समवस्थित ॥ ३७ ॥
गतिर्विहगमस्यासीद्गुरूणामघितीर्थत ॥
ऋष्यमूके ततो रामदासेन सह सगम ॥ ३८ ॥
महिमा रामभक्तेश्च तत्र सम्यड्निरूपिता ॥
स्कांदे कुमारपादस्य जयस्तेपां प्रपत्तय ॥ ३९ ॥

भये ओर सुवर्णपात्रसों आरती उतारके चरणामृत पान करके मस्तकपे धारण कियो ओर राजा तथा दूसरे आचार्यननें तीर्थयात्राको वृत्तान्त पूँछ्यो सो सगके शेषभट्टादिकननें सब हाल कहे के यहाँसो आप पपासर पधारे ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ यहाँ आपके चरणतीर्थसों एक पक्षीकी गति भई पीछे एक रामदासके सग ऋष्यमूकपर्वतमे समागम भयो ॥ ३८ ॥ श्रीरामकी महिमाको अच्छी प्रकारसों निरूपण भयो स्कान्दतीर्थमें कुमारपादको जय कियो ओर उनको

श्रीशैले भोगिकायस्य कायस्तंभजयोऽभवत् ॥
व्यंकटे व्यंकटेशस्य तोषः पारायणादभूत् ॥ ४० ॥
कामकोष्णीं पुरीं भूतिं श्रीशेषार्यजनेः पदं ॥
शिवकांचीं चाथ याता नेमुश्चैकांबरेश्वरं ॥ ४१ ॥
कांच्यां श्रीहस्तनाथेनाकृष्य दत्तं च दर्शनं ॥
शैवानां वैष्णवानां च जयः प्रीतिः प्रकाशिता ॥ ४२ ॥
पक्षितीर्थे ततो याता दृष्टौ तौ पक्षिणाविह ॥
चिदंबरं ततो याता शंकरस्वामिसंभवम् ॥ ४३ ॥
कुंभकोणमितः प्राप्ताश्शिक्षितास्तत्र वैदिकाः ॥
दक्षिणद्वारिकां याता चोपदिष्टाश्च वैष्णवाः ४४ ॥
अयोध्यां दक्षिणां दृष्ट्वा रामभक्तिर्निरूपिता ॥
तंजावरे प्रजाभिश्च प्रजेशेन च सत्कृताः ॥ ४५ ॥
श्रीरंगं समनुप्राप्ता राघवार्यो विनिर्जितः ॥
ऋषभाद्रिं परिक्रम्य मीनाक्षीं समुपागताः ॥ ४६ ॥

शरण लीनो ॥ ३९ ॥ श्रीशैलमें सर्पशरीरधारीको जय कियो और वेंकटाचलमें पारायणसों श्रीव्यंकटेशको प्रसन्न कियो ॥ ४० ॥ श्रीरामानुजाचार्यजीकी जन्मभूमि कामकोष्णीपुरीकों पधारे शिवकांचीमें एकाम्बरेश्वरको नमस्कार कियो विष्णुकांचीमें श्रीवरदराजजीनें बडे प्रेमसों दर्शन दिये वहाँ शैव तथा वैष्णवनकों जीतकें उनमें प्रीति प्रकाश करी ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ पीछें पक्षितीर्थमें पक्षीनकों देखे चिदम्बरकों गये कुम्भकोणमें जायकें वैदिकनकों शिक्षा दीनी दक्षिणद्वारकामें जायकें वैष्णवनकों उपदेश कियो ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ दक्षिण अयोध्यामें रामभक्तिकों निरूपण कियो पीछें तंजावरकी प्रजा तथा राजासों सत्कारकों पायो ॥ ४५ ॥ श्रीरंगमें राघवाचार्यकों जीत्यो ऋषभाद्रिकी परिक्रमा करकें मीनाक्षी आये वहाँबी विष्णु-

तत्रापि विष्णुभक्तानां सदाचारो निरूपित ॥
दृष्ट्वा नवग्रहांत्रामस्थापितान् गुरवस्तत ॥ ४७ ॥
रामेश्वरमनुप्राप्ता वीरशैवा निराकृता ॥
विश्वेश श्रीरामनाथ गौरीं दृष्ट्वा परान्सुरान् ॥ ४८ ॥
धनुस्तीर्थेऽभिसस्नाता श्रीदर्भशयनं गता ॥
तत्र पारायणं चक्रुर्धिक्चक्रुर्वीरवैष्णवान् ॥ ४९ ॥
ताम्रपर्ण्यां तत स्नात्वा विप्रदु खनिवृत्तये ॥
पालकोटेश्वरस्यार्तिर्हृता धर्म प्रकाशित ॥ ५० ॥
श्रीवैकुंठे च शेषार्यआलवालयतीश्वर ॥
जीर्यस्वामी च तोताद्रौ जितश्चांबु प्रकाशितम् ॥ ५१ ॥
दीर्घनारायण याता मालावादो निरूपित ॥
कुमारीं कन्यकां प्राप्तास्सुदरेशं ततो गता ॥ ५२ ॥

भक्तनको सदाचार सिखायो वहाँसों श्रीरामके स्थापित नवग्रहनके दर्शन कर रामेश्वरमें जायकें वीरशैवनकों तिरस्कार कियो ओर विश्वनाथ श्रीरामनाथ गौरी ओर दूसरे देवतानके दर्शन करकें धनुषतीर्थमें स्नान कर श्रीदर्भशयनकों पधारे वहाँ पारायण कियो ओर वीरवैष्णवनको धिक्कार कियो ताम्रपर्णीमें स्नान करकें ब्राह्मणनको दु ख दूर करवेकें लिये पालकोटके राजाको रोग दूर कियो धर्मकों उपदेश कियो ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ ॥ ४९ ॥ ५० ॥ श्रीवैकुठमें शेषाचार्य आलवालके यतीश्वर तोताद्रिमें जीर्णस्वामीको जीत्यो ओर जल प्रगट कियो दीर्घनारायणमें मालावाद कियो कुमारीकन्याको पधारे वहाँसों सुदरेश्वर, आदिकेशव, अनन्तशयन आये यहाँ राजाकी स्त्रीके प्रेतको दूर कियो राजाको ओर देवपूजकनकों शरण लीने वहाँसों जनार्दनक्षेत्रमें पधारकें अपने सम्प्रदायवारेनकों शिक्षा

आदिकेशवमायाता अंनतशयनं ततः ॥
तत्र राजांगनाविष्टप्रेतराजो निराकृतः ॥ ५३ ॥
अनुगृहीतोऽथ नृपतिस्तथा देवार्चका अपि ॥
ततो जनार्दनं प्राप्तास्तत्र स्वीयाश्च शिक्षिताः ॥ ५४ ॥
पारायणं कृतं तत्र जनास्तु शरणीकृताः ॥
देवनारायणं प्राप्ता रणगोपालमुत्तमं ॥ ५५ ॥
हिमगोपालमायाता मलयाचलमूर्द्धनि ॥
कौंडिनस्याश्रमं तत्र कौंडिनी च सरिद्वरा ॥ ५६ ॥
पारायणेऽभूत्प्रकटस्तत्रासौ मुनिसत्तमः ॥
मुनिकन्योदितं ज्ञानं मनुस्तेन समर्पितः ॥ ५७ ॥
ततः कर्णाटके मध्यश्रीरंगं समुपागताः ॥
मांहिषं द्रंगमायाता महेशेन समर्चिताः ॥ ५८ ॥
राजधर्मान् भक्तिधर्मान् दत्वाऽसौ शरणीकृतः ॥
श्रीरंगमुत्तमं याता यादवाद्रिं हरेः पदं ॥ ५९ ॥
यत्र चिलपिलरायाख्यो हरिर्दृष्टो यतिः पुनः ॥
गोपीचंदनमृणमुद्राधारणं चेह साधितम् ॥ ६० ॥

दीनी पारायण कियो बहोत मनुष्यनकों शरण लीनो वहाँसों देवनारायण रणगोपाल हिमगोपाल मलयाचलके ऊपर कौंडिन्यके आश्रम कौंडिनी नदीकों पधारे वहाँ पारायण करते समय कौंडिन्य ऋषि प्रगट होयकें गोपिकानकों ज्ञान तथा मन्त्र बतायो पीछें कर्णाटकमें श्रीरंगजी आये मैसूर आये वहाँके राजानें पूजन कियो वाको राजधर्म्म भक्तिधर्म उपदेश करकें शरण लीनो हरिके स्थान यादवाद्रि श्रीरंगजी पधारे वहाँ चिलपिलरायहरिकों देख्यो पीछें यतिकों देख्यो वहाँ गोपीचन्दनमुद्राको धारण सिद्ध कियो ॥ ५१ ॥ ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ ६० ॥

सुब्रह्मण्य तत प्राप्तास्ततः सकर्षणोनुत ॥
कर्मठा ब्राह्मणास्तत्र बोधिता श्रुतियुक्तिभि ॥ ६१ ॥
ज्ञान भक्तिर्विरक्तिश्च तेभ्य सम्यङ्निरूपिता ॥
ततस्तु पृष्ठतो याता सम्प्राप्ताश्चोडुपस्थलम् ॥ ६२ ॥
तत्र माध्वयतीन्द्रेण वादस्तप्ताकधारणे ॥
सतर्पीनथ गोकर्णमपश्यँच्छ्रीमहेश्वरम् ॥ ६३ ॥
स्थापितो वैदिको मार्गस्तांत्रिकोऽत्र निराकृत ॥
पुरोधा भवतां तत्र नेतुकाम समागत ॥ ६४ ॥
वैभांडिकाश्रम तस्मात्समायाता शनै शनै ॥
श्रीशकरार्यपट्टस्थै पुरुषोत्तमयोगिभि ॥ ६५ ॥
विवाद पचपूजाया व्याख्याऽऽनंदमयस्य च ॥
दर्शन चन्द्रमौलेश्च जातस्तत्र जयावह ॥ ६६ ॥
एव सक्षेपतोयात्रा दक्षिणाशासुविजय ॥
निरूपितोधरेशाग्रे भवद्भ्योगुरुभि कृत ॥ ६७ ॥

वहाँसों सुब्रह्मण्यतीर्थ आये पीछें सकर्षणकों नमस्कार कियो वहाँ श्रुतीनसों तथा युक्तीनसों कर्मठ ब्राह्मणनकों बोध दीनो ज्ञान भक्ति वैराग्यकों अच्छीप्रकारसों उनको बतायो पीछें उडुपीमें पधारे वहाँ मध्वमतके स न्यासीनके सग तप्तमुद्राधारणमें वाद भयो पीछें सप्तर्षि गोकर्णमहादेवके दर्शन किये वैदिकमार्गको स्थापन कियो तान्त्रिकनको हटायो यहाँ आपके पुरोहित पधरायवेकों आये सो यहाँसों धीरे २ विभांडकके आश्रम शृंगेरीमठ आये यहाँ पचपूजाके विषयमें विवाद शकराचार्यजीके पीठस्थ पुरुषोत्तम सन्यासीसों भयो और "आनन्दमयोऽभ्यासात्" या सूत्रकी व्याख्या करी सो यहाँ जय भयो पीछे चन्द्रमौलिके दर्शन किये एसो सक्षेपसों श्रीमन्माधवजीको दक्षिणदिग्विजय आपसों कह्यो एसो राजासों शेषभट्टके कहेंपे श्रीमदाचार्यजी अपनी सन्ध्याकी वेला आयनी देखकें यहाँके

ततस्तु संध्यावेलां स्वामायांतीं वीक्ष्य सत्वराः ॥
आचार्याश्च महीपालं संतोष्य गुरवोंचिताः ॥ ६८ ॥
पूर्वस्थलं ततो राजा तथा प्रास्थापयत्स्वकैः ॥
मातामहगृहं प्राप्ताः सच्चक्रुस्तैश्च सत्कृताः॥ ॥ ६९ ॥
तुंगभद्रातटे तत्र चावतीर्णानिजस्थले ॥
एकांते पावने रम्ये स्वारामे छात्रसंवृताः ॥ ७० ॥
विसृज्य राजपुरुषान् स्नात्वा चक्रुर्निजाह्निकम् ॥
सर्वे स्नात्वा तथा चक्रुः पाकं च हरिपूजनम् ॥ ७१ ॥
तत्र वैष्णववीराणां ध्वजिन्यः स्वाश्रमं गताः ॥
स्थितश्च लकुटालोकी वीरः केतुकमंडलुः ॥ ७२ ॥
ततो हुताशनाचार्या निजदेवार्चनं व्यधुः ॥
आरात्तिकं प्रणामं च कृत्वा तीर्थं ततः पपुः ॥ ७३ ॥
निवेदितेन पाकेन वैश्वदेवं विधाय च ॥
दत्त्वान्नमतिथिभ्यश्च गुरवो बुभुजुः स्वकैः ॥ ७४ ॥
मौनेन विधिना तत्राभ्यवहारं विधाय ते ॥
चक्रुः षोडश गंडूषान् पुनः प्रक्षाल्य पत्करौ ॥ ७५ ॥

आचार्यनको ओर राजाको सन्तोष करकें पधारे सो अपने पहले स्थानकों आवते अपने नानाके घर पधारे उननें बडो सत्कार कियो पीछें तुंगभद्राके तटमें एकान्तमें रमणीक अपने स्थलमें अपने शिष्यनके संग उतरे ॥ ६१ ॥ ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ ७० ॥ ओर राजपुरुषनको लौटायकें स्नान करकें अपनो आह्निक कियो दूसरे-मनुष्यनी स्नान करकें वैसेही करते भये ओर हरिपूजन ओर पाक कियो ओर वीरवैष्णवनकी सेनाबी अपनें आश्रमको गई ओर लकुटालोकी केतु कमंडलु वीरबी गये ओर आप अपने देवकी सेवा करकें आरती प्रणाम करकें तीर्थपान करकें नैवेद्य भोग धर पीछें वैश्वदेव कर अतिथीनकों

आचमं चक्रिरे न्याय्य स्थिता पूते कुशासने ॥
पात्रशुद्धौ स्थानशुद्धौ जातायामाचम व्यधु ॥ ७६ ॥
एलालवगतुलसीदलं च मुखशुद्धये॥
प्राश्य धौत्राणि जगृहु कौशेयानि जहुस्तत ॥ ७७ ॥
निजासने चोपविष्टा प्रसादान्नं स्वदासयो ॥
दामोदरकृष्णयोश्च स्थापित चादिशन् करात् ॥ ७८ ॥
शंभुभट्टादय सर्वे तथा दामोदरादय ॥
कृतकार्या यदा प्राप्ता कथारंभस्तदा कृत ॥ ७९ ॥
कथोपनिषदा पूर्व कथा भागवतस्य च ॥
कथिता भावगभीरा नानाविच्छित्तिमंडिता ॥ ८० ॥
कीर्तनानि हरे पश्चाद्वैष्णवै समकारयन् ॥
सम्पन्नायां पात्रशुद्धौ सुषुपुर्वीररक्षिताः ॥ ८१ ॥
उषसि प्रतिबुद्धास्ते कीर्तयतो मधुद्विषम् ॥
हस्तौ पादौ मुख नेत्रे प्रक्षाल्यासनसंस्थिता ॥ ८२ ॥

देकें अपने मनुष्यनके सग मौनविधिसों आपने भोजन किये पीछें सोलह कुल्ला करकें हाथ पाँव धोयकें आचमन करकें इलायची लौंग तुलसीदल मुखशुद्धिके लियें लेकें दुसरे धौतवस्त्रको धारण कियो ओर रंगे वस्त्रको छोर दीनो ओर अपने दास दामोदरदास कृष्णदासकों अपने हाथसों प्रसाद धरकें अपने आसनपे विराजमान भये ओर शम्भुभट्टादिक तथा दामोदरादिक जब अपने २ कार्यकों करकें आये तब कथाको आरम्भ कियो तामें प्रथम उपनिषदनकी कथा करी पीछें अनेक शंकासमाधानपूर्वक भावसों गम्भीर श्रीमद्भागवतकी कथा करी ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ ॥ ७४ ॥ ७५ ॥ ७६ ॥ ७७ ॥ ७८ ॥ ७९ ॥ ८० ॥ पीछे वैष्णवनने कीर्तन किये ओर पात्रादिशुद्धिके पीछें वीरवैष्णवनसों रक्षा किये गये सब सोतेभये पीछें श्रीमदाचार्यजी उष कालमें उठकें भगवत्कीर्तन

दध्युर्हरिं गोकुलेशं तत्त्वध्यानपुरस्सरम् ॥
देहकृत्यं ततश्चक्रुर्दंतशुद्धिं च पल्लवैः ॥ ८३ ॥
मलस्नानं बहिष्कृत्वा तीर्थस्नानं विधानतः ॥
निवृत्य धृत्वा कौपीनं कटिवस्त्रं तथा जिनम् ॥ ८४ ॥
मालां तिलकमुद्राश्च धृत्वा संध्यां ततोऽचरन् ॥
विधाय तर्पणं तस्माद्धृत्वा दंडकमंडलू ॥ ८५ ॥
पादुकाभ्यां समायाताः स्नातैः शिष्यजनैर्वृताः ॥
स्थाने प्रविश्य प्रक्षाल्य चरणौ च करौ पुनः ॥ ८६ ॥
बृष्यां समुपविष्टास्ते विधायाचमनादिकम् ॥
औपासनाहुतीश्चक्रुस्ततस्तु हरिपूजनम् ॥ ८७ ॥
वेदाभ्यासं ततश्चक्रुः स्नानं माध्याह्निकं ततः ॥
तर्पणं पूजनं पाकनिवेदनमतः परम् ॥ ८८ ॥
वैश्वदेवं ततो भुक्तिशास्त्राभ्यासमितः परम् ॥
ततः समागतेभ्यश्च ददुर्ज्ञानं यथोचितम् ॥ ८९ ॥
तस्मिन् काले नृपः प्राप्तः ववंदे स निजैः सह ॥
अथाह नृपतिः प्रीतो निशम्य चरितं गुरोः ॥ ९० ॥

करकें हाथ, पाव, मुख, नेत्र, इनकों धोयकें आसनमें विराजमान होयकें श्रीगोकुलचन्द्रमाजीको ध्यान करकें देहकृत्य कियो ओर पल्लवनसों दन्तशुद्धि करकें मलस्नान बाहेर करकें विधिसों तीर्थस्नान कियो ओर कौपीन, कटि-वस्त्र, मृगचर्म, धारण करकें तिलक मुद्रा करकें सन्ध्योपासन तर्पण करकें दंड कमंडलु लेकें शिष्यजननके संग पादुकानसों चलते अपने स्थानमें प्रवेश करकें पाँव हाथ धोयकें कुशासनमें विराजमान होयकें आचमन करकें औपासन होमकों कियो पीछे भगवत्सेवा करकें वेदाभ्यास कियो ओर मध्याह्नस्नान करकें तर्पण पूजन करकें भोग धरे पीछें वैश्वदेव करकें भोजन कियो उपरान्त शास्त्राभ्यास कियो ओर आये भये मनुष्यनकों यथोचित

विज्ञापन चकारासौ नतोसौ विहितांजलि ॥
गुरुभिर्यत्प्रतिज्ञात पूर्वं यात्रासमुद्यते ॥ ९१ ॥
विधाय यात्रां चागत्य करिष्यामि तवोदितम् ॥
कर्त्तव्य वचनं तन्मे यदह शिष्यतां गत ॥ ९२ ॥
अवरोधस्त्रियः सर्वा दीक्षणीयाश्च मज्जनाः ॥
ज्ञान विशुद्धं मे देय सप्रदायार्थसभृति ॥ ९३ ॥
किंचित्कालमवस्थेयं सदा स्यात्तु न शक्यते ॥
एषा मे प्रार्थना नाथा स्सनाथा भवता वयम् ॥ ९४ ॥
भक्ते समुद्धारोभवत्स्वलम् ॥
सपादित समुद्धारो भवतां तेषु युज्यते ॥ ९५ ॥
इति राज्ञोऽर्थनां श्रुत्वा प्राहुरादेशकोत्तमा ॥
वैश्वानराचार्यवर्या श्रीकृष्णज्ञानदायिनः ॥ ९६ ॥
राजन् स्वधर्माचरण कार्यं शक्त्यनुसारत ॥
निवृत्ति सर्वथा कार्या विधर्मात्परधर्मत ॥ ९७ ॥

ज्ञान दीनो वाही समयमें अपने मनुष्यनके संग राजानें आयकें प्रणाम कियो ओर गुरुनको चरित्र सुनकें प्रसन्न होयकें ॥ ८१ ॥ ८२ ॥ ८३ ॥ ॥ ८४ ॥ ८५ ॥ ८६ ८७ ॥ ८८ ॥ ८९ ॥ ९० ॥ हाथ जोडकें नम्र होयकें प्रार्थना करी जो आपनें प्रतिज्ञा करीही के यात्रा करकें लोटके आयकें तुम्हारो कह्यो करेंगे सो करिये क्यों जो में आपको शिष्य हूं मेरे अन्त पुरकी सब स्त्रीनकों ओर मेरे मनुष्यनकों दीक्षा दीजिये ओर मोकों सम्प्रदायके अर्थकों विशुद्ध ज्ञान दीजिये ओर जो सग न विराजसकें तो थोरेही समय विराजे हे नाथ ! ये मेरी प्रार्थना हे आपसों हम सनाथ हैं आप अपने भक्तनको उद्धार करें हें एसी राजाकी प्रार्थना सुनकें गुरुनमें उत्तम श्रीकृष्णज्ञानके देवेवारे वैश्वानराचार्य बोले के हे राजन! शक्तिके अनुसार अपने धर्मको आचरण करनो ओर परधर्मसों सदा निवृत्त

धर्मः साधारणश्चैकः सत्यशौचादिलक्षणः ॥
वैशेषिको द्विजातीनां परः संस्कारलक्षणः ॥ ९८ ॥
नित्यनैमित्तिकः काम्य इष्टापूर्त्तादिभेदतः ॥
बहुधा प्रोच्यते शास्त्रैः काम्यस्तत्र कृताकृतः ॥ ९९ ॥
मूर्द्धाभिषिक्तनृपतेः प्रजानां पालनात्मकः ॥
गुणधर्मो विशेषेण कर्त्तव्यः कार्य एव वा ॥ १०० ॥
वैष्णवानां विशेषेण नित्यधर्मः प्रशस्यते ॥
साधारणश्च यो धर्मो भक्तिधर्मो विशेषतः ॥ १०१ ॥
गुरोस्सेवा हरेस्सेवा सेवा हरिजनस्य च ॥
रक्षा प्रजानां नित्यैव सपर्या च तपस्विनाम् ॥ १०२ ॥
राजा स्वयं चरेद्धर्मं तत्र संचारयेत्प्रजाः ॥
राजैव मूलं धर्मादेर्नार्थः कोपि नृपं विना ॥ १०३ ॥
प्रातः प्रबुध्य देवेशं कीर्तयेन्मधुसूदनम् ॥
भूत्वा पवित्रस्तं ध्यायेत्ततः स्वाह्निकमाचरेत् ॥ १०४ ॥

रहनो सत्यशौचादिलक्षण एक साधारण धर्म हे दूसरो द्विजातीनकों संस्कार लक्षण विशेष हे ओर इष्टापूर्त आदिके भेदसों नित्य, नैमित्तिक, काम्य, एसे बहोत प्रकारके धर्मशास्त्रनमें कहें हें उनमें काम्य कृताकृत हे ओर राजानको प्रजापालन धर्म विशेष करकें करनो चाहिये ॥ ९१ ॥ ९२ ॥ ॥९३॥९४॥९५॥९६॥९७॥९८॥९९॥१००॥ ओर वैष्णवनको भक्तिधर्म विशेष हे गुरुकी सेवा हरि भक्तनकी सेवा हरिकी सेवा प्रजाको पालन तपस्वीनकी सेवा इन धर्मनकों राजा स्वयं करे ओर प्रजाकोबी धर्ममें चलावे राजाही धर्मनको मूल हे विना राजाके कोई बात नहीं होती सो प्रातःकाल उठकें श्रीविष्णुभगवान्‌को कीर्तन करे पवित्र होयकें ध्यान करे पीछें आपनो आह्निक करे ओर विधाक्रमसों भावसों हरिहीकी सपर्या (सेवा) करे

सपर्यां भावतः कुर्याद्धरेरेव विधानतः ॥
गुरोरर्चां सदा कुर्याद्दूरस्थस्यापि शक्तितः ॥ १०५ ॥
एकग्रामे नित्यदेव सप्ताहाद्योजनांतरे ॥
पक्षात् षड्योजनाद्दतमासि दिग्योजनादपि ॥ १०६ ॥
ऋतुतस्तु ततश्चोर्द्धमयनाद्विंशयोजने ॥
देशांतरे वत्सरोर्द्धे दूरस्थेऽस्मिंस्त्रिहायनात् ॥ १०७ ॥
निजधर्मान्निजेष्टाच्च स्वगुरोर्विमुखो हि यः ॥
वर्षात्रिवर्षात्षड्वर्षाद्द्वादशाब्दात्पतत्ययम् ॥ १०८ ॥
साधुवृत्तस्य तु गुरोराज्ञा सेवा विधीयते ॥
दुर्वृत्ताद्दूरतस्तिष्ठेज्जह्याद्धर्मद्विषं गुरुम् ॥ १०९ ॥
दानं देयं ब्राह्मणेभ्योऽन्नं वस्त्रं सर्वजंतुषु ॥
वैष्णवेभ्यस्तदिष्टं यत्तेष्वास्ते भगवान् हरिः ॥ ११० ॥
ब्रह्मचारी यतिः साधुः पक्वान्नस्वामिनावुभौ ॥
संपूज्यान्नं च वस्त्रं च तेभ्यो देयं गृहस्थितैः ॥ १११ ॥

और दूरभी गुरू होंय तो भी यथाशक्ति उनकी सेवा सदा करे एकग्राममें होंय तो नित्य, एकयोजनमें होंय तो, सप्ताहमें, छे योजनमें होंय तो पक्षमें दशयोजनमें होंय तो मासमें, ताके उपरान्त दोमासमें बीसयोजनमें छे मासमें देशान्तरमें वर्षदिनमें तासोंभी दूर होंय तो तीनवर्षमें सेवा करे अपने धर्मसों इष्टसों गुरुसों जो विमुख होय हे सो वर्षसों या तीन वर्षसों छे वर्षमों या बारह वर्षसों पतित होयजाय हे सदाचारवारे गुरुकी सेवा राजा करे और दुराचरणवारे गुरुसों दूर रहे धर्मद्वेषी गुरुकों छोडदे ब्राह्मणनको दान देवे अन्न वस्त्र सब प्राणीनको दे और वैष्णवनकों जो वे मांगें सो देवे क्योंकि उनमें भगवान् वसें हें ॥ १०१ ॥ १०२ ॥ ॥ १०३ ॥ १०४ ॥ १०५ ॥ १०६ ॥ १०७ ॥ १०८ ॥ १०९ ॥ ॥ ११० ॥ ब्रह्मचारी सन्यासी ये पके भये अन्नके स्वामी हें इन

दुर्वृत्तो वा सुवृत्तो वा सूर्योढोन्नं समर्हति ॥
संभोज्यातिथिविप्रांश्च स्वयं भुंजीत बंधुभिः ॥ ११२ ॥
यस्य कुल्याः समश्नंति पोष्यवर्गाश्च नित्त्यशः ॥
पर्वयात्रोत्सवैर्युक्तः श्रीमानेष गृही भवेत् ॥ ११३ ॥
पितरौ च गुरुः पुत्रा बंधवः किंकराः स्त्रियः ॥
अभ्यागतोऽतिथिः पोष्या यस्मान्नित्त्यं समाश्रिताः ॥ ११४ ॥
ततोऽर्थसाधनं कार्यं शास्त्रोक्तेनैव वर्त्मना ॥
हरेर्भक्तिस्सदा कार्या रात्रौ च हरिकीर्तनम् ॥ ११५ ॥
वैष्णवं शास्त्रमभ्यस्यन् धर्मशास्त्रं ततः परम् ॥
वेदांतं गुरुभिर्बोध्यं ज्ञानं सत्संगतो भवेत् ॥ ११६ ॥
भवंति वैष्णवाः संतः संतः षट्कर्मकारिणः ॥
संप्रदायपराः संतः संतो बहुविधाः स्मृताः ॥ ११७ ॥
हरेरेकाश्रयं कुर्यान्नस्यात्रैवर्गिकोल्पधीः ॥
महामनाः शुचिः शांतः श्रद्धालुर्विजितेंद्रियः ॥ ११८ ॥

पूजन करकें गृहस्थ अन्न वस्त्र देवे दुराचारी हो या सदाचारी हो अतिथि अन्न देवेके योग्य हे अतिथि ब्राह्मणनको भोजन करवायकें बन्धुनके संग आप भोजन करे जाके घरमें कुलके पोष्यवर्ग नित्य भोजन करें हें पर्व यात्रा उत्सव होय हें वो श्रीमान् गृहस्थ हे, माता पिता गुरू पुत्र बन्धु स्त्री किंकर अभ्यागत अतिथि ये पोष्य कहावें हें पीछें शास्त्रोक्तमार्गनसों अर्थ साधन करे हरिकी भक्ति करे रातको हरिकीर्तन करे वैष्णवशास्त्रको अभ्यास करे पीछें धर्मशास्त्रको ओर गुरूनसों वेदान्त समझे सत्संगसों ज्ञान सम्पादन करे वैष्णव सन्त कहावे हें, छा कर्मके करवेवारे साम्प्रदायिक एसे बहोतप्रकारके सन्त हें सो हे राजन् हरिको एक आश्रय करे ओरकी इच्छा न करे पवित्र शान्त महामनवारो [illegible] न्द्रिय भगवानकी भक्ति करवेवारो

अस्मदीयेषु शिष्येषु भगवद्भक्तिशालिषु ॥
विद्वत्साम्नायविज्ञप्त्यै वासयैक निजांतिके ॥ ११९ ॥
उपदेश्य नृपायेत्थ पुनर्गत्वा नृपालये ॥
सर्वे सदीक्षिताश्चक्रु कृतो राज्ञो मनोरथ ॥ १२० ॥
श्रीविट्ठलप्रभो सेवां तस्मै सम्यङ्न्यरूपयन् ॥
राज्ञो मत शेषभट्ट विशेषज्ञमयूयुजन् ॥ १२१ ॥
निजाश्रम समागत्य प्रस्थानाय समुद्यता ॥
तद्देशीयान् जगुस्तत्र शिष्यानाचार्यसत्तमा ॥ १२२ ॥
स्वस्वस्थानेषु गंतव्य मंतव्यं वचन हि न ॥
आकांक्षित च कर्तव्य स्वानामुत्कंठितात्मनाम् ॥ १२३ ॥
हरीच्छात पुन संगो ह्यस्माकं भविता न किम् ॥
स्वातिबिंदून् विंदति द्राक् विश्वासादेव चातक ॥ १२४ ॥
इत्थ नारायणादींश्च बहुधा भूपतिं तथा ॥
संबोध्य प्रार्थिता शिष्यैराचार्या प्रस्थितास्तत ॥ १२५ ॥

एसो हमारे शिष्यनमेंसों कोई एक विद्वान्कों अपने पास राखो ऐसें राजाकों उपदेश करकें पीछें राजाके घर पधारकें सबको दीक्षा दीनी ओर राजाको मनोरथ सिद्ध कियो ॥ १११ ॥ ११२ ॥ ११३ ॥ ११४ ॥ ११५ ॥ ॥ ११६ ॥ ११७ ॥ ११८ ॥ ११९ ॥ १२० ॥ ओर श्रीविठ्ठलनाथजीकी सेवाको क्रम उनको अच्छीतरहसों बतायकें ओर राजाके सम्मत शेष भट्टकों राजाके पास नियुक्त करके अपने आश्रम आयके वहाँसो पधारवेकों तैयार भये ओर या देशके रहवेवारे शिष्यनसों कह्यो के अपने २ स्थाननको जावो हमारी आज्ञा मानों तुममें उत्कंठा करवेवारेनकी इच्छा पूर्ण करो भगवान्की इच्छासों पीछे कहा हमारो संग न होयगो विश्वासहीसों चातक स्वातीके बिन्दुको पावे है ऐसें नारायणआदिशिष्यनकों

ततस्तैस्सहायं सपर्यां विधाय निधाय स्वकं मस्तकं प्राह चेदम्॥
पुनर्दर्शनं देयमाचार्यवर्यैरमीषां मम प्रार्थना सार्थनीया ॥१२६॥
नृपं शिष्यवर्गं तदाचार्यवर्यास्तथेत्यूचुरात्मीयपुंसामभीष्टम् ॥
स्वकीयानशेषान्कृतार्थान्विधायनताविट्ठलं विट्ठलाय प्रतस्थुः
श्रीवेदव्यासविष्णुप्रभुचरणमिते सम्मिते ग्रन्थसार्थैः
श्रीगोविन्दाभिधानां समयनयविदां देशिकानां निदेशात् ॥
आचार्याणां चरित्रे हरिजनसुखदे शास्त्रिकृष्णैर्निबद्धे
प्रस्थानेऽस्मिँस्तृतीये समजनि पटहो वह्निभूसम्मितोयम् १२८

वंदे श्रीरुक्मिणीजानिं भजनानंदसद्रसम् ॥
कृतावतारमुद्धर्त्तुं नृणां श्रीविट्ठलं हरिम् ॥ १ ॥
विद्यानगरतो ह्यामनवद्यां च पद्धतिम् ॥
समाश्रित्य प्रचलिता स्सशिष्या गुरुसत्तमाः ॥ २ ॥

ओर राजाको बोध करकें वहाँसों पधारे ओर राजा सबके संग पूजा करकें दंडवत करकें ये बोल्यो के मेरी ओर इन सबनकी येही प्रार्थना हे के फिर दर्शन देवें तब श्रीमदाचार्यजी राजा ओर शिष्यनकी प्रार्थनाको मानकें ओर उनको कृतार्थ करकें विठ्ठलेशजीकों नमस्कार करकें श्रीविठ्ठलनाथजीकों पधारे ॥ १२१ ॥ १२२ ॥ १२३ ॥ १२४ ॥ १२५ ॥ १२६ ॥ समयनीतिके जानवेवारे जगद्गुरु श्रीमद्गोविन्दाचार्यजी महाराजकी आज्ञासों कृष्णशास्त्रीके बनाये श्रीमद्वेदव्यासविष्णुस्वामिमतके ग्रन्थनके अनुकूल हरिभक्तनके सुख देवेवारे या ग्रन्थके तीसरे प्रस्थानमें ये तेरहवों पटह समाप्त भयो ॥ १२७ ॥

अब ग्रन्थकार श्रीरुक्मिणीसों उत्पत्ति हे जिनकी भजनानन्दके सत् रसरूप मनुष्यनके उद्धारके लिये कियो हे अवतार जिननें एसे श्रीविठ्ठलभगवान्कों

आयाता कतिचिद्दिवसे पद्धत्यां यामद्वयांचिता ॥
निजाह्निक हरेरर्चां कुर्वतस्तत्कथां सदा ॥ ३ ॥
कोलापुरे महालक्ष्म्या निकेतं सुसमृद्धिमत् ॥
यत्र सा वैष्णवी शक्तिर्यशोदागर्भजा श्रुता ॥ ४ ॥
दृष्ट्वा तां देवतां नत्वा दत्वा चोपायन मुदा ॥
स्थित्वैकघस्रं तत्रत्या ुपदिश्याव्रजन्नित ॥ ५ ॥
महालक्ष्म्या प्रचलिता चरतस्तीर्थमण्डलम् ॥
सह्याद्रिखंडमायाता यत्र चाहोबलेश्वर ॥ ६ ॥
कृष्णा कृष्णप्रिया जाता ब्रह्मवेदाख्यकूटयो ॥
अश्वत्थमूलान्निष्क्रांता आवृत्याहोबलेश्वरम् ॥ ७ ॥
अतीतयोजनयुग वैराजक्षेत्रमास्थिता ॥
यत्राग्राणामग्रहार स्व किं भूसुरभूषित ॥ ८ ॥
तत्र ज्योतिर्विदो विप्राच्छ्रुत्वा क्षेत्रस्य वैभवम् ॥
तमग्रतो विधायैव स्नानं चक्रुर्यथाविधि ॥ ९ ॥

नमस्कार करें हैं, पीछें शिष्यसमेत श्रीमदाचार्यजी विद्यानगरसों मनोहर पद्धति (मार्ग) को आश्रय करके पधारे सो अपनो आह्निक हरिकी सेवा तथा कथा करते ओर दो प्रहर चलते थोरे दिनमें कोलापुरमें घने समृद्धिवारे श्रीमहालक्ष्मीजीके स्थानमें पहुँचे जहाँ यशोदाके गर्भसों उत्पन्न भई वैष्णवी शक्ति हे एसो सुने हें उनके दर्शन कर भेंट धर एक दिन वहाँ रहके वहाँवारेनको उपदेश करकें वहाँसों पधारे सो तीर्थमंडल सह्यपर्वतमें गये जहाँ "अहोबलेश्वर" हें ओर जहाँ पिप्पलवृक्षके मूलसों कृष्णकी प्यारी कृष्णा नदी निकसी हे वहाँसों विराजक्षेत्र गये जहाँ तैलङ्ग ब्राह्मणनको स्वर्ग जेसो अग्रहार हे वहाँ ज्योतिषीब्राह्मणनसों क्षेत्रको माहात्म्य सुनकें उनकों आगे करकें यथाविधि

बहूनि तत्र तीर्थानि तथाप्यंतिगतानि वै ॥
तेषु स्नाताश्चक्रतीर्थे गोतीर्थे राघवस्य च ॥ १० ॥
जानक्याश्च तथा तीर्थे भीमतीर्थे ततः परम् ॥
जीवाप्तये द्विजार्भस्य शूद्रं हत्वा तपस्विनम् ॥ ११ ॥
राघवोऽत्र विशुद्धोऽभूत् रामतीर्थे गुरोर्गिरा ॥
कृष्णतीर्थे समानीय गा गोपालोऽभ्यषेचयत् ॥ १२ ॥
तेन प्रीतमना जातः कृष्णा जाता ततः प्रिया ॥
महेन्द्रो मखभंगेन न्यषेधद्वारिदान्निजान् ॥ १३ ॥
दुर्भिक्षस्तेन संजातस्तृणं काष्ठं सुदुर्लभम् ॥
मानुषीं तनुमाश्रित्य कुर्वंल्लीलास्तथाविधाः ॥ १४ ॥
जांगलेषु ह्यनूपेषू धेनूरत्रानयद्धरिः ॥
इत्थं प्रभावं संश्रुत्य वदतश्च सविस्तरम् ॥ १५ ॥
वेदिकायां समासीनाश्चोर्द्ध्वपुंड्रादिचिह्निताः ॥
समाधिभाषां ते पेठुर्देवर्षिनृविशुद्धये ॥ १६ ॥
पूजां कृत्वाथ पाकं च निवेद्य हरये च तत् ॥
परिचर्यां समाप्यैव कृत्वा कर्तव्यमेव च ॥ १७ ॥

स्नान कियो जो तीर्थ वहाँ पासमें हे सबमें स्नान कियो जहाँ चक्रतीर्थ हे राघवको गोतीर्थ हे ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥ ॥ ८ ॥ ९ ॥ १० ॥ जानकीतीर्थ भीमतीर्थ हे जहाँ तपस्वी शूद्रकों मारकें गुरुकी आज्ञासों रामतीर्थमें राघव शुद्ध भये हे जहाँ गौअनकों स्नान करवायो हे गोपालनें वाही समयसों मानुषी शरीरकों धारणकर अनेक लीला करते कृष्णा कृष्णकी प्यारी भई यज्ञके भंगसों इन्द्रनें अपने मेघनकों जब रोंक्यो तासों दुर्भिक्ष भयो तृण काष्ठ दुर्लभ भये तब कृष्ण भगवान् अनूप जांगलदेशमें गौअनकों लाये एसो विस्तारसों प्रभाव वहाँको सुनते भये ओर अपनी वेदीमें विराजमान होयकें समाधिभाषाको पाठ करकें सेवा करकें

ततस्ते गुरवोऽभुञ्जन् श्रुतवतो यश स्थिता ॥
पप्रच्छ प्रणतास्तस्मै तत्किंचिदिह वर्ण्यते ॥ १८ ॥
आंध्रा प्राज्ञास्तत्र गतास्तेषां मुख्यो दिवाकर ॥
महर्षिकुलसभूत प्रांजलि सोऽब्रवीद्गुरून् ॥ १९ ॥
कर्मणां का गतिः पूर्णा ज्ञानस्याचार्यसत्तमा ॥
उपासनाभिधा भक्ते वदतु कृपया निजान् ॥ २० ॥
आचार्यो प्राहुरेतेभ्य यूयं शास्त्रविदुत्तमा ॥
नतो ऽपधु प्रश्नमल्पज्ञानां तताकृते ॥ २१ ॥
वेदाभ्यासैकनिरता ह्यग्निहोत्रपरायणा ॥
पट्कर्माणोपि कर्मिष्ठा स्सत्य यांत्यावजंत्यपि ॥ २२ ॥
गतिरेषैव सपूर्णा दृष्टा वैदिककर्मणाम् ॥
भूलोक च पुन सत्य जनिर्विप्रादिपूत्तमा ॥ २३ ॥
सुखमत्र परत्रापि दु खं तेषां न विद्यते ॥
कदाचिद्विच्युता स्तेभ्यो दुख भुक्तापि याति शम् ॥ २४ ॥

पाक करकें भगवान्के अर्पण करकें ओर सब कर्तव्यनकों करकें प्रसाद लीनो पीछें वहाँके आन्ध्रब्राह्मणनमें मुख्य महर्षिकुलमें उत्पन्न दिवाकरनामक ब्राह्मण हाथ जोडके बोले के हे आचार्यवर्य कर्मनकी केसी गति है ओर ज्ञान उपासनाकी केसी है सो कृपा करकें आज्ञा करो ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥ ॥ १९ ॥ २० ॥ तब आप बोले जो तुमतो शास्त्रजानवेवारेनमें उत्तम हो जानतेभी प्रश्न करो हो सो दूसरे अज्ञानीनके ज्ञानके लिये, वेदाभ्यास करवेवारे अग्निहोत्रपरायण पट्कर्म करवेवारे कर्मिष्ठनको सत्यलोक मिले हे भूलोक मिले हे जावते आवते रहें हें ब्राह्मणनमें जन्म होय हें यहाँ वहाँ दोनो ठि-काने सुख मिले हे उनको दु ख नहीं होय हे येही वैदिककर्मनकी गति हे कदाचित् उनसों च्युत होयकेभी दु ख भोगकें पीछें सुखकों पावे हें वर्णा

संस्कृतानिजसंस्कारैः स्ववर्णाश्रमधर्मगाः ॥
कर्ममार्गे तेऽधिकृता ज्ञाने निष्कामचेतसः ॥ २५ ॥
पापकर्मविनिर्मुक्ताः काम्यकर्मबहिर्मुखाः ॥
नित्यनैमित्तिकरता ज्ञानमार्गेऽधिकारिणः ॥ २६ ॥
मौंजीबंधोत्तरं वेदवेदांगेषु च पंडितः ॥
सन्यस्य विधिना ज्ञानं गुरोराश्रमवान् भवेत ॥ २७ ॥
आश्रमत्रितयं कृत्वा विरक्तश्चैकमाश्रमम् ॥
विधाय यततां ज्ञानं सद्गुरोः प्राप्नुयादयम् ॥ २८ ॥
शुक्लगत्या ब्रह्मलोकं प्राप्योषित्वा चिरं बुधः ॥
मुच्यते ब्रह्मणा साकं ज्ञानिनो गतिरीदृशी ॥ २९ ॥
केचित्तत्रापरोक्षेण जातज्ञानेन पंडिताः ॥
ईश्वरस्य गुरोश्चापि सद्यो मुच्यंत्यनुग्रहात् ॥ ३० ॥
उपासकास्तु देवानां वेदमार्गपरायणाः ॥
आगमोक्तेन मार्गेण तं देवं प्रविशंति ते ॥ ३१ ॥

श्रमके अनुसार अपने संस्कारनसों संस्कृत होयकें कर्ममार्गके अधिकारी हें ओर ज्ञानमें निष्काम चित्तवारे पापकर्मसों रहित काम्यकर्मसों बहिर्मुख नित्यनैमित्तिककर्म करवेवारे अधिकारी हें यज्ञोपवीतके पीछें वेदवेदांगमें पंडित होयकें विधानपूर्वक गुरूसों सन्यास लेकें अथवा तीनों आश्रम पहले करकें विरक्त होयकें संन्यासाश्रम लेकें ज्ञान सम्पादन करकें शुक्लगतिसों ब्रह्मलोकमें जायकें बहोत समय वहाँ रहकें ब्रह्मके संग मुक्त होय हें ज्ञानिनकी ये गति हे कोई अपरोक्षज्ञानसों ईश्वरगुरूकी कृपासों वेगेही मुक्त होयजाय हें ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥ ॥ २९ ॥ ३० ॥ ओर वेदमार्गमें तत्पर होयकें देवतानके उपासक वेदके कहे भये मार्गनसों वहाँ देवतानमें प्रवेश करें हें ओर मुक्त होयजाय

मुच्यते तेन ते सार्कं भ्रश्यंते निगमच्युता ॥
केवलागममार्गे तु निजानैवाधिकारिण ॥ ३२ ॥
ईश्वरे प्रेमसंपत्तिर्माहात्म्यज्ञानपूर्विका ॥
सा भक्तिस्तु तया सद्यो मुच्यतेऽनुग्रहाद्धरे ॥ ३३ ॥
एव ते कथिता विप्रा प्रोचुस्ते साधुसाध्विति ॥
प्रणम्य स्वगृह याता प्रातरार्यो स्ततोंचिता ॥ ३४ ॥
तत श्रीविठ्ठलेशस्य पुर दृष्ट्वा जनाकुलम् ॥
देवस्य सविधेऽरण्ये पारे स्थातुं दधुर्मनः ॥ ३५ ॥
सरिद्वरां भीमरथीं विपिनारामशोभिताम् ॥
स्वच्छाच्छस्वादुपानीयां शोभंतीं सुमनोभरे ॥ ३६ ॥
कूजद्विहगमिथुनां प्रफुल्लकमलाकराम् ॥
हससारसचक्राह्वैर्मंडितां सुपतत्रिभि ॥ ३७ ॥
क्रीड्यमानां च यादोभिर्वीचिमालापरिष्कृताम् ॥
साश्रितां जतुभि स्सर्वैर्दृढशुर्मुनिसेविताम् ॥ ३८ ॥

हैं उन्हींके सग ओर जो निगमसों रहित हैं वे भ्रष्ट होयजाय हैं ओर केवल आगममार्गमें निज अधिकारी नहीं हैं किन्तु ईश्वरमें माहात्म्यज्ञानपूर्वक प्रेम सम्पादन ये भक्ति है यासों भगवान्की अनुग्रहसों वेगी मुक्त होयजाय हैं एसें कहवेपे बहोत उत्तम२ये कहके वे ब्राह्मण प्रणाम करकें अपने २ घरमकों गये ओर प्रात काल श्रीमध्वाचार्यजी वहाँसों पधारे सो बहोत भीड़वारे श्रीविठ्ठलेशजी के पुरकों देखकें उनके पासही पारमें विराजवेको मन कियो वनबगीचानसों शोभित स्वच्छस्वादुजलवारी पुष्पनसों शोभती पक्षीनके जोडा जहाँ शब्द कररहें हैं कमल फूल रहें हैं हंस सारस चकई चकवा आदि अच्छे पक्षीनसों मंडित जलजन्तु जहाँ क्रीडा कररहें हैं लहरीरूपीमालासों अलकार करीगई मुनीनसों सेवित एसी नदीनमें श्रेष्ठ भीमरथी नदीकों देख्यो सो वाके पार जायकें

तीर्त्वाऽभिषेकविधिना स्नाताश्चक्रुर्निजाह्निकम् ॥
तावच्छ्रीविठ्ठलेशेन सख्यभावः स्फुटीकृतः ॥ ३९ ॥
तद्दर्शनरसोद्भूतप्रेमप्रसरसंप्लुतः ॥
विज्ञापितास्तज्जनैश्च संप्राप्ता मंदिरं हरेः ॥ ४० ॥
तत्र भागवतैः सर्वैर्हर्षोद्रेकवशादमी ॥
वंदितानंदिता नीतास्स्वकीयाचार्यभावतः ॥ ४१ ॥
प्रणम्य देवं साष्टांगं समर्प्य च महाधनम् ॥
संस्पृश्य चरणांभोजे परिष्वज्य मुदं ययुः ॥ ४२ ॥
तत्राभ्यर्चा कृता पंचामृतसेकपुरस्सरा ॥
निजाभिनीतैः सद्वस्त्रैर्विचित्रैरपि मंडनैः ॥ ४३ ॥
अत्त्युत्तमैः शाकपाकैर्नैवेद्यं विनिवेदितम् ॥
दत्वाचमनतांबूले कृतं नीराजनं हरेः ॥ ४४ ॥
तौर्यत्रिकेन महता चारु संस्तवनं कृतम् ॥
प्रदक्षिणा प्रणामं च कृत्वा संतोष्य तज्जनान् ॥ ४५ ॥

अभिषेकविधिसों स्नान करकें अपनो आह्निक कियो इतनेहीमें श्रीविठ्ठलेशजीनें मित्रता प्रगट करी सो उनके दर्शनसों रसको उद्भव भयो है ओर प्रेमरससों डूबगये ओर सेवकनसों प्राथेना कियेगये एसे श्रीमदाचार्यजी उनके मंदिरमें पधारे ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ ४० ॥ वहाँ सब भागवत वैष्णवननें बडे हर्षसों प्रणाम करकें स्तुति करकें अपने आचार्यनके जेंसे पधराये सो वहाँ पधारकें देवको साष्टांगप्रणाम करकें भेट धरकें चरणस्पर्श करकें आलिङ्गन करकें बडे आनन्दित भये ओर पंचामृतसों स्नान करायो ओर अपने लाये भये अच्छे वस्त्र तथा आभूषण धराये ओर उत्तम शाक पाकवारे नैवेद्य निवेदन किये आचमन करायकें ताम्बूल देकें बडे बाजनके संग आरती करी ओर स्तुति प्रदक्षिणा प्रणाम करकें वहाँके सेवकनको सन्तोष करकें अपनी

निजाशिक्षां समागत्य तत्र पारायणं व्यधुः ॥
श्रीमद्भागवतारंभे जातस्तत्र महोत्सवः ॥ ४६ ॥
आयाता वैष्णवाः स्वीया विप्रा भागवतोत्तमाः ॥
पीत्वा कथामृतं कर्णपुटैरत्यद्भुतं हरेः ॥ ४७ ॥
भीतसंसारसंतापाः प्राहुः प्रांजलयस्तु ते ॥
दीनबंधो दयासिंधो विज्ञप्तिं नोऽवधारय ॥ ४८ ॥
श्रीमतां सम्प्रदाये किं प्रमाणं किं च साधनम् ॥
तदाहुः श्रीमदाचार्या वेदैः सूत्रैश्च गीतया ॥ ४९ ॥
श्रीमद्भागवतं मानं साधनं नवधार्चनम् ॥
श्रीवेदव्यासश्रीविष्णुस्वामिनो नः परंपरा ॥ ५० ॥
भावाद्वैतक्रियाद्वैतद्रव्याद्वैतस्य भावना ॥
श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम् ॥ ५१ ॥
अर्चनं वंदनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम् ॥
नवभिः साधनैरेतैः प्रीयते भगवानलम् ॥ ५२ ॥

बैठकमें आपकें पारायण कियो तामें बडो उत्सव भयो अपने वैष्णव और भागवतब्राह्मण सब कथारूपी अमृतकों पान करकें संसारतापसों छूटकें हाथ जोडकें बोले जो हे दीनबन्धो ! हे दयासिन्धो ! हमारी प्रार्थना सुनो आपके सम्प्रदायमें कहा प्रमाण हे कहा साधन हे तब आपनें कह्यो जो चारो वेद सूत्र गीता श्रीमद्भागवत ये प्रमाण हें नवधा भक्ति साधन हे श्रीवेदव्यास श्रीविष्णुस्वामी ये हमारी परम्परा हे ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ ५० ॥ भावाद्वैत क्रियाद्वैत द्रव्याद्वैत ये भावना हे श्रवण कीर्तन स्मरण पादसेवन अर्चन वंदन दास्य सख्य आत्मसमर्पण इन नवसाधननसों भगवान् प्रसन्न होय हें सम्प्रदायपूर्वक य सब करे अथवा एकही करे एसे आपके कहेवेपे कोइ

संयुक्तैश्च पृथग्भूतैः संप्रदायपुरस्सरैः ॥
आचार्यभाषितं श्रुत्वा कोप्यूचे नाम वल्लभः ॥ ५३ ॥
विनापि संप्रदायेन नाम किं नैव मोचकम् ॥
कः संप्रदायो गोपीनां गजेन्द्रस्य हनूमतः ॥ ५४ ॥
अजामिलस्य ब्रूताथ सिद्धिर्भक्त्यैव दृश्यते ॥
अब्रुवन्श्रीमदाचार्यास्तदा सत्यं तवेरितम् ॥ ५५ ॥
मोचकं पातकानां च मोचनं बंधनस्य च ॥
हरेर्नाम्नः प्रभावेण जायते नात्र संशयः ॥ ५६ ॥
हरिलीलारसप्राप्तौ संप्रदायश्च कारणम् ॥
गोप्यस्तु श्रुतयः साक्षादिंद्रद्युम्नो गजोप्यसौ ॥ ५७ ॥
रुद्रावतारः कपिराट् न ते शास्त्रस्य गोचराः ॥
शिष्योऽसौ विष्णुदूतानां जातः साक्षादजामिलः ॥ ५८ ॥
श्रूयते स हरिद्वारे तपस्तेपे ततः पुनः ॥
पुण्यं गंगाजलं सर्वं स्थानभेदान्न किं पुनः ॥ ५९ ॥
पुण्यातिपुण्यं भवति नाम्नाप्याम्नायभेदतः ॥
वेश्यादिसहिता मत्ता गायंतीह हरेर्यशः ॥ ६० ॥

वल्लभ नामको बोल्यो जो कहा विना सम्प्रदायके नामसों पाप नहीं छूटते गोपीनको गजेन्द्रको हनूमान्को अजामिलको कहा सम्प्रदाय हो उनको सिद्धि भक्तिहीसों देखें हें तब आपने कह्यो जो तुम्हारो कहनो ठीक हे हरिनामके प्रभावसों पातक ओर बन्धन छूटजाँय हें यामें संदेह नहीं हे परन्तु हरिलीलारसप्राप्तिमें सम्प्रदाय कारण हे ओर गोपी तो साक्षात् श्रुतिरूप हीं । गज इन्द्रद्युम्न हो हनुमान् रुद्रावतार हे वे शास्त्रके विषय नहीं हे ओर अजामिल साक्षात् विष्णुदूत हो सुनें हें जो हरिद्वारमें उननें वडी तपस्या करीही, सब गंगाजल पुण्य हे परन्तु स्थानभेदसों कहा विशेष नहीं हे

वृदावने तपोयुक्ता मुनय किं च ते समा ॥
गर्ते च पल्वले तीर्थे यथा नीरं विभिद्यते ॥ ६१ ॥
तथैव भिद्यते नाम भक्तिश्च नवधा तथा ॥
तदाहासो पुन क्वेत्थ सम्यक् शास्त्रे निरूपितम् ॥ ६२ ॥
रविप्रभेव तत्तुल्य नाम सर्वत्र चैकधा ॥
चांडालस्य गृहे दीप्ति यथैव कुरुते प्रभा ॥ ६३ ॥
तथैव गेहे विप्रस्य नेत्य नाम्न्यपि सा भिदा ॥
त्वं वृद्धो बालिशमतिस्तदा श्रीवल्लभा जगु ॥ ६४ ॥
दशापराधा श्रूयंते नाम्नि किं ते न गोचरा ॥
वर्णाश्रमपरित्यागो गुरुत्यागस्ततः पर ॥ ६५ ॥
पापारंभो नामभक्त्या देवद्वेषस्सदाश्रयात् ॥
वैष्णवानां च विद्वेषो नामविक्रयण तथा ॥ ६६ ॥
आजीवनकृते नामयोजन शपथेष्वथ ॥
अविश्वासोऽस्य माहात्म्येयापराधकृते हरे ॥ ६७ ॥

वेश्याविकवी हरिको यश गान करें हैं वृन्दावनमें तपस्वी मुनिबी गान करें हैं तो कहा वे समान हैं ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ ४९ ॥ ६० ॥ कीचवारेगडहा तीर्थमें जल कहा जुदो नहीं होय हे एसेही नाम भक्ति जुदे २ हैं तब पीछे वानें कही जो शास्त्रमें ये बात अच्छीप्रकारसों कहीं कही है सूर्यके प्रभा जेसो नाम सब ठिकाने एकही चालको हे चांडालके घरमें जेसो प्रकाश हे वेसेही ब्राह्मणके घरमें एसे नाममेंबी भेद नहीं तब आपने कह्यो जो दश अपराध सुनें हैं वे कहा नाममें नहीं हैं वर्णाश्रम छोडदेनो, गुरुको त्याग,पापको आरम्भ,नामभक्ति करकें देवतानसों द्वेष, वैष्णवनसों द्वेष, नामको बेंचनो नामसों जीविका, कसमखानो, तासी माहात्म्यमें अविश्वास, अपराध करनेके लिये, एसे नामके

इत्येवं दशधा नाम्नोऽप्यपराधाः प्रकीर्त्तिताः ॥
नाम्नस्तैनैव नाम स्यात्प्रसादो भजतामपि ॥ ६८ ॥
अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक् ॥
साधुरेव स मंतव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः ॥ ६९ ॥
क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छांतिं निगच्छति ॥
इत्यादिवचनैर्भक्तः कृतपापो विशुद्ध्यति ॥ ७० ॥
नैवं पापपरो नाम्ना पापाच्छुद्धिस्तु सर्वतः ॥
भक्तिमार्गेऽप्यशक्तानां पापिनां तद्बलादपि ॥ ७१ ॥
यस्यां योनौ भवेज्जन्म शुद्धौ भक्तिः पुनर्भवेत् ॥
शांडिल्यकथनं चैव वैष्णवेष्वपरत्र च ॥ ७२ ॥
हरेर्न विप्रियं कार्यं हरिरेतैः प्रकुप्यति ॥
सरलाः साधवः शांता विरक्ताश्च दयालवः ॥ ७३ ॥
शक्त्या स्वधर्मनिरतास्ते हरेरतिवल्लभाः ॥
खलता निर्दयत्वं च दुष्टा सत्या हितं वचः ॥ ७४ ॥

दश दोष हैं इनसों भजेश्वारेनको नाम प्रसाददायी नहीं होयहे ओर "अपिचे-त्सुदुराचारः" इत्यादि गीताके वचननको ये तात्पर्य हे के जानें पाप कियो हे ओर पीछें निरन्तर मोकों भजे हे वो शुद्ध होयजाय हे ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ ७० ॥ ओर नामसों पापपर न हो भक्तिमार्गमें अशक्त जो हें उनकोबी नामबलसों दूसरे जन्ममें शुद्ध होयवेपे भक्ति उत्पन्न होय हे एसो शांडिल्यको कथन हे ओर दूसरी जगहबी लिख्यो हे के हरिके विरुद्ध काम न करे हरि तासों क्रुद्ध होय हें सीधे साधु, शान्त, विरक्त, दयालु, स्वधर्मतत्पर जो हें वे भगवान्‌के अति प्यारे हें ओर खल निर्दई दुष्ट मिथ्यावादी कामी क्रोधी अतिलोभी महात्मानके अपराधी गो ब्राह्मण भक्त देवता इनके द्वेषी पाप क-

कामक्रोधोतिलोभश्च ह्यपराधो महात्मनाम् ॥
गोविप्रभक्तदेवानां विद्वेषश्चेनसां कृति ॥ ७५ ॥
सम्प्रदायगुरूणां च त्यागो नास्तिकता तथा ॥
एतैर्दोषैश्चापराधैर्हरिर्नैव प्रसीदति ॥ ७६ ॥
पवाद स पुनश्चैव कथं भक्ता विरागिण ॥
वर्णाश्रमाचारहीना नैव भागवता मता ॥ ७७ ॥
अब्रुवंच्छ्रीमदाचार्यो शृणुष्व वचनं मम ॥
विष्णुलिंगधराश्चेते वैष्णवाश्रमिणो मता ॥ ७८ ॥
गुरूणां संप्रदायेन कुर्वंति भजन हरे ॥
परोपकारे सन्नद्धा धर्मरक्षापरायणा ॥ ७९ ॥
शक्त्या स्वधर्मं कुर्वंति तपोदानव्रतादिकम् ॥
अन्नसत्र प्रकुर्वंति पांथानामाश्रयप्रदा ॥ ८० ॥
सन्मार्गस्योपदेष्टारो हरिपूजाप्रवर्त्तका ॥
विमुखा पापकर्मभ्यो हिंस्यधर्मनिवर्त्तका ॥ ८१ ॥

रवेवारे सम्प्रदायगुरूनके त्यागी नास्तिक इनसों हरि नहीं प्रसन्न होय हैं तब पानें कह्यो के ये वैरागी भक्त कैसे हैं ये तो वर्णाश्रम ओर आचारसों हीन हैं भागवत वैष्णव एसे नहीं होते तब आपनें कह्यो के सुनो ये तो विष्णुके चिन्ह धारण करवेवारे हैं वैष्णवाश्रमी हैं गुरुनके सम्प्रदायसों हरिको भजन करें हैं परोपकारमें कटिबद्ध रहे हैं धर्मकी रक्षामें तत्पर हैं शक्तिसों स्वधर्म, तप, दान, व्रतादिक, अन्नक्षेत्र करें हैं मार्गमें चलवेवारेनको आश्रय देय हैं ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ ७४ ॥ ७५ ॥ ॥ ७६ ॥ ७७ ॥ ७८ ॥ ७९ ॥ ८० ॥ सन्मार्गके उपदेष्टा हरि पूजाके प्रवर्तक, पापकर्मनसों विमुख, हिंसाके निवर्तक, जितेन्द्रिय, शान्त,

जितेंद्रियाः शांतरूपाः कामक्रोधादिवर्ज्जिताः ॥
शरणागतसंत्राणपरा गोब्राह्मणप्रियाः ॥ ८२ ॥
वैष्णवाचार्यसद्भक्ता निर्लोभा वीतरागिणः ॥
एते वै वैष्णववरास्तीर्थयात्रापरायणाः ॥ ८३ ॥
कथं त्यक्ताश्रमाश्चैतेऽवद्यमेषु च किं पुनः ॥
पुनः स प्राह किमतो नामैश्यं न हि पापिनाम् ॥ ८४ ॥
स्वधर्मत्यागिनां नृणां गतिर्नैव फले भिदा ॥
आचार्यास्तु तदा प्रोचुः शक्त्या धर्मं समाचरेत् ॥ ८५ ॥
देशकालादितस्त्यक्तेऽशक्त्या नामास्ति संश्रयम् ॥
यथेदानीं द्विजा व्रात्यास्तरं त्येवहिसंश्रयात् ॥ ८६ ॥
नैवं नामाश्रयात्याग इत्युक्तं बहुशो बुधैः ॥
एवं ब्रुवत्सु गुरुषु स पपात धरातले ॥ ८७ ॥
धिक्कृतो वैष्णवैः सर्वैः प्राह प्राञ्जलिरुत्थितः ॥
भवतामपराधेन वज्रकायोपि भिद्यते ॥ ८८ ॥
कोहं वराको नैतन्मे मात्सर्याद्याहृतं मनाक् ॥
स्मार्त्तानां संशयच्छित्यै प्रश्नोयं समुदाहृतः ॥ ८९ ॥
उत्तरं वांछितं लब्धं शरणीकुरु मां प्रभो ॥
भवतां शरणं प्राप्य कृतार्थः स्यान्नचान्यथा ॥ ९० ॥

कामक्रोधादिसों वर्जित, गो ब्राह्मणनके प्रिय, वैष्णवाचार्यनके भक्त, निर्लोभी, रागरहित एसे ये तीर्थयात्रा करवेवारे वैष्णवनमें श्रेष्ठ हैं ये त्यक्ताश्रमी कैसें हैं इनमें कहा दोष हे ये कहवेपे वो पृथ्वीपे गिरपड्यो ओर सब वैष्णवनने धिक्कारो तब वो हाथ जोडके उठके बोल्यो के आपके अपराधसों वज्रको शरीरवारोवी पिघलजाय मेरी तो कौन गिनती मेरे मनमें कछू मात्सर्य नहीं हे मैंनें तो स्मार्तनके संदेह दूर करवेके लिये ये प्रश्न कियो हे

गुरवस्तु तदा तस्मै ददुरष्टाक्षरं मनुम् ॥
मालां रहस्य विज्ञान सेवन विठ्ठलप्रभो ॥ ९१ ॥
पुनश्च ज्ञानदेवस्य नामदेवस्य चापरे ॥
सम्प्रदायगता शिष्या प्रोचु प्रांजलयो मुदा ॥ ९२ ॥
विष्णुस्वामिगुरोरेव वयमाम्नायगामिन ॥
शरण व प्रपन्ना स्मोप्युपदेशाभिलापिण ॥ ९३ ॥
सम्प्रदाये कुमाराणां ब्राह्मे भागवते बुधा ॥
ब्रह्मदत्तादयश्चेमे द्वैताद्वैतपरायणा ॥ ९४ ॥
श्रीमन्निम्बादित्यनामा ह्याचार्योऽत्र पुराऽभवत् ॥
सुदर्शनावतारोऽसौ सनकादिमते स्थित ॥ ९५ ॥
एव भागवता चैते श्रीराधाकृष्णवल्लभा ॥
चित्त्वादभेदो नोक्तासौ यथैव गुरुचन्द्रयो ॥ ९६ ॥
भेदस्तु वास्तव प्रोक्तो जीवात्मपरमात्मनो ॥
एवविध मतं चेषामस्माकं कीदृशं प्रभो ॥ ९७ ॥

सो यथार्थ उत्तर मिलगयो मोकों शरण लीजिये आपके शरण आयके कृतार्थ होऊगो दूसरे उपायसों नहीं ॥ ८१ ॥ ८२ ॥ ८३ ॥ ८४ ॥ ८५ ॥ ८६ ॥ ८७ ॥ ८८ ॥ ८९ ॥ ९० ॥ तब श्रीमदाचार्यजीने वाको अष्टाक्षर मन्त्र दियो ओर माला दीनी सम्प्रदायको रहस्यज्ञान विठ्ठलप्रभुकी सेवा दीनी पीछें ओरभी ज्ञानदेवके शिष्य हाथ जोडकें बोले के विष्णुस्वामिसम्प्रदायकेही हमलोग हैं हम उपदेश लेवेकी इच्छासों आपके शरण आये हैं ओर सनत्कुमारादिकनके सम्प्रदायके द्वैताद्वैतपरायण ब्रह्मदत्तआदि ये पंडित हैं इनके सम्प्रदायके आचार्य श्रीनिम्बादित्य यहाँ पहले भये हे जो सुदर्शनके अवतार हैं सनकादिमतमें एसें ये वैष्णव हैं राधाकृष्णके भक्त चित्तसों अभेद ओर वास्तविक भेद मानें हैं एसो इनको मत हे ओर हमारो केसो हे तब प्रसन्न होयके

तदाहुर्गुरवो हृष्टाः सावधाना निबोधत ॥
द्विविधः संप्रदायो वः शेषब्रह्मादिभेदतः ॥ ९८ ॥
शैवभागवतानां नो हारः सर्वमिदं जगत् ॥
तथापि ब्रह्मभेदोसौ कितव इति च श्रुतेः ॥ ९९ ॥
ब्रह्मरूपेण ब्रह्मांशो जीवो दास्याय निर्गतः ॥
स दासभावतो भक्त्या हरेर्लीलाधिकारभाक् ॥ १०० ॥
यदि भेदो वास्तवः स्यान्न स्यादच्युतता हरेः ॥
अप्रच्युतः स्वरूपेण तेनेदमखिलं ततम् ॥ १०१ ॥
यत्र येन यतो यस्मै यस्मिन्यद्यद्यथा यदा ॥
स्यादिदं भगवान्साक्षादित्युक्तास्याऽखिलात्मता ॥ १०२ ॥
विशुद्धं केवलं ज्ञानं सदानंदं निरामयम् ॥
तत्त्वं तदेतदखिलं लीलयाऽनेकधाऽभवत् ॥ १०३ ॥
तमेतं भजमानानां रुचीनामेव भेदतः ॥
संप्रदायाः पृथग्जातायोग्याः स्वीयाधिकारतः ॥ १०४ ॥

आप बोले के सावधान होयके सुनो शेषब्रह्मादिभेदसों दो प्रकारको तुम्हारो सम्प्रदाय हे ओर शैव भागवत हमलोगनको हरिही ये सब जगत् हे तो "ब्रह्मभेदांशा"या श्रुतिसों ब्रह्मरूपसों ब्रह्मांश जीव दास्य करवेके लिये निकसें हें वे दासभावसों भक्तिसा हरिलीलाके अधिकारी हें ॥ ९१ ॥ ॥ ९२ ॥ ९३ ॥ ९४ ॥ ९५ ॥ ९६ ॥ ९७ ॥ ९८ ॥ ९९ ॥ ॥ १०० ॥ जो वास्तव भेद होय तो हरिकी अच्युतता नहीं होयगी अप्रच्युतस्वरूपसों उनने ये सब रच्योहे "यत्र येन"या वचनसों भगवान्‌की सर्वात्मकता हे विशुद्ध निरामय वोही ब्रह्म अपनी लीलासों अनेकप्रकारको भयो हे उन इनको भजवेवारेकी रुचिभेदहीसों ओर अधिकारीनके भेद हीसों जुदे २ सम्प्रदाय हें ॥ श्रीगीताजीमें भगवान्‌नें कह्योहे जो मनुष्य एकत्व

गीतायां भगवानाह चोपासतेऽथ मां जनाः ॥
एकत्वेन पृथक्त्वेन बहुधा विश्वतो मुखम् ॥ १०५ ॥
या प्रेमलक्षणा भक्तिः सात्मनो निरुपाधिकी ॥
परात्मनि न सा मुख्या तस्मादेकात्मना भजेत् ॥ १०६ ॥
भावाद्वैतं ब्रह्मणास्य सुवर्णस्योर्मिकादिभिः ॥
विधीयते क्रियाद्वैतं सत्क्रियाणां समर्पणे ॥ १०७ ॥
हरेर्यदा भवेद्द्रव्यं द्रव्याद्वैतं तदा भवेत् ॥
भक्तिर्हरौ विरक्तिश्च समृतौ तृप्तिरात्मनि ॥ १०८ ॥
वीतलज्जो हरेरेव कीर्तयन् विमलं यशः ॥
नृत्यति क्वापि हसति रौति रोदिति मुह्यति ॥ १०९ ॥
पुलकाचितसर्वांगोबाष्पकंठोप्यलौकिकः ॥
जायते भगवद्भक्तः कर्तव्यं तस्य किं पुनः ॥ ११० ॥
सर्वत्रैव हरिं पश्यन् स्वयंच हरितां गतः ॥
पूर्णार्थो ब्रह्मभावेन विशुद्धाद्वैतदर्शनात् ॥ १११ ॥

ओर पृथकभावसों मोकों भजेहैं जो प्रेमलक्षणाभक्ति है वो आत्माकी निरुपाधि है परमात्मामें वो मुख्य नहीं है तासों एकात्म करके भजे भावाद्वैत, क्रियाद्वैत, द्रव्याद्वैतकी ब्रह्ममें भावना करे । हरिमें भक्ति संसारमें विरक्ति आत्मामें तृप्ति करे । ओर लज्जाको छोडके हरिहीके विमलयशको गान करते नाचे है कहीं हँसे है रोय है मोहित होय है आनन्दित होय है श्वाससों कठ भरजाय है एसो अलौकिक भक्ति होय है वाको कहा कर्त्तव्य है ॥ १०१ ॥ १०२ ॥ १०३ ॥ १०४ ॥ ॥ १०५ ॥ १०६ ॥ १०७ ॥ १०८ ॥ १०९ ॥ ११० ॥ सब ठिकाने हरिको देखते आपबी हरिरूप होयजाय है ओर शुद्धाद्वैतदर्शनसों

यूयं कुरुत सद्भक्तिं भेदाभेदकथोज्झिताः ॥
प्रसीदति हरिर्भक्त्या सर्वमन्याद्विडंबनम् ॥ ११२ ॥
अनुशास्य स्वशिष्येभ्यश्चैवमादेशिकोत्तमाः ॥
चक्रुः पारायणं नित्त्यं शृंगारं विठ्ठलप्रभोः ॥ ११३ ॥
तत्र शृंगारसमये कृते रंगमहोत्सवे ॥
पीतरंगसुगंधानां चूर्णैः श्रीशेऽभितोषिते ॥ ११४ ॥
निर्वर्त्त्यार्चां प्रचलिते कश्चिद्भक्तो हरिप्रियः ॥
पांडुरंगाऽभिधः प्राप्तो श्रीहरिप्रेरितो हृदा ॥ ११५ ॥
पयोव्रतो द्वादशाब्दं व्रजलीलादिदृक्षया ॥
प्राञ्जलिः प्रणतः प्राह पूरयंतु मनोरथम् ॥ ११६ ॥
गुरवः शरणं प्राप्तमनुगृह्णंतु किङ्करम् ॥
तदाऽसा गुरुभिर्नीतः स्नातः शुद्धो निजस्थले ॥ ११७ ॥
भीमरथ्या महानद्या दर्यामुत्तररोधसि ॥
दिव्ये च लोचन दत्त सा लीला तस्य दर्शिता ॥ ११८ ॥

ब्रह्मभावसों पूर्णार्थ होयजाय हे तासों भेदाभेदकी कथाकों छोडक तुम सब भक्ति करो । भगवान् भक्तिसों प्रसन्न होय हैं। ओर सब विडम्बना हे । एसे अपने शिष्यनकों उपदेश करते भये नित्य पारायण करते ओर विठ्ठलप्रभुकी सेवा करते कोई दिन रंगमहोत्सवमें शृंगारसमयमें पीतरंगसुगन्धवारे चर्णसों भगवान्को तुष्ट करकें चले सो कोई भक्त पांडुरंग नामक भगवान्की प्रेरणासों राहमें मिल्यो जो बारह वर्ष केवल दूध पीके रह्यो हो सो व्रजलीला देखवेकी इच्छासों हाथ जोडके बोल्यो के हे गुरो ! मैं आपके शरण आयो हूँ या किंकरके ऊपर आप अनुग्रह करें । तब आप उनको अपने स्थानमें ले गये ओर स्नान किये भये शुद्ध इनको महानदी भीमरथीके उत्तर आडी कन्दरामें दिव्यदृष्टि देके लीला दिखाई ओर लीलाको निरूपण कियो सो ताके आनन्दमें दामोदर कृष्णदास ओर अपनेभक्त तथा वो ब्राह्मण ये सब

निरूपितायां लीलायां परमानंदसम्प्लुता ॥
दामोदर कृष्णदास परे स्वीया द्विजोप्यसौ ॥ ११९ ॥
मुहूर्तद्वितय सप दृष्टानदोत्सवादित ॥
पूर्णार्थो श्रीमदाचार्यै पुनर्लोके समुद्धृता ॥ १२० ॥
बध्वांजलिं पुन प्राह किमर्थमहमुद्धृत ॥
परमानंदसमग्नो गुरुभिश्च कृपालुभि ॥ १२१ ॥
तदाहुर्गुरवस्तस्मै रुक्मिणीवल्लभ हरिम् ॥
सेवस्वेय हरेर्लीला ध्याता भास्यति चेतसि ॥ १२२ ॥
पूर्णार्थो ब्राह्मणश्चेत्थ गतो मुक्तपयोव्रत ॥
सेवमानो हरिं नित्यं लीलालीनोऽभवत्पुन ॥ १२३ ॥
अथाहु श्रीमदाचार्यान् सर्वे ते निजसेवका ॥
व्रजस्य दर्शनं कार्यं यत्र कृष्णेन खेलितम् ॥ १२४ ॥
वयं तु शरणापन्ना नैव यामो भवद्दते ॥
श्रीमत एव चास्माकं देवतं पुरुषोत्तमा ॥ १२५ ॥

मग्न होय गये सो नन्दोत्सवसा आदि लेके लीला दो मुहूर्त दिखाई पीछें याही लोकमें उनका उद्धार कियो ॥ १११ ॥ ११२ ॥ ११३ ॥ ॥ ११४ ॥ ११५ ॥ ११६ ॥ ११७ ॥ ११८ ॥ ११९ ॥ ॥ १२० ॥ सो वो भक्त हाथ जोडके बोल्यों के मोको क्यों आपनें निकास्यो मैंतो परमआनन्दमें मग्न हो । तब श्रीमदाचार्यजीने कह्यो जो रुक्मिणी वल्लभकी सेवा करो ओर जब चित्तमें ध्यान करोगे तब लीला दीखपडेगी यामकार वो ब्राह्मण पूर्णार्थ होयकें ओर पयोव्रत छोडकें गयो ओर नित्य हरिकी सेवा करतो लीलामें लीन भयो पीछ सब सेवकनने प्रार्थना करी जो जहाँ कृष्ण खेले हें या व्रजके दर्शन करावो हम सब तो आपके शरण हैं आपकों छोडके नहीं जायेंगे आपही हमारे पुरुषोत्तम देव हे तब आपनें आज्ञा

तदाहुः श्रीमदाचार्याः सम्यक् सम्यक् विचारितम् ॥
व्रजमेव हि सर्वस्वमस्माकमिति गम्यते ॥ १२६ ॥
इत्युक्त्वा विठ्ठलं गत्वा विज्ञाप्य च तदाज्ञया ॥
आचार्याः प्रस्थितास्तस्मात्स्वकीयैः पंचसेवकैः ॥ १२७ ॥
श्रीवेदव्यासविष्णुप्रभुचरणमिते सम्मिते ग्रन्थसार्थैः
श्रीगोविन्दाभिधानां समयनयविदां देशिकानां निदेशात् ॥
आचार्याणां चरित्रे हरिजनसुखदे शास्त्रिकृष्णैर्निबद्धे
प्रस्थानेऽस्मिँस्तृतीयेसमजनिपटहोवेददिक्सम्मितोयम् १२८

वंदे श्रीजानकीजानिं गोस्वामितिलकायितम् ॥
दैवोद्धारकृते जातं रघुनाथं सलक्ष्मणम् ॥ १ ॥
नाशिकं समनुप्राप्ता राघवस्याशिकापदम् ॥
विक्षता शूर्पणख्यात्र लक्ष्मणेन पुरा कृता ॥ २ ॥

जो बहुत उत्तम विचाऱ्यो हे व्रजही हमारो सर्वस्व हे वहीं चलेंगे ये कहकें श्रीविठ्ठलनाथके पास जायकें विज्ञप्ति करकें उनकी आज्ञासों अपने सेवकनके संग वहाँसों पधारे॥ १२१॥ १२२ ॥ १२३ ॥ १२४ ॥ १२५ ॥ १२६ ॥ ॥ १२७ ॥ समयनीतिके जानवेवारे जगद्गुरु श्रीमद्गोविन्दाचार्यजी महाराजकी आज्ञासों कृष्णशास्त्रीके बनाये श्रीमद्वेदव्यासविष्णुस्वामीसम्प्रदायके ग्रन्थनके अनुकूल हरिभक्तनके सुख देवेवारे या चरित्रग्रन्थमें तीसरे प्रस्थानमें चौदहवों पटह ये समाप्त भयो ॥ १२८ ॥

अब ग्रन्थकार श्रीरघुनाथजीके अवतार गोस्वामिश्रीरघुनाथजीको नमस्कार करे हैं के दैवीजीवनके उद्धारके लिये प्रगट भये श्रीजानकीशको में नमस्कार करूं हूँ ॥ १ ॥ पीछें श्रीमदाचार्यजी वहाँसों नाशिक पधारे जहाँ

यत्र पचवटी पचावती गोदानदीतटे ॥
यत्र भ्राजज्जटी प्रीत्यै जानकी जानकीशयो ॥ ३ ॥
पारायणं कृत तत्र श्रीनारायणतुष्टये ॥
पारायणस्य मध्ये तु नास्तिकस्य बुधोत्तमे ॥ ४ ॥
आकर्णित समायाता ह्याचार्यो वैष्णवाऽभिधाः ॥
बाल्ये यैर्निर्जिता काशी कैशोर्ये कृष्णवित्सभा ॥ ५ ॥
पारायण ते कुर्वंति भांति ते वह्निसन्निभा ॥
आदेय दर्शनं तेषा निर्णेय दर्शन पुनः ॥ ६ ॥
हर्षामर्षो न कर्तव्यो महद्भयोऽत्र जयाजये ॥
भस्मरुद्राक्षकलिता समायाता सहस्रश ॥ ७ ॥
समाहताश्चोपविष्टा ह्याचार्यान् प्रणिपत्य ते ॥
वयं तु ब्राह्मणा सर्वे शिवाराधनतत्परा ॥ ८ ॥
श्रौतस्मार्ताग्निनिरता वेदविद्यासु विश्रुता ॥
वेदे च धर्मशास्त्रे च तत्रयुग्मे च व्याकृतौ ॥ ९ ॥

लक्ष्मणजीनें सूपनखाकी नाक काटी ही ॥ २ ॥ जहाँ गोदावरी नदीके किनारे पचवटी हे वहाँ श्रीनारायणकी प्रसन्नताके लियें पारायण कियो सो बीचमेंही नासिकके विद्वाननने सुन्यो के श्रीषष्ठमाचार्यजी पधारे हैं जिननें बाल्यावस्थामें काशीकों किशोर अवस्थामें कृष्णदेवराजाकी सभाकों जीत्यो हे वे पारायण करें हैं अग्निपुञ्जके समान तेज हे उनके दर्शन करनो पीछे दर्शनशास्त्रनको निर्णय करनो चाहिये उन महात्माके सग जयपराजयको कछू हर्ष क्रोध न करनो चहिये सो ये विचारकें भस्मरुद्राक्ष धारन किये हजारन विद्वान् आये सो अच्छे सत्कारसों पायकें बैठे ओर आपकों प्रणाम करकें बोले के हम शिवाराधनमें तत्पर हें श्रौतस्मार्तअग्निवारे वेदवि

नाशिकस्था द्विजाः ख्याता नासाभा दक्षिणादिशः ॥
अस्माकं वेदविद्यासु क्रियतां सुपरीक्षणम् ॥ १० ॥
दीयतां वाथ गुरवः प्रोचुः शीघ्रं विधीयताम् ॥
इत्युक्त्वा पृष्टसूक्तस्य पदक्रमजटादिषु ॥ ११ ॥
अनुलोमप्रातिलोम्यात्परीक्षायै समर्पिता ॥
व्याकृतौ स्मृतिग्रंथे च मीमांसाद्वितये तथा ॥ १२ ॥
दत्तं परीक्षणं तेषां ग्रहणे विजयः कृतः ॥
ततस्ते खिन्नमनसो मतवादेऽभ्ययूयुजन् ॥ १३ ॥
भस्मरुद्राक्षकलिता महादेवार्चने रताः ॥
ते वै भागवताः प्रोक्ता नेतरे शंकरद्विषः ॥ १४ ॥
इत्थं कूर्मे तथादित्ये लैंगे शैवे सहस्रशः ॥
वचांसि विलसंत्येव गतिस्तेषां निरूप्यताम् ॥ १५ ॥
इत्युक्ते प्राहुराचार्या यूयं संभ्रममागताः ॥
शंकरो भगवांस्तस्य भक्ता भागवता न किम् ॥ १६ ॥

याधर्मशास्त्र तन्त्र इनमें प्रसिद्ध नासिकके रहवेवारे दक्षिणदिशाके नासिका रूप ब्राह्मणहैं हमारी वेदविद्यामें परिक्षा करो अथवा आपही दीजिये॥ ३ ॥ ४ ॥ ५॥ ॥ ६ ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥ १० ॥ तब श्रीमदाचार्यजीनें वेगीसों कह्यो जो, लीजिये सो उननें पद क्रम जटा सूक्त इनमें पूँछ्यो सो आपनें सीधो उलटो दोनों चालसों पढदीनो ओर व्याकरण स्मृति दोनों मीमांसा इन सबमें परीक्षा देदीनी ओर उनसों लेवेके समय उनसों नहीं बन्यो सो उनको विजय कियो। तब वे उदास होयके मतवादमें विवाद करवेलगे ओर कह्यो के महादेवकी पूजा करवेवारे भस्मरुद्राक्ष धारण करवेवारेही भागवत हैं दूसरे शंकरसों द्वेष करवेवारे नहीं ये बात कूर्म आदित्य लिंग शिव आदिपुराणनमें हजारनठिकाने लिखी है सो ताकी कहा गति होयगी ये कहवेवे आपवोले तब कहा भयो आगये हो शंक—

अभेदोपासनामार्गे तथा तन्त्रैर्निरूप्यते ॥
वय नोपासनामार्गे वय भक्तिपदे स्थिता ॥ १७ ॥
एक एवेश्वरः सेव्यो भक्तैरिति निरूप्यते ॥
घटाकर्णो यथा शंभो कौशिकश्च यथा हरेः ॥ १८ ॥
चन्द्रशर्मादयश्चापि ह्येकं देव समाश्रिताः ॥
भवदुक्तप्रमाणेषु शंभोरेव समर्चनम् ॥ १९ ॥
दृष्ट शिवरहस्यादावन्यार्चाया निषेधनम् ॥
एव विष्णुरहस्ये च विष्णुधर्मोत्तरे तथा ॥ २० ॥
गीताभागवतादौ च विष्णोरर्चैव साधिता ॥
काशीखडे द्वारकाया माहात्म्ये चन्द्रशर्मण ॥ २१ ॥
प्रसंगाद्विष्णुधर्मेषु स्थितिर्भस्माक्षयोर्न हि ॥
प्रोच्यते वैष्णवो धर्मो वैशेष्यात्पांचरात्रिके ॥ २२ ॥
शखचक्राद्यूर्द्ध्वपुंड्र तुलसीस्रग्मुताश्च वै ॥
कालाग्निरुद्रोपनिषत्प्राह पाशुपत व्रतम् ॥ २३ ॥

भगवान्‌हैं उनकेभक्त भागवत क्यों न होयगें अभेदउपासनामें तथा तन्त्रमें ये लिख्यो है हम वा मार्गमें नहीं है किन्तु भक्तिमार्गमें स्थित है भक्तनको एकहीकी सेवा करनी चाहिये जैसे महादेवके भक्त घंटाकर्ण हैं हरिके कौशिक हैं सो आपके कहे प्रमाणनमें शम्भुहीको पूजन है और शिवरहस्यआदिग्रन्थनमें दूसरेके पूजनको निषेध देखे हैं याहीप्रकार विष्णुरहस्य विष्णुधर्मोत्तर गीता भागवतमें विष्णुहीको पूजन लिख्यो है ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥ ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥ और काशीखडमेंभी द्वारकाके माहात्म्यमें चन्द्रशर्माके प्रसगमें विष्णुधर्ममें भस्म रुद्राक्षको धारण नहीं देखते विशेषकरके पंचरात्रमें वैष्णवधर्म कह्यो है शीतलशखचक्रकी मुद्रा ऊर्द्धपुंड्र तुलसीकी मालाको धारण लिख्यो है ऐसेही कालाग्निरुद्रउपनिषदमें पाशुपतमत भस्मरुद्राक्षको धारण कह्यो है

भस्मनो धारणे चैवं जाबालाश्चाक्षधारणे ॥
भस्मधारणतः पूतः तिर्यक्पुंड्रधरो जनः ॥ २४ ॥
शैवं पदं समभ्येतीत्युच्यते न तु वैष्णवम् ॥
रुद्राक्षसंस्थदेहस्तु कुक्कुरो म्रियते यदि ॥ २५ ॥
सोपि रुद्रपदं याति किं पुनर्मानवो गुह ॥
विना भस्मत्रिपुंड्रेण विना रुद्राक्षमालया ॥ २६ ॥
पूजितोपि महादेवो न पूजाफलदायकः ॥
विभूतिधारणं त्यक्त्वा त्यक्त्वा रुद्राक्षधारणम् ॥ २७ ॥
मा मां पूजय विश्वेशं शिवलिंगस्वरूपिणम् ॥
एवं लिंगे तथा सूतसंहितायां हरेर्वचः ॥ २८ ॥
इत्येवं बहुवाक्येषु रुद्रधर्मांगता स्मृता ॥
भस्मरुद्राक्षयोर्नैव विष्णुधर्मांगता क्वचित् ॥ २९ ॥
श्वेतद्वीपेऽपि दृश्यंते भस्मरुद्राक्षधारणम् ॥
इत्येवं कूर्मवचनं दुर्गाभागादिगं मतम् ॥ ३० ॥
रुद्राक्षेण जपो विष्णुमनोर्वाराहभाषितम् ॥
रुद्राक्षाकारतुलसीस्रजा सूतेन तद्वतम् ॥ ३१ ॥

भस्मको तिरछा पुंड्र धारण करवेवारो मनुष्य शैवपदकों पावे हें ये लिख्यो हे वैष्णवस्थान नहीं लिख्यो हे ओर कह्यो हे के रुद्राक्ष जाके देहमें होय एसो कूकुरबी मरे पीछें रुद्रपद पावे हे ओर मनुष्यको तो कहा कहें विना भस्मत्रिपुंड्रके विना रुद्राक्षकी मालाके पूजा कियेबी महादेव पूजाके फलकों नहीं देते विभूति तथा रुद्राक्षके धारणके विना शिवलिंगस्वरूपी विश्वेश जो में हूँ उनकी पूजा न करो एसे लिंगपुराण ओर सूतसंहितामें भगवान्के वचन हें एसे बहोतसे वचननमें भस्मरुद्राक्षको रुद्रधर्मको अंग कह्यो हे विष्णुधर्मको अंग कहीं नहीं कह्यो हे ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥ ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥ ३० ॥ एसे शैव वैष्णवतन्त्रनके

तापानां मोचक भस्मरुद्राक्षमपि तादृशम् ॥
ते वर्णागसद्धर्मौ प्रोच्यते मुनिभि क्वचित् ॥ ३२ ॥
शैवतत्रानुसारेण तत्तच्छास्त्रे निरूप्यते ॥
क्वचित्तत्रानुरोधेन धर्म पौराणिका अपि ॥ ३३ ॥
वदति तादृश तत्तु आप्तत दवलविभि ॥
इत्थं पाराशराद्युक्त्या पुराणमुपलक्षणम् ॥ ३४ ॥
शैववैष्णवयोर्धर्मौ तत्तत्तत्रानुसारिणौ ॥
शैववैष्णवयोस्तुल्यं प्रामाण्य तत्रयोरपि ॥ ३५ ॥
तत्र श्रेयस्कर मुख्य पचरात्रादिवैष्णवम् ॥
तथाहि भारते मोक्षधर्मे नारायणीयके ॥ ३६ ॥
गृहस्थो ब्रह्मचारी च वानप्रस्थो यतिस्तथा ॥
य इच्छेत्सिद्धिमास्थातुं देवतां ता यजेत स ॥ ३७ ॥
गृहस्थ इत्यादिप्रश्ने राज्ञो भीष्मोऽब्रवीद्वच ॥
स पितुर्मुखत पूर्वं पचरात्राभिध शुभम् ॥ ३८ ॥
शास्त्र श्रुत तदुत्पत्तिर्मयात सर्वमुच्यते ॥
श्रुत्वा नारायणात्पूर्वं शास्त्र सप्तर्षिभि पुन ॥ ३९ ॥

अनुमार दोनों धर्म कहे हें ओर दोनों तन्त्रप्रमाण हें तोभी कल्याण करवेवारो मुख्य वैष्णवपचरात्र हे देखो भारतके नार णीय मोक्षधर्ममें लिख्यो हे के भी ष्मनें कह्यो के पचरात्रशास्त्र पहले नारायणसों सप्तर्षिननें सुन्यो ओर या कल्पमें नारदजीने सुन्यो ये बडो शास्त्र हे ये कल्याणरूप हे ब्रह्म हे हित हे बडो उत्तम हे ऋक् यजु साम अथर्व इनको साररूप हे येही प्रमाण हे ओर दूसरे ठिकानेभी पचरात्रकी प्रशसा लिखी हे सांख्य, योग, पचरात्र, वेद पाशुपत ये स्वत प्रमाण हें युक्तीनसों इनको नाश नहीं करना पाशुपतको शिवनें कह्यो हे ओर सम्पूर्ण पचरात्रके वक्ता नारायण हें एसो जो नहीं जाने हें वे अज्ञानी हे विष्णु धर्मोत्तरमेंभी येही बात लिखी हे ओर रामाय-

लोके प्रचारितं सार्द्धं वसुना तत्तिरोहितम् ॥
ततो नूत्नेषु कल्पेषु तस्योत्पत्तिः पुनः पुनः ॥ ४० ॥
नारायणादिदानीं तु नारदेनाहृतं पुनः ॥
प्रवर्तते महाशास्त्रं तदुक्तं कुर्विति व्यगात् ॥ ४१ ॥
इदं श्रेय इदं ब्रह्म चेदं हितमनुत्तमम् ॥
ऋग्यजुः सामभिर्जुष्टमथर्वांगिरसैस्तथा ॥ ४२ ॥
भविष्यति प्रमाणं वै ह्येतदेवानुशासनम् ॥
एवं ते कथितो धर्मः सात्वतोयमुवाच ह ॥ ४३ ॥
कुरुष्वैनं यथा तुभ्यमाख्यातः पार्थिवोत्तम ॥
तथा तत्रेतरत्रापि पंचरात्रप्रशंसनम् ॥ ४४ ॥
सांख्यं योगः पंचरात्रं वेदाः पाशुपतं तथा ॥
आत्मप्रमाणान्येतानि न हंतव्यानि युक्तिभिः ॥ ४५ ॥
सांख्यस्य वक्ता कपिलो योगस्य च पितामहः ॥
अपांतरतमश्चैव वेदाचार्यः स उच्यते ॥ ४६ ॥
ऊचिवानिदमव्यग्रं ज्ञानं पाशुपतं शिवः ॥
पंचरात्रस्य कृत्स्नस्य वक्ता नारायणः प्रभुः ॥ ४७ ॥
समेव शास्त्रकर्त्तारं प्रवदंति मनीषिणः ॥
न चैवमेवं जानंति तमोभूता विशांपते ॥
निष्ठा नारायणमृते नान्योऽस्तीति वचो मम ॥ ४८ ॥

विष्णुधर्मोत्तरे–

सांख्यं योगः पंचरात्रं वेदारण्यकमेव च ॥
कृतांत पंचकं विद्धि ब्रह्मणः परिमार्गणे ॥ ४९ ॥

णके उत्तरकांडमें लिखी हे के वेद पुराण पंचरात्रसों जो नित्य गाये जाय हैं विष्णु उन्हीको यज्ञनसों पूजन करें हैं वाराहपुराणमें बी लिख्यो हे के पंचरात्रके यथाक्रमके जानवेवारे पुरुष पातकनसों छूटके हरिमें प्रवेश करें हैं

रामायणोत्तरकांडे च

वेदैश्चैव पुराणैश्च पचरात्रैस्तथा परे ॥
यो नित्यं गीयते विष्णु क्रतुभिश्च यजति तम् ॥ ५० ।

वाराहपुराणांतरे च

पचरात्रविदो ये च यथाक्रमपरायणा ॥
विधौतपातकाः सर्वे ते हरिं प्रविशंति हि ॥ ५१ ॥

बृहत्पाराशरे

वैदिक तु जप कुर्यात्पौराण पंचरात्रकम् ॥
पचरात्रविधानेन स्थंडिले वापि पूजयेत् ॥ ५२ ॥
इत्थ वै पचरात्रस्य भारतादौ प्रशसनात् ॥
सात्त्विको वैष्णवो धर्मो राजसो वैधस स्मृत्त ॥ ५३ ॥
तामस शांभवो धर्म सम्रुयोग्यस्तथात्मनाम् ॥
एव लिंगपुराणादौ दृश्यते वचनान्यथ ॥ ५४ ॥
हिरण्यगर्भो रजसा तमसा शकर स्वयम् ॥
सत्त्वेन सर्वगो विष्णु सर्वात्मा सदसन्मय ॥ ५५ ॥

बृहत्पाराशरमेंभी लिख्यो है के वैदिक व पौराणिक जप पंचरात्रके विधानसौं करे अथवा स्थंडिलमें पूजन करे एसेही भारतादिकग्रन्थनमें पंचरात्रकी प्रशंसा देखें हैं॥ ३१ ॥ ३२॥ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ ४० ॥ ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ ॥ ४९ ॥ ५० ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ सतोगुणवारो वैष्णवधर्म है ब्रह्माको राजस है शम्भुको तामस है येही बात लिंगपुराणमेंभी देखें हैं के रजोगुणतें ब्रह्मा तमोगुणतें शकर सतोगुणतें सर्वव्यापी विष्णु हैं ओर सात्विकजन विष्णुकी तामसजन शकरकी राजस ब्रह्माकी सेवा करें हैं राजसकल्पनमें ब्रह्माको तामसमें शिवको संकीर्णमें सरस्वतीको सात्विकमें विष्णुको अधिक माहात्म्य होय है एसें मत्स्यपुराणके वचननसों कल्पशब्द कालवाची है ओर

सात्त्विकैः सेव्यते विष्णुस्तामसैरेव शंकरः ॥
राजसैः सेव्यते ब्रह्मा संकीर्णैश्च सरस्वती ॥ ५६ ॥
राजसेषु च कल्पेषु माहात्म्यं ब्रह्मणोऽधिकम् ॥
तामसेषु शिवस्याग्नेर्माहात्म्यं विनिरूप्यते ॥ ५७ ॥
संकीर्णेषु सरस्वत्याः पितॄणां व्याप्तिरुच्यते ॥
सात्त्विकेषु च कल्पेषु माहात्म्यमधिकं हरेः ॥ ५८ ॥
तदेव योगसांसिद्धा यास्यंति परमां गतिम् ॥
इत्थं मत्स्यपुराणोक्त्या कल्पः कालोऽत्र कल्प्यते ॥ ५९ ॥
कल्पशब्देन पक्षोपि स्वयमेवोपलक्ष्यते ॥
सत्वात्संजायते ज्ञानं ज्ञानान्मुक्तिरवाप्यते ॥ ६० ॥
तस्मात्तु सात्त्विको धर्मः सेवनीयो मुरद्विषः ॥
सर्वासामेव सिद्धीनां मूलं तच्चरणार्चनम् ॥ ६१ ॥
आवश्यकं मुमुक्षूणां वैष्णवो धर्म इष्यते ॥
न वर्णधर्मता चास्य भस्मरुद्राक्षसंभृते ॥ ६२ ॥
मन्वादिस्मृतिषु क्वापि सूत्रेषु न च दृश्यते ॥
व्रतमेतत्पाशुपतं व्रतमेतत्तु शांभवम् ॥ ६३ ॥

पक्षकोबी कहें हें सतोगुणसों ज्ञान उत्पन्न होय हे ज्ञानसों मुक्ति होय हे तासों विष्णुको सात्विक धर्म्म पालवेके योग्य हे सबसिद्धीनको मूल उनके चरण-कमलनको पूजन हे ओर मुमुक्षुजननके लिये वैष्णवधर्मकी आवश्यकता हे ओर भस्मरुद्राक्षको धारण कछू वर्णधर्म नहीं हे मन्वादिस्मृति तथा सूत्रनमें कहीं नहीं देखे हें ये पाशुपतव्रत हे ये शाम्भवव्रत हे एसे उपनिषदकेवचननसों वणधर्मको अंग कहाँसों कहो हो ओर विष्णुधर्मको अंग तो वे स्वममेबी नहीं होय सकें हें।वासुदेवउपनिषदमें गोपीचन्दनके धारणको विधान सामान्य हे तासों वो वर्णधर्म स्पष्ट हे तुम सब वैदिक होयके सूत्रादिकनमें नहीं कहे

इत्येवोपनिषद्वाक्याद्वर्णधर्मांगता कुत ॥
विष्णुधर्मांगता तस्य स्वप्नेऽपि न हि सिद्ध्यति ॥ ६४ ॥
वासुदेवोपनिषदि गोपीमृद्धारणश्रुते ॥
तस्या सामान्यविदिता वर्णधर्मांगता स्फुटा ॥ ६५ ॥
यूयं वै वैदिका भूत्वा कुत सूत्राद्यभाषितम् ॥
अत्याग्रहेण कुरुत भस्मरुद्राक्षधारणम् ॥ ६६ ॥
काशीखण्डेऽपि हसित भस्मधारणमात्रत ॥
गति स्यात्किं न मुच्यते रासभा भस्मधूसराः ॥ ६७ ॥
तांत्रिकत्वेन या निंदा शिवकेशवतत्रयो ॥
न हि निंदेति नयत सा श्रौताध्वप्रशंसिका ॥ ६८ ॥
तामसत्वेन या निंदा निषिद्धाचारतोपि वा ॥
सा द्विजानधिकारस्य तत्रयो शैवशाक्तयो ॥ ६८ ॥
वैष्णवेषु च तंत्रेषु निषिद्धाचरण न हि ॥
तप्तांकधारण क्वापि तद्धि हेय द्विजातिभि ॥ ७० ॥
निंदित वैष्णवे तत्रे तथा शास्त्रांतरेऽपि च ॥
निर्माल्यग्रहण शंभोस्तथा भस्माक्षधारणम् ॥ ७१ ॥

भस्मरुद्राक्षधारणको अति आग्रहसो क्यों करो हो। काशीखण्डमेंभी भस्मधारणमात्रसे। तो उपहास कियो है के जो भस्महीसों गति होती होय तो भस्ममें लटे गदहानकी क्यों नहीं होय है और शिवकेशवतन्त्रकी जो तान्त्रिकपनासे। निन्दा है घो वैदिकमार्गकी प्रशंसापर है और तामसपनासो वा निषिद्धाचारसो जो शैव शाक्त तन्त्रनकी निन्दा है घो द्विजनके अनधिकारके लिये है और वैष्णवतन्त्रमें तो निन्दित आचरण नहीं है जो कहीं तप्तमुद्राको धारण है घो द्विजातीनको छोडवेने योग्य है ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ ६० ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ ६७॥ ६८ ॥ ६९ ॥७०॥ और वैष्णवतन्त्र तथा

यज्ञांते धारणं भूतेर्भस्मस्नानं तथारुचि ॥
उद्धूलनं वनस्थस्य तेन भूतिः शुचिः स्वयम् ॥ ७२ ॥
त्रिपुंड्रधारणं शैवमूर्द्ध्वपुंड्रं तु वैष्णवम् ॥
ब्राह्मणस्योर्द्ध्वपुंड्रं स्यात् वैष्णवस्य विशेषतः ॥ ७३ ॥
धर्मकार्येषु सर्वेषु चोर्द्ध्वपुंड्रं विधीयते ॥
ततो वै वैष्णवो धर्मः सेव्यः सत्त्वात्मिकैर्जनैः ॥ ७४ ॥
इत्युक्ते श्रीमदाचार्यैर्ब्राह्मणास्तु परस्परम् ॥
भाषितं सत्यमेवार्यैर्नास्ति सूत्रे तयोर्भृतिः ॥ ७५ ॥
स्मृतौ न दृश्यते तद्वत्स्मात्तांगं शंकरार्चनम् ॥
देवेषु ब्राह्मणः शंभुर्विप्रैरर्च्यस्ततः स वै ॥ ७६ ॥
तत्प्रीतये भस्मरुद्रधारणं चेति वाग्वृथा ॥
देवेषु जातिर्नैवास्ति ह्यस्ति चेद्भगवान् हरिः ॥ ७७ ॥
स ब्राह्मणः सर्वदेवमूर्तिः सेव्यो न किं पुनः ॥
एवं परस्परं सर्वे उक्त्वा कृत्वा च जल्पितम् ॥ ७८ ॥
पुण्यात्मानस्तेषु केचिदाचार्यान्स्वगुरून्व्यधुः ॥
ततः प्रणम्य ते सर्वे कृत्वैव च प्रदक्षिणम् ॥ ७९ ॥

दूसरे शास्त्रनमें महादेवको निर्माल्य ग्रहण तथा भस्मरुद्राक्षधारण निन्दित हे यज्ञके अन्तमें भूति धारणहे तासों भस्म शुचि पवित्र हे शैव त्रिपुंड्रहे वैष्णव ऊर्द्ध्वपुंड्र हे ब्राह्मणनको ऊर्द्ध्वपुंड्र चाहिये वैष्णवनको विशेष करके हे सब धर्मकार्यनमें ऊर्द्ध्वपुंड्रको विधान हे तासों सतोगुणी मनुष्यनको अवश्य वैष्णवधर्म सेव्य हे ऐसे आपके कहवे पे सब ब्राह्मण आपसमें कहवेलगे के आर्य सत्य कहें हें सूत्रमें भस्मरुद्राक्षको धारण नहीं हे स्मृतिनमेंबी नहीं देखते तासों स्मृतिकोबी अंग नहीं ओर जो कोई कहें हें के देवतानमें शंभु ब्राह्मण हें तासों ब्राह्मणनको अवश्य पूज्य हें सो ये बोलनो वृथा हे कारण के देवतानमें

प्रशसतस्तदाचारं गतास्ते स्वनिकेतनम् ॥
पारायणं समाप्यात्र आचार्यास्त्र्यंबक गता ॥ ८० ॥
गोदा विनिस्सृता यत्र गौतमार्षिप्रभावत ॥
त्र्यवकेश नमस्कृत्य दृष्ट्वा गोदासमुद्गमम् ॥ ८१ ॥
आचार्या प्रस्थितास्तस्मान्नर्मदां शर्मदां प्रति ॥
तापीं सरिद्वरां प्राप्य सर्वपापापहारिणीम् ॥ ८२ ॥
स्नात्वा विमलपानीये तीर्थान्यत्र प्रचक्रमु ॥
तत प्रचलिता द्रष्टुमोंकारेश महेश्वरम् ॥ ८३ ॥
सोमोद्भवायां सस्नाता आचार्ये शकरो नुत ॥
तत्तीर्थजातं तत्तीरे स्नात्वा च विधिनार्चितम् ॥
तत्रत्यविप्रैर्भूपेन स्वर्चिताश्चलितास्तत ॥ ८४ ॥

जाते नहीं जो है तो भगवान् हरिही ब्राह्मण हैं सर्वदेवमूर्ति हैं यातें वेही सेव्य क्यों नहीं एसे आपसमें बात करके जो पुण्यात्मा है सो आपके शरण आये ओर दूसरे सबही प्रणाम प्रदक्षिणा करके आपके आचारकी प्रशसा करते अपने स्थानको गये ओर श्रीमदाचार्यजीभी पारायण समाप्त करके त्र्यम्बककों पधारे जहाँ गौतमऋषिके प्रभावसों गोदावरी नदी निकसी है वहाँ त्र्यम्बकेशके नमस्कारकरके ओर गोदावरीके प्रागट्यके स्थलको देखके वहाँसों नर्मदाको पधारे बीचमें सब पापनको दूर करवे वारी तापीकों पायके वाके विमलजलमें स्नान करके वहाँके तीर्थनकी प्रदक्षिणा कर नर्मदास्नान कर ओंकारेश्वरको नमस्कारकर पीछे वहाँके ब्राह्मण तथा राजासों पूजित होयके वहाँसों पधारे ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ ७४ ॥ ७५ ॥ ॥ ७६ ॥ ७७ ॥ ७८ ७९ ॥ ८० ॥ ८१ ॥ ८२ ॥ ८३ ॥ ॥ ८४ ॥ समयनीतिके जानवेवारे जगद्गुरू श्रीमद्गोविन्दाचार्यजी महा

श्रीवेदव्यासविष्णुप्रभुचरणमिते सम्मिते ग्रन्थसार्थैः
श्रीगोविन्दाभिधानां समयनयविदां देशिकानां निदेशात् ॥
आचार्याणां चरित्रे हरिजनसुखदे शास्त्रिकृष्णैर्निबद्धे
प्रस्थानेऽस्मिंस्तृतीये समजनि पटहः पञ्चदिक्सम्मितोयम्८५

वंदे संसारसंहारमीशितुर्वदनानलम् ॥
कालकालं यं वदंति भक्तानामभयंकरम् ॥ १ ॥
अथ पारं समागत्य रेवोदक्तीर्थमंडलम् ॥
परिक्रम्य ततः प्राप्ताः पुण्यां माहिष्मतीं पुरीम् ॥ २ ॥
तस्याः परिक्रमं कृत्वा स्थिताश्च विपनोत्तमे ॥
समागतैर्विज्ञवर्यैः श्रुतवृत्तैरभिष्टुताः ॥ ३ ॥
पृष्टा वेदेषु चांगेषु संशयाँश्चिच्छिदुर्मुदा ॥
राजन्यैश्च विशांवर्गैर्मानिताः प्रस्थितास्ततः ॥ ४ ॥
अटाव्यार्थं विशालायानीतास्तत्रत्यभूसुरैः ॥
अवंतिकां समासाद्य स्नात्वा क्षिप्रां महानदीम् ॥ ५ ॥

राजकी आज्ञासों कृष्णशास्त्रीके बनाये श्रीमद्वेदव्यास विष्णुस्वामि मतके ग्रन्थनके अनुकूल हरिभक्तनके सुखदेवेवारे या चरित्र ग्रन्थके तीसरे प्रस्थानमें ये पन्द्रहवों पटह समाप्त भयो ॥ ८५ ॥

सो नर्मदाके उत्तर तीर्थमंडलकी परिक्रमा करकें पुण्य माहिष्मती पुरीके उत्तम वनमें विराजे वहाँ आपके यशको सुनकें विद्वान् लोग आये सो स्तुति करकें वेद तथा अंगनमें प्रश्न करते भये सो उनके संदेहनको दूर कियो ओर वहाँके राजवर्गसों मान पायकें पधारे सो उज्जयनीमें महानदी क्षिप्राको स्नान करकें कालकाल तथा भद्रकाली क्षीरसागर के दर्शन करकें सिद्ध बट ओर सांदीपिनीके स्थानमें पधारकें गोमतीके तीर विराजमान होयकें पारायण

कालकाल महाकालमर्चित ते वर्षादेरे ॥
भद्रकालीमपश्यस्ते ददृशु क्षीरसागरम् ॥ ६ ॥
जग्मु सिद्धवट तस्माद्दद्दृशु सांदीपिने पदम् ॥
आसीना गोमतीतीरे तत्र पारायण व्यधु ॥ ७ ॥
बोधिपत्र समारोप्य तस्य चक्रुर्महत्तरुम् ॥
निरातप तत्र जात दृष्ट्वाश्चर्यं जनै कृतम् ॥ ८ ॥
नागर्यो नागरा सर्वे यात्यायांति समीक्षितुम् ॥
तच्छ्रुत्वा ब्राह्मणा केचिदुद्धताश्च परस्परम् ॥ ९ ॥
आमन्त्र्य शतसंख्याका युगपत्प्रष्टुमागता ॥
ते सर्व जनमेलायां समागत्य पुर स्थिता ॥ १० ॥
दूरीकृत्य जनान्कांश्चित्सार्द्धं प्रश्नान्प्रचक्रमु ॥
श्रुत्वाचार्याश्च तान्प्रश्नान् तेपां धौर्त्यं विलोक्य च ॥ ११ ॥
शताननतया तेपामुत्तर युगपद्ददु ॥
तत्र प्रश्नावलिं चैनां लिलिखाम्युत्तरावलिम् ॥ १२ ॥
साक्षिप्य वाक्पतेर्वाक्यविस्तर केन धार्य्यते ॥
शिवेशमन् शृणु विधि भाट्टास्त भावनां जगु ॥ १३ ॥

दियें यहाँ एक पिप्पलके पत्रको गाड़दीनो सो बडो वृक्ष होयगयो यहाँ छाया होयगई ये आश्चर्य देखवेकों नगरके लोग आते जाते हे सो कोई उद्धत ब्राह्मण सुनके आपसमें सो ब्राह्मण मिल्के एकही सग पूछनेके लिये मनुष्यनके मेलामें आयकें आगे ठाडेभये ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥ १० ॥ और मनुष्यनको हटायके एक सगही प्रश्न किये सो आपने उनके प्रश्नको सुनके और उनकी धूर्तता देखके सो मुखकरकें एकही कालमें उत्तर दिने सो ये प्रश्नावली और उत्तरावली संक्षेपसों लिखूहूं ॥ ११ ॥ १२ ॥ क्योंकि वाक्पतिके विस्तारको कोन धारण करसकेहे शिवशर्मन् विधि सुनो भट्टमत-

प्राभाकरानियोगाख्यं तार्किकाश्चेष्टसाधनम् ॥
बुधशर्म्मन् विधिः सोयमपूर्वो नियमस्तथा ॥ १४ ॥
परिसंख्येति त्रिविधा प्राहुस्तौतादिकादयः ॥
अपूर्वो रौहिणेयासावप्राप्तस्य च प्रापकः ॥ १५ ॥
पक्षाप्राप्तौ पूरणेन नियमो विष्णुशंकर ॥
परिसंख्या निवृत्यैवाऽपरोयं शेषशेषिणोः ॥ १६ ॥
स्वरूपबोधकः कर्मणो भीमोत्पत्तिसंज्ञक ॥
आग्नेयोष्टकपालो वै भवतीत्त्यंबिकेश्वर ॥ १७ ॥
इति कर्त्तव्यता गर्भाऽभिधायिकरणस्य यः ॥
यागादेः फलसंबंधबोधकोप्यधिकारिकः ॥ १८ ॥
दर्शेन पूर्णमासेन यजेतेति यथांगुले ॥
देवदत्त गृहाणैतदंगसंबंधबोधकः ॥ १९ ॥
यजेत व्रीहिभिश्चेति नियोगविधिसंज्ञकम् ॥
सखाराम प्रयोगाख्यं विधिं त्वमुपधारय ॥ २० ॥

चारे ताकों भावना कहेंहें ॥ १३ ॥ प्रभाकरके अनुयायी नियोग कहेंहें तार्कि-क इष्टसाधन कहेंहें बुधशर्मन् सुनो अपूर्व नियम परिसंख्या ये तीन प्रकारकी विधि तौतादिक कहेंहें (हे रौहिणेय) अप्राप्तकी प्राप्त करवेवारी अपूर्व विधि होयहे (विष्णु शंकर) पूरणप्राप्तिमें नियम होयहे दूसरेको निवृत्त करवेवारी परिसंख्या होयहे (भीमोत्पत्ति) कर्मको स्वरूप बोधक येहे (अम्बिकेश्वर) जेसे (आग्नेयोऽष्टाकपालः) अग्निदेवके लिये आठ कपालहें येहे इति कर्त्तव्यताको कहवेवारो याग आदिको फल सम्बन्धको बोध करवेवारो अधि-कारिकहे जेसे (अंगुले) दर्शपूर्णमाससों यज्ञ करे येहे (देवदत्त) ये अंग सम्बन्ध बोधक हे धान्यसों यज्ञ करे ये नियोगविधिहे (सखाराम) प्रयोगविधिकों समझो ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥

सांगप्रधानकर्मात्मप्रयोगैक्यस्य बोधक ॥
विधिसम्मिश्रणात्मासौ श्रौत कल्पेति चापरे ॥ २१ ॥
भाट्टा प्राभाकरा प्राहुर्विवादं ह्यम्बिकेश्वरं ॥
आत्मा श्रोतव्य इत्यत्र त्रिविधोपि विधिर्विधे ॥
शंकरात्रापूर्वविधिरन्वयव्यतिरेकत ॥ २२ ॥
नापरोक्षकृतौ शक्ति शब्दस्येति मतं हि न ॥
गणेशेनियमश्चात्र भिन्नात्मज्ञानहेतुता ॥ २३ ॥
मुक्तेर्माभूदितिश्रुत्या द्वैताध्यासाय पूर्यते ॥
शंभोऽत्र परिसंख्यैवं ब्रह्मसत्योऽमृत व्रजेत् ॥ २४ ॥
अत आत्मैव श्रोतव्य कर्म संन्यस्य चापर ॥
विधीच्छयोर्यवादोय बालंभट्टानुवादत ॥ २५ ॥
अहमात्मेति सिद्धोयस्तदभ्यासो ह्यनूद्यते ॥
प्रमाया करणं यत्त तत्प्रमाण चैतुर्भुज ॥ २६ ॥

॥ १९ ॥ २० ॥ अंगसहित प्रधान कर्मको एक बोधकरवेवारी होय हे दूसरे विधिसमिश्र वेदविहित कल्पकों कहें हैं ॥ २१ ॥ (अम्बिकेस्वर) भाट्ट प्रभाकर विवाद कहे हैं, आत्मा "श्रोतव्य" यहां विधिकी तीनों विधि हैं (शंकर) यहां अन्वयव्यतिरेकसों अपूर्वविधि हे अपरोक्षकृतिमें शब्दकी शक्ति नहीं हे ये हमारो मतहे (गणेश) यहा नियम हे आत्म ज्ञानको हेतु भिन्नहे ॥ २२ ॥ २३ ॥ "मुक्तेर्माभूत्" या श्रुतिसों द्वैतके अध्यासके लिये कहीगई हे (शम्भो) यहमें रहवेवारेकों अमृत मिले हे यहां परिसंख्याहे ॥ २४ ॥ (बालम्भट्ट) कर्मको छोडके आत्माही श्रोतव्यहे ये अर्थवादहे 'अहमात्मा' यासों जो सिद्ध हे ताको अनुवादहे (चतुर्भुज) प्रमाको जो करण हे सो प्रमाण हे ॥ २५ ॥ २६ ॥

अज्ञातज्ञापकं ज्ञानं प्रमा स्याद्यदभाषितम् ॥
इंद्रियार्थप्रयोगेण ज्ञानमक्षजमच्युत[17] ॥ २७ ॥
लिंगेन लिंगिनो ज्ञानमनुमानं महेश्वर[18] ॥
सादृश्यमूलकं ज्ञानमुपमानं दिवाकर[19] ॥ २८ ॥
आप्तवाक्यं भवेच्छब्दः शाब्दं तज्जंजनार्दन[20] ॥
आचार्यैः खंडितास्तेषां कृता विप्रतिपत्तयः ॥ २९ ॥
तंडिन्[21] प्रमेया मार्तंड संख्याका गौतमे रुताः ॥
आत्मा देहेंद्रियार्थाश्च बुद्धिस्वांतप्रवृत्तयः ॥ ३० ॥
दोषो जन्मफलं दुःखं मोक्षस्ते कथितः पृथक् ॥
प्रमाणैरवगम्यंतेऽतोमृड[22]ैषांप्रमेयता ॥ ३१ ॥
विरुद्धकोटिकं ज्ञानं संशयश्चंडिकेश्वर[23] ॥
प्रयोजनं प्रवृत्तेश्च हेतुर्भवति भारवे[24] ॥ ३२ ॥
मुरारे[25] बोधकं दृष्टांतं मतं यदि वादिनोः ॥
निर्णीतार्थस्तु सिद्धांतः कौंडिशर्मन्[26] चतुर्विधः ॥ ३३ ॥

(अच्युत) अज्ञातके जनायवेवारे यथार्थज्ञानको प्रमा कहें हें इन्द्रिय द्रव्यके सन्निकर्षसों उत्पन्न ज्ञानको प्रत्यक्ष कहें ह ॥ २७ ॥ (महेश्वर) हेतुसों हेतुवारे ज्ञानको अनुमान कहें हें (दिवाकर) सादृश्यसों उत्पन्नको उपमानकहें हें ॥ २८ ॥ (जनार्दन) शिष्ट वाक्यसों उत्पन्न ज्ञान शाब्द हे यामें उनकी शंकानको आचार्यननें खंडन कियो (तंडिन्) अनेक प्रमेय गौतमने कहें हें आत्मा, देह, इन्द्रिय, विषय, बुद्धि, मनोवृत्ति, दोष, जन्मफल, दुःख, मोक्ष ये अलग कहें हें प्रमाणनसों जाने जाँय हें यासों इनकी प्रमेयता हे (मृड) ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ चंडिकेश्वर एक-धर्मिक विरुद्ध कोटि द्वयावगाहिज्ञानको संशय कहें हें (भारवे) प्रवृत्तिके प्रयोजनको हेतु कहें हें ॥ ३२ ॥ (मुरारे) वादीनके जनायवेवारेको

सर्वशास्त्रैकशास्त्रश्च स्वीयाभ्युपगमस्तथा ॥
निजाधिकरणीयश्च गौतमीयैर्निरूपितः ॥ ३४ ॥
पञ्चधाऽवयवाभौंलो अनुमानस्य बोधकाः ॥
प्रतिज्ञा हेतुदृष्टांतोपनया निगमस्तथा ॥ ३५ ॥
कार्यकारणमूलो यो विचारस्तर्क ऊदरे ॥
निर्णयो निश्चयो भूरे पौरे युक्तिमती कथा ॥ ३६ ॥
वादस्तत्रार्थनिर्द्धारो जल्पस्तु विजयार्थिनो ॥
स्वपक्षसाधनेहीना वितण्डाऽन्यस्य दोषदा ॥ ३७ ॥
हेत्वाभासो हेतुनिभोऽनुमितेर्जनको न य ॥
स पञ्चधास्त्युमादत्ते व्यभिचारीतथादिमः ॥ ३८ ॥
विरुद्धप्रतिपक्षो स्त' सिद्धोऽन्यो बाधितस्तथा ॥
छल भौनोष्टभिप्रेतार्थस्य यत्परिवर्तनात् ॥ ३९ ॥
दूषण तत्त्रिधा वक्तु वाक्सामान्योपचारत ॥
जाति जानीहि गौरीशे असदेव यदुत्तरम् ॥ ४० ॥

दृष्टान्त कहे हैं (कौंडिन्य) निश्चित अर्थको सिद्धान्त समझो वह चार प्रकारको हे ॥ ३३ ॥ सर्वशास्त्र, एकशास्त्र, स्वीयाभ्युपगम निजाधिकरण ये गौतमीयननें कहो हे ॥ ३४ ॥ (भालो) अनुमानके बोधक प्रतिज्ञा, हेतु, दृष्टान्त, उपनय, निगम ये पाच अवयव हे ॥ ३५ ॥ (ऊदरे) कार्य कारण मूलको विचार तर्क है (भूरे) निर्णय निश्चय हे (पौरे) युक्तिवारी कथा हे ॥ ३६ ॥ जयकी इच्छावारेनको बोलनो वाद हे अपने पक्षके साधनसों हीन दूसरेको दोषदायी वितण्डा हे ॥ ३७ ॥ (उमादत्त) हेतुके सदृश अनुमितिके न उत्पन्न करवेवारो हेत्वाभास पांच प्रकारको हे व्यभिचारी, ॥ ३८ ॥ विरुद्ध, सत्प्रतिपक्ष, अन्यथासिद्ध, बाधित (भानो) इष्ट अर्थके परिवर्तनसों जो दूषण सो छलहे वाणीके सामान्य

सामान्येन विरुद्धेन धर्मेणोक्तौ विदूषणम् ॥
हेतुः पराजयस्यांशो[34] निग्रहस्थानमिष्यते ॥ ४१ ॥
बहुधा तत्र कथिता वद वक्तव्यमेषु यत् ॥
यज्ञदत्त[35] कणादीये द्रव्यं गुणवदिष्यते ॥ ४२ ॥
द्रव्याश्रितो गुणो ज्ञेयो मार्कंडेयात्र[36] कः शयः ॥
संयोगादेः कारणं यत्कर्म देव[37] क्रियात्मकम् ॥ ४३ ॥
नित्यमेकमनेकानुविद्धं सामान्यमुज्ज्वल[38] ॥
व्यावर्तको विशेषोंधो[39]ऽव्यावृत्तो यः स्वतोऽणुषु ॥ ४४ ॥
एते भावाः कणादोक्ता अभावोऽन्यश्चतुर्विधः ॥
अभावो भावभिन्नो[40]ऽर्क प्रतियोगी निरूपितः ॥ ४५ ॥
निरोधश्चित्तवृत्तीनां पंचानां योग ईश्वर[41] ॥
प्रमाणं च विपर्यासो विकल्पो व्यापकः स्मृतिः ॥ ४६ ॥
वृत्तयः पंच भामाक्ष[42] आगमानुमितिः प्रमा ॥
विपर्ययोऽन्यथाज्ञानं शाब्दं शून्यं विकल्पितम् ॥ ४७ ॥

उपचारसों तीन प्रकारको हे (गौरीश) असत् उत्तर विरुद्ध धर्मसों कहे गये दोषकों जाति जानो (अंशो) पराजयको हेतु निग्रह जानो ॥ ३९ ॥ ॥ ४० ॥ ४१ ॥ ओर बहोत प्रकारसों कह्योहे तामें जो वक्तव्य होय सो कहो (यज्ञदत्त) न्यायमें गुणवारो द्रव्य हे ॥ ४२ ॥ (मार्कंडेय) द्रव्यके अश्रित गुण जानो यामें कहा संदेह हे (देव) संयोग आदिको कारण कर्म हे ॥ ४३ ॥ (उज्ज्वल) नित्य एक बहुतनमें रहवेवारो सामान्य हे (अंधो) परमाणुनमें रहवेवारो व्यावर्तक विशेष हे ॥ ४४ ॥ (अर्क) कणादके कहे ये भावहें इनसों भिन्न अभाव चार प्रकारको हे प्रतियोगी कह आये ॥ ४५ ॥ (ईश्वर) चित्तकी वृत्तिनको रोकनो योग हे। प्रमाण, विपर्यास, विकल्प, व्यापक, स्मृति ॥ ४६ ॥ पाँच वृत्तिहैं (भामाक्ष)

निद्राप्यभावविज्ञान ज्ञातज्ञान स्मृति र्भृगो ॥
क्लेशकर्मविपाकाशयैरस्पृष्टोऽजईश्वरे ॥ ४८ ॥
सबीजश्चापि निर्बीज समाधिरर्जुनोच्यते ॥
व्याधिस्त्यागो निजकृते प्रमाद संशयोलस ॥ ४९ ॥
भोगासक्तिर्भ्रमोऽस्वास्थ्य विक्षेपाजडतावुधे ॥
अविद्याहकृती रागो द्वेषश्चासद्ग्रहस्तथा ॥ ५० ॥
शांर्ङ्गिन् पच महाक्लेशा कर्मेवभ्रो शुभाशुभे ॥
अहिंसा सत्यमस्तेयो ब्रह्मचर्यापरिग्रहो ॥ ५१ ॥
पच कालेश्वर यमा शांतात्मन् नियमान् शृणु ॥
आत्मनोद्विविध शौच सतोपस्तप एव च ॥ ५२ ॥
प्रणवादिजपो विष्णोर्भक्तिरव्यभिचारिणी ॥
स्थिर सुख वश्यकरमासन बहुधा कुणे ॥ ५३ ॥
प्राणायामो सुमंत्र रोधो पूरकुभकरेचके ॥
वृत्तेर्निरोधो प्रत्याहारोऽक्ष्णां चापिहि केशव ॥ ५४ ॥

आगम अनुमान प्रमाहै दूसरे प्रकारको ज्ञान विपर्ययहै शून्य विकल्प है (भृगो) अभावको ज्ञान निद्रा है ज्ञातको ज्ञान, स्मृति, है क्लेश, कर्मविपाकसों रहित ईश्वर है (अर्जुन) सबीज निर्बीज समाधि है अपनी स्तिको त्याग व्याधिहै प्रमाद, संशय,आलस्य, भोगासक्ति, भ्रम, अस्वास्थ्य,जडता(अम्बुधे)ये विक्षेपहैं (शार्ङ्गिन्)अविद्या, अहकार,राग,द्वेष,असत्को ग्रहण ये पाँच महाक्लेशहैं(बभ्रो) शुभ अशुभ कर्महै अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह (कालेश्वर) ये पाँच यमहैं (शान्तात्मन्)नियमनकों सुनो आत्माकी दो प्रकारकी शुद्धि है सन्तोष और तप ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ ५० ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ प्रणव आदिको जप विष्णुकी निरन्तर भक्ति वश करवेवारे ये स्थिर सुखहै (कुणे) आसन अनेक प्रकारकेहैं ॥ ५३ ॥ (हे सुमन्त्र) पूरक कुम्भक रेचक ये

मणिपूरादिचक्रेषु नासाग्रे वा विधारणम् ॥
चित्तस्य धारणं प्राहुस्तदाचार्याः पतंजले[५४] ॥ ५५ ॥
चित्तस्य ध्येयविषये तैलधारानुकारिणी ॥
वृत्तेर्या संततिर्ध्यानं मघवन्[५५]निह किं भ्रमः ॥ ५६ ॥
वत्त्यादिभेदशून्यं यत् ध्येयार्थस्य प्रकाशनम् ॥
सावस्थैव समाधिः स्यात्सुब्रह्मण्य[५६] श्रुतं न वा ॥ ५७ ॥
तपोमंत्रजपस्येशार्पणं विहितकर्मणः ॥
क्रियायोगोयमाख्यातो व्योमकेश[५७] समाधिकृत् ॥ ५८ ॥
जात्यायुर्भोगसंज्ञास्ते विपाकाः स्युस्त्रयोग्निचित्[५८] ॥
शंभु[५९]भट्टाशयाश्चित्ते संस्कारा वासनाभिधाः ॥ ५९ ॥
प्रकृतेः पुरुषस्यापि योजको विश्वकृन्मणे[६०] ॥
अनादिसत्वविज्ञानोत्कर्षात्स पुरुषः परः ॥ ६० ॥
पंचविंशतितत्त्वानि प्रकृतिः प्रकृतिस्त्विह ॥
सप्तकं महदादीनां प्रकृतिर्विकृतिश्च सा ॥ ६१ ॥

प्राणायाम हैं (केशव) वृत्ति तथा नेत्रनको रोकनो प्रत्याहार हे (पतञ्जले) मणिपूर आदि चक्रनमें अथवा नासाके अग्रभागमें चित्तको धारण करवेको आचार्य धारण कहें हें ध्यान करवेके विषयमें चित्तकी जो तेलधाराकी जेसे वृत्तिको पडनो ताको नाम ध्यान हे (मघवन्) यामें कहा संदेह हे ॥ ५६ ॥ वृत्ति आदिके भेदसों शून्य जो ध्येय अर्थको प्रकाश याही अवस्थाको समाधि कहें हें (सुब्रह्मण्य) सुन्यो के नहीं ॥ ५७ ॥ (व्योमकेश) विहितकर्म तथा तपमन्त्रनके जपको जो भगवान्के अर्पण करनो ये समाधिसों उत्पन्न क्रिया योग हे ॥ ५८ ॥ (अग्निचित्) तीन विपाक हें (शम्भुभट्ट) चित्तमें जो संस्कार हे वो वासना हे ॥ ५९ ॥ (मणो) प्रकृति पुरुषको योग करवेवारो संसार करवेवारो अनादिसत्त्वके विज्ञानके उत्कर्षसों पर वो पुरुष हे ॥ ६० ॥ पचीस तत्त्व वोही

व्योमादि षोडशगणो विकार प्रकृतिर्न स ॥
न कस्यचित्स प्रकृतिर्विकृतिश्चेतन पुमान् ॥ ६२ ॥
समावस्थैव प्रकृतिर्गुणानां ध्यादिलक्षिता ॥
प्रीत्यप्रीतिविषादात्मगुणा सत्वादयो द्युमंन् ॥ ६३ ॥
जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तीनां साक्षिणश्चित्सुखात्मका ॥
पुरुषा बहवो दाल्भ्याजननादिव्यवस्थिते ॥ ६४ ॥
सत्व लघुतरस्तत्र तमो गुरुतरं मतम् ॥
विसर्पि रजसोरूप तेन ते नियता हरें ॥ ६५ ॥
नेशो बद्ध क्षमो मूढो मुक्तोऽकिंचित्करो नु स ॥
कश्चिज्जीव नु मनुते सांख्यवित्त खगेश्वरं ॥ ६६ ॥
ऋचां स्थानाष्टक चर्चा श्रावकश्चर्चको ध्रुवं ॥
संहिता संहितापार क्रमात्पदजटादय ॥ ६७ ॥
ऋचामशीति शाखा स्यु षडशीति यजुर्गता ॥
साम्नां सहस्र नव च ब्रह्म वेदस्य नागजित् ॥ ६८ ॥

प्रकृति है महत्व आदि सात प्रकृति विकृति हैं ॥६१॥ आकाश आदि सो लह विकार हैं प्रकृति नहीं चेतन पुरुष काहूको विकृति नहीं ॥ ६२ ॥ गुणनकी समान अवस्थाही प्रकृति है (द्युमन्) सत्त्व आदि आत्माके गुणहैं ॥ ६३ ॥ (दाल्भ्य) जाग्रत् स्वप्न सुषुप्तिके साक्षी जनन आदि व्यवस्थामें बहोत पुरुष हैं ॥ ६४ ॥ (हर) सत्त्व अति लघु है तम अति गुरु है रजोगुण विसर्पी है तामों ये नियत हैं ॥ ६५ ॥ (खगेश्वर) कोई सांख्य जानवेवारो जीवको ईश नहीं माने है किन्तु बद्ध क्षम मूढ अकिञ्चित्कर मानें हैं ॥ ६६ ॥ (ध्रुव) ऋचानके आठ स्थान चर्चा, श्रावक, चर्चक हैं संहिता है क्रम, पद, जटा आदि हैं ॥ ६७ ॥ ऋक्की (८०) शाखा हैं (८६) यजुर्वेदकी हैं सामकी हजार हैं (नागजित) ब्रह्मवेदकी नव

क्रमो जटा च माला च शिखा लेखा ध्वजस्तथा ॥
दंडोरथोघनश्चेति शिखिन्[६७] विकृतयो नव ॥ ६९ ॥
गोत्राण्यत्रिभरद्वाजौ काश्यपश्च वितायन[६८] ॥
छंदांसि गायत्रीत्रिष्टुप्जगत्यनुष्टुभस्तथा ॥ ७० ॥
ब्रह्मशंभुहरींद्राश्च वेदानां देवता दधिन्[६९] ॥
निष्कलः सकलश्चेति शिवोधर्मी प्रकाशन[७०] ॥ ७१ ॥
धर्मोविमर्शशक्त्याख्यः संविदानंदचिद्वटो[७१] ॥
ब्रह्मणः शक्तिरेतस्या नादोबिन्दुरणूरवः ॥ ७२ ॥
शब्दब्रह्मपराख्योसौ कुंडलीतनुगागुह[७२] ॥
सएवशिवशक्त्याख्योह्यर्थसृष्टिकरोऽजन[७३] ॥ ७३ ॥
महदादिक्रमादर्थसृष्टिरिन्द्रियगोचरा ॥
गुरुदेवतमंत्रात्मैकज्ञानात्तन्मयाप्तिता ॥ ७४ ॥
अविद्यापाशविच्छित्तिर्मुक्तिः सा हरिशंकर[७४] ॥
सकामोप्यधिकारीह स निष्कामतया निज[७५] ॥ ७५ ॥
यजेत देवतां तद्रूपाप्तिर्मुक्तिर्नचेतरा ॥
निषिद्धाचरणात्काम्याचरणात्समयार्दनात् ॥ ७६ ॥

॥ ६८ ॥ (शिखिन्) क्रम, जटा, माला, शिखा, लेखा, ध्वज, दंड, रथ, घन, ये नव विकृति हैं ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ (वितायन) अत्रि, भरद्वाज, काश्यप, ये गोत्रहैं (दधिन्) गायत्री, त्रिष्टुप्, जगती, अनुष्टुप् ये छन्द हैं प्रकाशन ब्रह्मा, शम्भु, हरि, इन्द्र ये देवताहैं । सधर्मक निर्धर्मक ब्रह्म हे ॥ ७० ॥ ७१ ॥ (वटो) अचिन्त्यशक्ति धर्म हैं सत् चित् आनन्दरूप हे या शक्तिको शब्द ब्रह्मपर अणुरव विन्दुनाद हे ॥ ७२ ॥ (गुह) शरीरमें रहवेवारी कुंडली हे (अजन) वोही पदार्थ सृष्टि करवेवारी शक्तिहे ॥ ७३ ॥ महत् आदिसों लेके अर्थसृष्टि इन्द्रियको विषयहे गुरु देवता मन्त्र आतमा इनके एक ज्ञानसों तन्मयताहे ॥ ७४ ॥ (हरिशंकर) वाही अविद्यापाशको छोडनो मुक्तिहे यामें सकामवी अधिकारी हे और

मृडानीशें वृथाक्लेश संसारः क्लेशकारक ॥
कालेकालार्चनं कुर्वे भस्मरुद्राक्षधारणम् ॥ ७७ ॥
वल्लभस्यप्रतिज्ञामेकोलैसँपितस्य ते पितु ॥
च्युतवर्णेपि तद्देववाचक शृणु माधवे ॥ ७८ ॥
त्रिपुरारिरमाकांत विधाता च विभाकर ॥
लुप्ते लुप्तेक्षरे नानार्थवार्त्तिक शृणु मदनं ॥ ७९ ॥
गोकुलेशकुवलयोराधेहि परमेश्वरं ॥
शितिकंठागम प्रोक्त काले कंठनिसेविनाम् ॥ ८० ॥
गतिर्न विद्यते क्वापि भस्मरुद्राक्षमतरा ॥
सोमगधर्वशिखिन परिणीतेश्वरस्तथा ॥ ८१ ॥
नैतिके प्रोच्यते सम्यक् पचकांता पतिव्रता ॥
का सख्या युक्तिमद्वाच कशलाकाशवर्जिता ॥ ८२ ॥
वसते के मधुगिरस्तत्रांतर्लोपिकारुता ॥
गच्छ मा कुरु सघट्ट मौनं वह शृणुष्वमे ॥ ८३ ॥

निष्कामथी जा देवताको पूजन करे वाके तपकी प्राप्तिही मुक्तिहे दूसरी नहीं (मृडानीश) निषिद्ध काम्यकर्मनके आचरणसों समयके त्यागसों क्लेशदायी वृथा संसार होय हे समयमें शिवको पूजन भस्मरुद्राक्षको धारण में करूँ हूँ (कोलाधो मेरे नामधारे तुम्हारे पिताकी ये प्रतिज्ञाहे (माधव) वर्णके च्युत होयवेपेभी शब्द वाही देवको वाचक हे सुनो ॥ ७५ ॥ ७६ ॥ ॥ ७७ ॥ ७८ ॥ जेसे (त्रिपुरारि) मेंसों (त्रि) के न क हवेसोंभी पुरारि महादेवको वाचकहे एसेही रमाकान्त आदि शब्द समझने (मदन) और (परमेश्वर) अक्षरके लोप होयवेसों गोकुलेश कुवलय शब्द दूसरे अर्थके वाचक हें (शितिकंठ) कालेकंठ (शिव) की सेवा करवेवारेनको भस्म रुद्राक्षके विना गति कहीं नहीं हे सोम, गन्धर्व, अग्नि, पाणिग्रहण कर-वेवारो, ईश्वर, ये पाँचपतिवारी स्त्री पतिव्रता हें युक्तिवारी वाणीकी कोन

कथितुं कथयोक्तस्त्वं बहिर्लापिकया वद ॥
गत्वा पराजयं यामि मत्वा प्राज्ञवरानुत ॥ ८४ ॥
त्यक्त्वा विवादं वद भो वदाम्यत्र कृभः क्रियाः ॥
गुरुतोलघुतो वापि योजने द्विगुणेतयोः ॥ ८५ ॥
द्विगुणाच्चतयोर्हारे प्रस्तारःस्याच्चतुर्विधः ॥
स्तनवत्यः कुतोनार्यः श्मश्रुवंतः कुतोनराः ॥ ८६ ॥
भालचंद्र निबोधैतत्पयोरेतःप्रभावतः ॥
विना विना शुकी सूते तथैवांगनयांगना ॥ ९१ ॥
किमत्र जायते ब्रूहि तत्रानस्थि प्रजायते ॥
समूलमपि निर्मूलं सिद्धं यत्कष्टसाधितम् ॥९२॥
ज्वरादौ किं नु कर्त्तव्यं लंघनं परमौषधम् ॥
नक्तं निद्रा कुतो भूरि लघ्वी निद्रा कुतोदिवा ॥ ९३ ॥
यतोऽब्जं हृदयं जंतोरावृणोति तमः कफः ॥
साम्येन खेकंधा भक्तेर्वैषम्यं लग्नगं कथम् ॥ ९४ ॥
तिर्यक्स्थितेर्भचक्रस्य गोविंद शृणु तत्तथा ॥
भूबिंबज्योतिषोर्मध्ये छायया छादनंकथम् ॥ ९५ ॥

संख्या हे शत्रजित शलाका कहाँ हे वसन्तमे मीठी वाणी कोन बोले हे यामें अन्तर्लापिका हे जेसे पिकामानें कोकिलके हें सोयाहीमें कहीहे जावो संघट्ट न करो मौन होयके सुनो कथा करके कहवेको उत्सुकहो सो बहिर्लापिकासों कहो (गत्वा) ओर (गुरुतो) इन श्लोकनमें व्याकरण ओर छन्द विषयक प्रश्न हें स्त्री स्तनवारी क्यों पुरुष मूछडाढीवारे क्यों होंय हें ॥ ७९ ॥ ॥ ८० ॥ ८१ ॥ ८२ ॥ ८३ ॥ ८४ ॥ ८५ ॥ ८६ ॥ (भालचन्द्र) शुक्र शोणितके प्रभावसों ये जानो पक्षीके विना शुकी उत्पन्न करे हे स्त्री करके स्त्री उत्पन्न करे तो कहो कहा होय हाड नसों रहित होय जड नहीं हे परन्तु जड हे कष्टसों होय हे एसो ज्वर आदिमें कहा करनो

न ज्योतिरिन्दुरर्कैंवतच्छायापर्वेण्यतोविभो" ॥
के चार्यसत्वाश्चत्वार सागरे शृणु धोमते ॥ ९६ ॥
दु ख समुदयो मार्गे निरोधश्चेति सौगताः ॥
स्कधा के गुणचद्रात्रे दु खतत्वगताअमी ॥ ९७ ॥
विज्ञान वेदना संज्ञा सस्कारो रूपमेव च ॥
समुदाय वद ब्रह्मन् मार्ग भैद्रमते शृणु ॥ ९८ ॥
आत्मात्मीयमतिश्चाद्य सर्वत्र क्षणिका परा ॥
के ते स्यु क्षणिकाभावा क्षेमकरे निवोधमे ॥ ९९ ॥
विपर्येद्रियधीचैत्यद्वादशायतनानि च ॥
आर्हतां कानि तत्वानि जिनसूरे निशाम्यताम् ॥ १०० ॥
जीवाजीवो त्रिधात्राद्य पर पद्धाप्यनेकधा ॥
कश्चाश्रय शवरश्च कीर्तिचंद्र निवोधमे ॥ १०१ ॥

(उ) परम औषध लघन रातको निद्रा बहोत होय हे दिनमें थोरीक्यों ? (उ) हृदय कमल हे ताकों कफ रूपी तम राहु ग्रसे हे सान्येन, यहाँसो ज्योतिष विषयक प्रश्न उत्तर हें (के चार्यसत्वाः) यहाँ सो जैन मत विषयके प्रश्न उत्तर चले (सागर) सुनो तुम्हारे मतमें कितने तत्त्व हें ॥ ८७ ॥ ॥ ८८ ॥ ८९ ॥ ९० ॥ ९१ ॥ ९२ ॥ ९३ ॥ ९४ ॥ ९५ ॥ ९६ ॥ दु ख, समुदय, मार्ग, निरोध ये सौगत कहेहें दु खतत्त्वमें रहवेवारे स्कध (गुणचन्द्र) ये हें ॥ ९७ ॥ विज्ञान, वेदना, सज्ञा, सस्कार, रूप (ब्रह्मन्) समुदाय कहो (भद्रमते) मार्ग सुनो ॥ ९८ ॥ आत्मा आत्मीयको ज्ञान हे ओर सब क्षणिक हें (क्षेमकर) कोन क्षणिक भाव हें सुनो ॥ ९० ॥ विपर्येन्द्रिय चैत्य ओर बारह आयतन (जिनसूरे) आर्हतनके कोन तत्त्व हे सुनो ॥ १०० ॥ जीव, अजीव, जीव तीन प्रकारकेहे अजीव दे प्रकारके अथवा अनेक प्रकारके हें आश्रय सवर कोन हे

मिथ्यावृत्तिराश्रयोक्ष्णां सम्यग्वृत्तिस्तु संवर ॥
विनिर्जरा कतिविधा हेमसूरेकधातुसा ॥ १०२ ॥
गम्यार्हदुपदेशेन वृत्तिरूपापवर्गदाः ॥
अष्टकर्माणि कानीह सुंदरार्यैस्तदुच्यते ॥ १०३ ॥
घातकानीह चत्वारि चतुष्कंचाप्यघातिनाम् ॥
ज्ञानदर्शनयोरत्रावरणीयं विमोहनम् ॥ १०४ ॥
अंतरायं वेदनीयं नामगोत्रिकआयुषम् ॥
एवं धूर्तीजितामूर्तैराचार्यैः कृष्णवर्त्मभिः ॥ १०५ ॥
शरणं चरणांभोजं चक्रुस्तेषां सुबुद्धयः ॥
कीर्तिरेषांकीर्तनीया जनिता जनताननें ॥ १०६ ॥
विजितावंतिकाचार्यैर्जैतार्यैः कस्तथाविधः ॥
जल्पतामसहन्वाचः कश्चिद्वित्प्राहमत्सरी ॥ १०७ ॥
मात्सर्यगौरवक्ष्वेडसंघातान्मूर्छितोद्विजः ॥
घटः सरस्वती नेह स पुंरूपः सरस्वती ॥ १०८ ॥

(कीर्तिचन्द्र) समझो ॥ १०१ ॥ नेत्रनकी मिथ्या वृत्ति आश्रयहे सत्यवृत्ति संवर हे विनिर्जराकितने प्रकारकी हे (हेमसूरे) बारह प्रकारकी हे ॥ १०२ ॥ गम्य आर्हतनके उपदेश सों मोक्षके देवेवारी वृत्तिहे आठ कर्म कोनहें यामें सुन्दरार्य कहें हें चार घातकहें चार अघातक हें ज्ञान दर्शन में आवरण ओर विमोहन ॥ १०३ ॥ १०४ ॥ अन्तराय, वेदनीय, नाम, गोत्रिक, आयुष येहें एसे मूर्तिमान् अग्नि स्वरूप श्रीमदाचार्यननें धूर्तनकों जीते ॥ १०५॥ सो उनकी सुन्दर बुद्धीननें आपके चरणकमलनको शरण लीनो ओर आपकी कीर्तनकरवे योग्य कीर्तिनें उनके मुखमें वास कियो सो वे स्तुति करवे लगे के आचार्यननें अवान्तिका पुरी जीती ओर दूसरो कोन एसो हे एसी स्तुतिकों न सहके ईर्षा विषसों मूर्छित होयके कोई विद्वान् बोल्यो ॥ १०६ ॥ १०७ ॥ जो घटसरस्वती यहाँ नहीं

कृष्णदासस्तत प्राह कोसौ घटसरस्वती ॥
मायाविन नयाद्यैव यत्र वो भक्तिरुत्तमा ॥ १०९ ॥
ततस्तु यात्रिका प्राहुर्दृष्टश्चैद्यपुरे तु स ॥
ददाति भस्मरुद्राक्षे मालामुद्रे हरत्ययम् ॥ ११० ॥
श्रुत्वैवं कृष्णदासेन हरिमार्गद्विषोभवम् ॥
सत्वभिज्ञापितस्तेनाचार्येभ्यस्तद्विडंबनम् ॥ १११ ॥
आर्यो प्रोचुर्न बहवो बहुधेश्वरतुष्टये ॥
कुर्वीतिनटवन्मायामस्माकं तेन का क्षति ॥ ११२ ॥
एवमुक्त्वा समाप्यैव श्रीमद्भागवतागमम् ॥
विशालायाव्यधुर्यात्रां विधिपूर्णां यथाविधि ॥ ११३ ॥
श्रीवेदव्यासविष्णुप्रभुचरणमिते सम्मितेग्रन्थसार्थे ।
श्रीगोविन्दाभिधानांसमयनयविदां देशिकानां निदेशात् ॥
आचार्याणांचरित्रेहरिजनसुखदे शास्त्रिकृष्णैर्निबद्धे ।
प्रस्थानेऽस्मिंस्तृतीयेसमजनिपटहः षोडशोयजयाख्ये॥११४॥

हे वो पुरुषरूप सरस्वती है तब कृष्णदास बोले जो घटसरस्वती कोन है जामें तुम्हारी एसी भक्ति है आजही वा मायावीकों लाओ ॥१०८॥ ॥ १०९ ॥ पीछे यात्रावारेननें कह्यो जो चैद्यपुरमें देख्यो है भस्मरुद्राक्ष देहे ओर माला मुद्रा हर लेहे ॥ ११० ॥ एसे हरिमार्गके द्वेषीको मद सुनके वाकी विडम्बना ओर वाकों आपसों विज्ञापनाकरी आपने कह्यो जो ईश्वरके प्रसन्नकरबेके लिये बहोत मनुष्य नटके जेसे माया करेंहें तासों हमारी कहा क्षती है ॥१११॥११२॥ एसें कहके पारायण समाप्त करके यथाविधि उज्जेनकी यात्रा करी ॥ ११३ ॥ समय नीतिके जानबे वारे जगद्गुरु श्रीमद्गोविन्दाचार्यजी महाराजकी आज्ञासों कृष्ण शास्त्रीके बनाये श्रीवेदव्यास विष्णु स्वामीजीके मतके ग्रन्थनके अनुकूल हरिभक्तनके सुख देवेवारे या चरित्र ग्रन्थके तीसरे प्रस्थानमें ये सोरहवों पटह समाप्त भयो ॥ ११४ ॥

व्रजस्य सरलं मार्गदेवानामुद्धृतिस्तथा ॥
एकाक्रियाव्द्यर्थकरीज्ञात्वाचैद्यपुरंययुः ॥ १ ॥
चेदिपानामधीशेनसत्कृताश्चोपसर्पणैः ॥
लिंगवृत्तेर्वृत्तजातं सर्वंचापिनिवेदितम् ॥ २ ॥
रामचंद्रसभां जेतुं गतोवेत्रवतीं प्रति ॥
उशाशिशिवरं यत्र स्वंगारेशैर्विराजितम्॥ ३ ॥
स्नातुं वेत्रवतीं पुण्यामाचार्या अपि प्रस्थिताः ॥
आशंक्य विग्रहं राज्ञा वीरादत्ताश्च रक्षितुम्॥ ४ ॥
कलौ वेत्रवती गंगा सत्तरंगावगाहिता ॥
तत्राशिका कृताचार्यैस्तत्र पारायणं व्यधुः ॥ ५ ॥
सरिच्छैलवनोद्देशैः प्रीतात्मानोभवन्निह ॥
तेषामपि जगद्व्याप्तं पांडित्यं दिग्जयं पुनः ॥ ६ ॥
श्रुत्वा राज्ञा समागत्य तेभिनीताः स्वमंदिरे ॥
कृता च महती पूजा संशितश्च सरस्वती ॥ ७ ॥
कृष्णदासस्तदा प्राह स समाहूयतां यतिः ॥
द्रष्टव्यं तस्य पांडित्यमाचार्यैरत्र भूपतेः ॥ ८ ॥

व्रजको सीधो मार्ग ओर दैवीजीवनको उद्धार ये दो प्रयोजनवारी एक क्रिया समझके चैद्यपुरकों पधारे ॥ १ ॥ वहाँके राजासों भेट आदिके सत्कार-कों पायकें रामचन्द्र राजाकी सभा जीतवेके लिये वेत्रवती पधारे वहाँ रक्षा-के लिये राजाने सेना दीन्ही ताके संग अच्छी पुण्यतरंगवारी वेत्रवती गंगाके स्नान करवेकों आपवी पधारे सो नदी पर्वत वन आदिकों देखकें प्रसन्न होयकें वहाँ पारायण कियो ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ आपकी जगत्-प्रसिद्ध पांडित्य ओर दिग्विजयकों सुनके राजानें अपने मंदिरमें पधरायकें बडी पूजा करी तब कृष्णदासनें कह्यो जो वा यतीकों यहाँ बुलाओ वाकी पांडित्य श्रीमदाचार्य देखें तब राजानें कही के हे प्रभो! वो यति केवल पंडि-

राजा प्राह यत्तिर्नैव केवलं पंडितः प्रभो ॥
स सिद्धराट् क्रोधनश्च पणवादीमहोद्यत ॥ ९ ॥
निर्माणे नाशने शक्तो वस्तूनां कर्षणे तथा ॥
यवनेशसुता कृष्टा सुदगी नोर्मदस्तरा ॥ १० ॥
निमज्जत्युन्मज्जतीह भूम्यां यात्यप्सु च द्रुतम् ॥
अंबरेऽग्नौ च तिष्ठति रूप धत्तेऽहिसिंहयो ॥ ११ ॥
वशे सरस्वती यस्य घटे वदति ससदि ॥
श्रुत्वार्यैर्विहसित च कृष्णदासेन गर्जितम् ॥ १२ ॥
गरुत्मत समीपे किं प्रभाव स्याद्गरुत्मत ॥
महीक्षिता तदाहूतो सामते स सरस्वती ॥ १३ ॥
श्रुत्वैव वैष्णवाचार्यान् त्वरित स समाययौ ॥
आयातोदिङ्मितै शिष्यै शैवानंदसरस्वती ॥ १४ ॥
स राज्ञा सत्कृतोन्याघ्रासनेस्वीये विशन् जगौ ॥
किमुच्चासनत सिद्धिरुच्चतासिद्धिदर्शने ॥ १५ ॥

तहां नहीं है बड़ो क्रोधी ओर सिद्ध पणवादी शरत लगायके वाद करवेवारो मारणमें तथा वस्तुके आकर्षणमें समर्थ हे ओर वानें यवनराजाकी बेटीको आकर्षण कर लीनो हे ओर भूमिमें जलमें आकाशमें वहोत वेगी आवे जाय हे सिंह सर्प आदिके रूप धारण करे हे सभामें जाके वश होयकें सरस्वती घटमें बोले हे ये बात राजाकी सुनकें आप हँसे ओर कृष्णदासनें गर्जना करी ॥ ६ ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥ ओर बोले जो गरुडके पास दूसरे पक्षीको कहा प्रभाव होयगो तब राजाने अपने मनुष्यनसों वाको बुलवायो सो वो शैवानंद सरस्वती वैष्णवाचार्यके पधारवेकी सुनकें जल्दीसों आयो ॥ १३ ॥ १४ ॥ ओर सगमें दश शिष्य लाये राजासों सत्कार पायकें अपनें व्याघ्रचर्ममें बैठतो भयो बोल्यो के उच्चआसनसों कहा सिद्धि हे सिद्धिनके दिखायवेमें सिद्धि हे ओर शिष्यद्वारा प्रश्न कियो के जगत्सत्य हे

प्राहासौ शिष्यमुखतः प्रश्नोयं क्रियते मया ॥
जगत्सत्त्यमसत्त्यं वा सपणः प्रतिपाद्यताम् ॥ १६ ॥
भट्टार्यमुखतस्तत्र गुरवोदुस्तदुत्तरम् ॥
जगत्सत्यमसत्यं वा यदि विप्रतिपद्यते ॥ १७ ॥
उक्ता जगत्सत्यतैवोक्तः पणः प्रतिपद्यते ॥
स चाह प्रतिभूराजा पणोयं विनिरूप्यते ॥ १८ ॥
पुंड्रमालाधारणीयोत्तारणीयेति तत्पणः ॥
भट्टार्यस्तु तदा प्राह नैवं धर्महरंपणम् ॥ १९ ॥
पणं वह्निप्रवेशाख्यं चरिष्येहं सुदारुणम् ॥
ततः स प्राह राजानं वह्निरानीयतां द्रुतम् ॥ २० ॥
भृत्येनाग्नावुपहृते सपटं निदधे स्वकम् ॥
दग्धः पटः प्रज्वलिते स चाहोच्चैर्हसन्निव ॥ २१ ॥
जगत्सत्यं पटःसत्यो दर्शनीय पटोमम ॥
भट्टार्यस्तु तदा प्राह पटश्चाग्नौ व्यवस्थितः ॥ २२ ॥
पटस्ते मुकुटे बद्धः पटोब्रह्मास्ति सर्वगः ॥
स कंकेत्यभ्यधाद्योगी भट्टः प्राह सभासदः ॥ २३ ॥

के असत्य हे ये सपण प्रतिपादन करो याआडी श्रीमदाचार्यजी, भट्टार्य अपने शिष्यद्वारा बोले के जगत् सत्य हे पण कहो तब वो बोल्यो के साक्षी राजा हे त्रिपुंड्र रुद्राक्ष धारण करनो ओरँ उर्द्धपुंड्र तुलसी उतारनो ये पण हे तब भट्टार्य बोले के एसे धर्म छोडवेको पण नहीं होय हे ॥ १५ ॥ १६ ॥ ॥ १७ ॥१८॥ १९ ॥ हम अग्निप्रवेश ये कठोर पण करेहें तब वो बोल्यो के अग्नि बेगी लावो ॥ २० ॥ अग्निके आयवे पे वामें अपनो वस्त्र वाने रख दीनो ओर वस्त्रकेजल जायवे पें अट्टहास करकें बोल्यो ॥ २१ ॥ के जगत् सत्य हे तो पटबी सत्य होनो चाहिये तो हमारो वस्त्र देखाइये तब भट्टार्य बोले वो वस्त्र अग्नि में हे ॥ २२ ॥ ओर तुम्हारे मुकुटमें बँधो हे ब्रह्मात्मक हे

दिवांधता कुतोस्याभूद्युष्माभि किंनभाल्यते ॥
सर्वेभ्य एव तत्रार्यैर्दिव्ये दत्ते च लोचने ॥ २४ ॥
प्राहुस्तेऽय पटोवह्नौ मुकुटे च जगत्यपि ॥
तदा स लज्जित प्राह इन्द्रजाल कुतोस्ति मे ॥ २५ ॥
वह्ने शक्तिर्निबद्धा मे पटा मिथ्या प्रदर्शिता ॥
भट्टार्यस्तु तदा प्राह भवान् किं नैन्द्रजालिक ॥ २६ ॥
उद्दीपयाग्ने शक्तिं भो दह तत्र तृणं पुन ॥
तेन स्नात्वा बहिर्गत्वा मंत्रैरुद्दीपितोनल ॥ २७ ॥
तृण च निहित तत्र तन्न दग्ध महाग्निना ॥
तदा तु लज्जितोभूत्वा पुन सदसि चागत ॥ २८ ॥
प्राहासावद्य कर्त्तव्यो विवाद शास्त्रयुक्तिभि ॥
जन्मनाशश्च वस्तूनां कथ भवति सत्यता ॥ २९ ॥
तदाहु श्रीमदाचार्या धातोरर्थं विचारय ॥
प्रादुर्भावे जनिर्धातुर्णशधातुरदर्शने ॥ ३० ॥

तब वो बोल्यो के कहाँ २ भट्ट सभासदनसों बोले ॥ २३ ॥ के ये दिनमें क्यों नहीं देखें हें कहा तुमलोग नहीं देखतहो एसो कहवे पे श्रीमदाचार्यजीने सबको दिव्य नेत्र देदीने ॥२४॥ सो सब कहवे लगे तुम्हारो पे पट (वस्त्र) अग्नि मुकुट जगत् इन सबमें हे तब वो लज्जित होयके बोल्यो इन्द्र जाल इनमें कियो हे ॥२५॥ अग्निकी शक्ति रोंक दीनी हैं हमारे वस्त्र झूठे दिखाये हें तब भट्ट बोले के कहा आप इन्द्रजालिक नहीं ॥ २६ ॥ अग्निकी शक्तिको उद्दीपन करो तामें तृग पीछे जलाबो तब वो बाहेर आयके स्नान करकें मन्त्रनसों अग्निको उद्दीपन करकें तिन वामें पटक्यो सो नहीं जर्यो तब लज्जित होय के सभामें आयके कहवेलग्यो ॥ २७॥२८ ॥ के शास्त्र ओर युक्तिनसों विवाद करें गे वस्तुनको जन्म नाश दीसे हे पीछे सत्यता इनकी केसे होयसके हे ॥ २९ ॥ तब आप बोले धातुको अर्थ विचारो प्रादुर्भावमें "जनि" धातुहे ओर अदर्शनमें "नश" धातुहे ॥ ३० ॥

आविर्भावात्तिरोभावाद्वस्तुनः सत्यता स्फुटा ॥
योग्यतादर्शनस्येह विद्यमानस्य वस्तुनः ॥ ३१ ॥
आविर्भावः स विज्ञेयस्तिरोभावस्ततोन्यथा ॥
प्राहासौ तत्र सांकर्यं कार्यकारणवस्तुनोः ॥ ३२ ॥
कार्यकारणताहानिःस्याद्यद्येवं निरूप्यते ॥
तदाहुर्गुरवोभूय ईश्वरः सर्वशक्तिमान् ॥ ३३ ॥
न सांकर्यं हेतुहेतुमत्त्वादिस्तस्य शक्तिता ॥
तत्राह श्रुतिवाक्येषु स्मृतिवाक्ये तथा पुनः ॥ ३४ ॥
जगतोऽसत्यता प्रोक्ता ते विरुद्धे भवे नु किम् ॥
प्राहुरार्यानचैवास्ति श्रुतिर्मिथ्यानिरूपणे ॥ ३५ ॥
एकादशसु शाखासु जगत्प्रचलितासु भोः ॥
न तत्र निर्णये क्वापि स्मृतिष्वेवं प्रदृश्यते ॥ ३६ ॥
पुराणेषु च वैराग्याख्याने तत्तेन किं तव ॥
तदा यतिः पुनः प्राह जगत्सत्यमिति श्रुतौ ॥ ३७ ॥
स्मृतौ क्व कथितं ब्रूत ह्याचार्यास्तु तदा जगुः ॥
मुंडके तैत्तिरीये च कौशीतक्यां तथा श्रुतिः ॥ ३८ ॥

एसें वस्तुके आविर्भावतिरोभावसों सत्यता निश्चित ही हे विद्यमानवस्तुके दर्शनकी योग्यताको नाम आविर्भाव हे यातें विपरीत तिरोभाव हें तब वो बोल्यो के तब तो कार्यकारणवस्तुकी कार्यकारणताकी हानि होयगी ॥ ३१ ॥ ॥ ३२ ॥ तब आपनें कह्यो के ईश्वर सर्व शक्तिमान हे वामें कार्यकारणकी हानि नहीं होयगी तब वो बोल्यो के श्रुतिस्मृतिवाक्यनमें जगत्की असत्यता प्रतिपादन क्यों करीहे आप बोले जो मिथ्यानिरूपण प्रचलित गेरहशाखानमें ओर स्मृतिमें वाके निर्णयमें नहीं देखे हें ओर पुराणनमें कहीं वैराग्यके लिये कह्यो हे तब यति बोल्यो के जगत्की सत्यता कहाँ श्रुतिस्मृतिमें

दिवांधता कुतोस्याभूद्युष्माभि किनभाल्यते ॥
सर्वेभ्य एव तत्रार्यैर्दिव्ये दत्ते च लोचने ॥ २४ ॥
प्राहुस्तेऽथ पटोवह्नौ मुकुटे च जगत्यपि ॥
तदा स लज्जित प्राह इन्द्रजाल कृतोस्ति वै ॥ २५ ॥
वह्ने शक्तिर्निबद्धा मे पटा मिथ्या प्रदर्शिता ॥
भट्टार्यस्तु तदा प्राह भवान् किं नैन्द्रजालिक ॥ २६ ॥
उद्दीपयाग्ने शक्तिं भो दह तत्र तृणं पुन ॥
तेन स्नात्वा बहिर्गत्वा मन्त्रैरुद्दीपितोनल ॥ २७॥
तृण च निहित तत्र तत्र दग्ध महाग्निना ॥
तदा तु लज्जितोभूत्वा पुन सदसि चागत ॥ २८ ॥
प्राहासावद्य कर्त्तव्यो विवाद शास्त्रयुक्तिभि ॥
जन्मनाशश्च वस्तूनां कथ भवति सत्यता ॥ २९ ॥
तदाहु श्रीमदाचार्या धातोरर्थं विचारय ॥
प्रादुर्भावे जनिर्धातुर्णशधातुरदर्शने ॥ ३० ॥

तब वो बोल्यो के कहाँ २ भट्ट सभासदनसों बोले ॥ २३ ॥ के ये दिनमें क्यों नहीं देखें हें कहा तुमलोग नहीं देखतहो एसो कहवे पे श्रीमदाचार्यजीने सबको दिव्य नेत्र देदीने ॥२४॥ सो सब कहवे लगे तुम्हारे ये पट (वस्त्र) अग्नि मुकुट जगत् इन सबमें हे तब वो लज्जित होयके बोल्यो इन्द्र जाल इननें कियो हे ॥२५॥ अग्निकी शक्ति रोक दीनी हे हमारे वस्त्र झूठे दिखाये हें तब भट्ट बोले के कहा आप इन्द्रजालिक नहीं ॥ २६ ॥ अग्निकी शक्तिको उद्दीपन करो सामे तृण पीछे जराओ तब वो बाहेर जायके स्नान करके मन्त्रनसों अग्निको उद्दीपन करके तिन वामें धरयो सो नहीं जर्यो तब लज्जित होय के सभामें आयके कहवेलग्यो ॥ २७॥२८ ॥ के शास्त्र ओर युक्तिनमें विवाद करेंगे वस्तुनको जन्म नाश होवे हे पीछे सत्यता इनकी कैसे होयसके हे ॥ २९ ॥ तब आप बोले धातुको अर्थ विचारो प्रादुर्भावमें "जनि" धातुहे ओर अदर्शनमें "णश" धातुहे ॥ ३० ॥

आविर्भावात्तिरोभावाद्वस्तुनः सत्यता स्फुटा ॥
योग्यतादर्शनस्येह विद्यमानस्य वस्तुनः ॥ ३१ ॥
आविर्भावः स विज्ञेयस्तिरोभावस्ततोन्यथा ॥
प्राहासौ तत्र सांकर्यं कार्यकारणवस्तुनोः ॥ ३२ ॥
कार्यकारणताहानिःस्याद्यद्येवं निरूप्यते ॥
तदाहुर्गुरवोभूय ईश्वरः सर्वशक्तिमान् ॥ ३३ ॥
न सांकर्यं हेतुहेतुमत्त्वादिस्तस्य शक्तिता ॥
तत्राह श्रुतिवाक्येषु स्मृतिवाक्ये तथा पुनः ॥ ३४ ॥
जगतोऽसत्यता प्रोक्ता ते विरुद्धे भवे नु किम् ॥
प्राहुरार्यानचैवास्ति श्रुतिर्मिथ्यानिरूपणे ॥ ३५ ॥
एकादशसु शाखासु जगत्प्रचलितासु भोः ॥
न तत्र निर्णये क्वापि स्मृतिष्वेवं प्रदृश्यते ॥ ३६ ॥
पुराणेषु च वैराग्याख्याने तत्तेन किं तव ॥
तदा यतिः पुनः प्राह जगत्सत्यमिति श्रुतौ ॥ ३७ ॥
स्मृतौ क्व कथितं ब्रूत ह्याचार्यास्तु तदा जगुः ॥
मुंडके तैत्तिरीये च कौशीतक्यां तथा श्रुतिः ॥ ३८ ॥

एसें वस्तुके आविर्भावतिरोभावसों सत्यता निश्चित ही हे विद्यमानवस्तुके दर्शनकी योग्यताको नाम आविर्भाव हे यातें विपरीत तिरोभाव हे तब वो बोल्यो के तब तो कार्यकारणवस्तुकी कार्यकारणताकी हानि होयगी ॥ ३१ ॥ ॥ ३२ ॥ तब आपनें कह्यो के ईश्वर सर्व शक्तिमान हे वामें कार्यकारणकी हानि नहीं होयगी तब वो बोल्यो के श्रुतिस्मृतिवाक्यनमें जगत्की असत्यता प्रतिपादन क्यों करीहे आप बोले जो मिथ्यानिरूपण प्रचलित गेरहशाखानमें ओर स्मृतिमें वाके निर्णयमें नहीं देखे हें ओर पुराणनमें कहीं वैराग्यके लिये कह्यो हे तब यति बोल्यो के जगत्की सत्यता कहाँ श्रुतिस्मृतिमें

मन्वादयस्तथा स्मृत्यः पुराणतावदुच्यते ॥
तदेतदक्षय नित्यं जगन्मुनिवराखिलम् ॥ ३९ ॥
आविर्भावतिरोभावौ जन्मनाशविकल्पवत् ॥
विश्व वै ब्रह्म तन्मात्र संस्थित विष्णुमायया ॥ ४० ॥
ईश्वरेण परिच्छिन्न कालेनानतमूर्तिना ॥
एव ब्रुवत्सु चार्येषु शिष्योस्यामर्षितोऽब्रवीत् ॥ ४१ ॥
अस्मान् भ्रष्टान् सूचयति नैष वक्तिश्रुतिस्मृती ॥
रुषा ज्वलन्तदा योगीभोगीवोच्चैर्विनिश्वसन् ॥ ४२ ॥
घटश्चानीयतां सद्य स्थापयामि सरस्वतीम् ॥
सा देवता सर्वमता तदुक्त कस्य न प्रमा ॥ ४३ ॥
अर्चितं घटमानीतं स्थापितं कृतमंडले ॥
आचम्याऽसून्सनियम्य कृत्वा न्यासविधिं पुन ॥ ४४ ॥
तत्वाध्वना घटे देवी योगयुक्त्या प्रवेशित ॥
प्रविष्टां देवतां ज्ञात्वा समभ्यर्च्य विधानत ॥ ४५ ॥

लिखी है तब आचार्य बोले के मुडक तैत्तिरीय, कौशीतकी उपनिषदनमें तथा मन्वादिक स्मृतिनमें है तथा पुराणमें है सो कहै हैं है मुनिवर ये सब जगत् नाशरहित नित्य है ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ केवल अविर्भाव तिरोभाव है विश्व (जगत्) ब्रह्म है अनन्तमूर्ति ईश्वर करके व्याप्त है एसे आपके कहवेपे याको शिष्य क्रोध करकें बोल्यो ॥ ४० ॥ ४१ ॥ के हमको भ्रष्ट समझके श्रुति स्मृति नहीं कहैं हैं तब क्रोध करकें सर्पके जेसे श्वास लेते योगी बोल्यो ॥ ४२ ॥ के घट लाओ सरस्वतीस्थापन करें वो देवता सर्व सम्मत है वाको कह्यो कोनको प्रमाण नहीं होयगो ॥ ४३ ॥ ओर बनायो घडो लायकें चौकमें धर्यो आचमन करकें ॥ ४४ ॥ तामें प्राणनको प्रवेश करकें विधानसों वाको

प्राह भक्त्याभितुष्टा चेद्गुरुशक्त्या विशेषतः ॥
ईश्वरस्य प्रसादेन सत्यं वद महेश्वरि ॥ ४६ ॥
देवता च तदा प्राह सत्यं सत्यं जगच्छनैः ॥
स च कोलाहलं कृत्वा प्राह चामर्षितः पुनः ॥ ४७ ॥
नेयं वदति संरुद्धा प्रातर्वादोभविष्यति ॥
भट्टार्यस्तु तदा प्राह सत्यं ब्रूते सरस्वती ॥ ४८ ॥
जगत्सत्यं जगत्सत्यं सकर्णैरखिलैः श्रुतम् ॥
तदोपहसितः सर्वैः स योगी खिन्नमानसः ॥ ४९ ॥
स्वनिकेतं गतोदेव्याः पुरतोमर्त्तुमुद्यतः ॥
तदाह देवता योगिन् किमर्थं म्रियतेऽधुना ॥ ५० ॥
सत्यं ब्रूहि त्वया प्रोक्तं तथैव च मयेरितम् ॥
जगत्सत्यं जगत्सत्यं श्रूयते च श्रुतौ स्मृतौ ॥ ५१ ॥
पत्युरग्रे कथं नारी मृषा ब्रूयात्सदस्यहो ॥
वाचांपतिर्हरिर्देव आचार्योयं तदाननम् ॥ ५२ ॥

पूजन करकें बोल्यो ॥ ४५ ॥ के हे महेश्वरि सत्य बोलो तब देवता धीरेसों बोली जो जगत् सत्य हे जगत् सत्य हे तब वो योगी कोलाहल (हेलो) करकें क्रोधसों बोल्यो ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ या समय सरस्वती नहीं बोले हे अब सबेरे काल्ह वाद होयगो ॥ तब भट्टार्य बोले के सरस्वती सत्य कहे हे ॥ ४८ ॥ सबननें सुन्यो हे तब सब लोग हंसे ओर योगी खिन्न होयकें ॥ ४९ ॥ अपने घरको गयो वहाँ देवीके सामने मरवेको तैयार भयो सो देवी बोली के क्यों मरो हो ॥ ५० ॥ तुमने कह्यो सत्य कहो सो मेनें सत्य कही श्रुतिस्मृतिमें एसेही कह्यो हे ॥ ५१ ॥ पतिके सामने सभामें स्त्री झूँठी बात कैसे बोले वाणीके पति हरि हें उनके मुख ये

नानृतं तस्य पुरतोवक्तव्य हि मया क्वचित् ॥
इति देव्या वच श्रुत्वा स योगी त्रपयान्वित ॥ ९३ ॥
तां दिशं सपरित्यज्य कांदिशीकोऽभवत्तु ॥
रामचद्रेण भूपेन सत्कृता गुरुसत्तमा ॥ ९४ ॥
प्रपन्न चाप्यनुगृह्य मनुमष्टाक्षरं ददु ॥
ततोजयनिनादेन प्रस्थितागुरुसत्तमाः ॥ ९५ ॥
श्रीविद्व्यासविष्णुप्रभुचरणमितेसम्मितेग्रन्थसार्थे ।
श्रीगोविन्दाभिधानांसमयनयविदादिशिकानांनिदेशात् ॥
आचार्याणांचरित्रेहरिजनसुखदेशास्त्रिकृष्णेर्निबद्धे ।
प्रस्थानेऽस्मिस्तृतीयेसमजनिपटहस्सप्तदिक्सम्मितोयम्॥९६॥
दंतवक्त्रस्य नगरं समेत्योपवने स्थिता ॥
तत्रत्यराजवर्येण समागत्य समर्चिताः ॥ १ ॥
विद्वद्भिः स्तुता प्रजाभिश्च राजा च शरणीकृत ॥
ततः प्रचलितागोपालाचलद्दहशुभवते ॥ २ ॥

आचार्यहूं ॥ ५२ ॥ कबी उनके सामने में झूठी नहीं बोलसकूंहूं एसे देवीके वचन सुनके वे योगी लज्जित होयके भग गयो तब रामचन्द्रराजाने बडो सत्कार कियो ओर शरणमन्त्र लियो पीछें श्रीमदाचार्यजी जयध्वनिके संग वहांसों पधारे ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ समयनीतिके जानवेवारे जगद्गुरु श्रीगोविन्दाचार्यजी महाराजकी आज्ञासों कृष्णशास्त्रीके बनाये श्रीविद्व्यासविष्णुस्वामीके मतके ग्रन्थनके अनुकूल हरिभक्तनके सुख देवेवारे या चारित्र ग्रन्थके तीसरे प्रस्थानमें ये सत्रहवों पटह समाप्त भयो ॥ ९६ ॥ सो दन्तवक्रकेनगर (दतिया) आयकें उपवनमें ठहरे वहांके राजानें आयकें पूजन कियो विद्वाननें स्तुति करी ओर प्रजाके संग राजा शरण भयो पीछें वहांसों गोपालाचल(ग्वालियर) होते धवलपुर पधारे सो वहांको राजा आपके सन्निधानमें आयकें दडवत् करके बहोत सुवर्ण भेंटकरवे लग्यो तब रा-

धवलाख्यं पुरं तस्माद्गुरवश्चोपधारिताः ॥
आचार्याणां पदे प्राप्तौ महीपालोमहामनाः ॥ ३ ॥
प्रणम्य दंडवद्भूमौ हेम्नां शतमधात्पुरः ॥
दामोदरस्तदा प्राह नाचार्यैर्गृह्यते वसु ॥ ४ ॥
सेवकैरर्पितं वस्त्रमामान्नं तत्प्रगृह्यते ॥
तत्रापि सांप्रतापेक्षायतोऽस्वस्तानिकाइमे ॥ ५ ॥
राजाति चतुरस्तस्य वाक्यतात्पर्यवित्तदा ॥
समाहूय विदः सर्वान् जल्पंस्तंत्राप्यकारयत ॥ ६ ॥
विदः प्रोचुः कथं शिष्यधनं ग्राह्यं नचेतरत् ॥
प्रमाणं तत्र किं प्रोक्तमुदाहरणमप्युत ॥ ७ ॥
गुरवोभट्टमुखतस्तदुत्तरमिदंजगुः ॥
ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किंचिज्जगत्यांजगत् ॥
तेनत्यक्तेन भुंजीथा मागृधः कस्यचिद्धनम् ॥ ८ ॥
परान्नं परवस्त्रं च परशय्यासनांगना ॥
श्रेयस्कामैर्न संग्राह्यंभीतैस्तत्पापसंक्रमात् ॥ ९ ॥
पित्रोश्चमातामहयोर्गुरोः श्वशुरयोरपि ॥
शिष्यस्यान्नं न पारक्यं परान्नं वर्ज्यमेव तत् ॥ १० ॥

मोदर बोले जो आप धन नहीं ग्रहण करें हैं सेवकनको दीनो वस्त्र आमान्न ग्रहण करें हैं ये सुनके राजा बडो चतुर हो सो इनको तात्पर्य समझके विद्वाननकों बुलवायके शास्त्रार्थ करायो विद्वाननने प्रश्न कियो के शिष्यधन लेनो दूसरेको नहीं यामे कहा प्रमाण हे आचार्यननें भट्टके द्वारा ये उत्तर कह्योके "ईशावास्य" या श्रुतिमें दूसरेके धनके ग्रहणको निषेध कियो हे परान्न परवस्त्र परशय्या इत्यादि पापसंसर्गके भयसों अच्छेपुरुषनको नहीं ग्रहण करनो चाहिये माता, पिता, नाना, नानी, श्वशुर, शिष्य, इनको अन्न परायो नहीं होयहे

आद्या न प्रोच्यते स्मार्तैर्यश्चात्मान निवेदयेत् ॥
कलौ वर्ज्यास्तु दासाद्यानायभिन्नविषेश्रुते ॥ ११ ॥
उदाहृत च बृहदारण्यकेऽत स्फुट विद ॥
याज्ञवल्क्येन मुनिना शिष्य कृत्वामहीपतिम् ॥ १२ ॥
गृहीतं तद्धनमिति ब्राह्मणे तन्निरूपितम् ॥
तत प्रसन्नोराजाभूत्पुण्यवत्स्य प्रजाश्चया ॥ १३ ॥
ततस्तु गुरवोयातामुचकुंदगुहां प्रति ॥
पुण्यां दरीं समीक्ष्योपूरार्थ्रतांमुमुदुस्तत्वा ॥ १४ ॥
स्वेभ्यो जगु कथां तस्य मुचकुंदमहीपते ॥
मुकुंदानुग्रहस्याऽयोऽप्यगच्छन्मथुरांप्रति ॥ १५ ॥
श्रीवेदव्यासविष्णुप्रभुचरणमिते समिते ग्रथसार्थे ।
श्रीगोविंदाभिधानां समयनयविदांदेशिकानां निदेशात् ॥
आचार्याणां चरित्रेहरिजनसुखदेकृष्णभट्टैर्निबद्धे ।
प्रस्थानयत्तृतीय समजनिपटहे पूर्णमष्टादशाख्ये ॥ १६ ॥

परको अन्न वर्जित है बृहदारण्यमें लिख्यो है के याज्ञवल्क्यमुनिनें राजाको शिष्य करके वाको धनग्रहण कियो येही बात ब्राह्मणमें लिखी है ये सुनके राजा ओर सब प्रजा प्रसन्न भई ओर आप मुचकुंदकी गुफा पधारे वहीं रातभर रहके सबनको मुचकुंदराजाकी कथा सुनायके वहाँसो मथुरा पधारे ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥ १० ॥ ११ ॥ ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥ समयनीतिके जानवेवारे जगद्गुरु श्रीमद्गोपि (?) नाथाचार्यजीकी आज्ञामें कृष्णभट्टजीके बनाये श्रीमद्वेदव्यासविष्णुस्वामीजीके मतके ग्रन्थनके अनुकूल हरिभक्तनके सुखदेवेवारे या चरित्रग्रन्थमें अठारहपटहमें ये तीसरो प्रस्थान समाप्त भयो ॥ १६ ॥

जिन महाशयोंने इस ग्रन्थके प्रकाश करनेमें प्रथमहीसें ग्रन्थ लेनेकेलिये अपनी उदारता प्रकाश की है उनके नाम लिखके मैं उनका उपकार मानताहूं ।

मुंबई.

पुस्तक संख्या		नाम
५१	सेठ	चतुर्भुज मुरारिजी
२५	"	यमुनादास नरसी खटाऊ
२५	"	मूलजी हरीदास
२५	"	गोवरधनदास तथा मूलराज
१०	"	श्यामजी लद्धा
१०	"	लालजी गोधू
१०	"	जयराम गोधू
१०	"	गोवरधनदास गोकुलदास तेजपाल
१०	"	प्रागजी शूरजी
१०	"	रामजी लक्ष्मीदास
१०	"	वागजी कुँवरजी
१०	"	केशवजी दामोदर जयराम
१०	"	चतुर्भुज हेमराज
१०	"	द्वारकादास धर्मसी
५	"	देवजी शिवजी
५	"	श्यामजी शिवजी
५	"	देवजी कानजी
५	"	तुलसीदास विष्णुजी
५	"	परमानन्द प्रेमजी
५	"	गोविन्दजी भाणजी
५	"	देवकर्णपारपीया
५	"	एवजी ऊमरसी
५	"	मावजी माधवजी
५	"	गणेशदास गंगादास
५	"	अगरचद हर्षचन्द

पुस्तक संख्या		नाम
५	"	वंशीलाल अबीरचंद
५	"	पुरुषोत्तमदास भगवानदास
५	"	धारसी हेमराज
५	"	अमरचंद माधवजी
५	"	रामदास आसर
५	"	गंगाराम टीकमदास
५	"	रतनसी गोकुलदास
५	"	विष्णुजी मनजी
५	"	गोकुलदास माधवजी
५	"	हरिभाई परमानन्ददास
६	"	कारामूलजीमडली
४	"	रतनसी मूलजी
३	"	रामदयालजी
२	"	धर्मसीआसुर
२	"	मोतीलाल लक्ष्मीदास
२	"	रामदास पुरुषोत्तमदास
२	"	दामोदर नंदजी
२	"	मणीलाल मूलजी
२	"	कल्याणजी केशवजी
२	"	मूलजी हंसराज
२	"	भाईचन्द पीताम्बर
२	"	डूँगरसी लक्ष्मीदास
२	"	गोकलदास दोसा
२	"	मोतीलाल डायाभाई
२	"	मूलजी ऊमरसी

पुस्तक सख्या नाम
२ ,, कल्याणजी ऊमरसी
२ ,, टोकरसी मथुरादास
२ ,, गोविन्दराम टीकमदास
१ ,, हेमराम तुलसीदास
२ ,, मूलजी परधान
२ ,, द्वारकादास दामोदर
२ ,, गोवरधनदास हरीदास
२ ,, त्रिभुवनदास भगजीवनदास
२ ,, व्रजभूषणदास नागरदास
१ सेठ गोकुलदास देवजी
१ ,, छगनलाल जगजीवन
,, ,, नगीनदासजी माणिकलाल
,, ,, चुनीलाल लक्ष्मीचन्द
,, ,, गोवरधनदास सुंदरदास
,, ,, मापुभाई नीलाभाई
,, ,, गंगाराम लालजी
,, ,, मूलजी धनजी
,, ,, ममजी नारायणजी
,, ,, विठ्ठलदास हेमराज
,, ,, नारायणदास कृष्णदास
,, ,, गिरधरदास बालमुकुन्ददास
,, ,, मुरारजी धारसी
,, ,, माणिकचंद हेमचंद
,, ,, वल्लभदास हीरजी
,, ,, हीरजी धर्मसी
,, ,, मभूराम हरीराम
,, ,, लीलाधर ठाकुरसी
,, ,, भाईशंकर जेठाराम
,, ,, दयालगोविन्दजी
,, ,, नरसी माणजी
,, ,, जेठापरमानंद

पुस्तक सख्या नाम
,, ,, जमुनादासजीवराज
,, ,, रतनसी गोविंदजी
,, ,, विष्णुजी दोसा
,, ,, लीलाधर गोपालजी
,, ,, मावजी लक्ष्मीदास
,, ,, कमूबालजी
,, ,, रामजी धारसी
,, ,, भागजी नरसी
,, ,, गोविंदजी देवजी
,, ,, हरीलखमसी
,, ,, रामजी निसई
,, ,, भगनलाल धारसी
,, ,, सुंदरजी मूलजी
,, ,, लालजी उमरसी
,, ,, चंदनमल वोरा
,, ,, जगजीवन देवचंद
,, ,, लख्या चतुर्भुज
,, ,, ठाकरसी गेला
,, ,, रामजी सौंवला
,, ,, लालजी नारायणजी
,, ,, गोवर्धनदास नारायणदास
,, ,, गोवर्धन रघुनाथदासजी
,, ,, नेमसी कृष्णदास
,, ,, रघुनाथदास हरजीवनदासजी
,, ,, चमकीराम रामनारायण
,, ,, किसनगोपाल
,, ,, तुलसीदास नरसी
,, ,, गंगादास जमुनादास
,, ,, लक्ष्मणसौंवला
,, ,, द्वारकादास व्रजभूषणदास
,, ,, गिरधरदास विष्णुजी

पुस्तक संख्या नाम

" " नथ्थु नानजी
" " मथुरादास झीनाभाई
" " अमरचंद दोसा
" " रविजी नारायणजी
" " परमानंद देवकर्ण
" " कानजी खुसालदास
" " मूलचंद जमुनादास
" " माणिकलाल मोतीलाल
" " माणिकलाल दामोदरदास
" " मथ्थूमल
" " पुरुषोत्तम गोविन्दजी
" " मेवजी कुंवरजी
" " अमीदास रूपजी
" " द्वारकादास मूलजी
" " मथुरादास ठाकरसी
" " आनंदजी दयाल
" " दयाल मावजी
" " दामजी परषोत्तम
" " जयराम हेमराज
" " खीमजी कल्याणजी
" " नरसी भाणजी
" " जमुनादास जीवराज
" " रतनसी गोविंदजी
" " झूठा परसोत्तम
" " जयराम खेतसी
" " मूलचंद कल्याणदास
" " विष्णुजी जेसा
" " लीलाधर गोपालजी

श्रीवालुकेश्वर संस्कृत वेदिक पाठशाला पुस्तकालय.

अहमदनगर.

१ " विठ्ठलदास किसनदास

पुस्तक संख्या नाम

माँगरोड.

१ " रूपचंद केशवजी
१ " रणछोड हीरजी
१ " कपूरचंद हीरजी
" " भगवानदास धर्मसी
" " भूषणदास भाणाभाई

अमृतसर.

" " प० श्रीभानुचंदजी
५ " विहारीलालजी
५ " नथ्थूमलजी
१ " बलदेवदास नरसिंहदासजी
" " रामदासजी
२ " उत्तमचंद धारीलालजी
२ " चुन्नीलाल लद्धा
१ " दयाराम पेठेवाला

डेरास्मालखान

१ " पं० कृष्णदासजी
" " ईश्वरदास पोखरदास
" " वल्लभदास
" " रिक्कीराम चिम्मनदास
" " चन्दूराम चेलाराम
" " खिलदा रामजी

डेरागाजीखान.

" " अधिकारी यमुनादासजी
" " प० मुरारीलाल तेजभानु
" " प० रामचद्रजी
" " प० ठाकुरदासजी
" " रायउद्धवदास
२ " सेठ आत्मारामजी
१ " सेठवंशीधर जगन्नाथ
" " [illegible]

पुस्तक संख्या नाम
" " लक्ष्मणदास सुखीराम
" " वल्लभदासजी
" " बिहारीलालजी

सिधहैदराबाद

" " लक्ष्मणशर्मा मोहनशर्मा

बीकानेर

" " चम्पालाल पचीसिया
" " लक्ष्मीचन्द परमसुखदास

मथुराजी

५ " चरणदासजी

गिरिराज

१ " श्यामदासजी

भरथपुर

५ " पंडित फतेसिंहजी वकील
१ " छेदी मलजी

काम्यवन

" " माष्टरदेवजी मूलजी

इटावा

" " द्वारकादासजी

कानपुर

२ " शामामलजीमिरी
२ " सेठ रतनचन्द रामचन्द
२ " छोटारामदयालजी
२ " केशरचंदजी
२ " गुदीरामजी
२ " सीतारामजी
१ " बाबूरामकृष्णजी
" " रायदेवीप्रसाद पूर्ण बी, ए, बी, एल,
" " रामसिंहजी वकील
" " ठाकुरदासजी शर्मा

पुस्तक संख्या नाम
" " विठ्ठलदास मैनची
" " लोकेश्वर कादरलाल
" " डुँगरसी जीवनदास
" " नारायणदयालजी
" " मोहनजी दामोदर
" " टीकमदासजी

फतेपुर

२ " सूर्यभानुप्रसाद डिप्टीकलक्टर

लखनऊ

" " बाबु रघुवरदयालजी
" " गोपालदासजी
" " गोवरधनदासजी
" " बलदेवदास लक्ष्मणदास
" " मोहनलाल बेनीमाधव

रायपुर

" " पुरुषोत्तम कोठारी

जबलपुर

८ " रायबहादुर वल्लभदासजी
१ " कुन्नीलाल
१ " बंसीलाल पुरोहितजी
१ " कृष्णदास महेश्वरी
१ " मूलचंद पसारी

काशीजी

१ " बाबूगोवरधनदासजानीमलखानचंद
१ " श्यामदासजी
१ " भगवल्लभदास हरीदास
१ " मथुरादासजी
१ " मथुरादास किशनदास
१ " विठ्ठलदासजी कुवासाले
१ " हरीदास चतुरदास
१ " हरीदासजी गुप्त

पुस्तक संख्या नाम

गाजीपुर.

१ " बाबू देवकीनन्दनजी

पटना.

४ " बाबू दामोदरप्रसाद
१ " बाबू लालाप्रसादजी

कलकत्ता.

११ " राजाबाबू (दामोदरदासवर्मा)
९ " सेठ सदासुख गम्भीरचन्द
५ " गणपतलालजी
५ " गुलाबदासजी
५ " नरसिंहशाह मदनगोपालजी
५ " भीमजी गोविंदजी
५ " हीरालाल गजाधरलाल
५ " ठ, टोपण माधवजी
५ " रामसरूप सरयूप्रसादजी
४ " शिवदास लाभचन्दजी
४ " छोटालाल लक्ष्मीनारायणजी
४ " रामकृष्णदासजी डागा
४ " मनोहरदास
४ " गोपालदास गोपीकृष्णजी
२ " सेवारामजी
२ " बलदेवदासजी
२ " मूलचन्द फकीरचन्द
२ " श्रीकृष्णदास शिवकृष्णदासजी
२ " बुलाकीदास जीवनदासजी
२ " गङ्गादासजी भट्टल
२ " पुरुषोत्तमदास यमुनादासजी
२ " मूलचन्द यमुनादासजी
१ " हरीदासजी महता
१ " बुद्धामल बहेती

पुस्तक संख्या नाम

१ " बदरीदासजी डागा
१ " परमसुखजी मूँदडा
१ " ग्वालदासजी बिंदाणी
१ " यमुनादास गणेशदासजी
१ " कृष्णगोपालजी
१ " गोपीलालभैया
१ " रणछोडदासमूँदडा
१ " सूर्यमल गोकुलदास
१ " रामरतन चाणक
१ " गिरिधरलाल बागड़ी
१ " बालकृष्ण चंपालाल
१ " गङ्गासहाय बालकृष्ण
१ " महेशदास चाणक
१ " नथमल दम्माणी
१ " मंगीलाल अगरवाला
१ " हरीदास चाणक
१ " सूरजप्रसादजी
१ " मूलचन्दजी पंचना
१ " लक्ष्मीचंदजी झवर
१ " माधवदास दम्माण
१ " रामचंदजी महता
१ " जगनलालजी महता
१ " सूर्यप्रसादजी
१ " राधाकृष्णमूलचंदजी
१ " मथुरादास कोठारी
१ " रघुनाथदास डागा
१ " शिवकृष्णजी डागा
१ " मेघराज बीजराजजी हरस
१ " बुलाकीदास हरस
१ " [illegible]

पुस्तक संख्या नाम

१ " जसरूप जगन्नाथजी
१ " मक्खनलाल सूर्यमल
१ " मक्खनलाल फतेचंद
१ " सुखीलाल रामनारायणजी
१ " रामगोपालजी डागर

निजामहैदराबाद

१ " सेठ बालकृष्णदास लक्ष्मीदासजी
११ " राजा भगवानदास हरीदासजी
५ " गुलाबदास हरीदासजी
५ " चतुर्भुजदास गोकुलदासजी
२ " व्यंकटीदास मोहनदासजी
१ " सुखालदास गुलाबदासजी
१ " ब्रजमोहनदास गोकुलदास
१ " मनमोहनदासजी
१ " छोटालाल माणकलालजी
१ " चिम्मनलालजी
७ " सूरजराम गोविंदरामजी
१० " गङ्गाविष्णुजी
१ " राधालाल व्यासजी
५ " रामगोपालजी
५ " गोवरधनजी व्यास
७ " पांचामल सुखीलालजी
४ " गोविंदराम मथुरादासजी
१ " युगलकिशोर व्यासजी
४ " राघवजी शालिगराम
२ " धनजी मथुरादास
१ " मुलियाजी गोविंदरामजी

पुस्तक संख्या नाम

४ " साहेबराम अनन्तरामजी
२ " जेठमलजी
२ " नथ्थुमल गोवर्धनदासजी
१ " हिम्मतराम आशारामजी
१ " नथीलाल अमीरचंदजी
१ " शिवलाल कृष्णलालजी
१ " रघुनाथ रामधनजी
१ " राजाबंसीलालजीकी माजी
१ " भैंरराजजी हनुतरामजी
१ " रघुनाथदास भोदूरामजी
१ " जयगोपालदासजी
१ " हीरालालजी फोफालिया
१ " श्रीरामचतुर्भुज
१ " काशीराम व्यासजी
१ " सुखीलालजी
१ " रामनाथ पांडुरंगजी
१ " सदाराम रामलालजी
१ " रामदयाल गोपीकृष्णजी
१ " मनीराम फतेचंदजी
१ " सरूपचंद कृष्णलालजी
१ " पन्नालालजी मिश्र
१ " बालाजी गणपतजी
" " धनजी मनसाराम

मद्रास

" " सेठ चतुर्भुजदास तुलसीदासजी
" " सुजायदास बालमुकुन्ददासजी

अन्तिम सूचना ।



इस पुस्तकके ग्राहक मंडलसे सविनय निवेदन है कि, जैसे २ आपलोगोंके नाम मिलेहैं उसी क्रमसे मैंने लिखेहै हाँ इतना अवश्य कियाहै कि, पुस्तकसंख्याके अनुरोधसे नीचे ऊँचे करदियाहै वास्तविक इस ग्रन्थरत्नमालाके सभी आप रत्न हैं इसलिये सम्भावनाहै कि, इस अलौकिक कार्यमें उस लौकिक अहम्भावनाको छोडदेंगे कि, मैं वडाहूं मेरा नाम पहले लिखनाथा इत्यादि अस्तु पाठकवृन्द इतनेहीसे सन्तोप न करलेना अभी यह ग्रन्थ वहोत वडा है दोतीन खंडमे सम्पूर्ण होगा जहाँतक पूर्ण न होगा प्रतिवर्ष इसी प्रकारसे निकलेगा और अवकी आगेके खण्डमे श्रीमहाप्रभूजीकी व्रजयात्रा आदिका वर्णन है जिसमे अनेक साम्पदायिक रहस्य हैं जिनको भावुक रसिक भगवत्प्रेमीजनही जानसकतेहैं यदि दूसरे वर्गका ऐसा ग्रन्थ छपके वाहेर पडता तो कुछ आश्चर्य न था कि, दशहजार पुस्तककी कापी वातकी वातमें उठजाती यहाँ टीका पाका दिखानेमें तथा क्षणिकनश्वर कार्योंके लिये हमारे मित्रोका महान् उत्साह है परन्तु ग्रन्थोंके वाँचनेमे उनका उत्साह मैं ही जानताहूं जो हजार कापी छापनेपर वहोत पुस्तक तो पुस्तकालयहीमें वास किया करतेहै कुछ थोडेसे गृहस्थोंके घर जबरदस्ती जानेपर भी अच्छी जगह विश्रामके न पानेसे अपना कलेवर वहाँही समाप्त करदेतेहैं गृहस्थ तो कंकर पथ्थर तिजोरीमें साँच साँचके अपने महामार्गके भारके लिये रखतेहै और जिसभगवती सरस्वतीका स्थान मनुष्योंकी जिह्वारूप तिजोरीमें रहताथा उसको वैठनेको स्थान भी नही मिलता क्या लिखे लेखिनी नही चलती ।

पं० शंकरदयालु शर्मा मिश्र.



